उद्योग-व्यवसायांक—योगांक

पूर्ण संख्या—*Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and*
२५३ *Central Provinces, for use in Schools and Libraries.* Reg. No. A. 708

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञान-परिषदका मुखपत्र, जिसमें अमृतसरका

आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

भाग ४३ — मेषार्क, संवत् १९९२ — संख्या १

Vol. 43 — अप्रैल, १९३६ — No. 1

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [इस प्रतिका मूल्य १॥)

विषय-सूची

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्‌के अधिकारी

पत्र-व्यवहार करनेवाले नोट कर लें

१—बदलेके सामयिक पत्र, समालोचनार्थ साहित्य, आयुर्वेदको छोड़ और सभी विषयोंके लेख एवं सम्पादन-सम्बन्धी पत्रादि "सम्पादक, विज्ञान, बनारस शहर" इस पतेसे भेजना चाहिए।

२—विज्ञान एवं विज्ञान-परिषत्, विज्ञापन, वैज्ञानिक साहित्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी समस्त पत्र, मनीआर्डर आदि "मंत्री, विज्ञान परिषत्, प्रयाग" इस पतेसे भेजना चाहिए।

३—आयुर्वेद-सम्बन्धी सभी लेख उस विषयके विशेष सम्पादक स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य, पञ्जाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसरके पतेसे भेजे जाने चाहिए।

माधव रामचन्द्र कालेने श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेसमें मुद्रित किया

तथा मंत्री विज्ञानपरिषत् प्रयागके लिये वृन्दावनविहारीसिंहने विज्ञान-कार्यालय काशीसे प्रकाशित किया।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,

विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ३।५॥

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्‌का मुखपत्र जिसमें अमृतसरका आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

भाग ४३

मेष-कन्या, संवत् १९९३

अपरैल—सितम्बर, १९३६ ईसवी

प्रधान सम्पादक

रामदास गौड़, एम्० ए०

विशेष सम्पादक

गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी, (गणित और भौतिक-विज्ञान)   स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य (आयुर्वेद-विज्ञान)

रामशरणदास, डी० एस्-सी०, (जीवन-विज्ञान)   श्रीचरण वर्मा, एम्० एस्-सी०, (जन्तु-विज्ञान)

श्रीरंजन, डी० एस्-सी०, (उद्भिज्ज-विज्ञान)   सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी० (रसायन-विज्ञान)

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)]   विज्ञान—परिषत्, प्रयाग   [इस जिल्दका मूल्य १॥)

विषयानुक्रमणिका

अर्थशास्त्र

आयुर्वेद

इतिहास

उद्योग धन्धे

कृषिविज्ञान

ज्योतिर्विज्ञान

मङ्गलाचरण

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

सहयोगी विज्ञान

साहित्यविश्लेषण

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,

विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग ४३ { प्रयाग, मेषार्क, संवत् १९९३ वि० । अप्रैल, सन् १९३६ ई० { संख्या १

मंगलाचरण

प्रार्थना

[पंडित ईश्वरचन्द्रजी पांडेय शास्त्री काव्यतीर्थ वैद्यशास्त्री, हिसार]

परमेश ! परमात्मन् ! प्रभो ! सागर दयाके आप हैं ।
हे भारतीयोंके सहारे ! कब भला होगी दया ?

अज्ञान-तिमिराच्छन्न हो, हम खो चुके स्वातन्त्र्य भी ।
कब ज्ञानकी वह सौख्यदा मंगलमयी होगी उषा ?

हम दासताके घोरतर आघातसे आहत हुए ।
हे नाथ ! कब होगी क्रियात्मक स्वावलम्बनकी कथा ?

निर्वाह भी अब तो कठिन हृदयेश ! हमको हो रहा,
हा ! "विकट रोटीकी समस्या" दूर होगी कब भला ?

उत्थान करते जा रहे अन्यत्र तो सब लोग हैं ।
हम शोक सिन्धु निमग्न हैं समदर्शिता होगी न क्या ?

करुणा करो करुणानिधे ! करुणार्थ क्या कार्पण्य है ?
निज-निर्भरा हो आज हा ! विश्वम्भरा भारत-धरा ?

"आनन्द" अमरित-शालिनी सुख शान्तिकी भागीरथी
दिखलायेगी इस दीन भारतमें न क्या सुन्दर छटा ?

हमारी रोटीकी समस्या

(१)

हमारी भयानक बेकारी

(श्रीपंडित ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम्० आइ० एल० ई०, जे० एस० एम्० ई०)

१. धनकी खानकी घोर दारिद्रता

इस समय हमारे देशके राजा और प्रजा, विद्वान और मूर्ख, धनी और निर्धनी, शहरी और ग्रामवासी, कामकाजी और बेकार सबके सामने, उनके जीवन और मरणसे सम्बन्ध रखनेवाली, एक बड़ी भारी समस्या रखी हुई है, जिसकी पूर्तिमें सब ही अपनी-अपनी योग्यता और शक्तिके अनुसार संलग्न हैं। यह समस्या है "रोटी"। यही रोटीका सवाल हमारे ही देशकी नहीं बल्कि सारी दुयियाँकी सब प्रकारकी हलचलोंकी जड़ है। लेकिन यह समस्या दुनियाँके अन्य सभ्य देशोंमें इतनी विकट नहीं है जितनी कि सोनेकी चिड़िया कहलानेवाले भारतवर्षमें।

प्रसिद्ध इंजीनियर मोल्सवर्थका कथन है कि "भारत-भूमि धनकी खान है। इसमें नाना प्रकारकी खेती, खनिज और उद्योगके लिये प्राकृतिक सामान हैं। उत्तम कोयला, उम्दा मिट्टीका तेल, लोहे और लकड़ीकी उत्तमतासे विदेशियोंके मुँहमें पानी आ जाता है। सोना, चाँदी, ताँबा, टीन तथा अन्य अनेक रत्नोंकी भी कमी नहीं है, तिसपर भी भारत भूखा मर रहा है।"

हमारा इतिहास हमें बताता है कि इस रोटीकी समस्यासे कभी इतने चिन्तित और निराश नहीं हुए थे जितने कि हम इस समय हो रहे हैं। हमारे प्रसिद्ध इतिहासकार श्रीयुत रमेशचंद्रदत्तका कथन है कि "जब कभी दुर्भिक्ष पड़ता है तब प्रायः सदा ही उसका कारण पानीका न बरसना होता है। पर यदि हम सत्यभावसे इसका कारण ढूँढ़ें तो हम निराश न होंगे। इस तरफ जो इतने कड़े और बहुत अधिक अकाल पड़े हैं, उसका कारण किसानोंका निर्धन होना है। यह किसान दुनियाँ भरमें सबसे अधिक निर्धन और विपत्तिग्रस्त हैं।

श्रीविलियम डिग्बीका कथन है कि ४० मिलियन अर्थात् ४ करोड़ भारतीयोंको पेट भरकर अन्न न मिलनेका बहुत पुराना रोग है। वे जनवरीसे दिसम्बर तक नहीं जानते कि पेटभर भोजन किस चिड़ियाका नाम है। उनकी क्षुधाकी दाह नहीं बुझती। उनकी भूखका कीड़ा नहीं मरता।

(अर्जुन, फरवरी १९३३)

२. शहरियोंकी भी दुर्दशा

किसानोंकी ही नहीं बल्कि शहरोंमें रहनेवालोंकी हालत भी बड़ी दयनीय है। हमारे यहाँ इस समय १२ बड़े-बड़े शहर हैं जिनमें २ लाखसे अधिककी संख्यामें मनुष्य रहते हैं। भारतके शहरोंमें रहनेवाले मनुष्योंकी कुल संख्या लगभग साढ़े तीन करोड़ है लेकिन उनके पास रहनेको मकानतक नहीं है। सन् १९२१की मनुष्य-गणनाकी रिपोर्टकी नवीं जिल्दमें बम्बई और लंदनकी तुलना करते हुए बताया है कि बम्बईमें ६६ प्रतिशत ऐसे आदमी हैं जो एक कोठरीमें चारके औसतसे रहते हैं, लेकिन लंडनमें कुल ६ प्रतिशत ही ऐसे आदमी हैं जो एक कोठरीमें १०९२ के औसतसे रहते हैं। इसका फल यह होता है कि हमारे शहरोंमें सदैव हैजा, प्लेग आदि भयानक बीमारियोंका जोर बँधा रहता है। डाक्टर और वैद्योंकी संख्या बढ़नेके साथ ही साथ नई-नई प्रकारकी बीमारियोंकी संख्या भी बढ़ती जाती है। इसी गरीबीके कारण बुरे रस्म, व्यभिचार और अनाचार आदिकी वृद्धि होती है। चोरी, डकैती, जूआ और हत्या आदिके लिये भी यह दरिद्रता ही जिम्मेदार है।

३. हमारी घटती हुई आयु

इन्हीं सब कारणोंसे हमारी औसत आयु भी दिन प्रतिदिन घटती जाती है। सन् १८९१ ई०की मनुष्य

गणनाके अनुसार हमारी औसत आयु २३·२ वर्ष थी और अब (१९३१ की गणनाके अनुसार) घटकर २४·७ वर्ष ही रह गयी है, जब कि इटलीमें इस समय ४९·३, फ्रांसमें ६२·२, इंगलैण्डमें ५६·६ और जरमनीमें ५६ वर्ष है।

४. हम कितने धनी हैं, जरा औरोंसे मिलाइये !

मनुष्य गणनाके अंकों द्वारा भी यह सिद्ध होता है कि यह देश संसारमें सबसे अधिक दरिद्र है। इस समय यहाँके मनुष्योंकी औसत वार्षिक आय ७४) है, जब कि जापानके मनुष्योंकी २४९), इटलीमें ३५१), जर्मनीमें ५३७), फ्रांसमें ७४१), इंगलैंडमें १३१९) और अमेरिकामें १७१७) है।

यह गरीबी केवल हमारे बिना पढ़े देशवासियोंमें ही नहीं है बल्कि पढ़े लिखोंमें भी बड़े जोरसे है। आपको याद होगा, सन् १९२८की कलकत्ता कांग्रेसके साथमें जो औद्योगिक प्रदर्शनी हुई थी उसमें हमारे पढ़े लिखे लोगोंकी भयानक बेकारी और दरिद्रताका प्रदर्शन करनेके लिये वहांके अधिकारियोंने कुछ महीने पहिलेसे भारतीय समाचार पत्रोंमें इस आशयका एक विज्ञापन दिया था कि उन्हें एक लेखक अर्थात् क्लर्ककी आवश्यकता है, जो सज्जन कमसे कम जितने वेतनपर काम करनेको तैयार हों अपने आवेदन-पत्रके साथमें लिखें। विज्ञापन तो झूठा ही था लेकिन उसमेंसे हमें एक बड़ा भारी सत्य मिला, वह यह कि उस विज्ञापनके जवाबमें १०६८ आवेदन पत्र प्राप्त हुए जिनमेंसे ६८६ तो ऐसे थे जो ३०) मासिक अथवा इससे कमपर काम करनेको राजी थे। २३ आवेदक ऐसे थे जिनकी योग्यता एम० ए०, एम० एस० सी०, बी० एल० आदि थी और ३१८ बी० ए० इत्यादि थे।

यही नहीं, इससे भी अधिक हृदय-विदारक दृश्य हमारे देखने और समाचार-पत्रोंद्वारा जाननेको मिलते हैं कि आज अमुक शिक्षित व्यक्ति रोज़गार न मिलनेके कारण पागल हो गया, उसने आत्महत्या कर ली, अमुक पुरुष चोरी करते पकड़ा गया, अथवा जूआ खेलते पकड़ा गया, और अमुक व्यक्तिने डकैती की, आदि।

बड़े-बड़े अर्थशास्त्रियोंका कहना है कि यह बेकारी और उससे उत्पन्न दरिद्रता, इस समय केवल भारतमें ही नहीं है बल्कि सारी दुनियामें व्याप्त है और इसके मूल कारण बताये जाते हैं (१) धरतीके स्वामित्वके दोष, (२) धरतीके स्वामित्वका टुकड़ोंमें बँटना, (३) पूँजी-वाद, (४) वाणिज्यवाद, (५) जनसंख्याका अधिक मात्रामें बँटना (६) सिक्कोंका दोषयुक्त चलन, (७) व्यापारचक्र, (८) आय वा खरीदारीके बलका विषम रीतिसे बँटना, (९) कलोंका प्रचार (१०) और ऋतु इत्यादि। भारतवर्षकी स्थितिमें यह सब ही कारण काम कर रहे हैं।

वैसे तो भारतमें अब भी आपको कुछ ऐसे सुशिक्षित विचारकोंका दल मिलेगा जिनकी रायमें यह देश अब भी दिन-प्रतिदिन समृद्धिशाली होता जा रहा है। वे आपको बतावेंगे कि देखिये हमारे यहाँ अब प्रतिदिन नये नये सनके कारखाने खुल रहे हैं, रुईकी मिलें बहुत हो गयी हैं, मिट्टीके तेलके कूएँ बन रहे हैं, कोयलेकी नयी-नयी खानें चालू हो रही हैं, ईस्पातकी फैक्टरियाँ चल रही हैं, चाय और रबड़की काश्त भी होने लगी है, नये-नये बैंक खुल रहे हैं, बीमा कम्पनियाँ स्थापित हो रही हैं। क्या यह सब समृद्धिके चिन्ह नहीं हैं ?

इस समय लगभग ४६०० अँगरेज भारतके व्यापारिक क्षेत्रमें काम कर रहे हैं, इतनी ही संख्यामें खानोंका काम कर रहे हैं, ५९०० अन्य प्रकारके उद्योगोंमें हैं, ६००० राज्यके प्रबन्धमें हैं और ९००० रेलवे चला रहे हैं, और इनके साथमें लाखों पढ़े-लिखे और बे-पढ़े हिंदुस्तानी रोजगारसे लगे हुए हैं। क्या इससे भारतकी समृद्धि नहीं बढ़ती ? वाह ! इसीसे तो उनकी दिन-प्रतिदिन खरीदारीकी ताक़त बढ़ रही है। इसका सबसे बड़ा सबूत यही है कि, देखिये, प्रतिवर्ष हमारे देशमें विदेशी मालकी आयात बढ़ती ही जा रही है। इस समय यह ७० लाख टन, वार्षिकसे कहीं अधिक है* जिसमें आधेसे अधिक इंगलैण्ड का होता है। और इसीके प्रभावसे इंगलैण्डकी बेकारी भी अब प्रतिदिन

* यह अंक १९३० ई० के पहिलेके हैं, इसके बाद सत्याग्रह आन्दोलनसे तो आयात कुछ कम हो गयी है।

घटती जा रही है और वहाँके बेकारोंकी संख्या अब दस लाखसे बहुत नीचे उतर गयी है।

५. हमीं अपना धन लादकर दूसरोंको दे आते हैं और आप नंगे भूखे रहते हैं !

हमारे देशमें इस समय १२ नगर इतने बड़े हैं कि जिनमें दो लाखसे अधिककी जनसंख्या है और कुल शहरोंमें मिलाकर अब ३ करोड़ २० लाख मनुष्य रहते हैं और वे भी प्रतिदिन बढ़ते ही जा रहे हैं। इंगलैंडसे तुलना करने पर मालूम होता है कि हमारे शहरोंमें भी लगभग उतने ही आदमी रहते हैं जितने कि इंगलैंडके शहरोंमें; लेकिन कभी यह कहनेवालोंने सोचा भी है कि भारतके शहरोंके आदमी क्या करते हैं और इंगलैंड तथा अन्य पाश्चात्य देशोंके शहरोंके आदमी क्या करते हैं ?

हमारे शहरोंके आदमी हमारे देहातोंसे कच्चा माल, जिसे तयार करनेमें हमारे ग्रामवासियोंने अपने खून को पसीनेके रूपमें बहा दिया है, इकट्ठा करते हैं। हमारे सेठ लोग उस मालको अपने खर्चेसे समुद्र तटके नगरों तक ले जाते हैं, और हमारे गरीब मजदूरोंसे, जिनका पेट भूखके मारे सदैव चिपका रहता है, जहाज़ोंपर लदवाते हैं। लेकिन इसका कुल लाभ विदेशी निर्यातकों, पूँजीपतियों और मालिकोंको जाता है।

फिर इसी कच्चे मालसे, विदेशी शहरोंके निवासी, हमारे नित्यके उपयोगका और ऐश्वर्यका सामान बनाते हैं। और फिर हमारे सेठ लोग उसी सामानको, उसकी बड़ी भारी बनवाई देकर, किराये देकर, सब प्रकारके कर देकर, और सब प्रकारकी जोखम उठाकर, मँगवाते हैं और हमारे उन्हीं करोड़ों गरीब और भूखे ग्रामवासियोंको बेचकर, वास्तवमें देखा जाय तो विदेशियोंके जूठे टुकड़े खाकर, व्यर्थका अभिमान करते हैं।

हमारे इन शहरोंमें दो करोड़ शिक्षित कहलानेवाले पुरुष भी रहते हैं; जिनमें कई तो इतने योग्य होते हैं कि वे दुनियाँके किसी भी देशके शिक्षितोंसे टक्कर लेनेका दावा रखते हैं, लेकिन वे करते हैं अपने विदेशी स्वामियोंकी क्लर्की। जो इनसे भी अधिक योग्य होते हैं, वे डाक्टर, वकील, पुलिस अफसर, मैजिस्ट्रेट, सिविल इञ्जीनियर और इलेक्ट्रिकल इंजीनियर बनकर अपने गरीब देश भाइयोंका ही खून चूसते हैं। लेकिन, न तो वे अपने बे-पढ़े ग्रामीण भाइयोंकी तरह कच्चा माल उत्पन्न करनेमें ही भाग लेते हैं, और न वे पढ़े लिखे और शहरोंमें रहनेवाले विदेशियोंकी तरह नित्यकी आवश्यक वस्तुओंका उत्पादन ही कर सकते हैं। वास्तवमें वे उत्पादक यंत्र नहीं बल्कि गिननेवाले यंत्र हैं।

६. भारत किसी चीजके लिये विदेशोंका मुहताज नहीं

यहाँपर हमें हालैंड और बाल महाशयका कथन याद आता है। हालैंड महाशयका कहना है कि "भारतवर्ष खनिजके कामोंमें लाभकारी उद्योगोंका अपरिमित स्थान है। प्रकृतिने इस देशको सब कुछ दिया है। ये पदार्थ केवल इसी देशको काफी नहीं हैं बल्कि संसार भरके बाजारोंमें सुविधा और लाभके साथ बेचे जा सकते हैं। पर जबतक हम ऐसे नवयुवक रत्न पैदा न करें, जो वकालत और नौकरी पेशेकी तरह इन उद्योगोंमें भी तन्मय हो जावें, तबतक वह भारतका असीम धन गुप्त ही रहेगा।"

बाल महाशयका कहना है कि "यदि भारतवर्ष संसारके अन्य देशोंसे अलग कर दिया जाय या इसकी उपजकी रक्षा की जाय तो यह निश्चित है कि एक सुशिक्षित सभ्य जातिकी सम्पूर्ण आवश्यकताओंको अपने ही अन्दरकी उपजसे पूर्ण कर सकता है।

(अर्जुन–फरवरी १९३१)

७. फिर इतना बाहरी माल क्यों आता है ?

'हरिजन-बन्धु'से हम यह अंश उद्धृत करते हैं।

श्री जेठालालजीने, जो अनंतपुर (सागर जिला) में ग्रामसेवा कर रहे हैं, सन् १९३० के आयातके अंकोंसे निम्नलिखित विचारणीय निष्कर्ष निकाला है—

कपड़ा	७४२२	लाख
सूत	६००	,,
	८०२२	,,
छाते	४३	,,
स्टेशनरी	१०५	,,
कागज	३७२	,,

हमारी रोटीकी समस्या

(२)

उसे कैसे सुलझावें

[श्रीओंकारनाथ शर्म्मा, ए. एम्. आइ. एल. ई., जे. एस्. एम्. आई.]

१. बेकारी रोगको कैसे मिटावें

हमारे देशके सभी श्रेणीके सुधारक इस बात-में सहमत हैं कि इस देशके वासियोंकी बेकारी और दरिद्रता यदि दूर हो सकती है तो वह केवल पुराने उद्योग-धंधोंके उत्थान और नये उद्योग-धंधोंके चालू करनेसे ही हो सकती है। नये उद्योग-धंधोंका विचार आते ही हमारी दृष्टि समुन्नत पाश्चात्य देशोंपर पड़ती है और हमें वहाँके बड़े-बड़े कारखाने दिखाई देने लगते हैं। फिर हम सोचते हैं कि यदि हमें भी जीवनकी दौड़में इन देशोंके साथ रहना है तो हमें भी इतने बड़े-बड़े कारखाने चलाने पड़ेंगे। लेकिन हम यह सोचकर हताश हो जाते हैं कि हमारे पास इतना धन तो है ही नहीं। एक-एक कारखाना खोलनेके लिये करोड़ों रुपये चाहिये, क्योंकि हमें बड़े-बड़े इंजन खरीदने होंगे, मशीनें खरीदनी होंगीं, विशेषज्ञोंको हजारों रुपयेका वेतन देकर विदेशोंसे बुलवाना होगा, इत्यादि।

पर हमें इतना हताश होनेकी आवश्यकता नहीं, हमारे राष्ट्रके कर्णधार महात्मागांधीजी हमारे दुःसाध्य रोगके लिये संजीवनीके समान, जीवन-संग्राममें विजय प्राप्तिके लिये कल्पवृक्षके समान एक बहुमूल्य लेकिन सुलभ, बल्कि हमारी ही चीज बता रहे हैं। हमने उस अमृतको जल समझकर फेंक दिया था! वह वस्तु है **"चरखा और करघा।"**

महात्माजीकी यह चरखेवाली योजना भारतके लिये कितनी उपयोगी है, इस विषयपर बम्बई प्रान्तके कृषि विभागके भूतपूर्व डायरेक्टर डाक्टर हेरल्ड एच० मानने "टैम्स आफ इंडिया" नामक पत्रके प्रतिनिधिसे कहा था, जो उस पत्रके २२ अक्टूबर १९२७ के अंकमें छपा था, "कि चाहे और तरहपर गाँधीजी ठीक राहसे भटक ही गये हों, परन्तु, उन्होंने जो चरखेका पक्ष लिया है, चाहे मजूरी उसमें दो ही आना रोज क्यों न मिले, उसमें वह भारतकी दरिद्रताके असली रहस्यके भीतर पैठ गये हैं।"

२. खद्दर ही हमारी सम्पत्तिकी कुंजी है

Economics of Khaddar नामका एक अनुपम ग्रन्थ, जिसका हिन्दी अनुवाद खद्दरके सम्पत्तिशास्त्र नामसे अजमेरके सस्ता साहित्य मंडलने प्रकाशित किया है,

साबुन	१६६	लाख
स्याही	८	,,
चमड़ा	६८	,,
जूते	८८	,,
खाद	६८	,,
दियासलाई	१०	,,
बटन	२६	,,
ब्रुश	१४	,,
कटलरी	४१	,,
	१०४२	,,

इन आंकड़ोंमें अन्य कई चीजोंका समावेश नहीं हुआ है, जैसे खांड, मादक पदार्थ, घासलेट आदि। केवल ऊपरके आंकड़े ही हमें यह बतला देते हैं कि अगर गाँव सजीवन हो जाय तो करीब एक अर्ब रुपयेका माल हर साल गाँवोंमें आसानीसे पैदा होने लगे। इसका यह अर्थ हुआ कि इतना धन हमारे गाँवोंमें बहुत प्रयत्नके बिना ही आ सकता है।

और यह भी स्पष्ट हो गया कि हमारी भयानक बेकारीका विदेशी रोजगार ही मुख्य कारण है।

श्रीरिचर्ड बी० ग्रेगने लिखा है। उक्त पुस्तकमें वे लिखते हैं कि "बेकारीको मिटानेके लिये सहायताके जितने उपाय संसारमें जहाँकहीं सोचे गये हैं, ग्रन्थकारके विचारमें सबसे अधिक प्रभावशाली, सबसे अधिक ठोस और बुद्धिसे भरी, रोगके मूलपर सबसे ज्यादा चोट करनेवाली, सबसे अधिक मौलिक और सबसे ज्यादा विस्तारसे काममें आ सकनेवाली योजना गाँधीजीकी ही है। पच्छाहीं मनुष्य जीवनके हर पहलूमें यंत्रकी विकटता देखनेका आदी है और सीधी-सादी योजनाओंको तुच्छ समझकर उनकी खिल्ली उड़ाता है। परन्तु गाँधीजीकी योजनाकी सादगी इसे हैरान कर देती है और इसकी खिल्लीबाजी उसके सामने मंद पड़कर मिट जाती है।"

उक्त पुस्तकमें बड़ी योग्यताके साथ सिद्ध करके बताया है कि मानव शरीर भी एक प्रकारका छोटा सा इंजन है जो कोयले और पानीकी जगह भोजन और जलसे चालक शक्ति प्राप्त करता है। यह इंजन कोई उपयोगी कार्य करे या न करे इसमें जल और भोजनरूपी ईंधन तो सदैव ही खर्च होता रहता है। अतः इन बेकार इंजनोंको जो करोड़ोंकी संख्यामें बड़ी सुलभतासे हमें मिल सकते हैं, किसी उपयोगी काममें लगा देना ही बुद्धिमानी है। हमारे शहरों और गाँवोंमें लाखों बेकार आदमी हैं जिनमेंसे अधिकांश भीख माँगकर अपने जिन्दगीके दिन पूरे करते हैं, और वर्ष भर बेकार रहते हैं। इन्हें छोड़कर यदि हम केवल किसानोंपर ही विचार करें तो मालूम होगा कि वे भी खेतीका कामकर चुकनेके बाद वर्षभरमें डेढ़ महीनेसे छः महीनेतक बेकार रहते हैं। सन् १९२१की मनुष्य-गणनाके हिसाबसे बताया है कि उनकी संख्या पौने ग्यारह करोड़ है। यह मनुष्य कोई शारीरिक काम करते समय एक अश्वबलका दशमांश भी लगा सके तो सब किसान मिलकर अपने खेतीके काममें एक करोड़ साढ़े सात लाख अश्वबल लगावेंगे। यदि चर्खेको चलानेमें मनुष्य अपने बलका लगभग दशमांश खर्च करे अर्थात् एक अश्वबलका शतांश खर्च करे तो कुल किसान लोग मिलकर एक लाख साढ़े सात हज़ार अश्वबल लगा सकेंगे। इसी बातको समझाते हुए आगे चलकर बताया है कि १९१९में सारे भारतके औद्योगिक कारखाने कुल मिलाकर १० लाख अश्वबलसे कुछ ही अधिकसे चल रहे थे। केवल बम्बई प्रान्तके कारखाने एक लाख अश्वबलसे कुछ ही अधिक खर्च कर रहे थे, और बम्बईकी रुई और कपड़ेका काम करनेवाली मिलें जो संख्यामें कुल ४४ थीं मिलकर ९३ हज़ार अश्वबलकी शक्तिसे चल रहीं थीं। इन अंकोंसे आगे चलकर इस पुस्तकमें यह निष्कर्ष निकाला है कि उपरोक्त किसानोंमें यदि कताई और बुनाईका पूर्ण रूपसे प्रचार फिरसे हो जाय तो ये सब मिलकर सारे भारतको कपड़ेके मामलेमें स्वाधीन कर देंगे। यदि आजकलकी बढ़ी हुई आवश्यकताओंको मान लो वे पूरा न कर सकें तब भी हमारे खर्चेका आधेसे अधिक अंश तो वे दे ही देंगे और शेष हमारी मौजूदा मिलें पूरा कर सकती हैं। और इससे उनकी बेकारी भी काफी दूर हो जायगी।

हाथके चर्खेके द्वारा काते हुए सूतसे करघेके द्वारा बना हुआ कपड़ा मिलके कपड़ेसे किस प्रकार बाजी ले जा सकता है, यह इस पुस्तकमें बड़ी उत्तमतासे समझाया गया है। जिन्हें चरखा आन्दोलनकी सफलतापर पूर्ण विश्वास न हो उनसे मेरा सप्रेम अनुरोध है कि वे उक्त पुस्तकको आदिसे अन्ततक अवश्य ही गंभीरतापूर्वक पढ़ जावें।

३. बड़ी मशीनें बेकारी बढ़ाती हैं

इस लेखमें बेकारीके कारणोंका जिकर करते हुए बताया जा चुका है कि कलोंका प्रचार भी एक कारण है। कलोंकी सहायतासे एक आदमी सैकड़ों आदमियोंका काम थोड़ेसे समयमें ही कर लेता है जिससे और आदमी बेकार हो जाते हैं। अतः यदि हमें बेकारोंको रोज़ी देनी है तो हमें चाहिये कि जहाँतक हो सके लाखों रुपयेकी बड़ी बड़ी मशीनोंसे काम न लेकर छोटे हाथके औजारोंद्वारा बेकार फिरनेवाले आदमियोंसे काम करवावें, जहाँतक हो सके फैक्टरीयोंके स्थानपर घरेलू उद्योग-धंधोंका प्रचार करें। चरखा-आन्दोलन हमें एक अमूल्य सिद्धान्त सिखाता है, जिसका उपयोग हम कई आधुनिक उद्योग-धंधोंमें कर सकते हैं।

इस कथनसे यह न समझा जाय कि चरखा-आन्दोलन हमें जमानेसे पीछे घसीट रहा है, आधुनिक वैज्ञानिकोंकी परिश्रमसे बनायी हुई मशीनोंको नष्ट करना चाहता है। महात्मा गांधी स्वयं इस प्रकारके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए सन् १९२५ के ६ नवम्बरकी यंग इंडियामें लिखते हैं, "कल कारखानोंके लिये भी जगह है, और खास जगह है। कल कारखाने आ गये हैं, तो रहेंगे। परन्तु उसे मनुष्यके

आवश्यक परिश्रमकी जगह न ले लेनी चाहिये। सुधरा हुआ हल अच्छी चीज़ है। परन्तु ऐसा संयोग आ जाय कि एक ही आदमी सारे भारतके खेतको जोत सके और सारी पैदावारपर अधिकार कर ले और करोड़ों आदमियोंको कोई काम न रह जाय, तो सब भूखों मरने लगेंगे और बेकार रहकर उसी तरह मूढ़ हो जायँगे जैसे आज अनेक हो गये हैं। प्रति घंटे इस बातका भय है कि अधिकाधिक लोग इस मूढ़ताकी अनिष्ट दशाको न पहुँच जावें। घरेलू यंत्रमें हर तरहके सुधारका मैं स्वागत करूँगा, परन्तु मैं तो यह जानता हूँ कि करोड़ों किसानोंको घर बैठे काम देनेका जब तक कोई बन्दोबस्त नहीं है, तबतक पुतलीघरकी कताई चलाकर हाथके परिश्रमको बंद करना दंडके योग्य अपराध है।"

उसी पत्रके उसी सन्के १७ सितम्बरके अंकमें उन्होंने लिखा है "कल कारखानोंने जो हाथके कामको खदेड़ कर लूट मचा रखी है, इस अवस्थाको दूर करनेके मतलबसे ही चरखा आन्दोलनका सुसंगठित उद्योग है।" एक लेखकने जब यह प्रश्न किया कि क्या आप सब तरहके कलपुर्जोंके विरोधी हैं, तो १९ जून १९२६के अंकमें उन्होंने उत्तर दिया, "मेरा उत्तर ज़ोरके साथ है, नहीं! परन्तु उसे अन्धाधुन्ध बढ़ाते जानेका मैं अवश्य विरोधी हूँ। देखनेमें कल-पुर्जोंकी जो विजय मालूम हो रही है, उसकी चकाचौंधमें आनेवाला आसामी मैं नहीं हूँ। समस्त नाशक कल-पुर्जोंका मैं कट्टर विरोधी हूँ। हाँ, सारे हथियारोंका और औजारोंका और ऐसी कलोंका मैं स्वागत करूँगा जिनसे आदमीको आराम मिले और करोड़ों झोपड़ियोंमें रहनेवालोंका बोझ हल्का हो।"

४. बड़ी मशीनें भी कहीं-कहीं चाहिये

इस समय हमें ताताके स्थानके कारखाने जैसे कारखानोंके अतिरिक्त कुछ और भी बड़े उद्योगोंके लिये कारखाने चालू करनेकी आवश्यकता है जैसे लोहे और ईस्पातके तार खींचनेके कारखाने, लोहे, पीतल और तांबेकी चद्दरें बनानेके कारखाने, तांबे और अलम्यूनियमके तार, चद्दर और ईंटें बनानेके कारखाने, रेलके इंजन, मोटर गाड़ियों, मिलों और फैक्टरियोंके लिये छोटे और बड़े इंजन, बिजलीकी मोटर और डायनमो आदि, इंजीनियरोंके कामके लिये बड़े यंत्र और जहाज़ आदि बनानेके कारखाने। इन उद्योगोंमें करोड़ों रुपया खर्च करनेकी आवश्यकता है। इनके करनेका साहस कुछ इने गिने धनी सज्जन ही कर सकते हैं और वह भी सरकारी मदद से। लेकिन, इसीके साथ-साथ हम कई छोटे-छोटे उद्योगोंको भी चालू कर सकते हैं, जिनमें अधिक रुपया खर्च करनेकी आरम्भमें आवश्यकता नहीं, अथवा कोई बड़ी-बड़ी फैक्टरियाँ खोलनेकी आवश्यकता नहीं। इन्हें तो हमारे शहरोंमें रहनेवाले शिक्षित नवयुवक और कारीगर आपसके सहयोग और संगठनके द्वारा घरेलू उद्योग धंधोंकी भाँति ही चला सकते हैं। इस प्रकारसे आधीसे भी अधिक वस्तुएँ जो हम सदैव विदेशोंसे मँगवाते हैं और जिनसे हमारे बाजार भरे पड़े हैं यहीं तयार हो सकती हैं। इन वस्तुओंके तयार करनेके लिये हमें कच्चा माल, जैसा ऊपर जिकर किया गया है वैसे बड़े कारखानोंसे प्राप्त हो सकता है। लेकिन जबतक इस प्रकारके बड़े कारखाने चालू न हो जावें तबतक हम विदेशोंसे आवश्यक कच्चा माल मँगवा कर काम चला सकते हैं।

५. घरेलू धंधे और बड़े कारखाने दोनों चल सकते हैं

घरेलू उद्योग-धंधे बड़े उद्योगोंके साथ-साथ फल-फूल सकते हैं, यह बात इस यंत्रयुगमें मज़ाक सी जँचती है, लेकिन जो लोग पाश्चात्य समुन्नत देशोंके औद्योगिक वातावरणसे भली भांति परिचित हैं, वे जानते हैं कि अब भी वहांके राष्ट्रीय उद्योगमें घरोंमें काम करनेवाले कारीगरोंका हिस्सा काफी है। ग्रेट ब्रिटेन जो आजकल बड़े उद्योगोंका घर समझा जाता है, वहाँ भी घरेलू उद्योग-धंधोंमें लगे हुए मनुष्योंकी संख्या २ लाख ७० हजारसे कम नहीं है। फ्रांसमें छोटे उद्योगोंमें लगे हुए मनुष्योंकी संख्या भी उतनी ही है जितनी कि बड़े उद्योगोंमें लगे हुए मनुष्योंकी, और वहाँ यह अनुमान किया जाता है कि लगभग ५ लाख २० हज़ार कारीगर तो ऐसे हैं जो अकेले अथवा दो एक अपने घरके आदमियोंसे ही काम निकाल लेते हैं। जर्मनीमें जिसके लिये कहा जाता है कि वह केवल उद्योगपर ही जीवित है, ५४ लाख मनुष्य केवल छोटे उद्योगोंमें ही संलग्न हैं। यह संख्या वहांकी तिहाई आबादीके बराबर होती है।

जब पाश्चात्य देशोंके कारीगर अपने घरोंमें बैठे बैठे अथवा अपने मुहल्लोंकी छोटी छोटी दुकानोंमें बैठे बैठे ही अपने तयार मालसे हमारे बाजारोंको भर रहे हैं, तब क्या कारण है कि हमारे आदमी छोटे उद्योगोंसे सफलता-पूर्वक अपनी रोजी न कमा सकें और भूखे मरते फिरें। सन् १९१६से १९१८तक काम करनेवाली भारतीय औद्योगिक कमीशनने छोटे और घरेलू उद्योगोंपर अपने विचार प्रकट करते हुए अपनी रिपोर्टके १९३ वें पृष्ठपर कहा है कि "किसी उद्योगमें सफलता प्राप्त करनेके लिये मज़दूरीमें बचत करना ही, सदैव, कोई विशेष आवश्यक नहीं होता, और कई मौक़ोंपर स्वयं कार्य करनेवाली मशीनोंको लगानेसे भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। लेकिन असलमें आवश्यकता इस बातकी पड़ती है कि निष्कर्षण (extraction) और (conversion) परिवर्त्तनकी क्रियायें जहांतक हो सकें पूर्णतया हों और कच्चे मालकी बरबादी जहाँतक हो सके बचायी जाये और ऐसी रद्दी जो किसी उपयोगमें आ सकती है बेकार समझकर न फेंक दी जाय। असलमें अधिकांश उद्योग इन्हीं आवश्यक बातोंकी तरफ ध्यान न देनेके कारण ही असफल रहे हैं।" उसी रिपोर्टके १९६ पृष्ठमें लिखा है कि "भारतका सस्ता रहनसहन ही अन्तर्जातीय व्यापारिक प्रतिद्वन्दतामें भारतको विजय दिलानेवाला शक्तिशाली हथियार है। लेकिन कार्य-कर्त्ताओंमें उचित योग्यताके अभाव और उनका कार्य सुसंगठित न होनेके कारण यह हथियार बेकार रह सकता है।"

६. बेकारोंकी कई श्रेणियाँ

हमारे यहाँ इस समय बेकार आदमियोंकी दो श्रेणियाँ हैं, एक तो किसान और उनके साथमें रहनेवाली ग्रामीण जनता और दूसरे, शहरोंमें रहनेवाले मजदूर और शिक्षित। लेकिन उस कामसे उनकी आमदनी बहुत थोड़ी होती है, इसलिये ऐसे लोगोंको किसी सहायक धंधोंमें अपनी फुरसतका समय लगाना चाहिये। और जो बिलकुल बेकार हैं उन्हें अपनी योग्यता और स्थान आदिकी उपयुक्तता देखकर कोई छोटा उद्योग संगठित होकर चालू कर देना चाहिये।

पहिले हम अपने ग्रामीण भाइयोंके लिये उपयुक्त उद्योग धंधोंपर विचार करेंगे, प्रयाग विश्वविद्यालयके अर्थ शास्त्रके आचार्य श्रीयुत व्रजगोपाल भटनागर एम० ए० अपने Cottage Industries as Subsidiary Occupation अर्थात् छोटे उद्योग सहायक धंधोंके रूपमें शीर्षक लेखमें जो बम्बई विश्वविद्यालयके अर्थ शास्त्रके आचार्य एच० एल० काजीद्वारा सम्पादित Cooperation in India अर्थात् भारतमें सहकारिता नामक पुस्तकमें छपा है, लिखते हैं कि हम यह नहीं कह सकते कि भारतके सब प्रान्तोंके किसान छः छः सात-सात महीने बेकार रहते हैं। बंगाल आदिमें जहाँ वर्षा खूब होती है और चावल बोये जाते हैं वहाँ तो अवश्य ही किसानोंके पास छः सात महीनेका फुरसतका समय रहता है, लेकिन पंजाब, संयुक्त प्रान्त और मध्य भारतमें जहाँ गेहूँ बोया जाता है, बड़ी कठिनतासे लगभग सवा महीनेका फुरसतका समय होता है। अतः उनके लिये किसी नये प्रकारके उद्योगोंकी योजना तयार कर सफलताकी आशा करना अनुचित है। लगभग ११ महीने परिश्रम करनेके बाद उन्हें आराम करनेका अवसर न देना और उन्हें रुपये बनानेकी मशीन समझ बैठना उनपर अन्याय करना है। और देखा जाय तो इसी समयमें उनके विवाह, गौने और मुण्डन आदिकी रस्में हुआ करती हैं। उनका यह फुरसतका समय लगभग मई और जूनके महीनोंमें पड़ता है।

७. गाँवके बेकार क्या करें ?

अतः हमें उनकी आमदनी बढ़ानेके लिये और अन्य-ग्रामीण जनता जो खेतीमें नहीं लगती है उसकी बेकारी दूर करनेके लिये वहाँ ऐसे कामोंका प्रचार करना चाहिये जो सरल हों, जिनसे वे चिर-परिचित हों और जो उनके निर्वाहके लिये आवश्यक हों, जैसे चरखा कातना, करघेसे कपड़ा बुनना, कपड़ोंकी रंगाई और छपाई करना, रेशमके कीड़े पालना, लकड़ीका व्यापार करना, टोकरी बुनना, पंखे बुनना आदि। यह वस्तुएँ ऐसी हैं जिनका बाजार वहाँ है और यदि अधिक मात्रामें हों तो पासके शहरोंमें भी खप सकती है। इसके अतिरिक्त यदि उनके गाँव शहरोंके निकट हों तो वे डेयरी आदि चला सकते हैं। घी, लकड़ी और कंडे तो वे अब भी बेचते हैं। इसके अतिरिक्त हमारे शहरोंके

शिक्षित नवयुवक जो साधन सम्पन्न हों पाश्चात्य ढंगसे खेतीका काम सीखकर गाँवोंमें जाकर बसें और वैज्ञानिक ढंगसे स्वयं आस्तीन चढ़ाकर खेतीके काममें लगें और कुछ नवयुवक मिकेनिकल इंजीनियरिंगका काम सीखकर गाँवोंमें कृषि-सम्बन्धी उन्नत प्रकारके औज़ार घरेलू उद्योगके रूपसे बनाना आरम्भ करें और इस प्रकारसे वहाँके निवासियोंके लिये कुछ और आमदनीका सिलसिला जारी करें, लेकिन यह याद रहे कि वहाँ तेलके इंजनोंसे आटेकी चक्की चलाकर गरीब ग्रामीण औरतोंको बेकार कर देना पाप होगा। यदि हम वहाँ कलम, पेन्सिल, जंजीरें, बटन आदि बनवाने लगेंगे तो हम सफल नहीं होंगे, क्योंकि उनकी खपत केवल शहरोंमें ही होती है और ग्रामीण लोग इन उद्योगोंके लिये अभ्यस्त नहीं होते।

८. शहरके बेकार क्या करें?

शहरोंमें रहनेवाले शिक्षित और अशिक्षित बेकार मिलकर निम्नलिखित सामान घरेलू उद्योगके रूपमें तयार कर सकते हैं। यह सामान करोड़ों रुपयों का, विदेशोंसे, हम प्रतिवर्ष मँगवाते हैं।

पढ़ने-लिखनेका सामान, जैसे—क़लम, निब, पेन्सिल, दवातें, पेंसिल खरादनेके चाकू, सादे चाकू, ब्लाटिंग पैड, रूल, स्केल, चित्रकलाके औज़ार, रंग, स्याहियाँ, चिट्ठियाँ तौलनेके तराजू, कागज पकड़नेकी नाना प्रकारकी क्लिपें, कागजोंपर रखनेके बोझे, नाना प्रकारकी फाइलें इत्यादि।

पहिनने-ओढ़नेके उपभोगका सामान, जैसे—बटन, बटनकी कड़ी, सेफ्टीपिन, बेल्ट, गेटिस, जूते, मोजे, बनियाइन, जूतोंके फीते, रबड़के फीते, रेशमी फीते, किनारियाँ, घड़ी और चाबी बाँधनेकी जंजीरें और कड़ियाँ, चश्मेकी फ्रेम, आईलेट, इत्यादि।

दरवाजों, फर्नीचर और संदूकोंमें लगनेवाला सामान—चटखनियाँ, कब्जे, हेन्डिल, रंग करनेकी कूचियाँ, मकान साफ करनेकी कूचियाँ, दाँत साफ करनेकी कूचियाँ, तसवीरोंकी कड़ियाँ, अलीगढ़के ढंगके ठोस ताले और जरमनीके ढंगके चद्दरके ताले, ट्रंकों और तिजोरियोंमें लगनेवाले ताले और हेन्डिल आदि, तिजोरियाँ।

घरोंमें काम आनेवाली नित्यके उपयोगकी वस्तुएँ—बरतन, चम्मच, चाकू, छुरी, सरौते, कैंची, दर्पण, लालटेनें, उस्तरे, बाल्टी, साबुन, डिबिया आदि।

फुटकर वस्तुएँ—छतरी, बेंत, व्यायाम करनेकी कमानियाँ, डम्बल, बच्चोंके खेलनेके लिये लकड़ी, पीतल, टीन, और सेल्यूलाइड आदिके खिलौने और अन्य प्रकारके छोटे-छोटे सामान जिनसे हमारे बाजारके बिसातियोंकी दुकानें भरी रहती हैं।

इसके अतिरिक्त शिक्षासंस्थाओं और कारखानोंकी प्रयोगशालाओंमें काम आनेवाले कई औज़ार और यंत्र भी घरेलू उद्योगसे ही तयार हो सकते हैं।

९. काम चलाया कैसे जाय?

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यह सब काम चालू करनेके लिये हमें पैसेकी और उचित शिक्षाकी आवश्यकता पड़ेगी, उसका प्रबन्ध किस प्रकार किया जाय। यहाँके जो धनी पुरुष हैं वे तो इस तरफ ध्यान देंगे ही क्यों, उन्हें तो विलायती सामानके मँगवाने और यहाँका कच्चा माल विदेशोंको भेजनेमें जो कुछ दलाली सी मिल जाती है उसे ही सब कुछ समझे हुए हैं, वे उत्पादनके झगड़ेमें पड़ने ही क्यों लगें। और जो धनिक कुछ साहस रखते हैं उनका ध्यान बड़ी बड़ी मिलें और कारखाने खोलनेकी तरफ है। गाँवके किसानों और शहरोंके मजदूरोंके पास पैसा नहीं, वे तो वैसे ही भूखे मर रहे हैं। रही मध्यम श्रेणीकी जनता, उसके पास भी इन कामोंमें खर्च करनेको पैसा नहीं है, क्योंकि जो कुछ भी वे कमाते हैं, वही खा लेते हैं और यदि कुछ थोड़ा बहुत उनके पास होता भी है, उसका वे उचित शिक्षाके अभाव और अन्य कठिनाइयोंके कारण भली भांति उपयोग नहीं कर सकते। वास्तवमें इस दिशामें यदि कुछ काम हो सकता है तो वह केवल सरकारके द्वारा ही हो सकता है। लेकिन सरकारने अभीतक जो कुछ भी आर्थिक मामलोंमें ध्यान दिया है तो वह मुद्रा-विनिमयपर और टैक्सोंपर ही दिया है; जिसका असर विदेशी मालके मँगवानेवालों और बरतनेवालोंके लिये, बैंकों और बीमा कम्पनियोंके लिये जो कि बड़े उद्योगोंमें ही सहायक होती हैं, अच्छा और लाभप्रद होता है, लेकिन गरीब जनताकी तो इससे अब तक बरबादी ही होती रही है। सरकार रेल्वेके आर्थिक

मामलोंपर भी ध्यान देती है, लेकिन जहाँ तक हम देखते हैं तीसरे दरजेके यात्रियोंके साथ तो अब भी भेड़-बकरियों-की भांति ही व्यवहार होता है।

इस देशमें रहनेवाले युरोपियनोंसे भारतीय उद्योग धंधोंकी उन्नतिके विषयमें जब बातचीत होती हैं तब वे कहा करते हैं कि एक तो भारतवासियोंका बहुत सादा रहन-सहन होनेके कारण उनकी आवश्यकताएँ कम हैं और दूसरे भारतकी बढ़ती हुई आबादी, भारतीय आर्थिक उन्नतिमें यह दो मुख्य रुकावटें हैं। लेकिन इन दलीलोंका उत्तर तो बिलकुल साफ़ है। वह यह कि यदि भारतमें उत्पादन कार्य अधिक हो, जिसका होना भारतके प्राकृतिक अक्षय कोषके कारण सम्भव है, तो इतनी अधिक बढ़ती हुई जनताका निर्वाह होना मामूली सी बात है। अब रही भारतवासियोंके रहनसहनकी सादगी, सो यह तो उनकी गरीबीका फल है, न कि कारण। यह एक मामूली सी सोचनेकी बात है कि कोई व्यक्ति अपनी आवश्यकताएँ किस प्रकारसे बढ़ा सकता है जब तक कि उसकी आमदनी न बढ़ जाय। इच्छा तो सब ही की होती है कि हम खूब ऐश आरामसे रहें, लेकिन ऐश आरामके झूठे स्वप्न देखना कहाँकी बुद्धिमानी है जबतक कि हम आर्थिक बेड़ियोंसे कसे हुए हैं। और तो क्या किसानोंकी ही ओर देखिये, उन्हें वर्षभरमें कुल मिलाकर, कमसे कम १ अरब ४० करोड़ रुपया अपने कर्ज़के व्याजमें चुकाना पड़ता है। और महाजन लोग उनसे २०% के लगभग अपने धनपर व्याज लेते हैं।

१०. सहकार समितियाँ कुछ नहीं कर सकतीं

हमारे इस कथनके उत्तरमें सहकारी संस्थाओं कोआपरेटिव क्रेडिट सोसाइटियोंकी तरफ इशारा किया जाता है लेकिन १९३० और १९३१के अंकोंको देखनेसे पता लगता है कि ब्रिटिश भारतमें कुल ९४,५०० सहकारी संस्थायें हैं जिनमेंसे केवल ७४,५०० किसानोंके लिये हैं। भारतकी सब सहकारी संस्थाओंकी पूँजी मिलाकर लगभग ७५ करोड़ है और केवल किसानोंकी सहकारी संस्थाओंकी पूँजी सब मिलाकर केवल ३० करोड़ ५० लाखके लगभग है। लेकिन, भारतीय बैंकोंकी जाँच कमेटीकी रिपोर्टके अनुसार, किसानोंकी ९ अरबके लगभगकी कर्ज-दारीके सामने यह पूँजी कुछ भी नहीं है। इन हालतोंको देखते हुए भारतीय सरकार और विश्वविद्यालयोंका लाखों रुपये खर्च करके खेतोंके लिये कृषि-सम्बन्धी संस्थायें स्थापित करना बिलकुल बेकार है जबतक कि भारतीय किसानोंके पास उन उन्नत तरीक़ोंके अनुसार काम करनेके लिये काफी रुपया न हो।

सहकारी संस्थाओंकी आर्थिक कमजोरीके आक्षेपके उत्तरमें कहा जाता है कि इस ओर अधिक उन्नति नहीं हो सकती जबतक कि गाँवोंके किसान सहकारिताके सिद्धान्तोंसे पूर्णतया परिचित और शिक्षित न हों। लेकिन विचार करनेसे मालूम होता है कि कर्ज लेनेवालेके पास किसी प्रकारकी जायदादका होना आवश्यक है, न कि शिक्षा और व्यापारिक योग्यताका। शिक्षा और व्यापारिक योग्यता तो कर्ज़ देनेवालेमें होनी चाहिये। प्रत्येक गाँवमें संस्थाका प्रबन्ध करनेके लिये दस-बीस समझदार पढ़े लिखे और व्यापारिक योग्यतावाले पुरुषोंका मिलना कोई कठिन बात नहीं है और कर्ज़ लेनेवाले किसानोंके पास तो खेती और खेतकी जमानत होना ही काफी है। वास्तवमें कमजोरी तो सहकारी संस्थाओंके केन्द्रोंकी है, क्योंकि वे अपनी शाखाओंको काफी रुपया अधिक लम्बे समयके लिये नहीं दे सकते। और वास्तवमें देखा जाय तो आवश्यकता इस बातकी है कि कृषि और छोटे उद्योगोंके लिये लम्बे समयके लिये कर्ज़ा दिया जाय, क्योंकि उनके चलानेवाले साधन सम्पन्न नहीं होते और उनकी आमदनी थोड़ी होती है और धीरे-धीरे होती है। केवल दूकानदारी आदि व्यापार ही कुछ ऐसे हैं जो जल्दी लाभप्रद हो जाते हैं इसलिये वे थोड़े ही समयमें अपना कर्ज़ा चुका सकते हैं।

केन्द्रीय सहकारी संस्थाएँ अकसर प्रान्तीय बैंकोंसे रुपया उधार लिया करती हैं, यदि प्रान्तीय बैंकोंसे रुपया मिलनेमें किसी प्रकारकी कठिनाई पड़ती है तो जनताके स्थानीय बैंकोंसे रुपया ले लिया करती हैं। लेकिन यह रुपया भी उन्हें थोड़े समयके लिये ही मिलता है, और उसपर भी किसानोंके उपयोगके लिये रुपया देनेमें तो प्रान्तीय बैंक भी बहुत हिचकिचाते हैं। अतः सरकारका यहाँ कर्त्तव्य होता

हमारी रोटीकी समस्या

(३)

सुलझानको सरकारकी सहायता चाहिये

(श्री पंडित ओंकारनाथ शर्म्मा, ए० एम्० आइ० एल० ई०, जे० एस० एम्० ई०)

१. भारतीय सरकार बहुत कुछ कर सकती है

इन सब बातोंपर विचार करनेके बाद यदि यह बात सही जँचती हैं कि भारतवासियोंको दरिद्रता और बेकारीके गड्ढेसे निकालनेके लिये देशभरमें बड़े उद्योग-धंधोंके साथ-साथ विशेषकर घरेलू और छोटे उद्योग-धंधोंका प्रचार करना आवश्यक है तो भारतीय सरकारको चाहिये कि वह अपने औद्योगिक विभागको इतना सुव्यवस्थित बना दे कि उससे साधारण जनता भी लाभ उठा सके। और मद्रासके १९२३ और विहार और उड़ीसाके १९२४ के औद्योगिक कानून (State Aid to Industries Act) के समान सब प्रान्तोंमें कानून जारी कर दें, लेकिन यह कानून असली उपयोगमें आ जाना चाहिये, कानूनके काग़ज़की नावपर रखकर छोड़ देना ही काफी नहीं होगा। १९१६–१८वाली औद्यौगिक कमीशनकी सिफारिशोंको कार्यरूपमें परिणत करनेका समय अब आ जाना चाहिये। और साथ ही पंजाब प्रान्तीय सरकारकी रालकी फैक्टरीके समान नये नये उद्योगोंपर, जिनका विकास अभीतक भारतमें नहीं हुआ है, फैक्टरियाँ सरकारकी ओरसे खुलनी चाहिये। और जब वे चल निकलें और अच्छा लाभ देने लगें और उस प्रकारके मालके लिये बाजार तैय्यार हो जाय तब जनताको उसी प्रकारकी फैक्टरियाँ खोलनेके लिये उत्साहित किया जाय और आवश्यक सहायता दी जाय! और जनताकी फैक्टरियाँ चल निकलें तब सरकारी फैक्टरियाँ भी जनताको सौंप दी जावें। इसके अतिरिक्त सरकारको चाहिये कि सहकारी संस्थाओंको पुष्ट करनेके लिये लगभग ४ अरब रुपया और लगानेका प्रबन्ध करे। और इसके साथ ही जमींदारों अर्थात् उन जमीनके मालिकोंका, जो स्वयं जमीनको जोतते-बोते नहीं हैं, कर्त्तव्य है कि वे भी कुछ आगे बढ़ें और अपने ऐश आरामसे रुपया बचाकर लगभग ३ अरब रुपया सहकारी संस्थाओंमें लगा दें जिससे गरीब किसान महाजनोंके ऋणपाशसे बिलकुल मुक्त हो जावें, किसानोंकी शिक्षाके लिये वे संस्थाएँ प्रबन्ध कर सकें, खेती वैज्ञानिक तरीकोंसे होने लगे और ग्राम्योपयोगी घरेलू उद्योग-धंधे सफलतापूर्वक चल निकलें। इधर शहरोंके धनिकोंका भी यह कर्त्तव्य है कि वे भी शहरोंकी सहकारी संस्थाओंमें लगभग २ अरब रुपया लगा दें जिससे शहरोंके मज़दूर और बेकार शिक्षितोंको अनेक प्रकारके शहरोपयोगी घरेलू उद्योग-धंधोंको चालू करनेमें सहायता मिल सके।

२. औद्योगिक शिक्षणके सरकारी यंत्र

रोटीकी समस्या-पूर्ति करनेकी बहुत कुछ जिम्मेदारी

है कि वह इन दिक्कतोंको दूर करनेकी चेष्टा करे, जैसे कि जरमनी, फ्रान्स और हंगरी आदि युरोपीय देशोंकी सरकारोंने किया था, जब कि वहाँ सहकारी संस्थाओंका आरम्भ हुआ था। यह बातें हमारे अर्थशास्त्रियोंसे कुछ छिपी हुई नहीं हैं।

बैंकोंकी सब प्रान्तीय जाँच कमेटियोंकी राय है कि किसानोंकी सहकारी संस्थाएँ अपने सदस्योंको तीन वर्षसे अधिक समयके लिये ऋण नहीं दे सकतीं, इससे अधिक समयके लिये ऋण तो केवल कोपरेटिव-लेन्ड-मार्गेज-बैंक ही दे सकते हैं। उनकी रिपोर्टोंसे यह भी पता चलता है कि ब्रिटिश भारतके किसानोंकी कुल ७४,४१० सहकारी संस्थाओंमेंसे कुल ६६ संस्थाएँ ही ऐसी हैं और उसपर भी बिहार और उड़ीसा, मध्यभारत, दिल्ली और सीमाप्रान्त प्रदेशोंमें तो ऐसी एक भी संस्था अभीतक नहीं खुली है।

हमारे विश्वविद्यालयों और शिक्षक-वर्गपर भी है। इस देश-में विश्वविद्यालय और शिक्षा-संस्थायें तो जहाँ-तहाँ बहुत खुलने लग गयीं लेकिन वे अपने विद्यार्थियोंको इस प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित करके नहीं निकालतीं जिनके द्वारा वे अपने जीवन संग्राममें विजय प्राप्त कर सकें। अबतक इन संस्थाओंका अपने विद्यार्थियोंको सांस्कृतिक शिक्षा देना ही मुख्य उद्देश्य रहा है। इसके परिणाम-स्वरूप जो विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं वे वकील, तहसीलदार अथवा न्यायाधीश पुलिस अफसर आदि बनकर अपने पेशेको चालू रखनेके लिये अपने गरीब भाइयोंको आपसमें लड़ाने-के षड्यंत्र रचते हैं और उनका खून चूसते हैं। कई लोग डाक्टर बनकर जनतामें भयंकर बीमारियाँ फैलानेके लिये मन-ही-मन अशुभ कामनाएँ किया करते हैं। और कई लोग शिक्षक बनकर अपने विद्यार्थियोंको दासताके साँचेमें ढालनेकी चेष्टा किया करते हैं, जिससे उनके विद्यार्थी समझते हैं कि शिक्षाका कुल उद्देश्य दफ्तरोंमें बाबूगीरी करना अथवा मास्टरी, डाक्टरी और कानूनी पेशे करना है। लेकिन इसकी भी एक हद होती है, अब लोगोंको इन पेशोंमें भी जगह मिलना कठिन होता जा रहा है।

अब कला कौशलकी शिक्षाके वर्त्तमान प्रबंधकी ओर यदि हम ध्यान दें तो हमें मालूम होगा कि पहिले तो महाद्वीपके समान विशाल देशमें कला कौशलकी शिक्षा देनेवाली संस्थाएँ हैं दो उँगलियोंपर गिनने लायक और जो कुछ भी हैं वे सड़क बनाना, नहर बनाना, तालाबोंके बाँध बाँधना, पुल बाँधना, बड़ी-बड़ी इमारतें बनाना, पावर हाउस चलाना, घरोंमें बिजली लगाना और अन्य प्रकारके बड़े-बड़े कारखानोंकी देखभाल करना और कृषि सम्बन्धी बड़ी-बड़ी खोजें करना आदि सिखाते हैं। और उनमेंसे निकले हुए विद्यार्थी, सिविल इंजीनियर, पावर हाउस सुपरिन्टेन्डेन्ट, कंट्रैक्टर, चीफमिकेनिकल इंजीनियर फोरमैन और एग्रीकलचर सुपरिन्टेन्डेन्ट आदि बननेके लिये सरकारी, रेलवेकी, बड़ी-बड़ी कम्पनियों और मिलोंकी नौकरियाँ ढूँढ़ते फिरते हैं और असफल रहनेपर भूखों मरते हैं, पागल हो जाते हैं और कई आत्महत्या भी कर लेते हैं। लेकिन 'किसीकी यह इच्छा नहीं होती कि वे खुद मजदूरोंके साथ मिलकर दीवार चुनना आरम्भ कर दें, बाजारमें लोहारकी दुकान खोल लें अथवा खुद हल लेकर बैलोंसे खेत जोतें और कुदाल चलावें। वास्तवमें ये विद्यार्थी नौकरी प्राप्त करनेके लिये ही पढ़ते हैं और फिर नौकरी ही ढूँढ़ते हैं।

वे करें तो क्या करें, उनका मन जन्मसे ही गुलाम होता है, उनका पालन-पोषण भी गुलामीके ही वातावरणमें होता है। इसी लिये सब प्रकारके अपमान सहते हुए भी वे आजीवन नौकर रहना ही पसंद करते हैं। यह सब उनकी शिक्षा प्रणालीका ही दोष है, जिसने उनमेंसे स्वावलम्बन, दृढ़ता, सहिष्णुता और धैर्य आदि ईश्वर-प्रदत्त गुणोंको, जिनकी औद्योगिक जीवनमें बड़ी आवश्यकता है, नष्ट करके नपुंसक बना दिया है।

३. सरकारी औद्योगिक विभागकी सहायता

खैर हमारी घोर दरिद्रतामें दोष किसीका भी हो, इस वर्त्तमान परिस्थितिमें मैं अपने देशके नवयुवकोंको सलाह दूँगा कि वे नौकरियोंके पीछे न हैरान होकर शारीरिक परिश्रमका कोई-न-कोई कामकाज करें, जिससे उनका और उनके देशका कल्याण हो। कई उद्योग इस प्रकारके भी हो सकते हैं जिनमें भले घरोंकी शहरी स्त्रियाँ भी भाग ले सकती हैं, जैसे मोजे-बनियाइन, लेस और फीते आदि बुनना। यदि शहरोंमें रहनेवाले शिक्षित स्त्री और पुरुष अपनी अपनी योग्यतानुसार कोई काम चुनकर आरम्भ कर दें तो वे सहज हीमें बाजारके उतार-चढ़ावको सहते हुए भी २०) से ५०) मासिक तक बड़ी आसानीसे पैदा कर सकते हैं। यदि प्रत्येक शहर अथवा गाँवके एक ही प्रकारके काम करनेवाले मिलकर एक-एक छोटी सी संस्था, उस शहरकी कापरेटिव क्रेडिट सोसाइटी और उस प्रान्तके डायरेक्टर आफ इन्डस्ट्रीज़की सहायतासे, खोल लें जिसके उद्देश्य निम्नलिखित हों, तो उनको सस्ते भावपर कच्चा माल खरीदने और तयार माल बेचनेकी बड़ी भारी दिक्कतें दूर हो जावेंगी।

उद्देश्य

(१) अपने सदस्योंके व्यापार और अन्य आवश्य-कताओंके लिये पूँजी इकट्ठी करना।

(२) कच्चा माल, उपयोगी यंत्र और औज़ार अपने सदस्योंके उपयोगके लिये खरीदना।

(३) अपने सदस्योंके बनाये हुए मालको नियत भावपर खरीदकर बाज़ारमें बेचनेका प्रबन्ध करना।

(४) नये सदस्योंकी शिक्षाके लिये प्रबन्ध करना।

(५) ऐसी तरकीबें सोचना और करना जिससे उस संस्थाके सदस्योंकी आदमनी बढ़े, स्वास्थ्य सुधरे और उनमें आपसमें प्रेम बढ़े।

(६) इस संस्थाको जो लाभ हो उसका कुछ भाग प्रति वर्ष सदस्योंको लाभके रूपमें बाँट दिया जाय, कुछ हिस्सा संचित पूँजीमें रख दिया जाय और शेष सदस्योंकी शिक्षामें खर्च हो।

यदि कुछ शिक्षित नवयुवक लगनके साथ इस कामको आरम्भ कर दें तो आरम्भिक कठिनाइयोंको पार करनेके बाद यह संस्थायें अवश्य ही अपने पैरोंपर खड़ी रह सकती है। हाँ, आरम्भमें सहकारी संस्थाओं और प्रान्तीय डाइरेक्टर आफ इन्डस्ट्रीज़ आदिकी सहायताकी आवश्यकता होगी। मेरे देखनेमें आया है कि कई केन्द्रीय सहकारी संस्थाओंके संचालक नये उद्योगोंको उपरोक्त प्रकारसे आर्थिक सहायता देनेको तयार हैं लेकिन दुर्भाग्यवश उसका उपयोग करनेवाले नहीं मिलते। यदि हमारे देशके शिक्षित-बेकार नौकरी प्राप्त करनेके लिये जितना धन खर्च करते हैं और दौड़धूप करते हैं, अथवा वर्त्तमान नौकरी करनेवाले लोग अपनी वेतन-वृद्धिके लिये अपने विदेशी स्वामियोंके सामने नाचकर उन्हें प्रसन्न करनेके लिये जितनी योग्यता खर्च करते हैं, उतनी ही यदि इस तरफ खर्च करने लगेंगे और हमारे विद्यार्थीगण नौकरी प्राप्त करनेके उद्देश्यसे न पढ़कर व्यापारिक और औद्योगिक जीवन-संग्राममें विजय-प्राप्ति करनेके उद्देश्यसे उत्तम हथियारोंका उपयोग करना सीखना और एकत्र करना आरम्भ कर दें तो हमारे देशका उद्धार होनेमें देर नहीं लगेगी।

और यदि आर्थिक दृष्टिसे देखा जाय तो नौकरी कर कभी कोई मालदार नहीं होता, हमारे यहाँ कहावत भी है कि "वाणिज्ये वसते लक्ष्मीः"। नौकरी करनेवालों और साधारण कारीगरोंकी आमदनीकी तुलना करते हुए कलकत्तेके इंडस्ट्री पत्रके जनवरी १९२९के अंकमें बताया था कि एक बढ़ईकी औसत आमदनी १।), एक दीवार रचनेवाले कारीगरकी १) और एक लोहारकी ॥।≈) होती है, लेकिन एक प्राइमरी स्कूलके अध्यापककी औसत आमदनी ॥) और एक बाबूकी केवल ।) ही होती है।

४. शिक्षा-विभागके अधिकारी क्या करें ?

साथ ही, मैं अपने शिक्षा विभागोंके अधिकारियों, शिक्षा-प्रेमी सज्जनों और नेताओंसे प्रार्थना करूँगा कि वे हाई-स्कूल आर्टस्-कालेज, बड़े-बड़े इंजीनियरिंग-कालेज और रिसर्च-इन्स्टीट्यूट न खोलकर प्रत्येक नगरमें एक-एक औद्योगिक पाठशाला खोल दें, जिनमें शिक्षा पाये हुए छात्र इंजीनियर, प्रोफेसर और बाबू आदि न बनकर मज़दूरी करनेमें अपना गौरव समझें। इन पाठशालाओंमें ऐसे ढंगसे घरोंमें चालू करने योग्य उद्योग-धंधोंकी शिक्षा दी जावे जिसका उपयोग वे एकदम शिक्षा समाप्त करते ही कर सकें। हाई-स्कूल, आर्टस्-कालेज, इंजीनियरिंग-कालेज और रिसर्च-इन्सटीट्यूट तो एक प्रान्तमें इतने ही होने चाहिये जो सरकारी और व्यापारिक क्षेत्रोंके दफ्तरोंकी नौकरियोंकी माँगें पूरी कर सकें। इन पाठशालाओंमें शिक्षाका माध्यम भारतकी राष्ट्रभाषा हिन्दी होना चाहिये और यदि आवश्यक ही समझा जाय तो छोटी कक्षाओंमें वहाँकी प्रान्तीय भाषाओंका उपयोग हो।

५. औद्योगिक साहित्यके निर्माणकी आवश्यकता

इस महत्कार्यमें हमारे सामने एक बड़ी भारी कठिनाई और आती है और वह है हिन्दीमें औद्योगिक साहित्य का न होना। इसी कठिनाईके कारण कई औद्योगिक शिक्षा संस्थाओंको शिक्षाका माध्यम अंगरेजी ही रखना पड़ा। लेकिन यह कठिनाई वास्तवमें देखा जाय तो कोई बहुत बड़ी नहीं हैं। यदि उपर्युक्त प्रकारकी संस्थाएँ चालू की जावें और उनके शिक्षकगण सच्ची लगनसे काम करनेवाले, देशभक्त, अपने विषयके पूर्ण विद्वान् और अनुभवी और साहित्यप्रेमी हों तो वे अपनी शिक्षाका काम बिना पुस्तकोंके ही आरम्भ कर सकते हैं, और फिर एक दो वर्षमें अपने व्याख्यानोंको पुस्तककार छपवा सकते हैं। इस प्रकारसे जो ग्राह्य पुस्तकें तयार होंगी तो बहुत ही उपयोगी होंगी।

किसानके लिए सहज घरेलू धंधे और उनके सीखनेके साधन

[रामदास गौड़]

१. क्या पोथियोंसे धंधे पैदा होते हैं

किसी देशमें पोथियोंके सहारे घरेलू धंधे या मिलोंके कारखाने नहीं बने हैं। पहले धंधे चलते हैं, कारखाने काम करते हैं, तब पोथियाँ बनानेवाले अपने रोजगारके लाभके लिये उन धंधोंकी पोथियाँ बनाकर बेकारोंके बीच उन्हे बेंचकर अपने टके सीधे करते हैं। अँग्रेजीमें बहुत पोथियाँ बनी हैं, वह अधिकांश प्रकाशकोंको लाभ पहुँचानेके लिये हैं। असलमें धंधे पहले पैदा होते हैं। पोथियाँ पीछे बनती हैं।

२. पोथियोंसे फिर क्या लाभ?

परन्तु हमारे देशमें उनसे बहुत कुछ लाभ हो सकता है। दशा यह है कि हमारे देशके धंधे नष्ट हो गये हैं। उनको फिरसे जिलानेके साधन नहीं हैं। विदेशी चढ़ाऊपरीसे ही वे नष्ट हुए और वह चढ़ाऊपरी तो आज भी जारी है। चढ़ाऊपरीके होते वे तभी फिरसे जी सकते हैं, जब हम कट्टर स्वदेशी हो जायँ, एड़ीसे चोटीतक, रत्तीसे रवातक, स्वदेशी बरतें, और अपने रोजगारियोंकी महँगी चीजें भी खपावें, उनके टिकाऊपनपर जायँ, तड़क-भड़क न देखें। परन्तु वह उन धंधोंको सीखें कैसे? वह मुद्दतसे भूल जो गये हैं? पोथियोंसे इतना लाभ हो सकता है कि वे लोग जो कुछ पढ़े हुए हैं और बेकार हैं, कुछ साहस करके पोथीके सहारे कुछ सीख लें और कर धर सकें। या स्कूल हों तो समुचित शिक्षा पा सकें।

३. पोथियोंका लाभ बहुत सीमित है

पोथियोंका बहुत ज्यादा भरोसा न करना चाहिये और उनकी मायामें न फँसना चाहिए। हमने पोथी पढ़कर

इस प्रकारका साहित्य न होनेके कारण ही हमारे कारखानोंके कारीगर अपने विदेशी अफसरोंको आसमानसे शिल्प विद्याका खजाना लेकर आया समझते हैं और उनके द्वारा किये गये अत्याचारोंको मूक पशुओंकी भांति सहते रहते हैं। उनका ज्ञानवर्धन जो कुछ भी होता है वह पुरानी गुरु-शिष्य-प्रणालीसे ही होता है। बाजारोंमें स्वतंत्र व्यवसाय करनेवाले कारीगर भी विदेशी कारीगरोंका मुकाबिला कामकी उत्तमतामें, करनेमें असमर्थ हैं। अंगरेजी जैसी भाषाओंमें तो शिक्षा संस्थाओंके लिये सब दरजोंकी औद्योगिक विषयोंपर पाठ्य-पुस्तकें और कारीगरोंके लिये नाना प्रकारकी दस्तकारियोंपर सैकड़ों मौलिक ग्रन्थ मौजूद हैं और सदैव नये-नये प्रकाशित होते रहते हैं, लेकिन भारतीय भाषाओंमें, कुछ थोड़ेसे ही उँगलियोंपर गिनने लायक ग्रन्थ हैं और वे भी अपूर्ण और भारतीय कारीगरोंकी आवश्यकताओंको पूरी करने योग्य नहीं। ऐसी दशामें बिना उत्तम औद्योगिक साहित्यके हमारा वर्त्तमान स्वदेशी आन्दोलन भी थोथा और निरर्थक सिद्ध होगा।

इस सम्बन्धमें मैं इंगलैंड और अमेरिका आदि देशोंसे शिक्षा प्राप्त और भारतीय उपाधिधारी शिल्पविद्या विशारदोंसे जो कि सरकारी और ग़ैरसरकारी कारखानों, दफ्तरों और कालेजोंकी कुर्सियोंकी शोभा बढ़ा रहे हैं, प्रार्थना करूँगा कि वे अपनी फुरसतका समय क्लबोंमें जाकर अपना मनोरंजन करके और घरपर मित्रोंसे गप्पोंमें समय न बरबाद करके, अपने गरीब और बेकार देश-वासियोंको शिल्प-शिक्षा देनेके लिये, अपने-अपने विषयों पर उत्कृष्ट ग्रन्थ लिखकर अथवा स्वयं शिक्षा देकर अपने कर्त्तव्यका पालन करें। और साथ ही मैं अपने देशके साधन सम्पन्न प्रकाशकों और धनी सज्जनोंसे प्रार्थना करूगा कि वे योग्य लेखकोंद्वारा लिखी हुई पुस्तकें प्रकाशित कर हिन्दीके भंडारको भर दें जिससे देशकी दरिद्रतासे छुटकारा मिलनेमें सहायता पहुँचे। हमारे देशके बड़े-बड़े प्रकाशक और धनी सज्जन इस विषयको व्यापारिक दृष्टिसे देखते हुए कह दिया करते हैं कि इस प्रकारके साहित्यके लिये अभी क्षेत्र नहीं है, लेकिन मैं उनसे पूछता हूँ कि वह बनेगा कब? आवश्यकता तो हमें इस समय है!

कई काम सीखनेकी कोशिश की है और यह अनुभव करके देखा है कि सिखानेवालेकी जगह पोथी नहीं ले सकती। पोथीके सहारे कुछ काम होता है सही, पर उसमें पक्कापन नहीं आता। प्रयोगशालाके सारे कामोंके लिये पोथियाँ होती हैं, परन्तु हाथका काम सिखानेवालेके बिना चलता नहीं।

४. सिखानेवाले कहाँसे आवें ?

यह इस समय बड़े महत्वकी समस्या है। जिन रोजगारोंके जाननेवाले इक्के-दुक्के मौजूद हैं खोजकर उनसे रोजगार चलवाना चाहिये और धंधा सीखना चाहिये। कामको काम सिखाता है। उस्तादसे सीखकर धीरजसे बराबर काममें लगे रहो। काम अच्छा न बने तब भी हठपूर्वक लगे रहो कुछ दिनों ठोकर खानेपर काम आही जायगा

५. सिखानेवाले न मिलें तब ?

ऐसी दशामें पोथी देख देखकर धीरे-धीरे सीखते चलो। अपनी बुद्धि लगाओ। रगड़ चली चले। दस बीस बार विफल होनेपर भी कभी न कभी कुछ-न-कुछ सफलता आही जायगी। ऐसी दशामें पोथी कुछ न कुछ काम देगी। हमें अपनी बिगड़ी हठपूर्वक अपने ही आध्यवसायसे सुधारनी है। पोथी अच्छी हुई तो सहायक जरूर हो जायगी। इसलिये

६. हर विषयपर पोथियाँ चाहियें

हमने बहुत सोच-विचारकर उन विषयोंकी जिनकी थोड़ी बहुत शिक्षा पोथियोंद्वारा मिल सकती है एक सूची बनायी है। यह सूची हम इसलिये देते हैं कि बेकार रहनेवाले देखें कि हम कौन-कौनसे काम करके कुछ न कुछ कमाई कर सकते हैं।

७. धंधोंकी सूची

१. कपासकी खेती—अच्छे कपासका उपजाना हर खेतिहरके लिये आवश्यक है। कमसे कम सालभर पहिरनेके लिये खद्दरकी उपजके लिये कपास उपजाना जरूरी है। यह डूबता हुआ काम है।

२. ओटाई, धुनाई और कताईका काम—यह हर किसान करे। यह काम आसानीसे सीखे जा सकते हैं। इनका सामान भी सहज सुलभ है। ये मरे हुए काम हैं। जिलाना है।

३. खद्दरकी बुनाईका काम—कोरी, कोष्टी, जुलाहे या और सीखे हुए बुनकर गाँवके कते सूतसे कपड़े बुनें। खेतीके कामसे बचे समयमें यह काम हो सकता है। न बचे, तो यही पेशा खानेको दे सकता है। यह अधमरे काम हैं।

४. खद्दरकी रंगाईका काम—रंग सब अपने देशी ही हों। बड़े पैमानेपर हम विदेशी रंगोंका मुकाबला नहीं कर सकते। मगर गाँवोंमें स्वदेशीके विचारसे यह प्रश्न नहीं आता। शहरोंमें इसका प्रबन्ध करना पड़ेगा।

५. छपाईका काम—अभी छीपी करते हैं। यह काम मृतप्राय है। पर यह भी रंगाईकी तरह सभी कर सकते हैं। देशी रंगोंसे ही इन्हें करनेकी जरूरत है।

रंगाई, छपाई, कलाके काम हैं। यह वह काम नहीं हैं, जो खद्दरकी तैयारीकी तरह अनिवार्य हों। यह हो भी रहे हैं। हमने सूचीमें इसलिये दिया कि देशी रंगसे यह काम नहीं हो रहे हैं। इसीलिये इस सूचीमें **धुलाई, कटाई, सिलाई, रफूगरी, चिकनदोजी** आदि भी शामिल नहीं किये गये, क्योंकि ये काम होते हैं। जिन्हें सुभीता हो वह करें। शहरोंमें लड़कियाँ **मोजे गंजी** आदि बुननेका काम कुछ करती ही हैं। जिन्हें जिस काममें सुभीता हो करें, पर सामान और साधन भरसक स्वदेशी हों।

६. गन्नेकी खेती—केवल गुड़ बनानेके लिये।

७. खाँड़ बनानेका काम—अपनी जरूरत भर करलें परन्तु गुड़ बनानेका काम रोजगारकी तरह करें।

मिलोंके कारण गाँवोंकी खँडसालें बन्द हो गयीं। इससे बेकारी बढ़ गयी। एक ही जगह इकट्ठा काम होनेसे कम आदमी लगते हैं। गाँव-गाँव काम होनेसे ज्यादा आदमियोंको काम मिलता है। बेकारी मिटानेको मिलकी चीनी और सफेद खाँड़का त्याग करना चाहिये और खँड़सालोंकी शकर और गुड़ राब आदिको अपनाना चाहिये।

८ तरकारियों और फलोंका रोजगार—जिनके बाग बगीचे हों वे यह रोजगार करें। इसे अभी बढ़ाया जा सकता है। ये रोजगार शहरके पास ही अच्छे चल सकते है।

९. शहदका रोजगार—बकसमें मधुमक्खी पालकर शहद लेनेका उपाय बरता जा सकता है। बिना मधुमक्खियोंको छेड़े हुए यह काम किया जाता है। इसे

सीखनेकी जरूरत है। इसमें खर्च बहुत कम है। असली शहद बेचकर अच्छा रोजगार किया जा सकता है।

१०. भेड़ बकरियोंका पालना—यह रोजगार लोग कर रहे हैं। इसमें उन्नतिकी जरूरत है।

११. ऊनकी कताई रंगाई।

१२. घी दूधका रोजगार—यह भी जारी है। इसमें बहुत उन्नतिकी जरूरत है।

१३. बिनौलेका और अन्य तेलहनोंसे तेलका रोजगार।

१४. गलीचे और दरियोंकी बुनाई।

१५. सन, पटसन आदिकी कताई और टाट, बोरे आदिकी बुनाई।

१६. अंडीके कीड़ोंसे रेशमका रोजगार।

१७. अंडी रेशमकी कताई बुनाईका रोजगार

१८. रबर निकालनेका रोजगार।

१९. रबरके काम।

२०. ओषधियोंकी खेती।

२१. लाखकी खेती।

२२. लाखकी सफाई और चमड़ेकी तैयारी।

२३. लाखसे विविध मालकी तैयारी।

२४. मूँगफलीकी खेती।

२५. मसालोंकी खेती।

२६. सोया बीनकी खेती।

२७ मरे पशुओंका उपयोग।
चमड़ा सिझाना। सरेश बनाना।

२८. चमड़ेकी चीजोंकी तैयारी।

२९. मुरगी आदि पालना।

३०. सुअर पालना।

३१. हड्डीका संग्रह और उसका उपयोग।

३२. शिक्षा और ग्राम संगठनका काम।

८. इनपर पुस्तकोंकी जरूरत

इन कामोंके सीखनेके लिये पुस्तकें हों या न हों, ये काम तो अभ्याससे ही आते हैं। इन कामोंमें जो लोग दक्ष हैं और उत्तम और अधिक माल उपजाते हैं उनके अनुभवका फल औरोंको देनेके लिये पोथियोंकी जरूरत है जिनके सहारे लोग अपने कामको बढ़ा सकें।

ऐसी पुस्तकें बड़ी सरल भाषामें होनी चाहियें इनमें विषयका काफी विस्तार और सुबोधताकी जरूरत है।

इनमें चित्र और नकशे काफ़ी होने चाहिये। इनको सुलभ दामोंपर मिलना चाहिये।

देशको इनकी जरूरत है और इनके प्रकाशनके लिये सरकार और समाज दोनोंको यत्नवान् होना चाहिये।

सभी जगह काम देनेवाली धूप घड़ी*

सुलभ, सरल, सस्ती और स्वदेशी

[लेखक और निर्माता ज्योतिर्विद पंडित महावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य, बी० एस्-सी०, एल० टी० विशारद, रायबरेली]

१. साधारण धूप घड़ी

आजकल घड़ीसे समयका ज्ञान सहज ही हो जाता है। परंतु इसे सब रख नहीं सकते। जो रखते भी हैं उनको इसके खरीदने और प्रति वर्ष मरम्मत करानेमें काफी खर्च करना पड़ता है। फिर भी घड़ियोंको शुद्ध रखनेके लिए विशेष ध्यान देना पड़ता है। यदि प्रतिदिन न सही तो सप्ताहमें एक दिन अच्छीसे अच्छी घड़ियोंको भी तारघरकी घड़ीसे मिलाना पड़ता है, नहीं तो इनसे भी ठीक ठीक समय नहीं जाना जा सकता। यह याद रखना चाहिये कि तारघरकी घड़ी भी इसीलिए शुद्ध रहती है कि वह प्रतिदिन सूर्यसे या किसी तारेसे मिलायी जाती है

क्योंकि समयके ज्ञानके लिये हमें सूर्य और तारोंपर ही आश्रित रहना पड़ता है। आजकल भी गाँवोंमें किसान लोग सूर्य, चन्द्रमा और कुछ नक्षत्रोंको देखकर समयका स्थूल ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। जबतक शुक्र प्रातःकाल पूर्वमें देख पड़ता है तबतक शुक्रसे ही सबेरा होनेका पता लगता रहता है क्योंकि जब यह उदय होता है तब एक पहरसे अधिक रात नहीं रहती। इसी प्रकार जब यह पश्चिममें सायंकालमें देख पड़ता है तब यह सूर्यास्तके बाद एक पहरसे अधिक नहीं दिखाई पड़ता। जाड़ेकी रातमें कृत्तिका और मृगशिराके तारा पुंजोंसे भी किसानोंको समय जाननेमें काफी सहायता मिलती है।

दिनमें सूर्यकी ऊँचाई देखकर चतुर किसानोंको समयका स्थूल ज्ञान हो जाता है। जब वह कहते हैं कि एक घड़ी दिन चढ़ गया तब इससे यह समझना चाहिये कि सूर्योदय हुए पौन घंटेके लगभग हो गया। सात घड़ी दिन चढ़नेका अर्थ यह होता है कि ग्यारहसे ऊपर बज गया। बारह बजेके लगभग उनका दिन 'खड़ा' हो जाता है, क्योंकि सूर्यकी चाल १२ बजेके लगभग बहुत कम हो जाती है इसी लिए उस समय सूर्यकी छाया भी बहुत मंदगतिसे घटती बढ़ती है।

इसी छायाके घटने बढ़नेके सिद्धान्तपर धूपघड़ी बनायी जाती है। सूर्योदयके समय किसी वस्तुकी छाया बहुत बड़ी देख पड़ती है, फिर यह घटने लगती है और इसकी दिशा भी बदलने लगती है। बारह बजेतक यह घटती जाती है। ठीक १२ बजे छाया सबसे छोटी हो जाती है और इसकी दिशा ठीक उत्तर हो जाती है। १२ बजेके बाद वह फिर बढ़ने लगती है और सूर्यास्तकालमें बहुत बढ़ जाती है। यदि १२ बजेसे दो घंटा पहले सूर्यकी छाया नाप ली जाय और फिर दो घंटा बाद नापी जाय तो देख पड़ेगा कि दोनों समय छायाकी लम्बाई बराबर रहती है। नियम यह है कि बारह बजेसे जितना पहले जो छाया रहती है, उतने ही पीछे भी वही छाया हो जाती है केवल दिशामें भेद पड़ जाता है। बारह बजेके पहले छाया उत्तरसे जितना पश्चिमकी ओर रहती है बादमें वह उत्तरसे उतना ही पूर्व हो जाती है। इसलिए धूप घड़ी भी कई प्रकारकी बन सकती है।

२. नतांश-दर्पण

जिस धूपघड़ीकी चर्चा यहाँकी जायगी उसमें छायाकी जगह सूर्यके नतांशसे काम लिया गया है। यह सब जानते हैं कि सूर्यकी ऊँचाई प्रातःकालसे मध्याह्नतक जिस गतिसे बढ़ती है उसी गतिसे वह मध्याह्नके बाद सूर्यास्त तक घटती भी है। अर्थात् बारह बजेसे दो या तीन घंटा पहले सूर्यकी जो ऊँचाई होती है वही बारह बजेसे दो या तीन घंटे बाद भी हो जाती है। भेद केवल इतना ही होता है कि मध्याह्नके पहले ऊँचाई बढ़ती रहती है और मध्याह्नके पीछे घटती रहती है। सूर्यकी ऊँचाई क्षितिजसे नापी जाती है और यह अंशोंमें होती है। सूर्योदय या सूर्यास्त कालमें यह शून्य होती है और मध्याह्नमें सबसे अधिक। इस धूपघड़ीमें ऊँचाईकी जगह नतांशसे काम लिया गया है क्योंकि नतांशसे हमें कई बातोंकी सुविधा होती है, और नतांश ऊँचाईका पूरक होता है। ठीक सिरके ऊपर आकाशमें जो विन्दु होता है उसे खस्वस्तिक कहते हैं। इसी खस्वस्तिकसे सूर्य जितना नीचा होता है उसीको सूर्यका नतांश कहते हैं। सूर्यका किसी समयका नतांश और उसी समयकी ऊँचाई मिलकर ९० अंशके समान होते हैं। सूर्योदय या सूर्यास्तकालमें सूर्यका नतांश ९० और ऊँचाई शून्य होती है। मध्याह्नकालमें सूर्यका नतांश सबसे कम होता है। २१ मार्च या २३ सितम्बरको सूर्यका जो नतांश होता है वही उस स्थानका अक्षांश होता है। परन्तु अन्य तारीखोंमें मध्याह्नकालिक नतांश स्थानके अक्षांश और सूर्यकी क्रान्ति दोनोंके योग अथवा अन्तरके समान होता है। २१ मार्चसे सूर्यकी क्रान्ति उत्तरकी ओर शून्यसे बढ़ने लगती है और २२ जूनतक बढ़ते-बढ़ते २३ अंश २७ कला तक पहुँच जाती है। इसलिए २१ मार्चसे भारतवर्षके सभी स्थानोंमें सूर्यका मध्याह्न कालिक नतांश घटता जाता है और स्थानके अक्षांश और सूर्यकी क्रान्तिके अन्तरके समान होता है। २२ जूनसे २३ सितम्बर तक सूर्यकी क्रान्ति २३ अंश २७ कलासे घटते-घटते शून्यतक पहुँच जाती है। इसलिए इन दिनों सूर्यका नतांश अपनी लघुतम सीमासे बढ़ते-बढ़ते २३ सितम्बरको स्थानके अक्षांशके समान हो जाता है। २३ सितम्बरसे सूर्यकी क्रान्ति शून्यसे फिर बढ़ने लगती है परन्तु दक्षिणकी तरफ
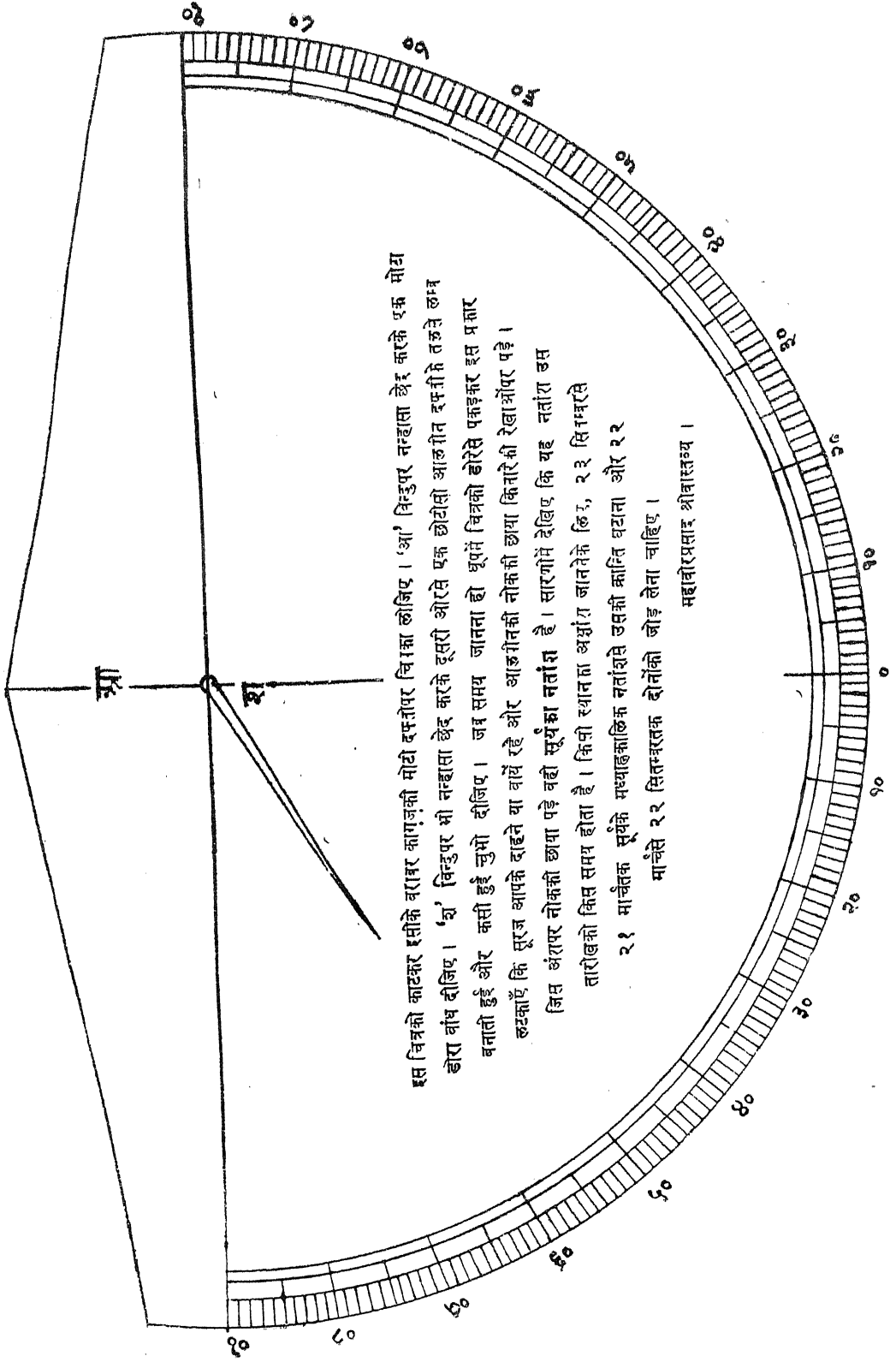
नतांश दर्पण
आ
श
इस चित्रको काटकर इसीके बराबर कागज़की मोटी दफ़्तीपर चिपका लीजिए। 'आ' विन्दुपर नन्हासा छेद करके एक मोटा डोरा बांध दीजिए। 'श' विन्दुपर भी नन्हासा छेद करके दूसरी ओरसे एक छोटीसी आलपीन दफ़्तीके तलसे लम्ब बनाती हुई और कसी हुई चुभो दीजिए। जब समय जानना हो धूपमें चित्रको डोरेसे पकड़कर इस प्रकार लटकाएँ कि सूरज आपके दाहने या बायें रहे और आलपीनकी नोककी छाया किनारेकी रेखाओंपर पड़े। जिस अंशपर नोककी छाया पड़े वही **सूर्यका नतांश** है। सारणीमें देखिए कि यह नतांश उस तारीखको किस समय होता है। किसी स्थानका अक्षांश जाननेके लिए, २३ सितम्बरसे २१ मार्चतक सूर्यके मध्याह्नकालिक नतांशसे उसकी क्रान्ति घटाना और २२ मार्चसे २२ सितम्बरतक दोनोंको जोड़ लेना चाहिए।
महावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य।

हो जाती है। इसलिए सूर्यका नतांश स्थानके अक्षांश और सूर्यकी क्रान्तिके योगके बराबर हो जाता है। २२ दिसम्बरको सूर्यकी दक्षिण क्रान्ति अपनी परम सीमापर अर्थात् २३ अंश २७ कलाके समान हो जाती है। उस दिन सूर्यका मध्याह्नकालिक नतांश सबसे अधिक हो जाता है। इसके बाद फिर घटने लगता है और २१ मार्चको क्रान्ति घटकर शून्य हो जाती है और नतांश अक्षांशके समान हो जाता है। इससे यह प्रकट है कि इस धूपघड़ीसे किसी स्थानका अक्षांश सहज ही जाना जा सकता है। क्योंकि सारणीमें मध्याह्नकालिक नतांशके खानेसे किसी दिनका नतांश जाना जा सकता है। उस दिनकी सूर्यकी क्रान्तिभी उसीसे सहज ही जानी जा सकती है क्योंकि जो तारीखें दी गयी हैं वे उतने ही अंतरपर हैं जितनेमें सूर्यकी क्रान्तिमें दो-दो अंशका अंतर होता जाता है।

उदाहरण—२१ मार्च या २३ सितम्बरको सूर्यका नतांश २५॥ है। यही इलाहाबादका अक्षांश समझना चाहिए। यथार्थमें इलाहाबादका अक्षांश २५°२५′ है। १६ मार्च या २८ सितम्बरको मध्याह्नकालिक नतांश २७॥ है, जो २५॥ अंशसे दो अंश अधिक है। १० मार्च या ३ अक्टूबरको यह २९॥ है जो ४ अंश अधिक है। यही सूर्यकी उन दिनोंकी क्रान्ति है। इसी प्रकार २६ मार्च या १८ सितम्बरको मध्याह्न-कालिक नतांश २३॥ है जो २५॥ से दो अंश कम है, क्योंकि इन तारीखोंमें सूर्यकी क्रान्ति २ अंश उत्तर हो जाती है। इस लिए यह धूप-घड़ी केवल समय ही नहीं बतलाती वरन् स्थानका अक्षांश और सूर्यकी क्रान्तिका भी बोध कराती है।

सारणीको ध्यानसे देखनेपर पता चलेगा कि जहाँ १२ लिखा हुआ है वह मध्याह्नकाल सूचित करता है। इसके बादवाले खानेमें नीचे १ और ऊपर ११ लिखे हुए हैं। इसका अर्थ यह है कि सूर्यका नतांश ११ बजे जितना होता है उतना ही १ बजे होता है। परन्तु मध्याह्न कालिक नतांशसे इसमें अधिक अंतर नहीं रहता। जनवरी और दिसम्बरमें तो यह अंतर सवादो अंशसे अधिक नहीं होता। फरवरी और अक्टूबरमें यह २॥ से ३ अंशतक हो जाता है। मार्च और सितम्बरमें ४।के लगभग हो जाता है। अप्रैल और अगस्तमें ६॥ अंश और मई जून, जुलाई, अगस्तमें इससे भी अधिक हो जाता है। इसलिए इस धूपघड़ीसे जाड़ेके दिनोंमें ११ बजेसे १ बजे तकका समय बहुत शुद्धताके साथ नहीं जाना जा सकता।

१ बजेसे दो बजेतक या १०से ११ बजेतकका समय सुगमतासे जाना जासकता है। इसके अतिरिक्त अन्यकालोंमें समयका ज्ञान बहुतही सूक्ष्मताके साथ किया जा सकता है।

कालसमीकरण—धूपघड़ीसे जो समय आता है वह शुद्ध स्थानीयकाल होता है तारघरकी घड़ीसे जो समय जाना जाता है वह इससे भिन्न होता है। स्थानीय कालसे तारघरकी घड़ीका समय जाननेके लिए स्थानीयकालमें दो संस्कार करने पड़ते हैं। एकको काल-समीकरण और दूसरेको देशान्तर-संस्कार कहते हैं। काल-समीकरण १ली जनवरीसे १६ अप्रैलतक धनात्मक होता है, इसके बाद १४ जूनतक वह ऋणात्मक रहता है। १४ जूनके बाद फिर धनात्मक हो जाता है और अगस्ततक धनात्मक रहता है। सितम्बरसे दिसम्बर तक प्रायः ऋणात्मक रहता है। जब धनात्मक रहता है तब धूपघड़ीके समयमें इसे जोड़ना पड़ता है और जब ऋणात्मक होता है तब घटाना पड़ता है। यह संस्कार करनेपर शुद्ध स्थानीय काल मध्यमस्थानीय कालके समान हो जाता है।

देशान्तर संस्कार—मध्यम स्थानीय काल जान लेनेके बाद यदि अपना स्थान ८२॥ अंशकी देशान्तर रेखासे १ अंश पूर्व हुआ तो ४ मिनट, २ अंश पूर्व हुआ तो ८ मिनट घटाना पड़ता है। परन्तु यदि अपना स्थान ८२॥ अंशकी देशान्तर रेखासे पच्छिम हुआ तो उसी हिसाबसे जोड़ना पड़ता है। ऐसा करनेसे जो समय आता है वही तारघर या रेलघड़ीका समय होता है।

सूर्योदय और सूर्यास्तकाल—सारणीमें सूर्योदय-काल भी घंटा मिनटोंमें दिया हुआ है। यदि सूर्योदय-कालको १२ घंटेसे घटा दिया जाय तो सूर्यास्तकाल आ जायगा। यह वह समय है जिस समय सूर्यके बिम्बका केन्द्र क्षितिजपर गणितके अनुसार आना चाहिए। परन्तु वास्तवमें प्रकाश-वर्तनके कारण सूर्यका बिम्ब क्षितिजके नीचे रहते हुए भी दिखाई पड़ने लगता है। इस वर्तनके कारण सूर्योदय दिये हुए समयसे प्रायः २॥ मिनट पहले और सूर्यास्त २॥ मिनट बाद होता है। सूर्यका बिम्ब भी

विन्दुके समान नहीं है इसलिये उसका ऊपरवाला किनारा प्रायः एक मिनट पहले उदय हो जाता है और १ मिनट बाद होता है। इसलिए सूर्योदयकालमें ३॥ मिनट घटा देनेसे वह समय आ जायगा जिस समय सूर्य बिम्बका ऊपरवाला किनारा देख पड़ने लगता है। इसी प्रकार सूर्यास्तकालमें ३॥ मिनट जोड़ देनेसे वह समय आ जायगा जिस समय सूर्यका ऊपरी बिम्ब भी छिप जाता है। परन्तु यह समय स्थानका स्पष्टकाल है। रेलघड़ीका समय जाननेके लिए काल-समीकरण और देशान्तर-संस्कार भी करना चाहिए। सारणीको देखनेसे पता चलता है कि दो तारीखोंमें सूर्योदयकाल एक ही होता है। उदाहरणके लिये १० जनवरी और ३ दिसम्बरको सूर्योदय ६ बजकर ४४ मिनटपर इलाहाबादमें या २५॥ अक्षांशके स्थानोंमें सब जगह होता है। परन्तु इन तारीखोंमें सूर्योदयके समय रेलकी घड़ीमें भिन्नता देख पड़ती है। कारण स्पष्ट है। ३ दिसम्बरको काल समीकरण १०। मिनट घटाना पड़ता है। और १० जनवरीको ७॥ मिनट जोड़ना पड़ता है। अन्य संस्कार दोनोंमें समान होते हैं। उदाहरणके लिए इन दो तारीखोंका सूर्योदयकाल रेलकी घड़ीसे जो आता है वह नीचे बतलाया जाता है—

	३ दिसम्बर	१० जनवरी
स्पष्ट सूर्योदयकाल	६ घं० ४४ मि०	६ घं० ४४ मि०
वर्तन-संस्कार	–२॥ मि०	–२॥ मि०
कालसमीकरण-संस्कार	–१०। „	+७॥ मि०
देशान्तर संस्कार (इलाहाबादके लिए)	+२	+२ „
रेलकी घड़ीसे सूर्योदयकाल	६ घं० ३३। मि०	६ घं० ५१ मि०

यदि सूर्यके बिम्बके ऊपरी किनारेके उदयका समय जानना हो तो १ मिनट कम कर देना चाहिए। इन तारीखोंमें रेलघड़ीसे सूर्यास्तकाल जाननेके लिए स्पष्ट सूर्योदयकालको १२ घंटेसे घटानेपर ५ घंटा १६ मिनट होता है। इसमें वर्तन, काल-समीकरण और देशान्तर संस्कार जोड़ना चाहिए।

	३ दिसम्बर	१० जनवरी
स्पष्ट सूर्यास्त	५ घंटा १६ मि०	५ घं० १६ मि०
वर्तन संस्कार	+ २॥ „	+ २॥ „
कालसमीकरण	– १०। „	+ ७॥ „
देशान्तर	+ २ „	+ २ „
रेलघड़ीका समय	५ घं० १०। मि०	५ घं० २८ मि०

टिप्पणी—गणितसिद्ध सूर्योदयकालमें वर्तन-संस्कार घटाना और सूर्यास्तकालमें जोड़ना चाहिए।

३—सूर्यका नतांश नापकर समय जानना

उदाहरण १—१७ फरवरीको मध्याह्नके पहले सूर्यका नतांश ५० है। समय क्या है? इस तारीखको १० बजेका नतांश ४७॥। है और ९ बजेका ५७॥।, इसलिए ९ और १० बजेके बीच सूर्यका नतांश ५० होगा। यह भी प्रकट है कि ९ से १० बजे तक नतांश १० अंश कम होता है इसलिए इस घंटेमें नतांश १ घंटेमें १० अंशकी दरसे घट रहा है अर्थात् १ अंश ६ मिनटमें घटता है। ५७॥। से ५० तक ७॥। अंश होते हैं, इसलिए ७॥। अंशकी कमी ६ × ७॥। मिनट अथवा ४६॥ मिनटमें होती है। इसलिए स्पष्ट स्थानीय काल ९ बज कर ४६॥ मिनट हुआ। इस दिन कालसमीकरण + १४। मिनट है। इसलिए यह संस्कार देने पर मध्यम स्थानीय काल ९ घंटा ४६॥ मिनट + १४। मिनट = १० घंटा १ मिनट हुआ। यदि स्थान इलाहाबाद है तो इसमें २ मिनट और जोड़ना चाहिए। इस प्रकार रेलका समय १० घंटा ३ मिनट हुआ। यदि स्थान काशी हो तो १० घंटा १ मिनटसे २ मिनट घटाना चाहिए क्योंकि काशी २ मिनट पूर्व है। इसलिए काशीमें इस तारीखको जिस समय सूर्यका नतांश ५० होगा उस समय ९ बज कर ५९ मिनट हुआ रहेगा।

उदाहरण २—२३ मार्चको पटना नगरमें दोपहरके बाद सूर्यका नतांश ७४ अंश है। इस समय रेलकी घड़ीमें क्या बजा है?

सारणीमें २३ मार्च कहीं नहीं है। उसमें तो मार्चकी २१ और २६ तारीखोंके नतांश और नतकाल दिये हुए हैं। २१ मार्चको ४ बजेका नतांश ६३। और ५ बजेका ७६॥ है। २६ मार्चको ४ बजेका नतांश ६२। और ५ बजेका ७५॥। है। ५ दिनमें ४ बजेके नतांशमें १ अंशकी कमी पड़ती है और ५ बजेके नतांशमें पौन अंशकी। इसलिए दो दिनमें ४ बजेके नतांशमें लगभग आधे अंशकी कमी पड़ेगी और ५ बजेके नतांशमें लगभग चौथाई अंशकी। इसलिए २३ तारीखको ४ बजेका नतांश ६२॥। और ५ बजेका नतांश ७६। होंगे। इन दोनोंका अंतर हुआ १३॥ अंश। यह वृद्धि १ घंटेमें होती है इसलिए नतांशके बढ़नेकी गति लगभग ४॥ मिनट प्रति अंश है। परन्तु हमें ७४ नतांशका समय जानना है

जो ७६। से सवा दो अंश कम है। ४॥ मिनट प्रति अंशकी दरसे २। अंश लगभग १० मिनटमें पूरा होगा। इसलिए स्थानीय स्पष्टकाल ५ बजनेमें १० मिनट है अर्थात् ४ बजकर ५० मिनट हुआ है। यही पटनेकी धूपघड़ीका समय है।

अब देखना चाहिए कि इस दिनका काल समीकरण क्या है। २१ मार्चका काल समीकरण ७॥ मिनट और २६ तारीखका ५।॥ है इसलिए ५ दिनमें काल समीकरणमें १॥। मिनटकी कमी हुई, और दो दिनमें पौन मिनटकी। इसलिए २३ मार्चको काल-समीकरण ६॥। मिनट है। यह धनात्मक है, इसलिए इसको जोड़नेपर स्थानीय मध्यम काल ४ बज कर ५६॥। मिनट अथवा ४ बजकर ५७ मिनट हुआ।

पटनेका देशान्तर ग्रीनिचसे ८५ अंश १० कलाके लगभग है जो भारतवर्षके प्रधान देशान्तर ८२° ३०′ से ३ अंश पूर्व है। इसलिए पटनेका देशान्तर काल १२ मिनट पूर्व हुआ। उपर्युक्त समयसे १२ मिनट घटानेपर आया ४ घंटा ४५ मिनट। यही रेलघड़ीका समय हुआ।

इस धूपघड़ीसे जो समय आता है उसमें कुछ स्थूलता रह जाती है क्योंकि नतांशके नापनेमें केवल आधे अंशतककी शुद्धता हो सकती है, इसलिए नतांशके आधे अंशके घटने या बढ़नेमें जितने मिनिट लगते हैं उतनी ही स्थूलता हो सकती है। मध्याह्नके दो घंटोंको छोड़कर अन्य समयमें यह स्थूलता ५ मिनिटसे अधिक नहीं हो सकती। इसलिए इस घड़ीसे जो समय निकलता है वह यथार्थ समयसे अधिकसे अधिक ५ मिनट इधर-उधर हो सकता है। हाँ, मध्याह्नकालके दो घंटोंमें यह स्थूलता बहुत बढ़ जाती है, विशेषकर जाड़ेके दिनोंमें, क्योंकि नवम्बर, दिसम्बर और जनवरी मासोंमें तो मध्याह्नकालके नतांश घंटेमें दो सवा दो अंशकी दरसे ही घटता बढ़ता है। इसलिए यदि नतांशकी नाप आधे अंशोंतक शुद्ध की जाय तो १५ मिनटका हेर फेर हो सकता है। यही इसमें एक दोष है। परन्तु इससे विशेष हानि नहीं।

४. इस घड़ीके सुभीते

प्राइमरी स्कूलोंमें समयका पता लगानेमें बड़ी कठिनाई पड़ती है। यदि प्रत्येक स्कूलमें घड़ी रखी जाय तो अच्छी घड़ी चार-पाँच रुपयेसे कममें नहीं आती। यदि एक जिलेमें २०० प्राइमरी स्कूल हों तो डिस्ट्रिक्ट बोर्डको कमसे कम ८००) खर्च करने पड़ेंगे। फिर भी उनको शुद्ध रखनेमें बड़ी कठिनाई पड़ेगी क्योंकि हरएक स्कूल स्टेशनके पास नहीं हैं जहाँसे समय-समयपर सुविधाके साथ उसका समय ठीक किया जासके। बलिया जिलेमें वहाँके डिप्टी इन्स्पेक्टरकी कोशिशसे हरएक प्राइमरी स्कूलमें लोहेकी सीधी धूपघड़ी पक्के चबूतरेपर लगवायी गयी है परन्तु उनसे समयका पता लगानेमें आध-आध घंटेका अंतर पड़ जाता है क्योंकि ऐसी धूपघड़ियोंको ठीक-ठीक उत्तर दिशामें स्थिर करनेमें बड़ी कठिनाई पड़ती है। इसके सिवा ऐसी धूपघड़ियोंके बनवानेमें तीन रुपयेसे कम नहीं खर्च होता।

परन्तु इस सस्ती धूपघड़ीके बनानेमें एक आनेसे अधिक खर्च नहीं पड़ सकता। इसके लिए केवल एक अच्छी दफ्ती दस-बारह इंच लंबी और आठ-दस इंच चौड़ी चाहिए। यह दफ्ती सब जगह बराबर मोटाईकी हो। इस दफ्ती पर चित्र चिपका दीजिए और घंटे दो घंटे तक इसे चौरस मेजपर रखकर किसी भारी और चौरस चीजसे दबा दीजिए नहीं तो दफ्ती सूखते समय ऐंठ जायगी। फिर चित्रकी बाहरी रेखाओंके किनारे किनारे कैंचीसे सावधानीसे काट लीजिए। जहाँ आलपीन गाड़नेका स्थान है वहाँ एक छोटीसी आलपीन खुभो दीजिए। यह आलपीन दफ्तीके तलसे समकोणपर रहे। यदि छेद बढ़ जाय और आलपीन ढीली हो जाय तो आलपीन निकालकर उसमें एक चौथाई इंच चौड़ा मोटा कागज (उसी दफ्तीका कतरन) गोल काटकर आलपीनमें पहना दीजिए और उसमें जरासा गोंद लगाकर आलपीनको पहलेकी तरह खुभो दीजिए और गोंदसे छोटे गोल टुकड़ेको बड़ी दफ्तीमें पीछेकी तरफ चिपका दीजिए। बस, आलपीन कस जायगी।

यह ध्यान रखिए कि आलपीन ठीक उसी स्थानपर हो जैसा चित्रमें दिखाया गया है, जिससे दफ्ती इस प्रकार लटक सके कि नतांशदर्पणका शून्य अंश आलपीनके ठीक नीचे रहे। यदि एकाध अंशका भी अंतर पड़ा तो नतांश नापनेमें उतनी ही अशुद्धि हो जायगी। यह जाननेके लिए कि आलपीन उचित स्थानपर है या नहीं, नतांश दर्पणसे सूर्यका नतांश शून्य अंशके दोनों ओरसे एकही समय नापना चाहिए। यदि दोनों ओर वही नतांश आवे तो

समझना चाहिए कि आलपीन अपने स्थानपर है। यही सावधानी लटकानेवाले डोरेको भी बाँधनेमें करनी चाहिए। यह भी उसी रेखापर होना चाहिए जिसपर आलपीन और शून्य अंश हैं। दफ़्तीके काटनेमें भी सावधानी रखनी चाहिए। जिस रेखापर आलम्ब विन्दु आलपीन विन्दु और शून्य नतांश विन्दु हों उसके दाहने बायें दोनों पक्ष बराबर होने चाहिए। नहीं तो लटकानेपर नतांशदर्पण सीधा नहीं लटकेगा, किसी तरफ झुका रहेगा, जिससे नतांश नापनेमें अशुद्धि हो जायगी।

इस लेखके साथ केवल २२, २४, २५।।, और २८ अक्षांशोंकी सारणी दी जाती है। जिन स्थानोंके अक्षांश यही हैं या इनसे आधा, चौथाई अंश इधर-उधर हैं वहाँ भी इन सारणियोंसे काम लिया जा सकता है। केवल मध्याह्नकालके दो घंटोंके नतांशोंमें अधिक अशुद्धि होगी। अन्य समयोंमें अंतर बहुत कम पड़ेगा। यदि कोई अधिक शुद्धता चाहे तो इन्हीं सारणियोंके आधारपर किसी बीचवाले अक्षांशकी सारणी सहज ही बना सकता है। जिस स्थानके लिए जो सारणी उचित हो उसे काटकर नतांश दर्पणके पीछे दफ़्तीपर चिपका देना चाहिए।

किसी स्थानका अक्षांश जानना—किसी सारणीसे इष्ट दिनका मध्याह्नकालिक (१२ बजेका) नतांश जान लीजिए। फिर उसी सारणीमें देखिए कि २१ मार्चका मध्याह्नकालिक नतांश कितना है। दोनोंका अंतर जान लीजिए। यही अंतर उस दिनकी क्रान्ति है। अब अपने स्थानका मध्याह्नकालिक नतांश नतांशदर्पणसे देख लीजिए। यदि क्रान्ति उत्तर हो तो इस नतांशमें जोड़नेसे और दक्षिण हो तो घटानेसे उस स्थानका अक्षांश आ जायगा।

उदाहरण—१७ फरवरीको रायबरेलीका मध्याह्नकालिक नतांश ३८॥ है। सारणीमें १७ फरवरीका मध्याह्नकालिक नतांश ३७॥ दिया हुआ है और २१ मार्चका २५॥ इन दोनों नतांशोंका अंतर हुआ १२। इसलिए इस दिनकी सूर्यकी क्रान्ति हुई १२° दक्षिण। इस क्रान्तिको ३८॥ से घटानेपर आता है २६॥ जो रायबरेलीका अक्षांश हुआ। रायबरेलीका अक्षांश यथार्थमें २६। है। इसलिए इसमें चौथाई अंशकी अशुद्धि है।

दूसरी रीति—१७ फरवरीको रायबरेलीका मध्याह्नकालिक नतांश ३८॥ है। २५॥ अंशकी सारणीमें इसी तारीखका नतांश ३७॥ दिया हुआ है। इसलिए रायबरेली २५॥ अक्षांशसे उत्तर है। परन्तु इन दोनोंका अंतर हुआ १ अंश। इसको २५॥ में जोड़ दीजिए तो होता है २६॥, यही रायबरेलीका अक्षांश हुआ।

१७ फरवरीको जबलपुरका मध्याह्नकालिक नतांश ३५ है। सारणीमें इसी तारीखका मध्याह्नकालिक नतांश ३७॥ है। इसलिए जबलपुर २५॥ अक्षांशसे दक्षिण है। परन्तु इन दोनोंका अंतर हुआ २॥ अंश। इसको सारणीवाले अक्षांशसे घटा दीजिए तो आता है २३।, यही जबलपुरका अक्षांश है।

इस समय ४ अक्षांशोंकी सारणी दी जाती है। ये क्रमसे २२, २४, २५॥ और २८ अक्षांश हैं। पहले-पहल २५॥ अक्षांशकी सारणी अपने कामके लिए बनायी गयी थी। यह प्रयाग, काशी, पटना, गाजीपुर, बून्दी, सिन्ध, हैदराबाद, मुँगेर आदि नगरोंके लिए उपयुक्त है। इन चारों सारणियोंको ध्यानसे देखनेपर प्रकट हो जाता है कि एक ही सारणीसे आप-पास पासके कई अक्षांशोंकी सारणीका काम निकाल सकते हैं। मान लीजिए कि आपके पास २४ अक्षांशकी सारणी है और आप २२ अक्षांशकी सारणी चाहते हैं। कल्पना कर लीजिए कि आप १६ अप्रैलके दिनमें कोई समय जानना चाहते हैं।

१६ अप्रैलको २४ अक्षांशपर मध्याह्नकालिक नतांश १४ होता है; २२ अक्षांशपर यह नतांश १२ही होगा। इसलिए २४ अक्षांशवाली सारणीका वह खाना देखिए जिसका मध्याह्नकालिक नतांश १२ है। यह इस सारणीमें २२ अप्रैलको है। बस इसी २२ अप्रैलवाले नतांशोंसे आप सहजमें काम चला सकते हैं। दोनोंमें बहुत थोड़ा सा अन्तर है। तुलनाके लिए दोनोंको देखिए—

			२४ अक्षांश (२२ अप्रैल)	२२ अक्षांश (१६ अप्रैल)
मध्याह्नकालिक नतांश			१२	१२
११ बजे या	१ बजेका नतांश		१८॥	१९
१० ,,	२	,,	३०॥।	३१।
९ ,,	३	,,	४४।	४४॥।
८ ,,	४	,,	५८	५८॥।

७ बजे या ५ बजेका नतांश ७१॥ ७२॥
६ बजेका नतांश ८५। ८६।

इन दोनोंमें १२ बजे कोई अन्तर नहीं है। ९, १०, ११ अथवा १, २, ३, बजेके नतांशोंमें केवल आधे-आधे अंशका अंतर है जिससे समयमें तीन-चार मिनटसे अधिक अन्तर नहीं हो सकता। हां, प्रातःकाल या सायंकालमें एक अंशका अन्तर हो गया है, परन्तु इस समय सूर्यकी नतांश गति तीव्र होती है इसलिए इस समय भी चार पांच मिनटसे अधिक अन्तर नहीं पड़ सकता।

इसके सिवा यदि आप इन्हीं सारणियोंके द्वारा किसी बीचके अक्षांशकी सारणी बनाना चाहें तो नीचे लिखी रीतिसे सहज ही बना सकते हैं—

मान लीजिए, आपको २३ अक्षांशकी सारणी बनाना है। २२ और २४ अक्षांशोंकी सारणीकी एक ही तारीखके और एक ही कालके नतांशोंको जोड़कर आधा कर दीजिए, बस २३ अक्षांशकी सारणी तैयार हो जायगी। उदाहरणके लिए नीचे देखिए—

२९ जनवरीको २४ अक्षांशकी सारणीमें नतांश है
४२ ४४॥। ५१। ६०॥। ७२ ८४।
२९ जनवरीको २४ अक्षांशकी सारणीमें नतांश है
४० ४२॥ ४९॥। ५९॥ ७१ ८३॥
∴ २९ जनवरीको २३ अक्षांशकी सारणीमें नतांश होंगे
४१ ४३॥ ५०॥ ६० ७१॥ ८४

२६ अक्षांशकी सारणी नहीं बनायी गयी है परन्तु २८ और २४ अक्षांशोंकी सारणी दी हुई है। इन दोनोंके ठीक बीचमें २६ अक्षांश है। अर्थात् २४ और २८ अक्षांशोंके योगका आधा २६ है। इसलिए इन दो सारणियोंसे २६ अक्षांशकी सारणी उपर्युक्त रीतिसे सहज ही बनायी जा सकती है—

२८ अक्षांशकी सारणीमें २९ जनवरीके नतांश हैं
४६ ४८। ५४॥ ६३। ७४ ८५॥।
२४ अक्षांशकी सारणीमें २९ जनवरीके नतांश हैं
४२ ४४॥। ५१। ६०॥। ७२ ८४।

∴ २६ अक्षांशकी सारणीमें २९ जनवरीके नतांश
होंगे ४४ ४६॥ ५३ ६२ ७३ ८५
और २५ अक्षांशकी सारणीमें २९ जनवरीके नतांश हैं
४३ ४५॥। ५२ ६१॥ ७२॥ ८४॥।
और २५॥ अक्षांशकी सारणीमें २९ जनवरीके नतांश हैं
४३॥ ४६ ५२॥ ६१॥। ७२॥। ८५

२६ अक्षांशका जाननेके लिए २८ और २४ के नतांशोंके योगफलोंका आधा किया गया है। २५ अक्षांशका जाननेके लिए २६ और २४के नतांशोंके योगफलोंका आधा किया गया है, और २५॥ अक्षांशका जाननेके लिए २६ और २५ के नतांशोंके योगफलका आधा किया गया है। इस रीतिसे निकाले हुए २५॥ अक्षांशके नतांशोंको सारणीके नतांशोंसे मिलाइए, देखिए कितनी समानता है। चौथाई अंशसे अधिक अंतर नहीं है जिसके कारण १ मिनटका अन्तर पड़ सकता है।

यदि किसी ऐसे स्थानकी सारणी बनानी है जिसका अक्षांश २८ से दो एक अंश अधिक या २२ अंशसे उतना ही कम हो तो देखना होगा कि अक्षांशके बढ़ने घटनेमें नतांशोंमें कितना अंतर पड़ जाता है। मान लीजिए दिल्लीके लिए सारणी बनाना है जिसका अक्षांश २८॥ के लगभग है, या हरिद्वारका बनाना है जिसका अक्षांश ३० के लगभग है। २९ जनवरीकी ही तारीख लीजिए। ऊपर देखिए। २६ और २८ अक्षांशोंके नतांशोंमें क्रमशः अंतर है २ १॥। १॥ १। १ ।॥ इसलिए आधा अंश अक्षांश बढ़ जानेसे अंतर होंगे इनके चौथाई ॥ ॥ ॥ । । । इसलिए दिल्लीके नतांश २९ जनवरीको होंगे ४६॥ ४८॥ ५५ ६३॥ ७४। ८६, हरद्वारके नतांश जाननेके लिए उपर्युक्त अंतरोंको २८ अक्षांशके नतांशोंमें पूरा जोड़ दीजिए क्योंकि यह अंतर २ अंशोंके हिसाबसे हैं। इसलिए २९ जनवरीको हरिद्वारके नतांश होंगे ४८ ५० ५६ ६४॥ ७५ ८६॥

यह स्मरण रखना चाहिए कि यह गणना कुछ स्थूल है परन्तु इससे हमारे समय में ५, ६ मिनटसे अधिक भेद नहीं पड़ सकता।

सूर्यके नतांशसे समय जाननेकी सारणी

उत्तरी गोलार्धके उन स्थानोंके लिए जिनका अक्षांश २८ है

मास	तारीख	काल-समीकरण (मिनट)	मध्याह्न १२	११ / १	१० / २	९ / ३	८ / ४	७ / ५	६ / ६	सूर्योदय काल ६ घं. (मिनट)	काल-समीकरण	तारीख	मास
जनवरी	१	+३	५१॥	५३॥	५९।	६७॥	७७॥	८८॥।		५३	−१॥	२२	दिसंबर
	१०	७॥	५०	५२	५७॥।	६६।	७६॥	८८		५०	१।	३	
	२१	११॥	४८	५०।	५६	६४।	७५।	८७		४५	१३॥।	२२	नवंबर
	२९	१३।	४६	४८।	५४॥	६३।	७४	८५॥।		४०	१५॥।	१३	
फरवरी	५	१४	४४	४६॥	५२॥।	६२	७२॥।	८४॥।		३५	१६।	६	
	११	१४॥	४२	४४॥	५१	६०॥	७१॥।	८३॥।		३०	१६।	३१	अक्टूबर
	१७	१४।	४०	४२॥	४९॥	५९।	७०॥	८२।		२६	१५॥।	२५	
	२३	१३॥	३८	४०।	४७॥।	५७॥।	६९।	८१॥।		२२	१५	१९	
	२८	१२॥।	३६	३९।	४६॥।	५६॥।	६८॥	८१		१७	१३॥।	१४	
मार्च	५	११॥।	३४	३७	४४॥।	५५।	६७	७९॥।		१३	१२॥	९	
	१०	१०॥	३२	३५।	४३।	५४	६६	७८॥।		९	१०॥।	३	
	१६	९॥।	३०	३३।	४१॥	५२॥	६४॥।	७७॥।		४	९।	२८	सितंबर
	२१	७॥	२८	३१॥	४०	५१।	६३॥।	७६॥।	९०	०	७॥	२३	
	२६	५॥।	२६	२९॥	३८॥।	५०।	६२॥।	८१	८९	५।५६	५॥।	१८	
	३१	४।	२४	२७॥।	३७।	४९	६१॥।	७४॥।	८७॥।	५१	४	१३	
अप्रैल	५	२॥।	२२	२६।	३६	४८	६०॥।	७४	८७।	४७	२	७	
	१०	१॥	२०	२३॥।	३४।	४६॥	५९॥	७२॥।	८६	४३	१	२	
	१६	०	१८	२३	३३॥	४५॥।	५९	७२।	८५।	३८	+१॥	२७	अगस्त
	२२	−१॥	१६	२१।	३२।	४५	५८	७१।	८४॥	३४	३	१२	
	२८	२॥	१४	१९॥।	३१।	४४	५७।	७०॥	८३॥	३०	४॥	१५	
मई	४	३।	१२	१८।	३०।	४३।	५६॥	६९॥	८२॥	२५	५॥	९	
	१२	३॥।	१०	१७	२९।	४२॥	५५॥	६८॥।	८१॥।	२०	६।	१	
	२०	३॥।	८	१५॥	२८॥	४१॥।	५५	६८	८०॥।	१५	६।	२४	जुलाई
जून	१	२॥	६	१५	२७॥।	४१	५४।	६७।	७८	१०	५॥	१२	
	१४	०											
	२१	+१॥	४॥	१५।	२७॥।	४०॥।	५४	६६॥।	७९।	७ (मिनट)			

सूर्यके नतांशसे समय जाननेकी सारणी

उन स्थानोंके लिए जिनका अक्षांश २५॥ है

मास	तारीख	काल-समीकरण	१२	११ / १	१० / २	९ / ३	८ / ४	७ / ५	६ / ६	काल-समीकरण	तारीख	मास	सूर्योदय घं. मि.
जनवरी	१	+३	४९	५१	५७	६५॥।	७६	८७॥।		−१॥	२२	दिसम्बर	६ ४८
	१०	७॥	४७॥	४९॥।	५६	६४॥।	७५।	८७		१०।	३		६ ४४
	२१	११॥	४५॥	४७॥।	५४।	६३।	७४	८६		१३॥।	२२	नवम्बर	६ ४०
	२९	१३।	४३॥	४५॥।	५२॥	६२	७३	८५		१५॥।	१३		६ ३५
फरवरी	५	१४	४१॥	४३॥।	५०॥।	६०॥	७१॥।	८४		१६।	६		६ ३१
	११	१४॥	३९॥	४२	४९।	५९	७०॥	८३		१६।	३१	अक्टूबर	६ २७
	१७	१४।	३७॥	४०।	४७॥।	५७॥	६९॥	८२		१५॥	२५		६ २३॥
	२३	१३॥	३५॥	३८।	४६	५६॥	६८॥	८१		१५	१९		६ १९॥
	२८	१२॥।	३३॥	३६॥	४४॥	५५।	६७।	८०।		१३॥।	१४		६ १५॥
मार्च	५	११॥।	३१॥	३४॥।	४३	५४	६६।	७९।		१२॥	९		६ १२
	१०	१०॥	२९॥	३२॥।	४१॥	५२॥।	६५।	७८।		१०॥।	३		६ ८
	१६	९॥।	२७॥	३१	४०	५१॥	६४।	७७॥		९।	२८	सितम्बर	६ ४
	२१	७॥	२५॥	२९।	३८॥।	५०॥	६३।	७६॥		७॥	२३		६ ०
	२६	५॥।	२३॥	२७॥	३७।	४९।	६२।	७५॥।	८९	५॥।	१८		५ ५६
	३१	४।	२१॥	२५॥।	३६	४८।	६१।	७४॥।	८८।	४	१३		५ ५२
अप्रैल	५	२॥।	१९॥	२४।	३४॥।	४७।	६०॥	७४	८७॥	२	७		५ ४८
	१०	१॥	१७॥	२२॥	३३॥	४६।	५९॥	७३	८६॥	१	२		५ ४४॥
	१६	०	१५॥	२१	३२॥	४५॥	५८॥।	७२।	८५॥।	+१॥	२७	अगस्त	५ ४०॥
	२२	−१॥	१३॥	१९॥	३१॥	४४॥	५८	७१॥	८४॥।	३	२२		५ ३६॥
	२८	२॥	११॥	१८	३०॥	४३॥।	५७।	७०॥।	८४	४॥	१५		५ ३३
मई	४	३।	९॥	१६॥।	२९॥	४३	५६॥	७०	८३	५॥	९		५ २९
	१२	३॥।	७॥	१५॥।	२८॥।	४२।	५५॥।	६९।	८२।	६।	१		५ २५
	२०	३॥।	५॥	१४॥।	२८॥।	४०॥।	५५	६८॥	८१॥	६।	२४	जुलाई	५ २०
जून	१	२॥	३॥	१४	२७॥।	४१।	५४॥	६७॥।	८०॥।	५॥	१२		५ १६
	१४	०											
	२१	+१॥	२	१३॥	२७।	४०॥।	५४	६७	८०				५ १२

सूर्यके नतांशसे समय जाननेकी सारिणी

उत्तरी गोलार्धके उन स्थानोंके लिए जिनका अक्षांश २४ है

मास	तारीख	काल-समीकरण	मध्याह्न १२	११ / १	१० / २	९ / ३	८ / ४	७ / ५	६ / ६	सूर्योदयकाल	काल-समीकरण	तारीख	मास
		मिनट								६ घं.	मिनट		
जनवरी	१	+३	४७॥	५०	५६	६४॥।	७५।	८६॥।		४५	−१॥	२२	दिसंबर
	१०	७॥	४६	४८।	५४॥	६३॥	७४।	८६।		४१	१०।	३	
	२१	११॥	४४	४६।	५२॥।	६२	७३	८५।		३७	१३॥।	२२	नवंबर
	२९	१३।	४२	४४॥।	५१।	६०॥।	७२	८४।		३३	१५॥।	१३	
फरवरी	५	१४	४०	४२॥	४९॥	५९।	७१	८३॥		२९	१६।	६	
	११	१४॥	३८	४०॥।	४८	५८	६९॥।	८२॥		२५	१६।	३१	अक्टूबर
	१७	१४।	३६	३९	४६॥	५६॥।	६८॥।	८१॥		२२	१५॥।	२५	
	२३	१३॥	३४	३७	४५	५५॥	६७॥।	८०॥।		१८	१५	१९	
	२८	१२॥।	३२	३५।	४३॥	५४।	६६॥।	७९॥।		१४	१३॥।	१४	
मार्च	५	११॥।	३०	३३॥	४२	५३	६५॥।	७९		११	१२॥	९	
	१०	१०॥	२८	३१॥	४०॥	५२	६४॥।	७८		७	१०॥।	३	
	१६	९॥।	२६	२९॥	३९	५०॥।	६३॥।	७७।		४	९।	२८	सितंबर
	२१	७॥	२४	२८	३७॥।	४९॥।	६२॥।	७६।	९०	०	७॥	२३	
	२६	५॥।	२२	२६।	३६॥	४८॥।	६२	७५॥	८९।	५ घं. ५६	५॥।	१८	
	३१	४।	२०	२४॥।	३५।	४७॥।	६१	७४॥।	८८॥	५३	४	१३	
अप्रैल	५	२॥।	१८	२३	३४	४६	६०।	७४	८७॥	४९	२	७	
	१०	१॥	१६	२१॥	३२॥।	४५॥।	५९॥	७३	८६॥।	४६	१	२	
	१६	०	१४	२०	३२	४५	५८॥।	७२।	८६	४२	+१॥	२७	अगस्त
	२२	−१॥	१२	१८॥	३०॥।	४४।	५८	७१॥	८५।	३८	३	१२	
	२८	२॥	१०	१७।	३०	४३॥	५७।	७१	८४।	३५	४॥	१५	
मई	४	३।	८	१६।	२९।	४३	५६॥	७०।	८३॥	३१	५॥	९	
	१२	३॥।	६	१५।	२८॥	४२।	५६	६९	८२॥।	२७	६।	१	
	२०	३॥।	४	१४।	२८	४१॥।	५५।	६८॥।	८२	२३	६।	२४	जुलाई
जून	१	२॥	२	१४	२७॥।	४१।	५४॥।	६८।	८१।	१९	५॥	१२	
	१४	०											
	२१	+१॥	॥	१५॥	२८।	४१॥	५४॥।	६८	८०॥।	१५			
										मिनट			

सूर्यके नतांशसे समय जाननेकी सारणी

उत्तरी गोलार्धके उन स्थानोंके लिए जिनका अक्षांश २२ है

मास	तारीख	काल-समीकरण	मध्याह्न १२	११ / १	१० / २	९ / ३	८ / ४	७ / ५	६ / ६	सूर्योदय काल	काल-समीकरण	तारीख	मास
		मिनट								६ बजके	मिनट		
	१	+३	४५॥	४७।	५४	६३	७४	८६		४०॥	−१॥	२२	दिसंबर
जनवरी	१०	७॥	४४	४६।	५२॥।	६२	७३।	८५।		३८	१०।	३	
	२१	११॥	४२	४४॥	५१।	६०॥।	७२	८४॥		३४	१३॥।	२२	नवंबर
	२९	१३।	४०	४२॥	४९॥।	५९॥	७१	८३॥		३०	१५॥।	१३	
फरवरी	५	१४	३८	४०॥।	४८	५८।	७०	८२॥।		२७	१६।	६	
	११	१४॥	३६	३९	४६॥	५७	६९	८१॥।		२३	१६।	३१	अक्टूबर
	१७	१४।	३४	३७	४५	५५॥।	६८	८१		२०	१५॥।	२५	
	२३	१३॥	३२	३५।	४३॥	५४॥	६७	८०॥।		१६	१५	१९	
	२८	१२॥।	३०	३३॥	४२	५३।	६६	७९।		१३	१३॥।	१४	
मार्च	५	११॥।	२८	३१॥	४०॥	५२।	६५	७८॥		१०	१२॥	९	
	१०	१०॥	२६	२९॥।	३९।	५१	६४	७७॥।		६	१०॥।	३	
	१६	९॥।	२४	२८	३८	५०	६३।	७७		३	९।	२८	सितंबर
	२१	७॥	२२	२६॥	३६॥	४९	६२॥	७६	९०	०	७॥	२३	
	२६	५॥।	२०	२५	३५।	४८	६१॥	७५।	८९।	५ बजके ५७	५॥।	१८	
	३१	४।	१८	२३।	३४।	४७	६०॥।	७४॥	८८॥	५४	४	१३	
अप्रैल	५	२॥।	१६	२१॥	३३	४६।	६०	७३॥।	८७॥।	५०	२	७	
	१०	१॥	१४	२०	३२	४५॥	५९॥	७३।	८७।	४७	१	२	
	१६	०	१२	१९	३१।	४४॥।	५८॥।	७२॥	८६।	४४	+१॥	२७	अगस्त
	२२	−१॥	१०	१७॥	३०।	४४	५८	७१॥।	८५॥	४०	३	१२	
	२८	२॥	८	१६।	२९॥	४३॥	५७।	७१।	८४॥।	३७	४॥	१५	
मई	४	३।	६	१५॥	२९	४२॥।	५६॥।	७०॥	८४	३३	५॥	९	
	१२	३॥।	४	१४॥	२८॥	४२।	५६।	६९॥।	८३।	३०	६।	१	
	२०	३॥।	२	१४	२८	४२	५५॥।	६९।	८२॥।	२६	६।	२४	जुलाई
जून	१	२॥	०	१४	२७॥।	४१॥	५५।	६८॥।	८२	२२	५॥	१२	
	१४	०											
	२१	+१॥	−१॥	१४	२७।	४१।	५५	६८।	८०॥।	१९॥			
			उ. ओर							मिनट			

कंगालोंके लिये लाखका व्यवसाय*

[ठाकुर शिरोमणिसिंह चौहान, विद्यालंकार, एम० एस-सी०, विशारद, सब-रजिस्ट्रार]

"एं ! जो कौड़ी-कौड़ीके मुहताज हैं, वह लाख कहाँ पावेंगे कि व्यवसाय करें ?"

"नहीं, परमात्माने उन्हें लख-पती बना रखा है, यदि वे उसकी दी लाखका संग्रह करें ।"

"ओः, यह चूड़ियों-वाली लाख ! सचमुच यह तो लख पती बनाने-वाली चीज है ।"

"अच्छा । सुनिये ।

लाखागृह तैं जरत पांडु-सुत,
बुधि-बल नाथ, उबारे ।
सूरदास प्रभु अपने जनके
नाना त्रास निवारे ॥

यह गृह लाखका बना था। अग्निके संसर्ग मात्रसे लाख जलने लगती है अतः कौरवोंने अपने विरोधी पांडवोंके विनाशके हेतु यह नीति नाशक उपाय रचा। लाखको संस्कृतमें लक्ष कहते हैं। यह पलाशका पर्याय-वाचक शब्द है, पलाशको 'लक्ष-तरु' कहते हैं। इससे यह विदित होता है कि महाभारत-कालसे भारतवर्षमें भी पूर्व यह

लेखक—

पदार्थ समुचित मात्रामें पैदा किया जाता था और यहाँके निवासी इस 'दैवी प्रसाद'के गुणोंसे भली भांति अवगत थे। तभी तो लाख जैसा उपयोगी पदार्थ स्वार्थियों और अनधिका-रियोंके हाथमें पड़कर ऐसे विनाशकारी उपायका साधन बना। पलाशसे लाख उत्पन्न होती है इसी कारण उसे लक्ष-तरु भी कहते हैं।

१. लाख किन-किन कामोंमें लगती है ?

पाठक कहीं यह न समझ बैठें कि लाखागृह जैसे विनाश-कारक कार्योंमें ही लाखका उपयोग होता है। वास्तवमें यह पदार्थ मानव समाजके बड़े कामका है। गरीबोंकी कुटीसे लेकर राज-महलोंतकमें हम इसका प्रचार-प्रसार पाते हैं। स्त्रियोंके हाथोंमें चूड़ियाँ और पैरोंमें महावर इसीके बने होते हैं। बच्चोंके खेलनेके गोली-गट्टे इसीसे बनते हैं। गहनोंके बनाते समय सोनार और अचार आदि रखनेके अमृतबान बनाते समय कुम्हार इसको काममें लाते हैं। सोने चान्दीके पोले गहनोंमें भी लाख भरी जाती है। तलवारकी मुठिया, बिलियर्डकी गेंदें, ब्रुशके हैंडल, कंघे, चाकूके दस्ते, बटन आदि लाखसे बनाये जाते हैं। कृत्रिम खनिज रंगों (नीलिन)के अविष्कारसे पहले लाखका रंग रेशम, ऊन और चमड़ा आदि रंगनेके काम आता था।

* इस लेखके चित्र लखनऊ विश्व-विद्यालयके जीव-विज्ञान-विभागके चित्रकार श्री० जी० एन० नाटू द्वारा खींचे गये हैं।

रंगकी दृष्टिसे अब लाखका इतना महत्व नहीं रहा। शराबमें लाख मिलाकर वार्निश बनानेमें इसका बहुत उपयोग होता है। मुहर लगानेकी रंग-बिरंगी बत्तियाँ इसीसे बनती हैं। गाड़ी-छकड़ा बनानेवाले देहातके बढ़ई, खिलौने बनानेवाले और खरादनेवाले किसी-न-किसी रूपमें लाखका प्रयोग करते हैं। लाखकी सारी उपजका अधिकांश भाग ग्रामोफोनकी चूड़ियाँ बनानेमें व्यय होता है। सिक्कोंके ढालने, मक्खन निकालनेकी मशीनों एवं वस्त्र बुननेके करघोंके शटल बनानेमें भी लाखका काफी प्रयोग होता है। रेशम और हैटोंको कड़ा करने और जूतोंके तल्ले बनानेमें इसका खूब उपयोग होता है। जहाजोंकी पेंदीमें लाख लगायी जाती है। समुद्रमें बैठाये हुए बिजलीके तार लाखहीके भीतर बन्द होते हैं। सफेद की गयी लाख हाथीके बनावटी दांतोंके नामसे बिकती है। इसके पानीको खेतोंमें डालनेसे उपज बढ़ती है।

२. इसमें लाखोंकी गुंजाइश है।

जो पदार्थ मानव समाजके इतने काम आता हो उसकी माँग और खपत भी कम न होगी और न उसके व्यवसायमें घाटेका डर ही होगा। सच तो यह है कि आज भी लाखका व्यवसाय भारतवर्षका घरेलू-रोज़गार बना हुआ है और यह प्रधानतः देहातके अपढ़ और निर्धन किसानोंके हाथमें है। किन्तु आम तौरपर इस व्यवसायसे अधिक धन कमानेका जतन नहीं किया जाता। इस व्यवसायमें अभी बहुत उन्नतिकी गुंजायश है। देहातमें प्रायः समस्त जिमीदारों और किसानोंके पास थोड़े-बहुत ऐसे पेड़ होते ही हैं जिनपर लाख पैदा होती है, पर उनपर लाखकी खेती होते हुए हम नहीं पाते। भूमिकी उर्वरा-शक्ति घट जाने और भूमिकर बढ़ जानेके कारण—यही नहीं, आये दिन अति-वृष्टि, अनावृष्टि, तुषार और पत्थरके कारण,—यहाँके किसान और ज़िमीदार तबाह हो गये हैं। अधिकांशको निशिवासर अथक परिश्रम करनेपर भी भोजनके लाले पड़े रहते हैं। 'भरपेट भोजन पागये तो भाग्य मानो जग गये'। ऐसी अवस्थामें प्रत्येक मनुष्यको लाख जैसे उपयोगी और सहज व्यवसायको अपनाकर पैसा कमाना चाहिये। मातृभूमिके नब्बे प्रतिशत व्यक्ति लाखके व्यवसायसे अपनी रोज़ी पैदा करते हैं।

लाखकी खेती, गेहूँ, धान, जौ, बाजरा आदि प्रधान अन्नोंके कृषि सम्बन्धी कार्योंसे बचे-बचाये समयमें की जा सकती है। इसे सभी कर सकते हैं क्योंकि इसके करनेमें कम ज्ञान और कम व्ययकी आवश्यकता होती है। थोड़े दिनके अनुभवसे बाल, वृद्ध, वनिता—सभी इस कार्यको सहजमें कर सकते हैं। अधिक माँग होनेके कारण कारखानेवाले तथा मनिहार लाखको किसानोंके घरोंसे ही खरीद ले जाते हैं। बहुतोंकी तो 'खड़ी फसल' ही बिक जाती है। जिमीदार अपने वृक्षोंको लाख पैदा करनेके हेतु किसानोंको पट्टे (lease) पर भी दे सकते हैं।

३. लाख भारतकी ही विशेषता है

लाख भारतवर्षमें ही पैदा होती है। इसकी उपादेयताको देख जापान आदि उन्नति-शील देशोंके मुँहमें पानी भर आया। वे अपने देशमें लाख पैदा करनेका प्रयत्न करने लगे। पर लाख प्रयत्न करनेपर भी जापान, फारमूसा, अफ्रीका आदि देश अपने यहाँ लाख न पैदा कर सके। हाँ, हमारे पड़ोसी श्याम, इन्डोचीन, अनाम और कम्बोडिया आदि भू-भागोंमें जहाँ-तहाँ अल्प मात्रामें लाख पैदा होती है। कारण कि जिन वृक्षोंपर लाख लगती है वे इन भूभागोंमें पाये जाते हैं। इसके सिवा वहाँका जलवायु भी लाखके कीड़ोंके जीवनके अनुकूल होता है। भारतवर्षमें लाख मध्यप्रदेश, बंगाल, आसाम, पंजाब, सिंध, हैदराबाद और संयुक्त प्रान्तमें होती है।

यदि हम अपने पाठकोंको यह बताना चाहें कि लाख (Lac) क्या वस्तु है तो हम संक्षेपमें कहेंगे कि यह कुछ विशेष वृक्षोंपर रहनेवाले अतीव तुच्छ कीड़ोंके शरीरसे उद्भूत गोंदके सदृश अर्द्ध-तरल मल है जो वायुके संसर्गमें आनेसे ठोस और कड़ा हो जाता है। लाखके ये नन्हे-नन्हे कीड़े (tachardia lacca) कुसुम्भ, परास, बबूल, बेर, पीपल, सिरिस, गूलर, अरहर प्रभृति वृक्षोंकी सुकोमल शाखाओंपर रहते हैं। इन वृक्षोंका रस ही उनका खाद्य है जिसे ये कीड़े अपनी सूँड़से शाखाओंकी कोमल छालमें छेद करके चूसते हैं। ये परोपजीवी कीड़े अपने आश्रयदाता वृक्षोंपर ही रहते हैं और उन्हींसे भोजन-सामग्री भी ग्रहण करते हैं। इस भाँति लाख सदृश उपयोगी पदार्थके उत्पादनमें इन मूक वृक्षोंका कम हाथ नहीं है। वे मानव

समाजका महान् हित और उपकार करते हैं, निःस्वार्थ भावसे सेवा करते हैं। कहा भी है कि "संत विटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्हि कै करनी।"

४. उपजानेके सुभीते

लाखके कीड़े प्रायः स्वाभाविक दशामें पाये जाते हैं। परन्तु वे बड़ी सुगमतासे पाले भी जाते हैं। जहाँ ये कीड़े स्वाभाविक दशामें पाये जाते हैं वह स्थान लाखके व्यवसायके हेतु अति उत्तम है। वहाँ लाख उत्पन्न करनेवाले वृक्षोंपर इन कीड़ोंका संचरण करके लाख पैदा करनी चाहिये। देहातमें हजारों-लाखों बीघे परासके जंगल खड़े हैं जिनपर बड़ी आसानीसे लाख उत्पन्न की जा सकती है। उनकी लकड़ी जलानेके काम आती है। लाख उत्पन्न कर उनसे अपार धन पैदा किया जा सकता है। पीपलके अनेक वृक्षोंपर लाखके कीड़े स्वाभाविक दशामें पाये जाते हैं और उन वृक्षोंके स्वामी 'खड़ी फसलको' बेंचकर थोड़ा-बहुत धन भी पा जाते हैं। पर ऐसे असंख्य पीपल हैं जिनपर लाखके कीड़ोंकी पहुँच न तो अपने-आप और न बीहन लगानेसे होती है। ये वृक्ष बंजर-भूमिकी भांति बेकार हैं, उसके स्वामीको उनसे कुछ भी लाभ नहीं। इन 'देव-वृक्षों'से क्यों न लाख उत्पन्न की जावे? यही नहीं, जिन-जिन वृक्षोंपर रहकर लाखके कीड़े लाख निर्माण करते हैं उन-उन वृक्षोंको और लगाना चाहिये, क्योंकि जितने ही अधिक वृक्ष होंगे उतने ही विस्तारके साथ लाखका व्यवसाय किया जा सकेगा। देहातमें प्रायः गाँवोंमें कुछ न कुछ भूमि परती और ऊसर होती है। पशुओंके चरने अथवा उनके बैठनेके अतिरिक्त यह भूमि किस काम आती है। ऐसी भूमिमें परास, पीपल, बबूल, गूलर आदि वृक्ष बड़ी सुगमता और सफलतासे लगाये जा सकते हैं। इनकी लकड़ी तो जलानेके काम आवेगी ही और साथ-ही-साथ लाख भी पैदा की जा सकेगी। "एक ढेलेसे दो चिड़ियाँ मरेंगी।"

यदि हम लाख लगी हुई एक शाखाको देखें तो हमें उसपर लाल रंगके परस्पर सटे हुए गोल-गोल दाने दिखाई देंगे। इन्हीं गोल दानोंके भीतर लाखका मादा-कीड़ा रहता है। आरम्भमें मादा यहाँ आती है और अपनी सूँड़से वृक्षसे रस चूसने लगती है और वहीं रहने भी लगती है। बादको यही रस दूसरे रूपमें उसके शरीरके रन्ध्रोंसे निकल कर उसे ढक लेता है। पूर्ण बाढ़को पहुँचकर मादा अपने आवरणके, लाखके ढकनके, भीतर ही अंडे देती है
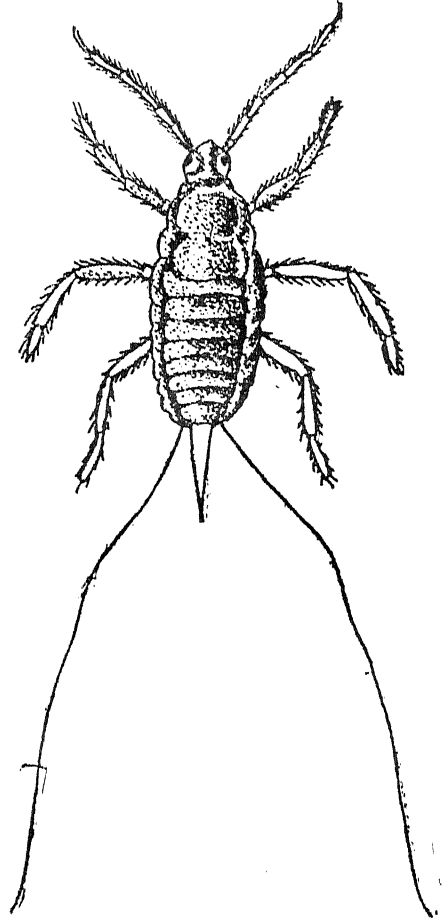
कीड़ेकी आरंभिक अवस्था

जिनमेंसे कुछ समयके अनन्तर बच्चे पैदा होते हैं। बच्चोंके उत्पन्न होते ही उनकी जननी (मादा कीड़ा) इहलोकको त्याग परलोक सिधार जाती है। माताके मरनेपर ये बच्चे (larva) उसके मृत शरीरसे निकलकर और लाखके आवरणको तोड़कर वृक्षकी शाखोंपर खाद्यकी खोजमें इधर-उधर रेंगने लगते हैं। जीवनकी रगड़में जो बच जाते हैं वे विभिन्न स्थानोंपर बसकर खाने-पीने और लाख उत्पन्न करनेमें जुट जाते हैं।

५. कीड़े कैसे होते हैं ?

अन्य नवजात कीड़ोंकी भाँति लाखके कीड़ोंके भी सिर, धड़ और पेट होता है। छः पैर और दो चक्षु भी होते हैं। सिर और दुमपर दो-दो पतले बाल होते हैं। रंग इनका लाल होता है और स्वभावके बड़े चैतन्य होते हैं। नर बहुत कम होते हैं। हजारों मादा कीड़ोंमें कहीं दो एक नर! दोनोंकी पहचान करना कठिन काम है। उनके कोशोंको (लाखके आवरणोंको) देखकर ही यह जाना जा सकता है कि अमुक दानेमें नर कीड़ा रहता है। नर-

कलम लगानेके तेरह सप्ताह बाद* का नर-कोश (male cell)
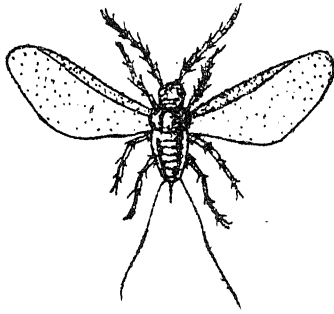
पंखदार नर
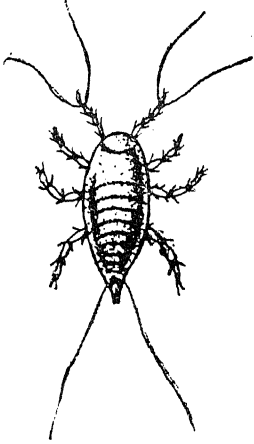
बिना पंखका नर

कीड़ेका कोश लम्बाकार और मादा-कीड़ेका कोश गोलाकार होता है। कुछ नर-कीड़ोंके पंख भी होते हैं। साधारणतः आषाढ़में लगाये हुए बीहनके नर-कीड़े बिना पंखके होते हैं और अगहन मासमें लगाये गये बीहनके नर-कीड़े परदार होते हैं। युवा होनेपर नर-कीड़ा जोड़ा खाता है। जोड़ा खानेके उपरान्त नर-कीड़ा मर जाता है। उधर मादा-कीड़ा, जोड़ा खानेके बाद, निज उदर पूर्तिमें बड़े वेगसे
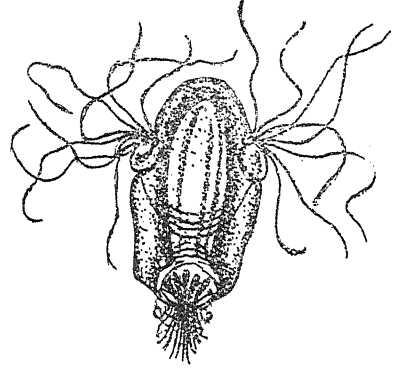
मादा, कलम लगानेके चार सप्ताहके उपरान्त।

जुट जाती है और लाख भी अधिक मात्रामें बनाने लगती है। अपने आवरणके भीतर-ही-भीतर मादा खूब बढ़ती हैं। मादाके स्वांस लेनेके बाल भी बड़े-बड़े हो जाते हैं। इन बालोंके कारण वृक्षकी टहनियाँ प्रायः सफेद दिखायी देने लगती हैं। स्वांस लेनेके बालोंकी अधिकता अच्छी फसलके चिन्ह हैं।
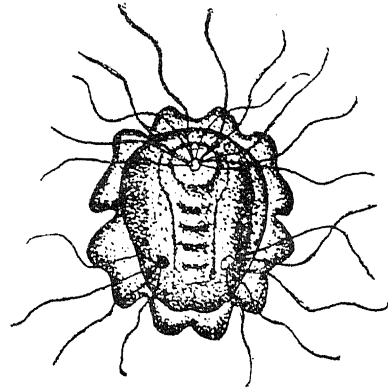
मादा, कलम लगानेके तेरह सप्ताहके उपरान्त।

हम पहले यह बता चुके हैं कि लाख-व्यवसाय आरंभ करनेके पूर्व हमें कीड़ोंके भोजनका काफ़ी प्रबन्ध कर लेना चाहिये। उत्तमताकी दृष्टिसे कुसुमकी लाख सबसे अच्छी होती है। बंगाल और मध्यप्रान्तमें इसकी खेती प्रचुरतासे

होती है। दूसरा नम्बर पलाशकी लाखका होता है। पलाशकी लाखका रंग बहुत चटक होता है और इसी कारण इसे 'रंगीली लाख' कहते हैं। पलाश, बबूल और बेरसे अत्यधिक मात्रामें लाख प्राप्त होती है। ये वृक्ष प्रधानतः ऊसर और निकम्मी भूमिमें उगाये जाते हैं। उत्तरी भारतमें बार-बार यत्न करनेपर भी बबूलपर लाखके कीड़ोंका संचरण न किया जा सका।
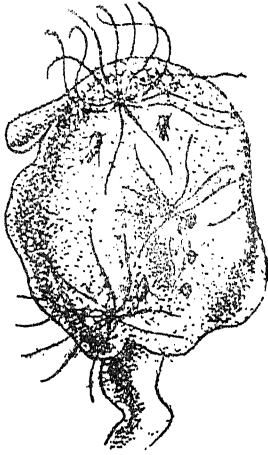
मृत मादा। बच्चे निकल रहे हैं।

लाखके कीड़े जहाँ जंगली दशामें पाये जाते हैं वहाँ, बिना किसी खोज-बीनके, लाखकी खेतीका व्यवसाय आरंभ कर देना चाहिये। अन्य स्थानोंमें इस कार्यको थोड़ी मात्रामें आरंभ करके अनुभव कर लेना चाहिये कि उस स्थान-विशेषका जल-वायु इस कार्यके हेतु कहांतक उपयुक्त है। जहाँ वर्षा और जाड़ा अत्यधिक होता हो वहाँ लाखके उद्योगमें सफलताकी कम आशा है। अधिक वर्षासे लाखके कीड़े वृक्षोंकी शाखाओंपरसे बह जाते हैं और शीताधिक्यके कारण कीड़े ठिठुर-ठिठुरकर मर जाते हैं। यही नहीं, अधिक गरमीका होना भी इस कार्यमें हानिकर है। गरमीकी प्रचंडतासे लाखके दाने पिघलकर बहने लगते हैं। दानोंके पिघलनेसे उनके वे छेद बन्द हो जाते हैं जिनसे होकर कीड़ोंके स्वांस लेनेवाले पतले-पतले बाल बाहर लटकते हैं। छेदोंके बन्द होते ही कीड़े आवरणके भीतर दम घुटनेसे मर जाते हैं। अतएव इस व्यवसायमें लाभकी आशा वहीं करनी चाहिये जहाँ वर्षा, जाड़ा और गर्मी सामान्य पड़ते हों।

६. अनुकूल ऋतु और स्थिति

लाखके बीहन (कलम) लगानेके दो समय होते हैं—(१) जेठ, आषाढ़ और (२) कार्तिक-अगहन। इन्हीं महीनोंमें कीड़ोंके अंडोंसे बच्चे पैदा होते हैं। इसे कीड़ोंके 'चलनेका समय' भी कहते हैं। जेठमें लगे हुए बीहनसे अगहनमें लाख छुटाने योग्य हो जाती है और अगहनमें लगायी गयी कलमसे जेठमें लाख-छुटाई हो जाती है। यदि लाखका संचारण पहले-पहल करना है तो अगहनका महीना अधिक उपयुक्त है क्योंकि जेठ-आषाढ़में वर्षाके कारण कीड़ोंके बह जानेकी सम्भावना होती है। हां, यदि वर्षा कम होती हो तो जेठमें भी कलम लगानेमें कोई हर्ज नहीं है।

बीज बोनेसे पूर्व भूमिकी जुताई-मड़ाई आवश्यक होती है। जुताई-मड़ाई और खाद डालनेका अभिप्राय यही होता है कि बीजसे नवजात पौधोंके उत्पन्न होते ही उनके विकासके हेतु हर प्रकारसे अनुकूल वातावरण प्रस्तुत रहें। उसी भांति लाखके बीजारोपणके पूर्व कीड़ोंके पालक (host) वृक्षोंको इस योग्य बनाना चाहिये कि लाखके नवजात नन्हें-नन्हें कीड़ों (brood lac) के विकासमें सब भाँति सुविधा मिले। उनके भरण-पोषणमें कोई अड़चन न हो। बीहन लगाते समय वृक्षकी शाखाओंका अतीव मुलायम होना आवश्यक है। इसके हेतु पहलेहीसे उन वृक्षोंकी छँटाई होना आवश्यक होती है। यदि बीहन जेठ-आषाढ़में लगाना हो तो वृक्षोंकी छँटाई माघ मासमें कर देना चाहिये और यदि अगहनमें बीजका संचारण करना हो तो वृक्षकी छँटाई बैसाख-जेठमें कर देना चाहिये।

७. छँटाई

वृक्षोंकी कलम तेज़ और भारी कुल्हाड़ीसे करना चाहिये ताकि शाखाएं साफ़ कटें, छिछड़े न निकलने पावें और न कटा हुआ स्थान फट या कुचर जावे। साफ़ छँटाई होनेसे नवीन शाखाएं शीघ्र ही निकल आती हैं। कुसुम और पलाशकी थोड़ी छँटाईसे भी काम चल जाता है। पुराने वृक्षोंकी छँटाई विशेष रूपसे करनी चाहिये। वृक्षकी जिन शाखाओंमें घाव अथवा खोंढ़ा हों उन्हें तो निकाल देना ही श्रेयस्कर है।

छँटाई उन्हीं वृक्षोंकी की जाती है जिनपर लाखका बीजारोपण पहले-पहल किया जाता है। फिर तो लाख छुटानेके हेतु वृक्षोंकी शाखाएँ काटी ही जाती हैं। अतः उनकी छँटाई अपने-आप हो जाती है। अगली फसलके बीज-संचारणके समयतक उनमें नवीन मुलायम शाखाएँ निकल आती हैं। हां, लाख छुटानेके हेतु डालियाँ बड़ी सफाईसे काटनी चाहिये।

८. वृक्षोंके दो समूह बनाइये

ऊपरके विवेचनसे यह स्पष्ट है कि किसी वृक्ष विशेष पर सालभरमें लाखकी एक ही फसल हो सकती है। 'चौमासा' खेतोंकी भांति उन्हें अगली फसलकी तैयारीके हेतु एक फसलका अवकाश दिया जाता है। पीपलकी शाखाएं देरसे निकलती हैं अतएव उनमें लाखकी फसल दूसरे-तीसरे वर्ष होती है। इस हेतु अपने वृक्षोंके दो समूह बना लेने चाहिये। जेठमें एक समूहके वृक्षोंपर बीजारोपण करे और एक समूहके वृक्षों परसे लाख उतारे और अगहनमें जेठकी लगी हुई कलममेंसे लाख छुटावें और दूसरे समूहमें बीहन लगावें। जिन वृक्षोंमें पहले-पहल लाखकी कलम लगायी जाती है उनके हेतु तो बीज दूसरे वृक्षोंपरसे मँगाना होता है। किन्तु जिनपर पहलेसे लाखकी खेती होती है, उनपर लाख छुटाते समय कुछ शाखाएँ नहीं काटते हैं—जहाँ-तहाँ लाख लगी हुई कुछ शाखाओंको छोड़ देते हैं ताकि उनके कीड़े आगे चलकर दूसरी फसलके हेतु बीजका काम देवें। बीजके हेतु लाखकी निरोग टहनियाँ ही चुनना चाहिये। लाख छुटाते समय जिन टहनियोंमें लाल-लाल रस प्रचुर मात्रामें दिखायी दे तो समझ लेना चाहिये कि वे टहनियाँ बीजके योग्य हैं। जिन टहनियोंको चींटी आदि कीड़ोंने हानि पहुँचायी हो अथवा गर्मीकी अधिकतासे लाख पिघलकर बह निकली हो तो उन्हें बीजके हेतु कदापि न चुनना चाहिये।

इस प्रकारकी निरोग टहनियोंके नौ-नौ दस-दस इंच लम्बे टुकड़े करके खुले स्थानमें रख देने चाहिये। जब इनपर लाल-लाल कीड़े रेंगते हुए नज़र आवें तब उन्हें वृक्षोंमें लगानेमें विलम्ब न करना चाहिये। बीजके इन टुकड़ोंको घासमें लपेटकर सन अथवा केलेकी छालसे वृक्षकी मुलायम शाखाओंपर कसकर बाँध देना चाहिये। कलमके टुकड़ोंके दोनों सिरे वृक्षकी शाखाओंपर सटे रहें-बाहर न निकले हों, नहीं तो निकले हुए भागके कीड़े वृक्षपर नहीं
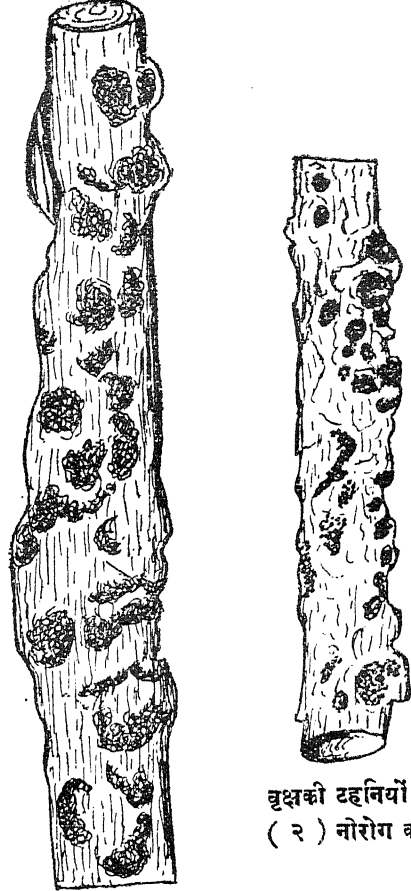
वृक्षकी टहनियों पर

(२) नीरोग कीड़े

(१) रोगी कीड़े

आते। कलमके टुकड़ोंके सिरे रससे गीले भी न हों। नहीं तो कीड़ोंके स्वतंत्रता पूर्वक रेंगनेमें भारी बाधा पहुँचती है।

९. बीज बोना और कलम बाँधना

बीज सदैव आवश्यकता भर ही बोना चाहिये, कम व बेश न बोना चाहिये। कम होनेसे वृक्षके कुछ भागोंपर कीड़े पहुँच नहीं पाते हैं और अधिक हो जानेसे कीड़ोंको पर्याप्त मात्रामें भोजन नहीं मिलता और वृक्ष भी अशक्त हो जाता है। कभी-कभी तो सूख जाता है। अधिक बीजसे उपज भी ठीक नहीं होती। कलम बाँधनेके दस-पन्द्रह

दिवसके अनन्तर बीजके कीड़े नरम डालियोंपर धीरे-धीरे रेंगने लगते हैं। कीड़ोंके फैलनेसे डालियाँ लाल हो जाती हैं। जिस शाखपर कलम लगायी जावे उस शाखाका जब आधा भाग कीड़ोंके फैलनेसे ढँक जावे तो बीजकी लकड़ीको वहाँसे खोल लेना चाहिये और उसमें लगी हुई लाखको खुरच लेना चाहिये। बीज लगानेके अनुमानतः बीस-बाईस दिवसके उपरान्त कलम खोल लेनी चाहिये और यदि उस समय भी उसपर कीड़े रेंगते हुए दिखाई दें तो उसे पुनः किसी दूसरे वृक्षपर बीज-संचारणके अभिप्रायसे बाँध देनी चाहिये। कभी-कभी कीड़े शीघ्र ही रेंगकर शाखाओंपर फैल जाते हैं। कलमका एक फुटका टुकड़ा वृक्षकी प्रायः दस-बारह फुटकी शाखाके हेतु पर्याप्त होता है। कलमको प्रायः वृक्षकी ऊपरी और मध्यकी शाखाओं-पर ही लगाना चाहिये ताकि वायु आदिके झकोरोंसे गिरे हुए कीड़े नीचेकी शाखाओंपर अटक रहे, नष्ट न हों।

१०. खेतीकी रक्षा

वृक्षपर कीड़ोंके पसर जानेके अनन्तर कृषकोंको उसकी देख-भालके अतिरिक्त और कुछ नहीं करना होता। जिस भाँति गेहूँ, जौ, मकई आदि फसलोंकी रक्षा चोर, अथवा पशुओंसे करनी होती है उसी भाँति लाखकी कलम लगे हुए वृक्षोंकी रखवाली करनी पड़ती है। चींटी और दीमक लाखके कीड़ोंके परम शत्रु हैं। ये सदैव कीड़ों और लाखकी उपजके विनाशकी ताकमें लगे रहते हैं। वृक्षों पर चढ़कर वे लाखके रस और कीड़ोंको खा जाते हैं। चींटियाँ कीड़ोंके स्वांस लेनेवाले बालोंको नोच-खोच डालती हैं। सांस न ले सकनेके कारण कीड़े मर जाते हैं। इतना ही नहीं, ये नर-कीड़ोंको लेकर चम्पत हो जाती हैं। नर-कीड़ोंकी संख्या वैसे भी कम होती है तिसपर चींटियोंका इस भांतिका उपद्रव! इस उपद्रवका प्रभाव यह पड़ता है कि जोड़ा न खा सकनेके कारण असंख्य मादाओंकी बाढ़ रुक जाती है और संतान उत्पन्न होनेमें भी भारी बाधा पहुँचती है। इस प्रकार चींटियाँ लाखकी उपजमें बड़ी हानि पहुँचाती हैं। इनसे बचनेके हेतु वृक्षोंके तनोंपर फिनायल, डामर आदि कोई दुर्गन्धमय पदार्थ पोत देना चाहिये या किसी चिपकते पदार्थमें वस्त्र आदि भिगोकर तनेके आसपास लपेट देना चाहिये ताकि चींटियाँ आदि वृक्षपर न पहुँचने पावें। इसके सिवा, वृक्षके नीचेकी भूमिको खूब जोतकर ऐसी फसल बो देना चाहिये जो वृक्षोंकी छायामें हो सकती है। इससे लाखकी फसलकी रक्षा भी होगी और इन फसलोंसे भी लाभ होगा। साथ ही वृक्ष भी हरे-भरे बने रहेंगे।

चींटियोंके सिवा कुछ (parasites) परोपजीवी कीड़ों और आग, पाला, अधिक वर्षा, लू आदिसे भी लाखके कीड़ोंको हानि पहुँचती है। कुछ तितलियाँ भी कीड़ोंको खा जाती हैं। अनेकों कीड़े तो बोरोंमें रक्खी हुई लाखको बरबाद कर देते हैं। बन्दर, गिलहरी और कई भांतिके पक्षियोंसे लाखकी भीषण हानि होती है। इन्हें तो वृक्षोंके पास न फटकने देना चाहिये। कभी-कभी चोर भी लाख छुटा ले जाते हैं। अतः वृक्षोंकी चौकसी करना परम आवश्यक है।

११. फसिल कैसे कटती है ?

हम ऊपर इस बातका उल्लेख कर आये हैं कि लाख छुटानेके योग्य उसी समय होती है जिस समय कीड़े चलते हैं। पक जाने पर कुछ लाख वृक्षों परसे अपने आप छुट कर नीचे गिर पड़ती है। लाख उतारनेके हेतु, वृक्षोंकी लाख लगी हुई शाखाओंको काट लेना चाहिये। इन शाखोंके छोटे-छोटे टुकड़े (stick lac) 'छड़ीकी लाख'के नामसे बिक जाते हैं। इन डालियोंसे लाखका छुटाना सहज है। जिस वृक्षकी लाख कड़ी हो, उसे तेज चाकूसे खुरच लेना चाहिये। कुसुम और पलाशकी लाख तो हाथोंसे छुटायी जा सकती है। साधारणतः पीपल अथवा लोहेकी पटरियोंसे या सादे चाकुओंसे लाख छीलना चाहिये। इस बातका ध्यान रहे कि छुटानेकी क्रियामें लाख चूर-चूर न होने पावे।

वृक्षकी शाखाओंसे छुटाकर लाख न तो धूपमें सुखानी चाहिये और न बोरोंमें भरकर रख देना चाहिये। लाखको हवामें सुखाकर धर लेना चाहिये। तदनन्तर उसमेंसे लकड़ीके छोटे-छोटे टुकड़ोंको बीनकर अलगकर देना चाहिये। फिर उसे सुपड़कोंमें चाल लेना चाहिये। इस क्रियासे उसमें मिले गर्द–गुबार अथवा मिलावटी पदार्थ अलग हो जाते हैं और लाखका भारी चूरा अलग हो जाता है। इसे शुद्ध लाख कहते हैं।

१२. लाखका लाल रंग कैसे निकालते हैं ?

जब लाखसे रंग निकालना हो तो 'कीड़े चलने' के पूर्व ही लाख लगी शाखाओंको काटकर लाख छुटा लेना चाहिये। उसके बाद ऊपर लिखी विधिसे लाखको शुद्ध कर लेना चाहिये और काफ़ी समयतक पानीमें भिगोना चाहिये। जब लाख पानीमें भली भांति भीग जावे तो उसे पानीहीमें हाथोंसे खूब मसलना चाहिये। मसलते-मसलते पानी लाल हो जावेगा। फिर पानी बदल देना चाहिये। दूसरे पानीमें भी लाखको उसी भाँति मसलना चाहिये। इस भाँति लाखको कई बार पानीमें खूब मल-मलकर धोना चाहिये और रंगीन पानीको पात्रोंमें रख देना चाहिये। इस लाल पानीमें फिटकरी और चूना आदि मिलानेसे लाखका रंग पात्रके पेंदेमें बैठ जाता है। तब जलको ऊपरसे निथार लेते हैं। रंगदार पानीको उबालकर भी उसमेंसे रंग निकालते हैं। इसे "lac dye" लाखका रंग कहते हैं और धुले हुए लाखके चूरेको "seed lac" कच्ची लाख कहते हैं। इसी रंगदार पानीमें रुईको भिगोकर स्त्रियोंके पैरोंमें लगानेके लिये महावरकी गोलियाँ बनाते हैं। इसी रंगमें अंडी रेशम आदि वस्त्र रंगे जाते हैं और यही छींट, रजाई आदिके छापनेके काम आता है।

१३. चपड़ा कैसे बनाते हैं

लाखसे शिलैक (Shellac) भी बनता है। शुद्ध लाख पीस लेते हैं और चूरेके प्रतिशत भागमें पाँच भाग पिसी हुई राल मिलाते हैं। राल मिलानेसे लाखके (melting point) द्रवणांकका अपकर्ष हो जाता है और रंग भी आ जाता है। राल मिले हुए लाखके इस चूरेको मोटे वस्त्रके लम्बे थैलोंमें भर लेते हैं। थैलेके ऊपरी सिरेको किसी स्तम्भमें बाँधकर लटका देते हैं। फिर इसके नीचे आग जलाकर इन्हें जलती हुई आगके ऊपर झुलाते हैं। थैलेके भीतर लाख पिघल जाती है। फिर थैलेके दूसरे सिरेको पकड़कर खूब मुर्री (twist) देते हैं। मुर्री देने पर भीतरकी पिघली हुई लाख थैलेके वस्त्रके नन्हें-नन्हें सूराखोंसे छनकर नीचे साफ़ समतल चिकने चबूतरे पर गिरती है और पतली-पतली चद्दरोंके रूपमें ठंडी कर ली जाती हैं। फिर अनुभवी और प्रवीण कारीगर लाखकी इन चद्दरोंको ले तेज आगके सामने खड़े होकर इन चद्दरोंको लम्बाई-चौड़ाईमें खींच-खींच कर बढ़ाते हैं यहाँतक कि यह चद्दरें कागजके समान पतली हो जाती हैं। इस रूपमें इसे शिलैक या चपरा कहते हैं। एक मन कच्ची लाखसे लगभग अट्ठारह-बीस सेरतक शिलैक निकलता है।

१४. लाखकी रंगीन बत्तियाँ और सफेद रूप

मनमाने रंगकी लाख बनानेके हेतु शुद्ध लाखको गलाते हैं। फिर इसमेंसे थोड़ी-थोड़ी लेकर उसमें पीला, हरा, नीला, काला—जैसा चाहें वैसा रंग मिलाकर उसे खूब कूटते हैं। कूटनेसे रंग खूब मिल जाता है। फिर इसकी गोली, गट्टे और बत्तियाँ बना लेते हैं।

हम ऊपर बता चुके हैं कि लाखको सफेद करके हाथीके नक़ली दाँतोंके नामसे बेचते हैं, इसके सिवा सफेद लाख और भी अनेक कामोंमें आती है। इसके नीरंगीकरणकी विधियाँ सीधी-सादी हैं। कोई-कोई इसे धूपमें रखकर इसके रंगको उड़ा देते हैं। लाखके घोलको हड्डीके कोयलेसे बहाकर इसके रंगको निकाल देते हैं। किन्तु सबसे अच्छी विधि ओषिदीकरण (oxidation) द्वारा है। इस विधिमें क्लोरीन (हरिन वायु) अथवा हाइपोक्लोरस एसिड उपहरिसाम्लसे लाखको श्वेत करते हैं। इस विधिसे लाख तो सुफेद हो हो जाती है उसके अन्य गुण भी प्रायः जैसे-के-तैसे बने रहते हैं।

१५. घर बैठेका रोजगार

ऊपरके सूक्ष्म विवेचनसे पाठक भली-भाँति समझ गये होंगे कि लाख 'घर बैठेका रोज़गार' है और इसमें कम ज्ञान और कम व्ययकी आवश्यकता होती है। देहातके प्रायः सभी मनुष्य जिनके पास लाख पैदा करनेवाले थोड़े-बहुत वृक्ष हैं, इसे सुगमतापूर्वक कर सकते हैं। इसमें घाटेकी तनिक भी गुंजायश नहीं, विदेशोंमें इसकी बड़ी माँग है और यह घर बैठे बेची जा सकती है। इस प्रांतमें भी लाखसे चपड़ा तैयार करनेके हेतु मिर्ज़ापुर और बलरामपुरमें कारखाने हैं, कहीं-कहीं तो इसके व्यवसायमें कल और वाष्प-शक्तिसे काम लेते हैं पर हाथसे काम होनेवाले कारखानोंकी तुलनामें उन्हें सफलता नहीं मिलती।

अत्यंत उपयोगी होनेपर भी लाखका व्यवसाय प्रायः

अपढ़ और निर्धन किसानोंके हाथोंमें ही है। इसकी आमदनीका अधिकांश भाग अढ़तिये और दलाल हड़प लेते हैं। सेठ-साहूकार गरीब किसानोंको अगाऊ रुपया बाँट देते हैं जिसके कारण उन्हें मजबूरन लाख उन्हींके हाथों बेचनी पड़ती है। सेठ-साहूकार भी अढ़तिए और दलालोंपर निर्भर होते हैं, जिनका सम्बन्ध विदेशी व्यापारियोंसे होता है। अढ़तिये और दलाल एक-एक फसलमें लाखसे हजारों रुपया कमा लेते हैं। इस बेकारीके जमानेमें यदि हमारे शिक्षित नवयुवक इस व्यवसायको अपनावें और लगनके साथ वैज्ञानिक विधियोंसे उसे करें तो इससे लाखोंकी रोजी चल सकती है।

अब कलकी पद्धति छोड़कर, देखो दुनियाँ आजकी।
सब जगह काम देतीं नहीं, बातें बाबा-राज की॥

शहरी मजूरोंके धंधे और उनके साधन

[रामदास गौड़]

कसबों और शहरोंमें देहतोंकी अपेक्षा व्यापार, आवाजाई, ढुलाई आदिके कारण कुलीके कामकी कमी नहीं होती। मकानकी बहुतायतके कारण थवई, राज, और साधारण मजूरोंके भी काम रहते हैं। इनके सिवा जितने रोजगारी हैं प्रायः सभी मजूर रखकर काम कराते हैं। इनको कामकी और मजूरोंकी कमी नहीं है। इतनेपर भी मजूर मारे-मारे फिरते हैं, बेकारोंकी संख्या बढ़ी हुई है।

१. आलस, कामचोरी और भिखमंगी

पचासों बरससे बढ़ती हुई बेकारीसे अकिल मारी गयी। बिदेशी व्यापारकी बढ़ती हुई वेगवती धारामें हमारे देशके निरन्तर काममें रखनेवाले रोजगार बह गये, और बचेखुचे भी बहते चले गये। जिनके रोजगार छिन गये वे कुली बने, झाड़ूकश बने, खेतिहर बने, भीख माँगने लगे, या विदेश चले गये। बाकी बेकारीमें जिस ही भांति बना जीते रहे। इनकी संतानें हुईं, जिन्होंने जन्मसे यह न जाना कि हमारा क्या पेशा है, क्या रोजगार है। काम करने लायक हुए भी तो नहीं जानते कि काम क्या करें। करनेकी बान भी नहीं पड़ी। काम मिला भी तो बान न होनेके तमोगुणने धर दबाया। आलस्य और कामचोरीने काम करने ही न दिया। करनेकी बान नहीं तो मुस्तैदी कहाँ? इसीलिये कुलीका काम भी डटकर नहीं होता। मेहनतसे जी चुराना ही आदत हो गयी।

२. हट्टेकट्टोंको भीख देना भारी पाप है

हमारे देशमें "दान" की पुरानी प्रथा चली आयी है। उसका सहारा लेकर बहुतसे कामचोर भिखमंगे बन गये। हट्टे-कट्टे आदमी काम क्यों नहीं करते, औरोंके पुण्यके सहारे क्यों जीते हैं? क्योंकि, हमारे दानके दुरुपयोगसे उन्हें खानेसे ज्यादा मिल जाता है। बहुतेरे तो अनाज बेचते हैं और अनेक पैसे बटोरकर महाजनी करते हैं। हट्टे-कट्टे मंगतोंको देकर दाता पाप कमाता है। उसे पुण्य नहीं हो सकता। इस दानसे और भी अधिक पाप तब होता है जब मँगते पैसे लेकर शराब पीते, जुआ खेलते और व्यभिचार करते हैं। इस तरह दान देकर हम आलस्य, कामचोरी और पापाचारको बढ़ाते हैं।

३. होशियार मजूर क्यों नहीं मिलते?

जब रोजगारमें कोई नफा नहीं रह गया, काम मिलना बन्द हो गया, तो रोजगारियोंने अपने-अपने औजार भी बेंच खाये। कहीं काम भी मिला तो हाथ झुलाते पहुँचे, और मालिकके ही खोटे निकम्मे औजारोंसे काम करके अपनी आदत बिगाड़ी, अभ्यास बिगाड़ा, मालिकका काम बिगाड़ा और बदनाम भी हुए। मजूरी घट गयी, वह ऊपरसे। बिदेसी व्यापार इस तरह उन्हें उत्तरोत्तर अवनतिके गर्त्तमें ढकेलता गया। अब वे ही मजूर निकम्मे

हो गये हैं। उनके पास औजार नहीं। वे काम नहीं जानते। अपने झोंपड़ोंमें बैठकर स्वाधीनतासे काम करना भी चाहें तो उनके पास औजार ही नहीं है।

इधर सौ बरसोंमें जब वे साधारण औजारकी दुरुस्ती और इस्तेमाल भूल गये, उधर बिदेशी व्यापारने अच्छे अच्छे औज़ार और पंच या ठप्पे तैयार किये जिनसे माल जल्दी और अधिक चोखा तैयार हो। इन औज़ारों और ठप्पों या पंचोंका हाल भी हमारे मजूरोंको मालूम नहीं।

४. उपाय क्या हो ?

हर रोजगारके संगठनकी जरूरत है। कुलीसे लेकर बढ़ियासे बढ़िया जड़िया और नकाश सभी रोजगारके लोग अलग अलग संगठित हो जायँ।

५. संगठन क्या नयी बात है ?

इस तरहका संगठन नयी बात नहीं है। हमारे समाजमें जो अनगिनत जातियाँ हैं, क्या हैं ? पुराने कालमें हर एक जातिका संगठन उस-उस पेशेके लिये था। पेशेका कारबार उत्तम रखनेके लिये उपाय मुख्य था, रोटी बेटीका नियम गौण। आज विदेसी होड़में पड़कर अपना कारबार तो हम गँवा बैठे, रोटी-बेटीके झगड़े बाकी रह गये। जातपांत-तोडक-मंडल उसे भी तोड़नेमें लगा है, परन्तु पेशेवालोंको फिर भी अपना संगठन पक्का पोढ़ा कर लेना चाहिये। हर पेशेवालोंके बीच नयी जान आ जानी चाहिये। जो रोजगार मर गये हैं उनका नये सिरेसे संगठन होना चाहिये।

६. संगठनका उद्देश्य क्या हो ?

संगठनके उद्देश्य ये होने चाहिये—

(१) आलस्य कामचोरी और बेकारीको एकदम मार भगाना।

(२) सचाई और ईमानदारीका प्रचार करना।

(३) अपने पेशेमें हर आदमीका पूरी कुशलता पाना।

(४) पेशेकी उन्नतिके अच्छेसे-अच्छे साधन ढूँढ़ निकालना और उनसे काम लेना।

हर सौ घर पेशेवरोंका संगठन एकमें होना चाहिये। और कोई घर ऐसा न रह जाय जो किसी संगठनके अन्दर न हो।

७. संगठनमें पेशेके साहित्यका स्थान

पेशेवर मजूरोंको अपने अपने काममें होशियार होनेके लिये उन्हें—

(१) आलस्य और कामचोरी छोड़ मुस्तैदी और मेहनतकी आदत डालनी चाहिये।

(२) औजार और पंच या ठप्पे चाहियें।

(३) काम सीखना चाहिये और उसका अभ्यास भी कर लेना चाहिये।

(४) काममें उन्नतिके लिये उचित साहित्य भी चाहिये।

रोजगारियोंके संगठनमें और मरे कामोंके पुनरुद्धारमें उस-उस रोजगारकी पोथियां बड़े कामकी होंगी।

इन पोथियोंको सरल सुबोध भाषामें, काफी विस्तार और उचित चित्रों और नकशोंके साथ छपवाकर सुलभ दामोंपर बिकनेकी जरूरत है। इनके लिये समाज और सरकार दोनोंको यत्नशील होनेकी जरूरत है।

हमने मजूर वर्गमें बे-पढ़े लिखे और पढ़े-लिखे दोनोंको शामिल किया है। इसलिये साहित्य भी सभी तरहके मजूरोंके लिये होना चाहिये।

८. मजूरी इज्जतदारीका काम है

मजूर अपने बाहुबल और श्रमका धनी है। उसका बल और बुद्धि उसकी पूँजी है। इसी पूँजीको लगाकर इसका मुनाफा वह मजूरीके रूपमें लेता है। जिस तरह एक धनवान अपना धन हड्डी, चमड़ा, चरबी आदिके रोजगारमें लगानेमें नहीं लजाता वैसे ही एक बलवान और बुद्धिमान अपनी बुद्धि और अपना बल जूता सीने, पालिश करने, या हड्डी काटने, पालिश करनेमें लगानेमें नहीं लजाता। एक ग्रेजुएटको और काम नहीं मिला तो वह जूतेकी पालिश करने लगा। इसपर बड़ा हो-हल्ला मचा। परन्तु वास्तवमें यह कोई हो-हल्लेकी बात नहीं है। रोजगार करना और ईमानसे पैसे कमाना,—फिर चाहे वह कैसा ही रोजगार हो,—इज्जतदारीका काम है। चोरी करना, बेईमानी करना, भीख मांगना आलस और सुस्तीसे रोटी खाना, कामसे जी चुराना, दूसरोंके मालपर मालिक बन

बैठना, अपनी आदमीयतकी भारी बेइज्जती है। मजूरीमें जो इज्जत है उसे कोई बरबाद नहीं कर सकता।

९. मजूरोंके लिये सीखनेके विषय और साहित्य

हम अब यहां उन विषयोंकी एक सूची देते हैं जिनमें हमारे पढ़े और बे-पढ़े मजूरोंको होशियार कारीगर बन जानेकी जरूरत है। जब हम कारीगर बनजायँ तो हमें चाहिये कि अपने औजार मँजे और सर्वोत्तम रखें और अपनी सन्तानको भी उसमें कुशल बनावें। हम स्वदेशीके बलपर न केवल बेकारीको मार भगा सकते हैं, बल्कि मरे हुए रोजगारोंको फिरसे जिला सकते हैं।

१०. भारतके शहरी मजदूरोंके लिये औद्योगिक ग्रंथावली

विषय सं०	विषय		विस्तार भागोंमें
१	जस्ता, ताँबा और सीसा	खनिज अवस्थासे शुद्ध करकर ईंट बनाने तक	१
२	अलम्युनियम और टीन		,,
३	निकल आदि अलौहिक धातुएँ		,,
४	लोहा		३
५	कोयलेकी खुदाई		१
६	लोहा गलानेकी भट्ठी (ढलाईके लिये)		,,
७	लोहे और पीतलकी ढलाईके लिये मिट्टीके सांचे बनाना		३
८	मिश्रित धातुएँ तैयार करना और उनका उपयोग		२
९	पीतल आदि मिश्रित धातुओंको ढालनेके लिये मसाला		२
१०	साधारण धातु-विश्लेषण—छोटे कारखानोंके लिये		१
११	ढलाईखानेके औजार		,,
१२	पक्के साँचे—धातु निर्मित—ढलाईके लिये		,,
१३	ढलाईखानेका व्यापार—छोटे पैमानेपर		,,
१४	ईस्पातको गलाना		,,
१५	ईस्पातकी ढलाई		२
१६	लोहारोंके औजार		१
१७	लोहेको गढ़ना		३
१८	गैससे झाल लगाना		१
१९	बिजलीसे जोड़ोंको झाल लगाना, मिलानेकी विधि सहित		२
२०	अलौहिक वस्तुओंकी झाल		१
२१	आबदारी		,,
२२	धार लगाना		१
२३	खरादयंत्र और खरादना		,,
२४	खरादपर चूड़ी काटना		,,
२५	खरादोपयोगी सारणियाँ		,,
२६	ऊँचे दरजेकी खराद करना		,,
२७	खरादके औजार		,,
२८	लकड़ी खरादना		,,
२९	बरमा और रंदा मशीनोंका काम		,,
३०	मिलिंग मशीन		,,
३१	स्पायरल मिलिंग		,,
३२	किर्रें काटना		३
३३	ब्रोचिंग और प्रेसिंग		१
३४	फिटिंग		२
३५	इरेक्टिंग		१
३६	बिजलीद्वारा कुलई करना		,,
३७	साधारण कुलई		,,
३८	धातुके नलोंको झुकाना		,,
३९	टीनका काम		,,
४०	लोहेकी पत्तीका काम		,,
४१	लोहेके ट्रङ्क और तिजोरी		,,
४२	ठप्पे बनाना		५
४३	ठप्पोंका उपयोग		१
४४	टीनके खिलौने बनाना		,,
४५	स्टोव पेन्टिंग		,,
४६	स्प्रे-पेन्टिंग		,,
४७	बिजलीके मोटर और डायनमोंकी मरम्मत और सँभाल		३
४८	बिजलीके तार लगाना		१
४९	मोटरगाड़ी चलाना		,,
५०	मोटरगाड़ीकी मरम्मत		२
५१	मोटरगाड़ीकी सफाई और रंगाई		१

५२	मोटर-बाईसिकल	,,
५३	बाईसिकलोंकी मरम्मत	,,
५४	टाइपराइटरोंकी मरम्मत	,,
५५	सीनेकी मशीनोंकी मरम्मत	,,
५६	ब्लाकोंकी मरम्मत	१
५७	छोटी घड़ियोंकी मरम्मत	,,
५८	ग्रामोफोनकी मरम्मत	,,
५९	गैसकी बत्तियों और अंगीठियोंकी मरम्मत	,,
६०	बिजलीके घरेलू यंत्रोंकी मरम्मत	,,
६१	सितार आदि तारके बाजोंकी मरम्मत और निर्माण	,,
६२	हारमोनियम आदि सुरवाले बाजोंकी मरम्मत और निर्माण	,,
६३	कम्पोजिंग	,,
६४	प्रेसकी छपाई और यंत्र	२
६५	लीथोकी लिखाई और छपाई	२
६६	जिंकोग्राफकी छपाई	२
६७	ब्लाक बनाना	२
६८	टाइप फाउन्ड्री	१
६९	मैट्रिक्स तैयार करना	,,
७०	जिल्दसाजी	,,
७१	प्रेसका प्रबन्ध	,,
७२	प्रकाशन कार्य	,,
७३	साइनबोर्ड लिखना	,,
७४	सुनारका काम	२
७५	बहुमूल्य मणियोंकी पहिचान और जड़ाव तैयार करना	१
७६	जड़ाई—आभूषणोंमें मणि लगाना आदि	,,
७७	सोने और चाँदीपर रंग करना	,,
७८	डेन्टिस्टका काम	,,
७९	बढ़ईके औजार	,,
८०	लकड़ीपर खुदाई करना	,,
८१	हाथी दाँतपर खुदाई करना	,,
८२	पत्थरपर खुदाई करना	,,
८३	काँचपर लिखाई करना	,,
८४	फर्नीचर	२
८५	गद्दे लगाना	१
८६	फर्मे बनाना	२
८७	रोगन रंग और पालिश	१
८८	गाड़ी और बग्घी बनाना	,,
८९	रबर स्टाम्प और रबरके खिलौने	१
९०	क़ागजके खिलौने	,,
९१	आतिशबाज़ी	,,
९२	साबुन बनाना	,,
९३	सुगंधित तेल और इत्र	,,
९४	धोबीका काम	,,
९५	सूती कपड़ोंकी रगाई	,,
९६	सूती कपड़ोंकी छपाई	,,
९७	रेशमी और ऊनी कपड़ोंकी रंगाई और धुलाई	,,
९८	घरेलू औद्योगिक नुसख़े	
९९	स्याहियाँ तैयार करना	,,
१००	दरजी—घरेलू और बाजारू	२
१०१	हलवाई	३
१०२	अत्तारी शिक्षा	१
१०३	शरबत, मुरब्बे और अचार	,,
१०४	पत्थरोंका उपयोग	,,
१०५	ईंट बनाना	,,
१०६	टाइल बनाना	,,
१०७	चूना बनाना और उसका उपयोग	,,
१०८	सीमेन्ट बनाना और उसका उपयोग	,,
१०९	गृहरचना और नकशे	,,
११०	गृहनिर्माण	२
१११	गृहनिर्माणमें लोहा और छप्पर लगाना	१
११२	चीनी मिट्टीका उद्योग	३
११३	जिनिंग प्रेस	३
११४	मिलकी कताई और धुलाई	५
११५	मिलकी बुनाई और रंगाई	१०
११६	खाँडकी मिल	४
११७	आटेकी मिल	४
११८	चमड़ेका उद्योग	३
११९	तेलके छोटे इंजन	२
१२०	वाष्पके मिल इंजन	१०
१२१	रेलवे यंत्रशास्त्र	१०

१२२	व्यापार संगठन	१	१३२	पूँजीपति और मजदूरोंके कानूनी सम्बन्ध	"
१२३	फैक्टरियोंका प्रबंध और स्थापना	३	१३३	फैक्टरी एक्ट	"
१२४	बहीखाता	१	१३४	बोयलर एक्ट	"
१२५	मूल्य और मूल्यका अनुमान लगाना	२	१३५	पेटेन्ट और रजिस्ट्रेशन एक्ट	"
१२६	लिमिटेड कम्पनियाँ	१	१३६	म्युनिसपल क़ानून	"
१२७	बैंकिंग	"	१३७	पुलिस और नागरिक जीवन	"
१२८	विज्ञापनकला	"	१३८	मजदूरोंकी बेकारीका समय	"
१२९	विक्रयकला	"	१३९	मजदूरोंका स्वास्थ्य और उनके घर	"
१३०	व्यापारिक पत्रव्यवहार	४	१४०	मजदूर और उनके बच्चोंकी शिक्षा	"
१३१	कारखानोंकी दुर्घटनाएँ	१	१४१	रद्दी कागज गलाकर उसकी चीजें बनाना	"

हमारा औद्योगिक साहित्य जो उपलब्ध है

[श्रीकृष्णकुमारलाल सकसेना, बरेली]

न्दीमें उद्योग धंधोंका साहित्य प्रचुर परिमाणमें चाहिये कि हमारे देशके बेकार उनसे लाभ उठा सकें। यह सच है कि इस साहित्यसे थोड़ेसे पढ़े लिखे ही लाभ उठा सकते हैं, परन्तु उनके लायक भी तो हिन्दीमें पुस्तकोंका अभाव ही है। जो कुछ नहींके बराबर औद्योगिक साहित्य हिन्दीमें है भी उसमें केवल शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि-कोणसे लिखा हुआ साहित्य तो वस्तुतः अधिकांश नहीं है।

हमारी मातृ-भाषा हिन्दीमें इनी गिनी कुछ छोटी-छोटी औद्योगिक विज्ञान सम्बन्धी पुस्तक-पुस्तिकाएँ ही हैं कि जिनकी सूची यहाँ सर्व-साधारणके हितार्थ नीचे दी जाती है। जबतक हिन्दीमें विशेष महत्वपूर्ण औद्योगिक साहित्यका निर्माण नहीं होता तबतक यह ही बहुत उपयोगी सिद्ध होंगी। हम भारतीयोंके अल्प साधनोंको देखते हुए उनसे वर्तमान स्थितिमें कुछ उपयुक्त लाभ अवश्य ही प्राप्त किया जा सकता है। इसी दृष्टिसे जब कि साधारण सुशिक्षित हिन्दी भाषा-भाषी जनता भी हिन्दीके औद्योगिक साहित्यकी दो चार अथवा सात आठ पुस्तकोंसे अधिकके नाम नहीं जानती, मैंने लगभग उन सबके नाम इस सूचीमें दे दिये हैं कि जो हिन्दीमें उपलब्ध हैं अथवा जिनके नामोंकी जानकारी मुझे प्राप्त हो सकी है। मुश्किलसे ही किसी शुद्ध औद्योगिक पुस्तकका नाम मेरी जानकारीमें न आ सका हो और तदनुसार यहाँ न दिया जासका हो। जिन महानुभावोंको किसी ऐसी पुस्तक या पुस्तकोंके नाम मालूम हों कि जिसका या जिनका उल्लेख इस सूचीमें न हुआ हो तो वह कृपाकर इन स्तंभोंमें प्रकाशित करावें। यदि वर्तमान पुस्तक-सूचीसे जनताको लाभ हुआ तो मैं अपना प्रयत्न सफल समझूँगा। ग्रंथ-तालिका इस प्रकार है—

[ख] अन्य प्रकाशकोंद्वारा प्रकाशित औद्योगिक साहित्य

(१) रंगकी पुस्तक—ले० स्वर्गीय प्रो० लक्ष्मी चन्द्र—मू० १) रु०

(२) रोशनाई बनानेकी पुस्तक—ले० स्वर्गीय प्रो० लक्ष्मीचंद्र—मू० ।।)

(३) तेलकी पुस्तक—ले० स्वर्गीय प्रो० लक्ष्मीचंद्र —मू० १) रु०

(४) वार्निश और पेंट—ले० स्वर्गीय प्रो० लक्ष्मीचंद्र—मू० १) रु०

(५) सुगंधित साबुन बनानेकी पुस्तक—ले० स्वर्गीय प्रो० लक्ष्मीचन्द्र—मू० १) रु०

(६) नारियलके रेशेका उद्योग—मू० ॥-)

(७) शिल्प कुंज—मू० ३) रु०

(८) हुनर-संग्रह—मूल्य ॥।)

(९) गृह-शिल्प—मू० ॥)

(१०) नवीन शिल्पमाला—मू० ३) रु०

(११) रुपये बनानेकी मशीन (स्वतंत्र होनेके उपाय)-ले० राधाकृष्ण गुप्त—मू० १॥)

(१२) व्यावहारिक विज्ञान—मू० १॥)

(१३) फ़ोटोग्राफ़ी—ले० डा० गोरखप्रसाद—मूल्य ७)

(१४) फ़ोटोग्राफ़र भाग पहिला—मू० १)
फ़ोटो ग्राफ़र भाग दूसरा—मू० २।)

(१५) चरखाशास्त्र—मू० १)

(१६) देशी करघा—मू० ॥≡) सचित्र

(१७) तंतु कला—मू० १) रु०

(१८) बनारसके व्यवसायी—मू० ॥=)

(१९) सुवर्णकारी—मू० ।)

(२०) सुई शिल्प शिला—ले० उपेन्द्रनाथदास गुप्त—मू० १) रु०

(२१) सुवड़ दर्जिन—मू० ॥)

(२२) दर्ज़ी अर्थात् सिलाई और कटाई शिक्षक—मू० २) रु०

(२३) पाक चंद्रिका—मू० ४) रु०

(२४) पाक-विज्ञान—मू० २॥)

(२५) भारतकी कारीगरी (ऐतिहासिक निरूपण) मू० ।=)

(क) युक्त प्रांतीय सरकार द्वारा प्रकाशित औद्योगिक साहित्य

(१) हिन्दीमें "मैन्यूफैक्चरिंग न्यूज़ पेपर इन्क" (Manufacturing Newspaper Ink) अर्थात् "समाचार पत्रोंके लिये रोशनाई बनाना"—ले० एच० डी० सेन—बुलेटिन नं० १७ सन् १९२८ ई०—मू० ≡)

(२) हिन्दीमें "ए न्यू मैथड आफ़ शुगर मैन्यूफैक्चरिंग फ्राम शुगरकेन" (A New Method of Sugar Manufacturing from Sugar cane) अर्थात् "गन्नेसे शक्कर बनानेकी एक नवीन विधि"—बुलेटिन नं० २०—मूल्य ≡)

(३) हिन्दीमें "दी सालवेंट एक्सट्रेक्शन प्रोसेस फ़ार आयल्स एन्ड इट्स फ़्यूचर इन इंडिया" (The Solvent Extraction Process for Oils and its Future in India) अर्थात् "तेलको घोल सम्बंधी विधिसे निकालनेका ढंग और भारतमें उसका भविष्य"—ले० डा० एन० जी० चटरजी—बुलेटिन नं० २२—रायल आठ पेजी—पृष्ठ १०—मू० ≡)

(४) हिन्दीमें "मैथड्स आफ़ मेकिंग प्यूरीफ़ाइड आयल्स फ़ार फ़ूड्स इन इंडिया" (Methods of Making Purified Oils for Foods in India) अर्थात् "भारतवर्षमें खानेके लिये शुद्ध तेल बनानेकी विधियाँ"—ले० डा० एन० जी० चटरजी—बुलेटिन नं० २३—रायल आठ पेजी—पृष्ठ ८—मू० ≡)

(५) हिन्दीमें "आयल सीड क्रशिंग" (Oil-Seed Crushing) अर्थात् "तेल निकाले जानेवाले बीजोंकी पिराई"—ले० जे० ए० एच० ड्यूक—सन् १९२७ ई०—मू० २॥)

(६) हिन्दीमें "वाशिंग एण्ड फ़ास्टडाइंग आफ़ सिल्क फ़ाईवर्स" (Washing and Fast Dyeing of Silk Fibres) अर्थात् "रेशमके तारोंकी धुलाई तथा पक्की रंगाई"—ले० भूदेव शर्म्मा—बुलेटिन नं० २९—रायल आठ पेजी—पृष्ठ २४—मू० ।≡)

(७) हिन्दीमें "किल आपरेशन गाइड" (Kiln Operation Guide) अर्थात् "भट्टेके चलानेकी मार्ग-दीपिका"—बुलेटिन नं० १९—रायल आठपेजी—पृष्ठ २१—मू० ॥)

(८) हिन्दीमें "बाबिन मेकिंग" (Bobbin Making) अर्थात् नरीकी भराई लेखक एच० ई० किंस—बुलेटिन नं० १३—सन् १९२७ ई०—मू० =)

(९) हिन्दीमें "इनडस्ट्रीज़ आफ़ दी यूनाइटेड प्राविंसेज़" (Industries of the United Provinces) अर्थात् "संयुक्तप्रांतकी कारीगरियाँ"—मू० १) रु०

(१०) हिन्दीमें "ब्वायलर इन्सट्रक्शन्स आन जेनरल

वर्किंग फ़ार ब्वायलर अटेन्डेन्ट्स" (Boiler Instructions on General Working for Boiler Attendants) अर्थात् "ब्वायलर संचालकोंके लिये ब्वायलरके साधारण रूपसे चलानेकी शिक्षाएँ"—मू० =)

ऊपरकी ग्रन्थ-सूची देखनेके बाद साहित्य-प्रेमियोंको विदित ही हो गया होगा कि हिन्दीमें औद्योगिक विज्ञान तथा वर्णनात्मक औद्योगिक साहित्यकी कितनी भारी कमी है। इस समय एक सबसे बड़ी कमी एक ऐसे औद्योगिक साहित्यकी खलती है जिसमें उद्योगधंधोंके संचालन, सुसंगठन और उनके विभिन्न स्वरूपोंकी उपयोगिताकी वैज्ञानिक मीमांसा तथा व्याख्या हो। दूसरी कमी यह है कि ग्रामोंमें उद्योग धंधोंके सुसंगठन, संचालन तथा विशेष-विशेष परिस्थितियोंमें उनके प्रचार आदिके सम्बन्धमें किसीभी प्रकार का कोई उपयोगी साहित्य अथवा ग्रन्थ नहीं है। इसी प्रकार राजगीरी, बढ़ईगीरी, लोहारी, रंगसाज़ी, तथा रँगरेज़ी, हलवाईगीरी, अत्तारी तथा इतर-फुलेलसाज़ी, जूते बनाना, उत्कृष्ट रीतियोंसे चमड़ा सिझाना, भिन्न-भिन्न प्रकारके खिलौने बनाना, उत्कृष्ट कोटिकी जिल्दसाज़ी, और उत्कृष्ट कोटिकी सुनारी, और चीनी-मिट्टी अथवा पोरसिलेनके बर्तन, खिलौने और गुलदस्ते आदि उद्योग धंधोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अनेकों ग्रंथों तथा पुस्तक-पुस्तिकाओंकी आवश्यकता है। उसके उपरांत शीघ्रसे शीघ्र भिन्न-भिन्न उद्योग धंधोंके उत्कृष्टरूपसे सुसगंठित होने तथा प्रचलित होनेके लिये उक्त साहित्यके प्रचारकी भी यथेष्ट चेष्टा करनी आवश्यक होगी अन्यथा अपढ़ अथवा थोड़ी शिक्षा-प्राप्त जनताको पता भी नहीं लगेगा कि अमुक-अमुक उद्योग धंधोंके संचालनकी शिक्षा तथा विधि बतानेके लिये कोई सामग्री विद्यमानभी है या नहीं। ऐसे साहित्यके निर्माताओं तथा प्रकाशकों आदिको इसका विशेष ध्यान रखना होगा कि जो औद्योगिक साहित्य केवल ग्रामीण उद्योग धंधोंसे सम्बन्ध रखनेवाला हो अथवा जो कम पढ़े-लिखे लोगोंके लिये हो, उसकी भाषा-विशेष रूपसे सरल हो और उसको आवश्यकतानुसार बोधगम्य चित्रोंसे ही सुसज्जित किया जाना परम आवश्यक होगा अन्यथा मुख्य उद्देश्यकी सफलतामें संदेह ही समझना चाहिये।

लगभग यह सभी ग्रंथ हिन्दीके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पुस्तक-विक्रेताओंसे मिल सकते हैं। गवर्नमेंटके प्रकाशित ग्रंथ भी इन्हीं पुस्तक-विक्रेताओंके द्वारा लिखा-पढ़ी करके प्राप्त किये जा सकते हैं। अन्यथा गवर्नमेंट प्रेस इलाहाबादसे प्राप्त हो सकेंगे।

सयुंक्त-प्रांतीय सरकारद्वारा प्रकाशित जिन औद्योगिक ग्रंथोंका उल्लेख ऊपर दी हुई ग्रंथ-सूचीमें किया गया है, वे सब सन् १९३० ई०के भीतरही प्रकाशित हुए थे। उसके उपरांत गत ५ वर्षोंके भीतर हिन्दीमें कोई अन्य औद्योगिक ग्रन्थ उसके द्वारा प्रकाशित हुए हैं या नहीं, सामग्रीके अभावसे इस समय बतानेमें हम असमर्थ हैं।

सरेश कागजका निर्माण

[पं० ओंकारनाथ शर्म्मा द्वारा लाला श्रीराम अग्रवालके संग्रहसे अनूदित]

सरेश कागज जिसे अंगरेजीमें अब्रेजिव, ग्लास, सैन्ड और एमरीपेपर कहते हैं, लकड़ी और लोहे और पीतल आदि धातुओंके कारखानोंमें पालिश करनेके बहुत काममें आता है। बाजारू कारीगरों और जनतामें भी इसकी काफी खपत है। भारतवर्षमें इसको बनानेवाली एक भी फैक्टरी नहीं है। ऐसी फैक्टरीकी बहुत आवश्यकता है। ८ घंटे प्रतिदिन काम करके १२" लम्बे और ९" चौड़े १८,००० तख्ते बनानेवाली फैक्टरीका खर्चा क्या होता है यहाँ दिया जाता है।

संक्षिप्त निर्माण विधि

एक मशीनमें पहिले तो कागज अथवा कपड़ेकी रीलकी रीलपर, पीछेकी तरफ, बनानेवालेका नाम अथवा ट्रेड मार्क और एमरी अथवा काँचके दानोंकी बारीकीका नम्बर छाप दिया जाता है। फिर उस मशीनमेंसे निकलकर रील दूसरी मशीनमें घुस जाती है जहाँपर उसपर गोंद लग

जाता है। इस मशीनमें गोंद लगानेका काम कूचियों द्वारा होता है जिनमेंसे कुछ तो ठहरी हुई होती हैं और कुछ हिलती रहती हैं। फिर कागज अथवा कपड़ेकी पट्टी एक दूसरी मशीनमेंसे होकर गुजरती है, जिसमें उसपर एमरी अथवा कांचका चूर्ण बुरक दिया जाता है। बादमें वह पट्टी एक इस प्रकारके बकसोंमेंसे होकर गुजरती है जिनमें वह गरमी और हवाके कारण सूख जाती है। और फिर आगे चलकर एक मशीनद्वारा नापके टुकड़ोंमें कट जाती है।

आवश्यक मशीनें

१—छापनेकी एक बेलन मशीन ... ७१४)

२—एक गोंद लगनेकी मशीन ... २०५४॥)

३—हवासे काम करनेवाली काग़ज़ अथवा कपड़ेकी पट्टीको खींचनेवाली दो मशीनें, वायु निःसारक (Exhauster) सहित ५८८)

४—काग़ज अथवा कपड़ेकी पट्टीको चलानेके लिये एक मशीन चलानेवाली जंजीरों, डंडों और पंखे सहित ४२०)

५—काँच अथवा एमरीका चूर्ण बुरकानेवाली एक मशीन ९६९॥)

६—भापके द्वारा गरमी पहुँचानेवाला लोहेका एक प्लेट ३१८॥)

७—एक लटकती हुई मशीन जिसमें कागज अथवा कपड़ेकी पट्टीको खींच कर चलानेके लिये दो टर्न टेबुल और स्वयं काम करनेवाले डंडोंका प्रबन्ध हो। (यदि इस मशीनका काम किसी और प्रकारसे निकल सके तो इस मशीनको खरीदना आवश्यक नहीं होगा।) २३१७)

८—काटनेवाली एक मशीन (यदि कागजों अथवा कपड़ोंको काटनेका कोई और प्रबन्ध हो सके तो इस मशीनको भी खरीदना आवश्यक न होगा।) १९२०)

९—गोंद उबालनेका एक बैलट ३६०)

१०-सरेश काग़ज़के टुकड़ोंको दबाकर पैक करनेके लिये एक प्रेस ११३०॥)

११-बिजलीकी एक मोटर ५ अश्वबलकी, उपरोक्त मशीनोंको चलानेके लिये ५००)

कुल योग १९,४७९)

बाहरसे न मँगवाकर यदि कारखानेमें ही काँच अथवा एमरीका चूर्ण तयार करना हो तो उसके लिये एक चक्की और छाननेकी मशीन भी लगानी पड़ेगी जिसकी कीमत लगभग ५०००) होगी।

कारखानेकी इमारत—कारखानेकी इमारत ५० फुट लम्बी, २६ फुट चौड़ी और १८ फुट ऊँची होनी चाहिये। ऐसी इमारत लगभग ५५००) में तयार हो सकती है।

कार्यकर्त्ताओंका मासिक खर्च—

१—फोरमैन, वेतन	१७०)	१७०)
११—कारीगर, वेतन	३०)	३३०)
४—कुली, वेतन	१५)	६०)
१—बाबू, वेतन	७०)	७०)
१—स्टोर बाबू, वेतन	७०)	७०)

योग—७००) मासिक

मासिक खर्चा—

कच्चे मालका खर्चा, एक दिनमें ८ घंटे काम कर कर १८,००० सरेश कागजके तख्ते बनानेके लिये

(क) ९ रीम कागज, बोझा ४५० पौंड, ३ आना प्रति पौंडके हिसाबसे ८४।=)

(ख) १४४ पौंड गोंद, ४ आना प्रति पौंडके हिसाबसे ३६)

(ग) ४०५ पौंड चूर्ण, १ आना प्रति पौंडके हिसाबसे २५।-)

योग—१४५॥≡)

एक महीनेका खर्चा	४३७०॥=)६
कार्य कर्त्ताओंका खर्चा	७००)
बिजलीका खर्चा	१८०)
किराया चुँगी और कर आमदनी पर २% के हिसाबसे	१५०)
मरम्मतका खर्चा	१५०)
मशीनोंकी छीजन १% के हिसाबसे	१५८)
इमारतकी छीजन २% के हिसाबसे	९)
फुटकर खर्च	७५०)

कुल योग ६४६७॥≡)

एक मासकी आदमनी

२ रु० ४ आ० प्रतिग्रोसके हिसाबसे	८४३७॥)
एक महीनेका लाभ	१९६९॥।=)

एक वर्षका चालू खर्चा	७७६११॥)
एक वर्षकी चालू आमदनी	१०१२५०)
एक वर्षका लाभ	२३६३९॥)

इसका आशय यह है कि इस उद्योगमें उपरोक्त हिसाबसे चालू खर्च पर ३०·४% लाभ मिल जाता है।

सम्पादकीय टिप्पणी

लेखकने इस गृहोद्योगको कलोद्योगके पैमानेपर बनाया है। इसे हम करोद्योग अर्थात् केवल हाथके कामके पैमाने पर बना सकते हैं।

मोटा कागज भी हमें मिलोंका न लेना चाहिये। वह भी स्वदेशी हो तो अच्छा है। न हो सके तो मोटा बादामी कागज लेकर काम करे। रीलकी जरूरत तो मशीनमें है। जो तख्ते मिलाते हैं, उनकी लम्बाईसे ठीक आकार काटा जा सकता है। कांच और एमरी कूटनेके लिये खरल और पीसनेको चक्कियाँ और ठीक निश्चित बारीकीके चूर्णके छाननेको भिन्न-भिन्न बारीकीकी जालीवाली छलनियाँ, चाहियें। कागजकी पीठपर बनानेवालेका नाम और बारीकीका नम्बर मुहरद्वारा छप सकता है। गोंद या सरेश चुपड़नेके लिये कूँचिया, गोंद या सरेशका निश्चित गाढ़ेपनका घोल भी चाहिये। इस सामानके जुटानेमें दस बीस रुपये बहुत हैं। सरेश कागज तो हाथसे बनानेकी ही चीज है। इस कामके लिये थोड़ा सा अभ्यास काफी होगा।

इस रोजगारको हमारे बेकार भाई जरा सावधानीसे करें तो मुश्किल नहीं है।

श्रीराम अग्रवालजीके लम्बे चौड़े कामको भी रुपयेवाले स्वतंत्ररूपसे कर सकते हैं।

रा० गौ०

सफल रोजगारके लिये क्या क्या चाहिये

[रामदास गौड़]

१. पूँजीकी जरूरत

बड़े-बड़े कारखानोंमें लाखों करोड़ों रुपये लगते हैं। उनमें किसी एक मनुष्यका सामर्थ्य नहीं कि अकेला रोजगार करे। इसी लिये पूँजी हिस्सोंमें बँटकर हजारों हिस्सेदारोंसे वसूल की जाती है। खास-खास लोग बहुतसे हिस्से खरीद कर अनेक तरहसे लाभ उठाते हैं। प्रस्तुत लेखमें हम इन भारी कारखानोंपर विचार न करेंगे।

घरेलू धंधे अनेक तरहके हो सकते हैं। छापाखाना एक घरेलू धंधा है जो एक ही आदमी अपनी पूँजीसे खोल सकता है और अपने घरेलू कारखानेमें बैठा प्रबन्ध कर सकता है। रेशमकी कताई-बुनाई, खद्दरकी कताई-बुनाई, रेशमके कीड़ोंका पालन, खिलौने बनाना, निबोंका कारखाना, बटनका कारखाना, जूतोंका कारखाना, गंजी बनयान मोजोंकी बुनाई, ताले, चाकू, कैंची आदि बनानेका कारखाना, खँडसाल कागजका कारखाना, होल्डरों पेंसिलोंका कारखाना, स्याहियोंका कारखाना, वारनिश पालिशका कारखाना, दफ्तरीखाना, इत्यादि ऐसे कारखाने हैं जिन्हें दस-बीस हजारकी पूँजीसे लेकर सौ-दो-सौ रुपये तककी पूँजीमें चलाना संभव है। जिसके पास जितनी पूँजी हो और जैसे सुभीते हों उसके अनुसार वह कारखाना शुरू कर सकता है।

रोजगारी अगर होशियार हो तो उसका सौ-दो-सौ रुपये बिना भी काम चल सकता है। हाथका काम जो अच्छा जानता हो और पूंजी न रखता हो वह दूसरे रोजगारियोंके यहाँ मजूरी कर सकता है। धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा करके अपने पास औजार कर ले सकता है। और जब मौका मिले अपने घर काम बनाकर कुछ अधिक कमा सकता है। रोजगारके बढ़ानेका यही ढंग है। औजार और कच्चा माल जुटाकर वह कुछ न कुछ कमाने लग जाय तभी समझना चाहिये कि रोजगार चालू हो गया।

२. हिसाब-किताब

बड़े पैमानेपर रोजगार चलानेके लिये उसे कारखाना चलानेके खर्च और नफे टोटेका हिसाब करना पड़ेगा। इतना हिसाब वह न कर सका तो रोजगार भी नहीं चला सकता। उसे हिसाब-किताब जानना और ठीक-ठीक रखना चाहिये। दूकान चाहे कितनी ही छोटी हो, दूकानदार को यह मालूम होना चाहिये कि उसके रोजगारमें कितनी पूँजी लगी है, कितनी मेहनत लगी है, और उससे कितना नफा हुआ है और कितनी मजूरी मिली है। दूकानदार किसी औरका नौकर नहीं है तब भी अपनी दूकानपर मेहनत करता है, समय देता है, काम करता है। उसकी मजूरी तो लगनी चाहिये। कारीगर अपने घर ही काम करता है, फिर भी तैयार मालसे उसकी मजूरी निकलनी ही चाहिये। इसलिये वह जो कुछ कमाता है उसमें उसकी लगायी पूँजीका सूद, उसपर मुनाफा, औजारका छीजन, औजारोंका किराया, कारखानेका किराया, उसकी खुदकी और सहायकोंकी मजूरी, कच्चे मालका दाम, तैयार मालके दाम सबका अलग-अलग हिसाब होना चाहिये। पक्के या तैयार मालके दाम उसे इन सब बातों को समझकर लगाना चाहिये। अगर यह हिसाब करके उसका माल बाजार भावसे महँगा पड़ा तो कैसे बिकेगा? इसलिये, उसे अपनी मजूरी मुनाफे आदिका हिसाब इस तरह रखना चाहिये कि बाजारमें उसका माल फिर भी कुछ न कुछ सस्ता ही पड़े। संभव है कि उसे पूँजीपर मुनाफा कुछ न पड़े, सूद कुछ भी न मिल सके, परन्तु औजारका छीजन घरका किराया और काम करनेवालेकी मजूरी तो कुछ-न-कुछ, और कच्चे मालका पूरा दाम, जो जरूर मिलना ही चाहिये। यह न मिला तो रोजगार बिलकुल चल नहीं सकता।

३. मुस्तैदी, फुरती और लगातार श्रम

हिसाब-किताब रखनेके साथ काममें मुस्तैदी भी चाहिये। नितका काम शुरू करनेमें संकल्प-विकल्प करके ही देर कर देनेसे मजूरीका हक बहुत घट जाता है, और रोजगारमें घाटा पड़नेकी तो यह नींव ही है। हर कामको करनेके लिये और हर क्षणको किसी-न-किसी काममें लगानेके लिये हर आदमीको तैयार रहना चाहिये। मजूरी मिले या न मिले परन्तु मनुष्यको बिना काम किये खानेका अधिकार ही कहाँ है। इसीलिये काममें तो मुस्तैदीके साथ लग जाना ही मनुष्यका कर्त्तव्य है। शिथिलता और आलस्य पापका मूल है।

काममें लगनेपर ध्यानमें रहना चाहिये कि काम जल्दीसे जल्दी पूरा हो और किसी तरह बिगड़े भी नहीं। काम करते हुए भी मुस्तैदी रहे। कामका हर हिस्सा जो शुरू किया जाय उसमें आरम्भकी ही मुस्तैदी रहे। काम ऐसी फुरतीसे किया जाय कि थोड़े ही समयमें अधिकसे अधिक काम हो। कातनेवाला अगर सुडौल बारीक सूत तेजीसे काते, कि दूनी लम्बाई उतने ही समयमें कात सके, तो कताईकी उसकी दूनी मजदूरी रखी हुई है। **चाहे कारखाना करोड़ोंकी पूँजीका हो और चाहे घरेलू धंधा हो, मजूरकी मुस्तैदी और कामकी फुरती ही सफलता और नफेकी कुंजी है।** यह मुस्तैदी और फुरती लगातार श्रमके रूपमें बराबर जारी रहे तो इनसे भरपूर लाभ उठाया जा सकता है। लगातार श्रम भी जरूरी है। कहानीमें खरहेकी फुरती और तेजीके साथ बीचमें सो रहनेका दोष न होता तो कछुएके लगातार श्रमसे खरहा हार न जाता। परन्तु खरहेकी मुस्तैदी और फुरतीके साथ ही कछुएका लगातार श्रम हो, तो खरहा तो दमके दममें अपनी मंजिलको पहुँच जाय। इसलिये लगातार श्रम भी अत्यन्त आवश्यक सामग्री है। बिना इन तीनोंके कोई धंधा सफल नहीं हो सकता। पूँजी इनके बिना पंगु है और अन्तमें नष्ट हो जाती है।

४. सन्तोष, सचाई और ईमान्दारी

देशके मरे रोजगारको जिलाना है, विकट और प्रतिकूल परिस्थितिमें काम करना है, विदेशी होड़के मुकाबलेमें खड़ा होना है, और किसी न किसी तरह अपनी रोटियोंका बन्दोबस्त करना है। इंग्लिस्तानमें बेकार मजूरोंको "डोल" मिलता है, अर्थात् बेकारीकी दशामें इतना भत्ता मिलता है कि किसी तरह पेटकी ज्वाला बुझा सकें। वहाँकी सिर पीछे जो आमदनी होती है, उससे सिर पीछे वहाँका "डोल" बहुत ज्यादा है। यहाँके करोड़ों बेकारोंको न तो कोई आमदनी है और न "डोल" ही मिलता है। फिर भी,

कुछ न सही वह आठ दस घंटा चरखा ही कातें तो उन्हें पेटकी उग्र ज्वालाको थोड़ा शान्त करनेको कुछ न कुछ तो मिल ही जायगा। चरखा कातनेका रोजगार बिना झगड़ेका है। परन्तु इसके सिवा और सभी रोजगार झगड़ेके हैं और उनमें मजूरीकी सम्भावना भी अधिक ही है। फिर भी विदेशी होड़का मुकाबला करनेके लिये हमें चाहिये कि हमें अगर चरखेके बराबर भी मजूरी मिल जाय तो उसी बेकारीको स्वदेशी "डोल" समझ कर भगवान्‌की इतनी ही दयापर सन्तोष करना चाहिये। सन्तोषसे ही रोजगार चल जायगा, आगे बढ़नेकी राह खुल जायगी, मालपर हाथ मँज जानेसे चोखाई बढ़ जायगी और उसे लोग ज्यादा पसन्द करने लगेंगे, उसकी खपत बढ़ेगी तो धीरे धीरे ज्यादा आमदनी होने लगेगी। फिर भी थोड़ी आमदनी पर ही सन्तोष करनेसे रोजगारमें मजबूती आ सकती है।

जैसे सन्तोष जरूरी गुण है वैसे ही सचाई और ईमानदारीकी भी जरूरत है। रोजगार चलानेमें इस बातपर बराबर ध्यान रहे कि लालच या लोभसे प्रेरित होकर हम उचित नफेसे ज्यादा तो नहीं लेते, हम मालमें कोई काररवाई ऐसी तो नहीं करते कि खरीदारको धोखा हो जाय और असलीयत न समझकर वह माल खरीद रहा हो। खरीदार जो कीमत या मजूरी हमको देता है उससे घटिया माल या कम काम देना ईमानदारी नहीं है। एक बार भी ऐसा करनेसे हमारी बान बिगड़ जायगी और हम अपनेको ही धोखा देने लगेंगे। हमारे मनमें यह झूठ भावना उपजेगी कि हमने चालाकी करके ज्यादा कमाया। लोभ हमें वही चालाकी करनेको फिर प्रेरित करेगा। इस तरह एक बारके झूठ और बेईमानीसे हम बारम्बार झूठे और बेईमान होते जायँगे। साथ ही हमारी साख भी टूट जायगी। झूठ और बेईमानी छिपी नहीं रहती। काम लेनेवाले जब हमारी असलीयत जान जायँगे तो हमारा रोजगार चौपट हो जायगा। कोई हमारे पास न फटकेगा। हमें जो राष्ट्रीय "डोल" सरीखी जीविका मिलती थी, वह समाप्त हो जायगी। रोजगार दम तोड़ देगा। यही हमारे स्वदेशीकी हार हो जायगी। इसीलिये स्वदेशीकी जड़ जमानेके लिये सन्तोष और सचाई दोनोंकी बड़ी भारी आवश्यकता है।

५. अहिंसाकी जरूरत, सहो मगर चोट न करो

देखा गया है कि मजूर कामकी खोजमें है और काम करानेवाला मजूरकी खोजमें है, मजूरी भी ठहर चुकी है मगर मजूरके टर्रानेसे काम करानेवालेने उसे नामंजूर कर दिया। दूकानमें सौदा ठहर गया, गाहक लेनेको तैयार है, पर दूकानदारके टर्रानेसे गाहक चला गया। जैसे, हम हाथ और हथियारसे चोट करते हैं वैसे ही बातकी चोट भी होती है। रोजगारीको सहना चाहिये, खुद चोट न करना चाहिये। टर्रानेसे मजूर अपनी रोजी और रोजगारी अपना गाहक खो देता है। रोजगारीकी जबान मीठी होनी चाहिये। काम करानेवालेको भी जबानपर काबू चाहिये सही, परन्तु संसारसे हिंसा मिट जाय, यह तो संभव नहीं है, परन्तु कड़वी बातका जवाब कड़वीसे ही देना झगड़ा बढ़ाना है और चोटका जवाब चोटसे देना है। सहकर मीठे शब्दोंसे जवाब देनेसे झगड़ा पैदा नहीं होता। बात बन जाती है। गम खानेसे रोजगार बनता है, बिगड़ता नहीं। अच्छे दूकानदार गाहकका शिष्टाचार और आदर करनेमें नहीं घबराते। वह अच्छे इसी लिये कहे जाते हैं।

६. धीरज

रोजगारीकी सफलताकी सबसे बड़ी कुंजी धीरज है। काम धंधेमें सौ-सौ तरहकी कठिनाइयाँ आ पड़ती हैं। आदमी घबरा जाता है। घबरानेका बुरा असर रोजगार पर पड़ता है। इसलिये चाहे जैसी पड़े, घबराना नहीं चाहिये। धीरज रखना चाहिये। कठिनसे कठिन समय बीत जाता है। धीरजसे पहाड़ी सी कठिनाई चूर्ण-चूर्ण होकर राई सी रह जाती है और धीरज धरनेवाला उसे सहजमें पार कर लेता है। मनुष्यका जीवन अगर बिल्कुल सीधा और सरल ही रहे तो जीवनका सुख फीका सा रहता है। जीवनमें कठिनाइयोंसे लड़ना और उनको जीत लेनेमें ही सच्चा सुख है, यही मनुष्यता है। कठिनाइयोंको जीतनेमें धीरज ही अपना भारी पहलवान साथी है। यही उनसे मल्लयुद्ध करता है। जो धीरज धरता है उसकी सहायता भगवान् करते हैं। प्रतिकूल भाग्य भी उसके लिये अनुकूल हो जाता है।

७. पैसेका सदुपयोग

हमारे देशमें पैसेवाले बहुत कम हैं। भुक्खड़ोंकी तो गिनती नहीं है। भुक्खड़ तो मजूरीके सिवा कुछ नहीं कर सकते। परन्तु जिन थोड़ोंके पास पैसा है वे लाभके साथ खर्चना नहीं जानते। वे मूर्खता बस कम्पनीके हिस्से खरीदते हैं और अपना धन गँवाते हैं, या बिदेशी मालकी दलालीमें बरबाद करते हैं। बिदेसी मालकी विक्रीसे जो पैसे मिलते हैं वह तो दलाली ही है। इस तरहके कारबारमें पैसे लगानेके बदले उन कामोंमें पैसे लगाना चाहिये जिनमें बे-पूँजीवाले मजूर कुछ कमा सकें और स्वदेशी रोजगार बढ़े। चरखा कतवाकर सूत इकट्ठा करना और खद्दरकी बुनाई इसी तरहका रोजगार है। खँड़सालके काममें भी यही लाभ है। खिलौने बनाने, मुँदरी, बटन आदि तैयार करनेमें भी इसी तरह पैसोंका सदुपयोग संभव है।

८. श्रम और गुणका सदुपयोग

गुणीके पास पैसे नहीं होते। पैसेवाले चाहें तो उन्हें मजूरी देकर अपने कच्चे मालसे कोई चीज तैयार करवाकर अपना रोजगार खड़ा करें और गुणीको आश्रय दें। गुणीके पास उसके गुण और श्रमकी पूंजी है, पैसोंकी पूँजीकी सहायता हो जाय तो लाभके साथ उनको बरतनेका उसे मौका मिले। परिश्रम, गुण या कला और धन तीनोंकी बराबर सहकारितासे स्वदेशी एक बार फिर जी उठेगा। पैसेवालोंको चाहिये कि वे गुणी और श्रमीकी खोज करें जिसमें उनके पैसे जल्दसे-जल्द काममें आवें। थोड़ी पूंजीसे भी कलावान या गुणी एवं परिश्रमीकी सहकारितासे रोजगार खड़ा हो सकता है और यदि ठिकानेसे चलाया जाय तो थोड़ी पूँजीसे भी बड़ा लाभ असंभव नहीं है। गुणीको ऐसे छोटे रोजगारमें ही अपनी कला पूरी तरह दिखानेका मौका होता है। कलावान्को बेकार तो रहना ही नहीं चाहिये, घर बैठे कमाई न कर सके तो किसीकी मजूरी करके वह जरूर गुजर कर सकता है।

९. पढ़े लिखोंको मौका

पढ़-लिखकर बाबू बनना बहुत महँगा सौदा है। बाबूको पहिरनेको चाहिये फर्स्ट-क्लास, चाहे खानेको कुछ भी न मिले। काम भी करना हो साहबीका, हुकूमतका, चाहे पैसे बहुत कम ही क्यों न मिलें। नौकरशाहीकी हुकूमत देखकर बाबू भी नौकरीपर ही निछावर है। पढ़ने लिखनेमें जितना खर्च हुआ है, उसके सूदके बराबर भी नौकरीकी तनखाह नहीं मिलती। इसीलिये बाबूगीरीको मैं महँगा सौदा कहता हूँ। पढ़े लिखोंको बाबूगीरीसे बचना चाहिये। उसे गुणी मजूर या कलावान कारीगर बनना चाहिये। वह पढ़ सकता है। किसी अच्छे रोजगारकी पोथी लेकर पढ़े और हठसे ही किसी न किसी कामका अभ्यास करनेका जतन करे। पढ़ा-लिखा होना सुभीतेकी बात है। वह रोजगारोंका संगठन करे, हिसाब-किताब ठीक-ठीक रखकर सफलतामें सहायक हो, और कुछ काम खुद करके गुणी मजूरीकी हैसियतसे पैसे कमाये। पढ़ा-लिखा होनेसे उसे मौका है कि वह रोजगारको अच्छेसे अच्छा बनानेके लिये लिखा-पढ़ी करके पूछ-ताछ करके बहुतसे भेदकी बातें मालूम कर ले और लाभ उठावे। यह सुभीता बे-पढ़े मजूरको तो है ही नहीं। पढ़ा-लिखा मजूर इस तरह अधिक लाभदायक कारीगर बन सकता है।

अब तो एम्० ए०, एल्-एल्० बी० होनेकी जरूरत ही नहीं है। मामूली हिसाब-किताब लिखना-पढ़ना सीखकर कोई ऐसा रोजगार दो चार बरसमें सीख ले कि उसे तुरन्त आरंभ कर सके। इससे एम्० ए०तक पहुँचनेमें जो पूंजी लगती है, वह बच जायगी और दस बरसोंके जीवनका अनमोल समय बच जाता है, और वह परीशानी बच जाती है, जो बाबूगीरीके रोगमें फँसकर दर-दर मारे फिरनेमें उसे आगे होती है। और जो कुछ बचत और सुभीते होते हैं, वह वे खुद जरा सोचें तो सही।

जो पढ़े लिखे अपना जीवन और धन बरबाद कर ही चुके हैं, उनके लिये भी इसीमें भलाई है कि वे कोई छोटा-मोटा रोजगार कर बैठें। हम दो एक सज्जनोंको जानते हैं, जो सफल रोजगार कर रहे हैं। एकने मुरगियाँ पाली हैं और अपना रोजगार बढ़ा रखा है। लकड़ीकी टालें तो कईने रखी हैं। बकरियाँ आदि पालकर दूधका रोजगार भी एक सज्जन कर रहे हैं। इन रोजगारोंमें नौकरीके मुकाबले उन्हें ज्यादा नफा है, यह कहनेकी तो जरूरत ही नहीं है।

टीनकी स्लेटें बनाना

[श्रीरामजी अग्रवालके संग्रहसे पं० ओंकारनाथ शर्म्माद्वारा अनूदित]

टीनकी स्लेटें बनानेके लिये नीचे लिखे अनुसार मसाला बनाना चाहिये।

बारीक धुली हुई बजरी..................४१ भाग

दीयेका काजल..........................५ भाग

उबाला हुआ अलसीका तेल......५ भाग

इस सामानको भली भाँति मिलाकर आग पर अच्छी तरह गरम कर लीजिये, जब उसकी लुगदी बन जावे तब उसे ठंडा करके उसमें इतना तारपीनका तेल मिला देना चाहिये जिससे वह पोतनेके योग्य पतला हो जाय। जिस लोहेकी चद्दर पर उसे लगाना हो, उस चद्दरको, पहिले ईंट वगैराःसे खूब माँज लेना चाहिये जिससे उस पर किसी प्रकारका मैला अथवा जंग न रह जाय। माँजनेके बाद चद्दरको भली भाँति सुखा कर उस पर उपरोक्त मसाला पोत देना चाहिये। एक बेरका पोता हुआ सूख जाने पर फिर दुबारा पोतना चाहिये और वह भी सूख जाने पर फिर तीसरी बेर पोतना चाहिये। जब यह भी सूख जाय तब उसे एस सा और चिकना करनेके लिये पानी और समुद्रीफेनसे हलके-हलके हाथसे माँजना चाहिये। समुद्री-फेनकी माँजनेवाली सतह यदि एकसी चौरस और चिकनी न हो तो पहिले उसे किसी चौरस शिलापर रगड़कर ठीक कर लेना चाहिये।

[टीनकी स्लेटोंके तैयार हो जानेपर चौकठा लगाना कोई मुश्किल बात नहीं है।

स्लेटकी पेंसिल बनानेकी विधि हम विज्ञानके पिछले अंकमें दे चुके हैं। पाठक देख लें। यदि कोई चाहे, तो हम उसे किसी अगले अंकमें दोहरा देंगे। रा० गौ०]

लोहेपर पानी चढ़ाना

[श्री पं० ओंकारनाथ शर्म्मा, ए० एम्० आइ० एल्० ई०, जे० एस० एम० ई०, जयपुर]

लोहा कई प्रकारका होता है, और अलग-अलग कामोंमें भिन्न भिन्न प्रकारका लोहा इस्तेमाल होता है। खनिज लोहे (Iron ore) में कई प्रकारकी बेमेल वस्तुएँ मिली रहती हैं—जैसे मिट्टी, गंधक, फासफोरस, मंगनीज़, कार्बन, सिलिकन आदि। खानमेंसे निकालकर यह लोहा कारखानोंमें लाया जाता है और भट्टीमें गलाकर इसकी मिट्टी आदि साफ़ की जाती है, लेकिन साफ करनेपर भी लोहेके साथ गंधक, फासफोरस, मंगनीज़, कार्बन आदि थोड़े-बहुत रह ही जाते हैं। इस लोहेको देगसार (Cast iron) या कान्तिसार कहते हैं। साफ करनेके बाद इसे भट्टीमें दुबारा पिघलाकर साँचोंकी सहायतासे इसकी टेढ़ी-मेढ़ी शक्लकी वस्तुएँ ढाल ली जाती हैं। इस तरहका लोहा खिंचाव और झटका वगैरा अधिक नहीं सह सकता। गिरने से, चोट लगनेसे, यह पत्थरकी भाँति टूट जाता है और गरम करने पर हथौड़ेकी सहायतासे मुड़ नहीं सकता, और न फैल सकता है। लेकिन अधिक गरम करनेसे गलकर पानीके समान पतला हो जाता है, जो साँचोंमें फिर ढाला जा सकता है।

इसी लोहेको एक विशेष प्रकारकी भट्टीमें पिघलाकर, इसकी गंधक आदि बेमेल वस्तुएँ बिलकुल जला दी जाती हैं। उनके जलनेपर लोहा अपनी असली हालतमें आ जाता है और मोमके छत्तेकी भाँति गाढ़ा गाढ़ा लचीलासा पदार्थ बन जाता है। इस हालतमें भी इसके रन्ध्रोंमें सिलिकन भरा रहता है, जो पीट-पीटकर और मुलायम लोहेको बेलनोंसे बेल कर निकाल दिया जाता है। सिलिकन निकालनेके

बाद इस लोहेकी चद्दरें और सरिये बना लिये जाते हैं। इसप्रकारका लोहा गलाकर साँचोंमें नहीं ढाला जा सकता, लेकिन गरम करनेपर यह बड़ा ही मुलायम और लचीला हो जाता है और इच्छानुसार पीटकर अनेक शक्लोंमें बनाया जा सकता है। इसकी चद्दरें, जालियाँ, तार आदि कई उपयोगी वस्तुएँ बनती हैं। यह लोहा खिंचावमें बड़ा मजबूत होता है—झटकोंसे टूट नहीं सकता, चोट लगनेपर मुड़ जाता है। इस लोहेको कच्चा लोहा (Wrought iron) या केवल 'लोहा' कहते हैं।

इसके अलावा एक प्रकारका लोहा और होता है, जिसे स्पात (Steel) कहते हैं। इसमें उपर्युक्त देगसार और कच्चे लोहेके गुण सम्मिलित रहते हैं। यह स्पात विशेष प्रकारकी भट्ठियोंमें विशेष क्रियासे तैयार होता है—स्पात बनानेके लिए कच्चे लोहेमें ऊपरसे कुछ और कारबन मिला दिया जाता है। कम और अधिक अनुपातमें कारबन मिलानेसे कई प्रकारका स्पात बन जाता है। स्पातको गलाकर देगसारकी भाँति साँचोंमें भी ढाल सकते हैं और कच्चे लोहेकी भाँति ठोक-पीटकर झुका भी सकते हैं, इसकी चद्दरें और तार भी बना सकते हैं। यह कच्चे लोहे और देगसारकी बनिस्बत मजबूत होता है। इसकी उपयोगिताके कारण कच्चे लोहेका प्रचार तो आज-कल करीब-करीब उठ ही गया है। स्पातमें एक विशेष गुण और है। वह यह कि स्पातकी किसी वस्तुको भट्टीमें लाल गरम करके यदि पानी या तेल आदिमें बुझा दिया जाय तो वह बड़ी सख्त हो जाती है। इस क्रियाको 'लोहे पर पानी चढ़ाना' या 'आबदारी लगाना' कहते हैं। इसी क्रिया द्वारा तलवार, चाकू, छुरी, कैंची आदि काटनेके औजारोंपर आबदारी लगायी जाती है, जिससे एक बेर उनपर धार लगानेके बाद बहुत समयतक उनकी धार मोटी नहीं होती। यंत्रोंके कई पुर्जोंपर भी आबदारी लगायी जाती है, जिससे यंत्रमें चलते समय वे रगड़ खानेसे घिसें नहीं।

अब हम सब प्रकारके लोहोंपर आबदारी लगानेकी कई क्रियायें बताते हैं, जिनको कारखानोंमें कारीगर लोग साधारणतया रोज़ काममें लाते हैं और जिनका उपयोग इस लेख के पाठक भी अपनी प्रयोगशालामें कर सकते हैं। आशा है, यह लेख वैज्ञानिक पाठकों और कारीगरोंके लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

[यह लेख विशेषतः ठप्पे बनानेवालोंके लाभके लिये लिखा गया। ठप्पे और औजार दोनोंमें आबदारी चाहिये। प्रायः सभी कामोंमें ठप्पों या औजारोंपर दोनोंकी जरूरत पड़ती है, और अच्छे औजारोंसे काम जल्दी और अच्छा होता है। हर कारीगरको अपने औजारकी संभाल-सुधार तो जानना ही चाहिये। पानी चढ़ाना इसीलिये सभी कारीगरोंके कामकी बात है। इस अंकमें स्थानाभावसे हम इसके आनुषंगिक कामपर लेख नहीं दे रहे हैं। विज्ञानकी अगली संख्यामें कई लेख होंगे जिनमें इस पानी चढ़ानेवाले विषयकी जानकारीकी जरूरत होगी। रा० गौ०]

लोहोंपर आबदारी लगानेकी क्रियाएँ

लोहे और स्पातको सख्त करनेकी तैयारी— लोहे या स्पातके जिस पुर्जे या औजारको सख्त करना हो पहले उसकी शक्ल ठीक कर लेनी चाहिए। उसपर कुछ खुदाई करना, नम्बर लगाना आदि जो भी आवश्यक हो, पहले ही हो जाना उचित है, क्योंकि सख्त करनेके बाद इस प्रकारका कोई काम नहीं हो सकता, उस समय उस पर रेती या छेनी नहीं चल सकती। लोहे या स्पातको जिस जगहसे सख्त करना हो वहाँ पहले खूब अच्छी पालिश करके उस जगहको चमकीला और चिकना भी कर लेना चाहिए। खुरदरी जगहपर आबदारी लगाते समय रंग वग़ैरा, जैसे आगे समझाये जावेंगे, नहीं दिखाई दे सकते।

साधारण स्पातको सख्त करना—स्पातको सख्त करनेके लिए पहले उसे एक निश्चित तापक्रम (temperature) तक गरम करते हैं, अर्थात् स्पातको तपाकर हिंगुल-जैसा लाल रंगका (cherry red) बना

लेते हैं, और फिर उसे एकदम सीधा पानी या तेलमें बुझा देते हैं। बुझानेपर स्पात बहुत सख्त हो जाता है। यहाँ तक कि वह काँचको भी काट सकता है। स्पातको सख्त करनेमें उसके तापक्रमपर विशेष ध्यान रखना पड़ता है। यदि स्पातका तापक्रम नियत तापक्रमसे कम हुआ तो बुझानेपर जैसी चाहिए वैसी सख्ती स्पातमें नहीं आयगी, और यदि तापक्रम अधिक हो गया तो स्पात जल जायगा और फिर रद्दी हो जायगा। तापक्रम नियत मात्रासे थोड़ा भी कम या अधिक हो जानेसे स्पात बेकार हो जाता है।

स्पातको गरम करते समय एक ऐसा तापक्रम आ जाता है कि उससे आगे कुछ समय तक गरम करनेपर वह स्पात गरमी तो लेता रहता है लेकिन उसका तापक्रम प्रत्यक्ष बढ़ता हुआ नहीं प्रतीत होता; इस **तापक्रमको निःतेजक विन्दु** (decalescence point) कहते हैं। इस सीमाके पार होनेपर तापक्रम फिर बढ़ता हुआ दिखाई देता है। यदि स्पातको खूब लाल गरम करके फिर ठण्डा होने दिया जाय तो ठण्डा होते समय एक तापक्रम फिर ऐसा आता है कि उस समय स्पातका तापक्रम थोड़ा-सा अपने-आप बढ़ जाता है, चाहे उसके आस-पासकी और वस्तुएँ ठण्डी ही क्यों न हों; इस **तापक्रमको उत्तेजक विन्दु** (recalescence point) कहते हैं। इन दोनों (critical points) निपुण विन्दुओंके बीचके समयमें स्पातकी अणु सम्बन्धी (molecular structure) बनावट में परिवर्त्तन होता है। और इन निपुण विन्दुओंका स्पातके सख्त होनेसे बहुत निकट और सीधा सम्बन्ध है। इस कारण यदि गरम करते समय स्पातके तापक्रमको निःतेजक विन्दुतक पहुँचनेके पहले ही रोककर स्पातको बुझा दिया जाय, तो वह सख्त नहीं होगा। और यदि खूब गरम करके स्पातको ठंडा होने दिया जाय, यहाँतक कि उसका तापक्रम उत्तेजक विन्दुसे भी नीचे उतर जाय, तो उस समय बुझानेपर स्पात सख्त नहीं होगा। अतएव उचित तापक्रम तक स्पातको गरम करके एकदम सीधा पानी या तेलादिमें जल्दीसे बुझा देना चाहिए, जिससे उसका तापक्रम उत्तेजक विन्दुसे नीचे न उतरने पाये। ऐसा करनेसे स्पातके भीतरका कार्बन स्पातमें अणु-सम्बन्धी परिवर्त्तन करके उसे सख्त कर देता है।

आजकल भिन्न-भिन्न प्रकारके स्पात तैयार किये जाते हैं, जिनमें लोहा और कार्बन भिन्न-भिन्न अनुपातमें मिले रहते हैं, जिससे उनके उत्तेजक और निःतेजक विन्दु भी भिन्न-भिन्न होते हैं। इसलिए भिन्न-भिन्न प्रकारके स्पातोंको एकसा ही सख्त करनेके लिए भिन्न-भिन्न तापक्रमतक गरम करके बुझाना होता है। और ये तापक्रम गरम स्पात के लाल रङ्गको देखकर नहीं पहचाने जा सकते, इनके लिए तो एक विशेष प्रकारके तापमापकों (pyrometers) की आवश्यकता पड़ती है। लेकिन छोटे और साधारण कारखानोंमें ऐसे बढ़िया-बढ़िया तापमापक और विशेष प्रकारकी भट्टियाँ काममें नहीं लायी जा सकतीं, इसलिए यहाँ हम इनका वर्णन नहीं करेंगे। बहुत ऊँचे तापक्रमोंका अनुमान कई लोग गरम स्पातपर भिन्न-भिन्न धातुओंके मिश्रण रखकर कर लेते हैं। मिश्रणोंके द्रवणांक (melting point) पहलेसे ही निश्चित कर लिये जाते हैं, अर्थात् मिश्रण इस प्रकारसे तैयार किये जाते हैं कि वे नियत तापक्रमपर गल जायँ। मिश्रण जब गरम स्पातपर रखनेसे गल जाता है तब समझ लेते हैं कि स्पात नियत तापक्रम तक पहुँच गया। इस प्रकारके कुछ मिश्रणोंका वर्णन आगे होगा।

स्पातको सख्त करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वह सब जगहसे एकसा गरम हो। नहीं तो कहीं कम और कहीं ज्यादा गरम होनेसे, भिन्न-भिन्न तापक्रमोंके अनुसार, उसके भिन्न-भिन्न भागोंमें कम और ज्यादा प्रसार होगा, जिससे कि उसके अणुओंमें भीतरी खिंचाव (internal strain) पैदा हो जायगा और बुझानेपर स्पात चटख जायगा।

संक्षेपमें, स्पातको सफलतापूर्वक सख्त करनेकी कुञ्जी यही है कि उसे सख्त होनेवाले न्यूनतम और बढ़ते हुए (rising heat) तापक्रमपर बुझाना चाहिए, न कि अधिक गरम करके ठंडा-होते-हुए-पर। उदाहरणके तौरपर मान लीजिए कि किसी स्पातका निःतेजक विन्दु ७४०°श है, इसलिए उसे सख्त करनेके लिए हमें चाहिए कि ७४०°श से आगे जब उसका तापक्रम बढ़ रहा हो उस समय बुझा दें, न कि भट्टीसे निकाल कर जब उसका तापक्रम ७४०°श अथवा ७६०°शसे घटकर ७००°श आदि रह गया हो।

उस समय वैसे तो उसका उत्तेजक विन्दु ६५०°श तक भी हो सकता है, और स्पातमें सख्ती आ सकती है, पर इसका फल संतोषजनक नहीं होता। इस सबका सारांश यह है कि स्पातका गिरती हुई गरमीपर बुझाना ठीक नहीं है।

रंग देखकर स्पातमें आबदारी लगाना-(पानी चढ़ाना)—पूर्व वर्णित विधिद्वारा स्पातको गरम करके बुझानेसे तो वह बहुत सख्त हो जाता है, लेकिन इस हालतमें स्पात बड़ा कड़कीला हो जाता है और ज़रासी चोट मारनेसे वह काँचकी भाँति टूट भी जाता है। अतएव यह विधि लोहा, पीतल, ताँबा और लकड़ी आदि काटनेके तथा अन्य औजारोंको सख्त करनेके काममें नहीं लायी जा सकती। इस कामके औजार तो इतने सख्त होने चाहिएँ कि वे लोहे, पीतल, लकड़ी आदिको काट दें और उनकी धार भी न बिगड़े, यहाँतक कि हथौड़े आदिकी चोट लगनेपर टूटें भी नहीं। इसलिए इस तरहके औजारोंके अग्रभागको पहले तो पूर्व-वर्णित विधिके अनुसार खूब सख्त कर लिया जाता है, फिर दुबारा उसे गरम करके और बुझाकर आवश्यकतानुसार उसकी सख्तीको कम कर लिया जाता है। एकबार सख्त किये हुए स्पातको जितना अधिक गरम करके बुझाया जाता है उतनी ही उसकी सख्ती कम हो जाती है। इस गरमीका अनुमान निम्नलिखित प्रकारसे अकसर किया जाता है। सख्त किये हुए स्पातको यदि किसी पत्थरकी सिल्ली या सरेस काग़ज़से रगड़कर साफ़ कर दे तो वह स्पात चाँदीकी भाँति चमकने लग जायगा। और इस चमकते हुए स्पातको फिर यदि धीरे-धीरे गरम किया जाय तो उसकी चमकीली सतहपर हवाके कारण ओषिद (Oxide) जमनेसे ज्यों-ज्यों तापक्रम बढ़ता जायगा तरह-तरहके रंग बदलते जायँगे, किसी नियत रंगको देखकर उसी समय उस तापक्रमपर स्पातको एकदम पानीमें बुझा दिया जाय तो स्पात आवश्यकतानुसार उतना ही सख्त हो जायगा। पुराने कारीगर इन्हीं रंगोंको देखकर स्पातके तापक्रमका अनुमान लगा लेते थे।

रंग देखकर आबदारी लगानेकी विधिकी कमजोरियाँ—यह विधि अब भी काममें आती है और इससे अच्छी सफलता भी मिलती है, लेकिन आजकल यंत्र-विद्याकी अधिक उन्नति हो जानेके कारण इस विधिसे काम चलाना कठिन हो गया है। आजकल अनेक प्रकारके स्पात बनने लगे, जिनमें कार्बन आदिका भिन्न-भिन्न प्रकार और अनुपातसे मिश्रण होता है; इसलिए एक ही तापक्रमपर सब प्रकारके स्पातोंपर एकसा रंग नहीं दिखाई दे सकता। आजकल बड़े कारखानोंमें थोड़ेसे समयमें अधिक मात्रामें काम करनेकी कोशिश की जाती है, लेकिन इस विधिसे काम बहुत धीरे-धीरे होता है। इस कारण बड़े-बड़े कारखानोंमें बिजली और गैसकी भट्टियों द्वारा स्पातको नियत तापक्रम तक ठीक-ठीक गरम करके एकदम बुझा दिया जाता है, जिससे रंग आदि देखनेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। कई लोग रंगोंको पहचाननेमें भी गलती कर दिया करते हैं, अतएव वे लोग इस विधिका उपयोग नहीं कर सकते; प्रकाशके कम-ज्यादा होनेपर भी रंग कुछका-कुछ दिखाई देने लगता है। इन कारणोंसे स्पातके औजारोंमें जैसी आबदारी लगनी चाहिए उसमें इस विधिसे काम करनेवाले साधारण कारीगरोंको सफलता नहीं मिलती। तब भी यह विधि बहुत सुगम और सस्ती है, प्रत्येक कारीगर इसका अभ्यास करके शीघ्र लाभ उठा सकता है। यहाँपर एक सारणी दी गयी है जिसमें पाठकोंको स्पातके भिन्न-भिन्न तापक्रम और उस समय सायामें, अर्थात सूर्यकी धूपसे दूर, स्पातपर दिखाई देनेवाले रंग मिलेंगे। इसीके साथमें यह भी बता दिया गया है कि किन-किन औजारोंपर ये रंग दिखाई देते ही उन्हें पानीमें बुझा देना चाहिए।

उदाहरणके तौरपर मान लीजिए कि लोहा काटनेके लिये हमें एक छेनीपर आबदारी लगानी है। पहले तो हमें चाहिए कि हम इसे भट्टीमें रखकर सबको हिङ्गुल-जैसी लाल तपा लें, फिर ऊपरके सिरेको संसी (सण्डासी) से पकड़कर धारके सब सलामी भागको पानीमें बुझा दें। ऐसा करनेसे यह भाग बहुत सख्त हो जायगा। लेकिन ऊपरका शेष भाग अब भी बहुत गरम रहेगा, इससे ऊपरके भागका ताप परिचालन (Conductor) द्वारा धारके सलामी भागमें आवेगा। यदि इस समय इस भागको पत्थरकी सिल्लीद्वारा रगड़कर साफ कर दें तो यह चाँदी-जैसा चमकने लगेगा; पर ज्योंही इसका तापक्रम बढ़ने लगेगा, इसका रंग पीला पड़ने लगेगा और फिर बादामी

रंग होता हुआ नीला हो जायगा। लेकिन हमें रंगीन चित्र देखनेसे पता चलता है कि ५५०° तापक्रम होनेपर इसे बुझाना आवश्यक है, इसलिए गहरा बैंगनी रंग होते ही हमें इस सबको पानीमें बुझा देना चाहिए। और औजारोंके भी इसी तरह आबदारी लगायी जा सकती है।

इस तरहसे आबदारी लगाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि गरम औजारके किसी विशेष भागको बुझाते हुए एक ही जगह न रक्खा जाय बल्कि उसे सदा हिलाते रहना चाहिए, नहीं तो कहीं कम और कहीं ज्यादा सिकुड़नेसे स्पात पानीकी सतहके पाससे चटख जायगा। चटखनेका कारण, जैसा पहले कहा गया है, स्पातको एकसा गरम न करना भी हो सकता है।

कई प्रकारके औजारों और यंत्रोंके पुर्जोंके बहुत ठीक-ठीक (सही) आबदारी लगानी पड़ती है, इसलिए उन्हें नियत तापक्रम तक सही-सही गरम कहना पड़ता है। इस प्रकारके कामके लिए बिजली और गैसकी भट्टियाँ चाहिएँ; लेकिन इन भट्टियोंमें बहुत खर्चा करना पड़ता है, इसलिए छोटे-छोटे कारखानोंमें मामूली लोहारकी भट्टीपर ही तेल, सीसा या नमकमें औजारोंको गरम किया जाता है और फिर बुझा दिया जाता है। इस तरकीबसे औजार एकसा गरम होता है और उसका तापक्रम भी नियत तापक्रमसे बहुत अधिक नहीं घटने बढ़ने पाता। तथा काम भी कुछ जल्दी और अच्छा होता है।

तेलमें गरम करना—औजारको गरम करनेके लिए ऐसा तेल लेना चाहिए कि जिसमें बहुत अधिक तापक्रमपर आग लगे, अर्थात् जिसका प्रज्वलन विन्दु (Flashpoint) बहुत अधिक हो, जिससे तेलद्वारा औजार गरम हो सके। कोई भी अच्छा-सा यंत्रोंमें लगानेको खनिज तेल (Mineral oil) काम दे सकता है। तेल ऐसा होना चाहिए कि गरम करनेपर उसमेंसे धुआँ न निकले, नहीं तो काम करनेमें अधिक बाधा पड़ेगी। तेलमें खर्चेकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिए, सस्ते तेलसे काम बिगड़नेकी भी सम्भावना रहती है। जब अधिक संख्यामें छोटे-छोटे औजारों और पुर्जोंके एकसी आबदारी लगानी होती है तब उन्हें तेलमें एकसाथ गरम किया जाता है। तेलको किसी लोहेके बरतनमें भरकर भट्टीपर गरम होनेके लिए रख दिया जाता है। औजारों और पुर्जोंको किसी जाली या तारसे बाँध कर गरम तेलके बीचमें इस प्रकार लटका दिया जाता है कि वे बरतनके पेंदे और दीवारोंको न छूने पावें और तेलके साथ नियत तापक्रमतक गरम हो जावें। तेलका तापक्रम किसी तापमापक-द्वारा देखा जाता है। नियत तापक्रमपर पहुँचनेपर सब पुर्ज़ों और औज़ारोंको पानी या तेल आदिमें जैसी आवश्यकता हो, बुझा दिया जाता है।

यदि औज़ारपर आबदारीकी रंगत नीली, बैंगनी, लाल, पीली आदि करनी हो तो उस औजारको पूर्व-वर्णित रीतिसे लाल तपाकर और पानी आदिमें बुझाकर खूब सख्त कर लेना चाहिए। फिर उसे खूब साफ करके, यहाँतक कि वह खूब चमकने लग जाय और उसपर जरासी भी तेलकी चिकनाई न रहे, गरम तेलके बरतनमें पहलेकी भाँति जाली वगैरासे तेलके बीचमें लटका देना चाहिए। जब तेलकी गरमी नियत तापक्रमसे कुछ अधिक पहुँच जाय तब औजारको उसमेंसे निकालकर और अस्बस्टोस (Asbestos) आदिसे उसकी चिकनाई पोंछकर बुझा देना चाहिए। चिकनाई पोंछनेपर हवाके लगनेसे उसपर इच्छानुसार रंगत आजायगी।

तेलमें औजारको गरम करते समय थोड़ा-थोड़ा ताजा तेल भी डालते रहना चाहिए, नहीं तो अधिक गरम होनेसे कुछ समय बाद तेल जल उठनेका डर रहता है।

कई नाजुक औज़ार जो पानीमें बुझानेसे चटख़ जाते हैं, तेलमें बुझाये जाते हैं; तेलमें बुझानेसे उनमें पानीमें बुझानेकी बनिस्बत कम सख्ती आती है। नाजुक कमानियोंको अकसर आगमें हलका लाल गरम करके तेलमें बुझा दिया जाता है और फिर किसी गरम लोहे पर रखकर उनकी सख्ती मुलायमकी जाती है; नियत रंग आने पर उन्हें पानीमें बुझा देते हैं।

सीसेमें गरम करना—जब कि छोटे-छोटे पुर्जों और औज़ारोंको थोड़े समयमें सख्त करना होता है, तब एक घड़ियामें सीसेको गलाकर उसमें औजारोंको गरम किया जाता है। इस तरहसे औजार और पुर्जे बहुत जल्दी और एकसे गरम होते हैं। अकसर बाइसिकल और कपड़ा सीनेकी मशीन आदि छोटे-छोटे पुर्जे और रेती, बरमे आदि औज़ार इसी तरह गरम करके सख़्त किये जाते हैं।

आबदारी लगानेकी सारणी

ईस्पातकी दशा	रंग	फारन-हैट तापक्रम	शतांश तापक्रम	उपयोग
बहुत सख्त	हिंगुल जैसा लाल	१६५२	९००	केवल आरम्भमें बुझानेके लिये।
मुलायम	काला आसमानी	५९९	३१५	बहुत मुलायम किसी भी उपयोगका नहीं।
	मोरकी गरदन जैसा आसमानी	५७२	३००	लकड़ीके आरे, कमानियाँ।
ढीला	गहरा बैंगनी	५६३	२९५	पेचकस, धातु काटनेके गोल आरे।
	गहरा बैंगनी	५५४	२९०	ठंडी हालतमें कच्चा लोहा काटनेकी छेनी।
	हलका बैंगनी	५४५	२८५	ढलाईके औजार, सुइयाँ, मुलायम लकड़ीके लिये रंदेकी तेग।
	हलका बैंगनी	५३६	२८०	हाथी दाँत व हड्डी चीरनेकी आरी, ठंडे देगसार व स्पात काटनेकी छेनी और स्पातपर ठंडी हालतमें काम करनेकी चायन।
	फीका बैंगनी	५२७	२७५	गरम काम करनेकी चायन, गिलमट वरमा, बसूला, कुल्हाड़ा।
	फीका बैंगनी	५१८	२७०	डाक्टरोंके औजार, आगर वरमे, पीतलके वरमे, और दबावसे काटनेके औजार।
	संदली	५०९	२६५	मोचियोंके औजार, लकड़ीमें बड़ा छेद करनेके औजार, ऐंठनदार बरमे।
	गहरा बादामी	५००	२६०	लोहेके सीधे गज़, पत्थर काटनेके औजार।
कड़ा	हलका बादामी	४९१	२५५	सख्त लकड़ीके लिये रंदेकी तेग, पंच, सुम्मे, ठस्से और ठप्पे।
	सूखे तिनके जैसा गहरा	४८२	२५०	क़लम वगैरा बनानेके चाक़ू, चूड़ी, काटनेके टप, चूड़ी साफ करनेकी कंघी।
	सूखे तिनके जैसा	४७३	२४५	पत्थरोंमें छेद करनेके बरमे, चमड़ेपर काम करनेके ठप्पे वगैरा और कैंची मशीनकी धार।
	सूखे तिनके जैसा हलका	४६४	२४०	टडीपर खुदाई करनेके औजार, रीमर, मिलिंग मशीनके कटर।
	सूखे तिनके जैसा हलका	४५५	२३५	लकड़ीपर खुदाई करनेके औजार, काग़ज काटनेके औजार, लोहेमें छेद करनेके देशी बरमे, लोहा रंदा करनेकी मशीनकी रुखानी।
	गहरा पीला	४४६	२३०	हाथी दाँतपर खुदाई करनेके औजार, हथौड़ोंके मत्थे, चूड़ी काटनेकी डाइयाँ, स्पात रंदा करनेकी मशीनकी रुखानी।
	हलका पीला	४३७	२२५	स्पातपर खुदाई करनेके औजार, छोटी चीजें खरादनेके औजार।
	बहुत हलका पीला	४२८	२२०	लोटा और पीतलपर काम करनेके खुरचने अर्थात् स्क्रेपर।

सीसेको गलाते समय घड़ियाके नीचे और चारों तरफ़ एकसी आग रखनी चाहिए, जिससे गले हुए सीसेका तापक्रम सब जगह एकसा रहे। इसके लिए जो सीसा काममें लाया जाय उसमें गन्धकका मेल बिलकुल नहीं होना चाहिए, क्योंकि सीसेमें मिली हुई गन्धकसे औज़ारोंका स्पात कमज़ोर हो जाता है।

घड़ियामें गले हुए सीसेकी सतह पर, हवाके कारण, सीसेका ओषिद जम जाता है, जिससे काम करनेमें बड़ी बाधा-सी पड़ती है; इसलिए उस पर पहलेसे कुछ कोयलेका चूरा डाल देना अच्छा होगा। इससे सीसेका ओषिद सतहपर नहीं जमने पायगा।

रंगीन चित्रको देखनेसे पता चलता है कि हमें आबदारी लगानेके लिए ३००°शके तापक्रमसे लेकर ३२०°शके तापक्रम तककी गरमीकी ही अकसर आवश्यकता पड़ती है और शुद्ध सीसा ३२७°शपर गलता है, अतएव अकसर इसके द्रवणांकको कम करनेके लिए सीसेमें रांगा या ऐन्टीमनी धातुओंका मेल कर देते हैं। ऐन्टीमनी रांगेसे सस्ता पड़ता है। सीसेके साथ रांगेपर ऐन्टीमनीके मिश्रणोंके द्रवणांक नीचे तालिकामें दिये जाते हैं—

सीसेमें रांगेका प्रतिशत मेल	१०%	२०%	३०%	४०%	५०%	६०%
मिश्रणका द्रवणांक	३००° श	२७५° श	१५५° श	२३०° श	२१०° श	१८५° श

सीसेमें ऐन्टीमनीका प्रतिशत मेल	५%	१०%	१३%
मिश्रणका द्रवणांक	२९०° श	२७०° श	२५०° श

नोट—यदि सीसेका तापक्रम ३००° श है तो उसपर सागवानकी लकड़ीका टुकड़ा डालनेसे उसका काला कोयला हो जायगा, और यदि तापक्रम ४३०° श है तो उस लकड़ीका चमकता हुआ अंगारा हो जायगा।

इस विधिसे लाभ—

१—सीसे या उसके मिश्रणको द्रवणांकपर या उससे दो-चार तापांक आगे रखना बहुत सरल है।

२—इस मिश्रण-विधिसे तापमापक बिना ही सीसेके तापक्रमका अच्छा ख़ासा अंदाज़ा लग सकता है और औज़ारोंपर इच्छानुसार आबदारी सही और जल्दी लग सकती है।

३—एक बार काममें लाया हुआ सीसा फिर भी कई बार काममें लाया जा सकता है।

४—भिन्न-भिन्न प्रकारके औज़ारोंको गरम करनेके लिए भिन्न-भिन्न प्रकारका मिश्रण नियत और तैयार करके रख दिया जा सकता है, जो आवश्यकता पड़नेपर एकदम काममें लाया जा सकता है।

नमकमें गरम करना—आबदारी लगानेके लिए स्पातको गले हुए नमकमें भी गरम किया जाता है। नमकके द्वारा स्पात बहुत ऊँचे तापक्रम तक और एकसा गरम हो सकता है। नमकको घड़ियामें डालकर भट्टीमें गरम किया जाता है। ८०१° श तापक्रम होनेपर मामूली नमक गल जाता है, उसमें औज़ार बड़ी सुगमतासे ऊपरवर्णित सीसेकी भांति गरम किये जा सकते हैं। गले हुए नमकका १४९° श तापक्रम होनेपर नमकका द्रव उबलने लग जाता है। ८०१°शका ताप बहुत अधिक होता है इसलिए रंगीन चित्रके अनुसार औज़ारोंके आबदारी लगानेके काममें नहीं आ सकता। इस तापक्रमपर स्पातको गरम करके बुझानेसे तो वह बहुत सख्त हो जाता है। इसलिए नमकका द्रवणांक कम करनेके लिए उसमें शोरा और कास्टिक सोडा मिला दिया जाता है। शोरेका द्रवणांक ३४१° श और कास्टिक सोडेका द्रवणांक ३१८° श होता है। उचित रीतिसे मिश्रण तैयार करनेसे किसी भी आवश्यक तापक्रमपर गलनेके लिए मिश्रण तैयार किया जा

सकता है, लेकिन वह भी ३००° श के ऊपर ही होगा। तापक्रमके लिये नमक बड़ा अ-चालक (Non-conductor) होता है, इसलिए गले हुए नमककी सतहपर हवाके कारण पपड़ी जम जाती है। नमकमें डालनेके पहले स्पातका औज़ार ठंडा होता है, इसलिए गले हुए नमकमें डुबोनेपर उसके आसपासका नमक भी ठंडा होकर जम जाता है, और जबतक औज़ारका तापक्रम उस नमकके द्रवणांकसे अधिक नहीं होता तबतक नमककी पपड़ी उसपर जमी ही रहती है। औज़ारको बाहर निकालने पर उसके लगा हुआ नमक फिर चारों ओर जम जाता है, लेकिन उससे कोई हानि नहीं होती। नमक अचालक पदार्थ है, इसलिए वह स्पातके तापक्रमको गिरने नहीं देता। ठंडी हवामें रहनेपर भी औज़ार ठंडा नहीं होने पाता। पानीमें बुझाते ही नमक पानीमें घुल जाता है और औज़ार बिलकुल साफ़ निकल आता है, उसपर किसी प्रकारका जंग या धब्बा नहीं लगने पाता।

स्पातको नमकमें गरम करनेसे लाभ—मान लीजिए कि हमें एक स्पातको ७५०° शपर गरम करके बुझाना है। इसके लिए हमें चाहिए कि शोरा वगैरा मिला कर एक ऐसा मिश्रण तैयार कर लें कि वह ७६०° शपर गल जाय। उस मिश्रणको गलानेके लिए और गला हुआ रखनेके लिए कम-से-कम ७६०° श तक तो गरमी पहुँचानी ही पड़ेगी, इसलिए ७५०° श तक हमारा स्पात भी गरम हो ही जायगा। और यदि इस तापक्रमसे १०° या २०° अधिक भी गरमी पहुँच जाय तब भी कोई हानि नहीं। स्पातको नमकमेंसे बाहर निकालनेपर ठंडी हवा लगनेसे उसके चारों ओर नमक जम जायगा। इससे हमें सूचना मिल जायगी कि अब स्पातका तापक्रम ठीक ७६०° श हो गया है और अब इसे पानी वगैरामें बुझा देना चाहिए। इस विधिसे एक अनाड़ी कारीगर भी, जिसे इसका कुछ भी अनुभव नहीं, ठीक-ठीक बिना किसी तापमापककी सहायताके इच्छानुसार स्पातको सख्त कर सकता है।

खोल सख्त करना (Case-hardening)—पाठकोंको यह तो मालूम ही है कि लोहेमें गन्धक, फास-फोरस, मेंगनीज़ और कार्बन आदि वस्तुएँ मिली रहती हैं। गंधक आदि वस्तुओंका भेद तो अनावश्यक और हानिकारक है, लेकिन कार्बन एक आवश्यक द्रव्य है, इसके कम-ज्यादा होने और इसकी दशा (State) में परिवर्तन होनेसे लोहेके गुणोंमें भी बहुत परिवर्तन हो जाता है।

देगसार लोहेकी खोल सख्त करना—देगसार लोहेमें कार्बन २% से ५% तक होता है सफ़ेद देगसारमें कार्बन रासायनिक रीतिसे मिला रहता है, इस कारण यह देगसार लोहा बहुत सख्त होता है। काले देगसार लोहेमें कार्बन शुद्ध रूपमें अर्थात् ग्रेफ़ाइटके रूपमें मिश्रित (mechanically mixed) रहता है, इस कारण यह लोहा बहुत मुलायम रहता है।

अधिकतर यंत्रोंके पुर्ज़े काले देगसारके बनाये जाते हैं; लेकिन कई दफ़ा केवल उनकी ऊपरी सतहको ही सख्त करनेकी आवश्यकता पड़ती है, जिससे यंत्रमें काम करते समय उनका ऊपरी भाग तो घिसे नहीं और भीतरी हिस्सा मुलायम बना रहे। इस प्रकारके पुर्जे एक विशेष क्रिया द्वारा ढाले जाते हैं, जिससे उनकी खोल सख्त हो जाती है इस क्रियाको लोग ठंडी ढलाई (chilled casting) कहते हैं।

ठंडी ढलाईके लिए जो साँचे (mould) बनाये जाते हैं उनमें मिट्टीकी सतहके भीतर लोहेकी चद्दरें और नल लगा दिये जाते हैं, जिनमें ठंडा पानी भर दिया जाता है या बहता रहता है लेकिन साँचेका मिट्टी बिलकुल सूखी और ठंडी होती है और गला हुआ लोहा साँचेमें जल्दी-जल्दी ढाला जाता है। इस तरहसे जो-जो लोहेके भाग साँचेकी ठंडी दीवारोंसे छुसेगें उनकी गरमी जल्दीसे पानीमें चली जायगी और लोहेका कार्बन रासायनिक क्रिया द्वारा लोहेमें मिल जायगा। इस क्रियासे ढाले हुए पुर्ज़ोंमें उनकी सफेद देगसारकी ऊपरकी सतहतो सख्त हो जायगी और काले देग-सारका भीतरी भाग मुलायम ही रहेगा।

देगसारको लोहेके पुर्ज़ोंकी ऊपरी सतह ढालनेके बाद भी निम्नलिखित क्रियाद्वारा सख्त कर सकते हैं। जिन पुर्ज़ोंको सख्त करना हो उन्हें भट्टीमें, एक-सा लाल गरम कर लिया जाता है; फिर प्रसिएट आफ़ पोटास (prussiate of potash), शोरा और नौसादरके समान भागका चूर्ण बनाकर उसपर सब जगह खूब मल दिया जाता है और फिर उसी हालतमें (जब कि वह लाल गरम है) ठंडे पानी, प्रसिएट आफ़ पोटास और शोरेके घोलमें बुझा दिया जाता

है। यह घोल २ औंस प्रसिएट आफ़ पोटाश, ४ औंस नौसादर और एक गैलन ठंडे पानीका तैयार किया जाता है।

कच्चे लोहेकी खोल सख्त करना—कच्चे लोहेमें कार्बन बिलकुल नहीं होता और यदि होता भी है तो १५% तक। यदि इससे अधिक कार्बन हुआ तो वह स्पातकी गिनती में आ-जाता है। स्पातमें १५%से लेकर २०% तक कार्बन होता है। स्पात भी कार्बनके अनुसार तीन प्रकारका होता है। यथा (१) **मुलायम स्पात**, इसमें १५%से लेकर, २०% तक कार्बन होता है। इस स्पातकी चद्दरें और तार वगैरा बनते हैं। (२) **साधारण स्पात**, इसमें २%से लेकर ९% प्रतिशततक कार्बन होता है। इस स्पातसे यंत्रोंके लिए अनेक प्रकारके पुर्जे बनाये जाते हैं। (३) **कठोर अथवा औजारोंका स्पात**, इसमें ९%से २०%तक कार्बन होता है। इस स्पातके औजार आदि बनाये जाते हैं, और यंत्रोंके कई प्रकारके पुर्जे भी बनते हैं। इस प्रकारके स्पातकी पूर्व-वर्णित रीतियोंद्वारा सख्त भी कर सकते हैं और इसमें आबदारी भी लगा सकते हैं। लेकिन पहले और दूसरे प्रकारके स्पातमें कार्बन थोड़ा होता है, और वह कच्चे लोहेके समान ही होता है, इसलिए वे इच्छानुसार सख्त नहीं किये जा सकते—हाँ, इस प्रकारके स्पातके पुर्जेके ऊपरकी सतहको अर्थात् खोलको सख्त कर सकते हैं और भीतरका भाग मुलायम रह सकता है। इस कामके लिए जिन क्रियाओंका वर्णन अभी होगा उनमें किसी न किसी प्रकारसे स्पातकी ऊपरी सतहमेंसे भीतर कुछ गहराईतक अधिक कार्बन पहुँचाया जाता है, जिसके कारण स्पातके पुर्जेका ऊपरी भाग स्पातका हो जाय और भीतरी भाग मुलायम रहे और फिर उन पुर्जोंको मामूली तरह गरम करके बुझानेसे ऊपरका स्पात सख्त हो जाय। इस विधिको खोल सख्त करना (case-hardening) कहते हैं।

प्रथम विधि—इस विधिद्वारा कार्बन स्पातमें अधिक गहराईतक पहुँचता है। एक कच्चे लोहेके सन्दूकमें पुर्जे बंद कर दिये जाते हैं और उनके साथमें उनके सब ओर इस प्रकारके द्रव्य भर दिये जाते हैं कि जो पुर्जोंको सन्दूकमें गरम करनेपर कारबन दे सकें, जैसे कि हड्डियोंका चूरा, जला हुआ चमड़ा और कोयला आदि। पुर्जोंको इन द्रव्योंके साथ बड़ी सावधानीसे बंद किया जाता है कि जिससे पुर्जे एक दूसरेसे आपसमें या संदूककी दीवारोंसे न छूने पावें और सब ओरसे वे हड्डीके चूरे आदिसे घिरे रहें। संदूकको बन्द करके उसके चारों तरफ मिट्टीसे पोत देते हैं और फिर सबको भट्टीमें रखकर गरम करते हैं। धीरे-धीरे उसका तापक्रम निःतेजक बिन्दुके कुछ आगेतक बढ़ाया जाता है, अर्थात् लगभग ७७५° शतक, और कुछ घंटे तक भट्टीका यही तापक्रम रखते हैं। यदि अधिक गहराई तक कार्बन पहुँचाना है, तो सन्दूकको अधिक देर तक गरम रखते हैं; और यदि थोड़ी गहराईतक ही कारबन पहुँचाना है, तो थोड़ी देरतक। अकसर मामूली कामके लिए ३ घंटेसे ६ घंटेतक गरम रक्खा जाता है। फिर बक्सको वहीं भट्टीमें अपने-आप धीरे-धीरे ठंडा होने दिया जाता है। ठण्डा होनेपर पुर्जोंको निकालकर और साफ करके, दुबारा लाल गरम करके, पानी या तेलमें बुझा दिया जाता है। इस विधिसे उन पुर्जोंकी खोल सख्त हो जाती है।

कई कारखानोंमें गरम सन्दूकको ही खोलकर पुर्जोंको एकदम पानी या तेलमें बुझा देते हैं। लेकिन इस तरह पुर्जे सब तरफसे एकसे सख्त नहीं होते, कहीं-कहीं मुलायम जगह रह जाती है और पुर्जा बेकाम हो जाता है।

इस कामके लिए एक अच्छी भट्टीकी आवश्यकता है, जो कि सन्दूकको सब तरफसे एकसा गरम कर सके और बहुत समयतक एकसा तापक्रम बनाये रक्खे। भट्टीमें जलनेवाली चीजें सन्दूकके पास नहीं रहनी चाहिए बल्कि उनकी लौसे सन्दूक गरम करना चाहिए।

पोटेशियम साइनाइड द्वारा कच्चे लोहेकी खोल सख्त करना—पूर्व-वर्णित विधिद्वारा लोहेकी खोल $\frac{1}{?}$ अथवा $\frac{3}{16}$ इंचकी गहराईतक सख्त हो सकती है, लेकिन वह कुछ समय अवश्य लेती है। जब अधिक गहराईतक खोलको सख्त करनेकी आवश्यकता नहीं है और काम जल्दी करना है, तब **पोटेशियम साइनाइड** द्वारा खोल को सख्त कर लेते हैं।

प्रथम विधि—पोटेशियम साइनाइड*को किसी

* **आवश्यक सूचना**—पोटेशियम साइनाइड और उससे उत्पन्न धुँआँ बड़ा विषैला होता है, इसका प्रयोग करते समय अत्यन्त सावधान रहना चाहिए।

बरतनमें गला लिया जाता है। जब गले हुए साइनाइडका तापक्रम १८००°फ के लगभग हो जाता है तब जिन पुर्ज़ोंकी खोल गरम करनी है उन्हें किसी जाली या तारद्वारा बरतन के बीचमें लटका देते हैं, जिससे कि वे बरतनके किनारोंको न छूने पावें। १५से ३० मिनटतक पुरज़ोंको इस प्रकार गरम करनेके पश्चात् जब कि पुर्ज़ोंका और गले हुए पोटेशियम साइनाइडका एकसा तापक्रम हो जाता है, तब उन्हें उसमेंसे निकालकर पानी आदिमें बुझा देते हैं। बुझानेके पश्चात् उनकी खोल सख्त हो जाती है।

दूसरी विधि—कई कारीगर पुरज़ोंको लाल गरम करके उनकी सतहपर, अथवा जहाँसे पुर्ज़ेको सख्त करना हो वहाँ पोटेशियम साइनाइडका* चूर्ण मल देते हैं। जब चूर्ण मलते-मलते साइनाइडका धुँआँ उठना बंद हो जाता है तब उसे एकदम पानीमें बुझा देते हैं। इस प्रकारसे भी पुर्ज़ेकी खोल सख्त हो जाती है। कई लोग पोटेशियम साइनाइडके चूर्णकी जगह निम्नलिखित चूर्ण काममें लाते हैं। इसके द्वारा कुछ और भी उत्तमतासे कार्य होता है—

प्रसिएट आफ़ पोटास (पीला)—७ भाग
(yellow prussiate of potash)
बाइक्रोमेट आफ़ पोटास—१ भाग
(bichromate of potash)
साधारण नमक—८ भाग

आबदारी लगानेके विषयकी अन्य बातें

आबदारी लगानेके लिए औज़ारको खुली भट्टीमें गरम करते समय स्पातके ऊपरकी सतहका कार्बन हवाके आक्सिजन (oxygen) से मिलने लगता है, जिससे कार्बनके निकल जानेसे औज़ारके ऊपरकी सतहका स्पात कुछ कमज़ोर पड़ जाता है; इसलिए इससे इच्छाके विपरीत परिणाम होता है। इस कारण कई नाजुक और कई क़ीमती औज़ारोंकी ऊपरी सतहको बचानेके लिए गरम करनेसे पहले एक प्रकार की लेईसे ढक देते हैं। वह लेई इस प्रकारसे तैयारकी जा सकती है—५ भाग आटा, ४ भाग नमक और १ भाग जला हुआ चमड़ा, इन्हें मिलाकर पानीके साथ इनकी लेई बनाकर औज़ारके ऊपर पोत देना चाहिए और फिर गरम करना चाहिए।

कई औज़ारों और पुर्ज़ेके विशेष भागको ही सख्त करने की आवश्यकता पड़ती है और बाकीके भाग मुलायम रहते हैं। इस तरहके औज़ारोंके उन भागोंको जिन्हें मुलायम रखना है किसी तापावरोधी (fireproof) रंगसे ढक देना चाहिए और बाकीके भागोंको खुला रहने देना चाहिये, फिर भट्टीमें इस प्रकार गरम करके बुझानेसे रंगे हुए भाग मुलायम ही रह जायँगे।

कई बेर छोटे छोटे औज़ारोंके सिरोंको गरम करके इन पर या तो आबदारी लगानी पड़ती है या उनकी आबदारी उतारनी पड़ती है; और जब तापावरोधी कोई रंग नहीं मिलता है तो कई कारीगर उन औजारोंके शेष भागको, जिन्हें गरम नहीं करना है, किसी कच्चे आलू वगैरामें घुसेड़ देते हैं और फिर भट्टीमें† आलू समेत होशियारासे गरम करते हैं, जिससे आलू वगैराको अधिक नुकसान नहीं पहुँचने पावे और वह सिरा जिसे गरम करना है इच्छानुसार गरम भी हो जाय।

गरम किये हुए औजारोंको बुझाना

सब प्रकारके औज़ार और पुर्ज़ोंको, आबदारी लगाते समय, पहले तो साधारण भट्टीमें अथवा किसी अन्य प्रकारसे जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है नियत तापक्रमतक गरम करते हैं और फिर पानी या तेलादिमें बुझा देते हैं। गरम करनेके विषयमें तो काफ़ी लिखा जा चुका है, लेकिन बुझानेके लिए अभीतक केवल पानी और तेलादिका जिक्र ही हुआ है। बुझानेके लिए निम्नलिखित बातें जाननी आवश्यक हैं।

पानीमें बुझाना—बुझानेके लिए जल स्वच्छ और ठंडा होना चाहिए। यदि जल हलका (soft water) अथवा बरसाती हो तो और भी उत्तम है। यह नहीं समझना चाहिए कि जल जितना ठण्डा हो उतना ही अच्छा, बहुत ठंडे पानीमें औजारको बुझानेसे औजार बहुत ही जल्दी ठण्डा हो जाता है, जिससे उसके चटखने और टूटनेका डर रहता है।

मामूली कामके लिए पानीका तापक्रम २०° शसे

† मैंने भट्टीके स्थानपर एक स्पिरिटकी स्टोवसे काम लिया है और संतोषजनक परिणाम प्राप्त किया है।

२५° श तक रहना चाहिए। औजारोंको बहुत सख्त करनेसे उनमें भीतरी खिंचाव (internal strain) पैदा हो जाता है, जिनके कारण उसके टूटनेका डर रहता है; इसलिए कई कारीगर सख्त करनेके बाद उन्हें उबलते हुए पानीमें छोड़ देते हैं, जिससे उनका भीतरी खिंचाव बहुत कुछ दूर तो हो जाता है लेकिन उनकी सख्ती भी कुछ कम हो जाती है। इसमें अधिक हानि नहीं, सख्तीके कारण औजारके बिलकुल टूटनेसे उसका कुछ मुलायम होना अच्छा है। यह ध्यान रखना चाहिए कि पानीमें किसी प्रकारके तेज़ाबका मेल न हो; इस प्रकारके जलमें (जिसमें तेज़ाबका मेल है) औजार बुझानेसे चटख जाता है। यदि जलमें किसी प्रकारकी चिकनाईका मेल हुआ तो बुझानेपर सख्त नहीं होगा।

(क्रमशः)

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

लखनऊकी औद्योगिक प्रदर्शिनी

कांग्रेसके सम्बन्धमें अबके देशके लिये जो अत्यन्त उपयोगी काम हुआ है, वह है औद्योगिक प्रदर्शिनी। बेकारीकी आजकलकी जटिल समस्याको सुलझानेके लिये इस प्रदर्शिनीमें अच्छेसे अच्छे उपाय सुझाये गये हैं और अनेक काम तो नमूनेकी तौरपर प्रत्यक्ष दिखाये गये हैं। विज्ञानके पाठकोंके सुभीतेके लिये हम उनके उपलब्ध साहित्यको भी इन स्तंभोंमें प्रकाशित करनेकी कोशिश करेंगे।

"प्रभातका" बेकारी अंक

इसी सुअवसरपर बलियाके साप्ताहिक "प्रभात"का बेकारी अंक भी निकला है। हम सहयोगीको इस अत्यन्त उपयोगी और सफल विशेषांकके निकालनेपर हृदयसे बधाई देते हैं। हमारे उद्योग व्यवसायांकके समान ही उद्देश्य रखकर इसमें बड़े ही कामके लेख निकले हैं। हम विज्ञानके समस्त पाठकोंसे सिफारिश करते हैं कि इस विशेषांकको मँगवाकर अवश्य पढ़ें।

हमारा उद्योग व्यवसायांक

पाठकोंने देखा होगा कि उद्योग-व्यवसायांकके क्षेमांक भागमें सिवा दो एक लेखोंके स्वयं मुझे शेष सब लिखना पड़ा। क्षेम विषयक लेख हमारे पास बहुत कम आये। योगांकके लिये भी दो एक विशिष्ट लेखकोंके सिवा जितने और लेख आये सबके लिये हमारे दो मित्र हमारी कृतज्ञताके पात्र हैं। एक तो हैं श्रीमान् पंडित ओंकारनाथ शर्म्मा जिन्होंने बड़े परिश्रमसे यात्राव्ययका भार उठाकर उपयुक्त सामग्रीका संग्रह किया और सबको अपनी सुबोध और सरल हिन्दीकी शैलीमें छोटे निबन्धोंका रूप देकर भेजा। आपके अनेक लेख हमारे पास मौजूद हैं। आपको मैंने आग्रहपूर्वक इस अंकका विशेष सम्पादक नियुक्त करना चाहा था। परन्तु इधर आप अपनी नौकरीके काममें इतने व्यस्त रहे हैं कि आपके ऊपर इस भारी कामको लादना अन्याय होता। आपने जितने लेख दिये हैं, उनकी ही संख्या आपके घोर परिश्रमका और व्यापक योग्यताका परिचायक है।

दूसरे मित्र हैं, कलकत्तेके श्रीमान् बाबू भोलानाथजी वर्म्मन। आप स्वयं आदर्श उद्योगी और व्यवसायी हैं। आपने इस पक्षमें देशकी अनुपम सेवाकी है। आपने बड़ी कृपा करके अनेक सुलेखकोंको लेख देनेकी प्रेरणा की और स्वयं अनेक लेख भेजे। इन दो मित्रोंकी कृपासे लेखोंकी संख्या बहुत पर्याप्त हो गयी है। तो भी बहुतसे विषय अबतक अछूते हैं।

हम विज्ञानमें अपने सभी प्राप्त लेख एक ही अंकमें देना चाहते थे। परन्तु सालभरसे अधिक विज्ञापन देते हुए भी हमने देखा कि हमारी आवाज बहुत कम कानों तक पहुँची और अत्यन्त कम हृदयोंको प्रभावित कर सकी इस विशेषांककी माँग जी हम जितनी आशा करते थे उतनी न हुई। इसलिये एक ही अंकपर अति विशेष व्यय करना हमने अनुचित समझा। हमने यह अन्तिम निश्चय किया कि हम शेष लेखोंको अप्रैलके बाद मई जूनके अंकमें परिशिष्टकी भाँति प्रकाशित करेंगे। अगत्या हमें यह प्रबन्ध करना पड़ा, इसके लिये हम अपने लेखक मित्रों एवं पाठक समुदायसे सविनय क्षमा प्रार्थी हैं। रा० गौ०

पूर्ण संख्या २५३ — *Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.* Reg. No. A. 708
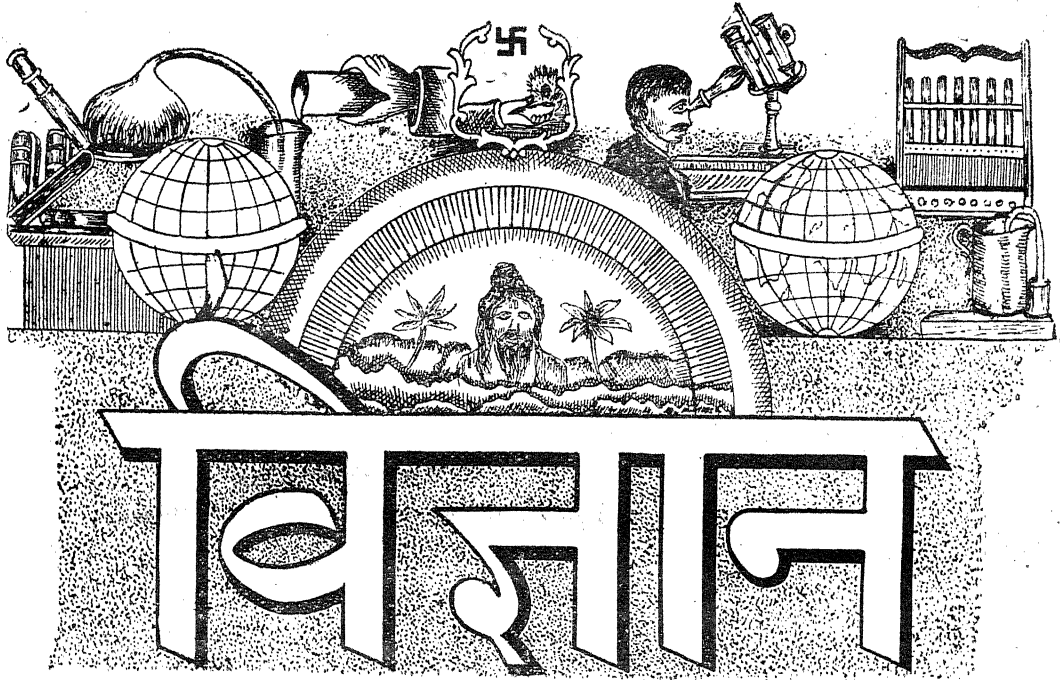
प्रयागकी विज्ञान-परिषदका मुखपत्र, जिसमें अमृतसरका आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

भाग ४३ वृषार्क, संवत् १९९३ संख्या २

Vol. 43 मई, १९३६ No. 2

प्रधान सम्पादक—रामदास गौड़, एम्० ए०

विशेष सम्पादक—

गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी, (गणित और भौतिक-विज्ञान) स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य (आयुर्वेद-विज्ञान)
रामशरणदास, डी० एस्-सी०, (जीवन-विज्ञान) श्रीचरण वर्मा, एम्० एस-सी०, (जंतु-विज्ञान)
श्रीरंजन, डी० एस्-सी०, (उद्भिज्ज-विज्ञान) सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी०, (रसायन-विज्ञान)

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [इस प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्‌के अधिकारी

पत्र-व्यवहार करनेवाले नोट कर लें

१—बदलेके सामयिक पत्र, समालोचनार्थ साहित्य, आयुर्वेदको छोड़ और सभी विषयोंके लेख एवं सम्पादन-सम्बन्धी पत्रादि **"सम्पादक, विज्ञान, बनारस शहर"** इस पतेसे भेजना चाहिए ।

२—विज्ञान एवं विज्ञान-परिषत्, विज्ञापन, वैज्ञानिक साहित्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी समस्त पत्र, मनीआर्डर आदि **"मंत्री, विज्ञान परिषत्, इलाहाबाद"** इस पतेसे भेजना चाहिए ।

३—आयुर्वेद-सम्बन्धी सभी लेख उस विषयके विशेष सम्पादक स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य, पञ्जाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसरके पतेसे भेजे जाने चाहिए ।

माधव रामचन्द्र कालेने श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेसमें मुद्रित किया
तथा मंत्री विज्ञानपरिषत् प्रयागके लिये वृन्दावनविहारीसिंहने विज्ञान-कार्य्यालय काशीसे प्रकाशित किया ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,

विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ०।३।५॥

भाग ४३ } प्रयाग, वृषार्क, संवत् १९९३ वि०। मई, सन् १९३६ ई० { संख्या २

मंगलाचरण

ॐ ईशावास्यमिद ँ सर्व्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विद्धनम् ॥
कुर्व्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छत ँ समा ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म्म लिप्यते नरे ॥

—यजु० ४० । १–२ ॥

लोहेपर पानी चढ़ाना

(पं० ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम्० आइ० एल्० ई०, जे० एस्० एम्० आई, जयपुर)

(शेषांश)

खारी पानीमें बुझाना—कई बेर ऐसा होता है कि पानीमें औजारको बुझाते समय उसके चारों ओर वाष्पकी एक तह आ जाती है, जिससे पानीका औजारपर कुछ कम असर होता है। इसलिए कई लोग पानीमें कुछ क्षार मिलाकर भी उसे बुझानेके काममें लाते हैं। पानीमें २ या ४ प्रतिशत नौसादर या नमक मिलानेसे कार्य उत्तमतासे होता है। बरसाती पानीमें नमक या नौसादर मिलाना और भी उत्तम है, रेतियोंको इसीमें अक्सर बुझाया जाता है

यदि स्पातको सब जगहसे एक समान और सही सख्त करना हो तो उसे बुझाते समय निम्नलिखित मिश्रण उपयोगमें लाना चाहिए, लेकिन यह मिश्रण बड़ा जहरीला होता है इसलिए उपयोग करते समय **बड़ी सावधानी रखनी चाहिए**—

१४० भाग जल, ३ भाग सेंधानमक, २ भाग शोरा, २ भाग नौसादर, और २ भाग पारदिक हरिद (corrosive sublimate)। यदि स्पातको अत्यन्त कठोर करना है तो उसे २० भाग जल और १ भाग (zinc chloride) यशद हरिदके मिश्रणमें बुझा देना चाहिए।

तेलमें बुझाना—तेलमें बुझानेसे स्पात बहुत अधिक सख्त नहीं होता, पानीके मुकाबलेमें तेलमें भीतरी खिंचाव कम पैदा होता है और पुर्जे या औजारका भीतरी भाग काफ़ी मुलायम रहता है; इसलिए इसमें बुझानेसे स्पात चटख़ता भी नहीं है। बुझानेके कामके लिए बिनौले या अलसीका तेल काममें लाया जाता है। व्हेल मछलीका तेल भी अच्छा होता है। यदि चाहें तो मिट्टीके तेलसे भी काम ले सकते हैं, लेकिन उसे ठंडा रखना चाहिए और गरम स्पातको एकदम भीतर डुबो देना चाहिए। धीरे-धीरे डुबोनेसे उसमें आग लगनेका डर रहता है।

बुझानेके विषयमें अन्य बातें—यह कई बार अनुभवसे जाना गया है कि बुझाते समय कोई कोई पानी औजारसे दूर रह जाता है; जैसे कि किसी लकड़ीको कोई गाढ़ी चिकनाई लगाकर पानीमें डुबा दिया जाय और उसके पानी न लगे; लेकिन औजारके साथमें इसका परिणाम यह होता कि औजार सख्त नहीं होने पाता। ऐसी हालतमें यदि पानीमें $\frac{1}{4}$ भाग उदहरिकाम्ल (muriatic acid) मिला दिया जाय तो उत्तम हो।

जब कि कोई नाजुक कीमती और छोटे औजारके आबदारी लगानी होती है तब कारीगरके मनमें यह विचार उठता है कि इसे पानीमें बुझाना चाहिए या तेलमें। यदि पानीमें बुझाया जाय तो सम्भव है वह औजार चटख जाय, और यदि तेलमें बुझाया जाय तो सम्भव है उसमें सख्ती ही न आय। मान लीजिए कि उसने औजारको तेलमें बुझाया और बुझानेसे वह सख्त नहीं हुआ, यदि वह उसे दुबारा गरम करके फिर बुझाता है तो जरूर ही स्पात चटख जायगा और औजार बेकार हो जायगा। ऐसी हालतमें यदि आधा पानी और आधा गिलीसरीन मिलाकर उसमें बुझा दिया जाय तो अवश्य ही परिणाम संतोषदायक होगा। इसका कारण यह है कि गिलीसरीन या तेल पानीमें मिलते नहीं हैं और हमेशा हलके होनेके कारण ऊपर ही तैरते रहते हैं। औजारको बुझाते समय वह पहले तेलमें होकर जाता है; वहाँ कुछ थोड़ा-सा बुझ जाता है, लेकिन बिलकुल सख्त नहीं होने पाता। फिर आगे जाकर पानीमें पहुँचता है। वहाँ जाकर अधिक सख्त हो जाता है। यदि पानीके ऊपर गिलीसरीनकी तह दो इंच गहरी हो तो भी बहुत संतोषदायक परिणाम मिलता है।

स्पात अथवा अन्य किसी प्रकारके लोहेको तपाकर ठंडा करना, मुलायम करना और आबदारी उतारना (annealing)—स्पातके किसी पुर्जे या औजारको जब गरम करके पीटते हैं, या गढ़ते हैं, उस समय उसमें भीतरी खिंचाव पैदा हो जाते हैं, और जब उसमें आबदारी

लगाते हैं उस समय वे भीतरी खिंचाव और भी अधिक हो जाते हैं; इसलिए उसके टूटनेकी अधिक संभावना हो जाती है। आबदारी लगानेके पहले इस भीतरी खिंचावको कम करनेकी आवश्यकता पड़ती है। इस भीतरी खिंचावको कम करनेकी विधिको मुलायम करना अथवा आबदारी उतारना (annealing) कहते हैं।

स्पातके पुर्जोंको मुलायम करने और उनकी आबदारी उतारनेके लिए उन्हें पहले भट्टीमें लाल गरम कर लेते हैं (हिंगुल-वर्ण) और फिर कोयलेकी खाक या भिगो कर सुखाये हुए (slaked lime) चूनेके ढेरमें दबा देते हैं; इसके बाद अपने आप ठंडा होने देते हैं। दबानेका आशय यह है कि उसके बाहरकी ठंडी हवा उसे न लगने पाए और स्पात धीरे-धीरे ठंडा हो, क्योंकि जल्दी ठंडा होनेसे स्पातमें सख्ती आ-जाती है। जब बहुतसे पुर्जों और औज़ारोंको मुलायम करना होता है तब उन्हें एक साथ किसी लोहेके बक्समें चूने, खाक और मिट्टीमें दबाकर और बक्स बंद करके भट्टीमें गरम करते हैं। जब बक्सका ताप-क्रम निःतेजक बिन्दुसे कुछ ऊपरतक पहुँच जाता है, जहाँ स्पातके कार्बनकी अणु-सम्बन्धी बनावटमें परिवर्त्तन होने लगता है, तब स्पातमें जो भीतरी खिंचाव पैदा हो गये हैं वे सब कम हो जाते हैं या बिलकुल ही गायब हो जाते हैं। फिर भट्टीकी आग बुझा दी जाती है और बक्सको अपने-आप ही ठंडा होने दिया जाता है। ठंडा होनेपर पुर्जे औह औजार बक्समेंसे निकाल लिये जाते हैं।

जब स्पातके पुर्जों या औजारोंको बहुत ही जल्दी मुलायम करना होता है तब उन्हें भट्टीमें लाल गरम करके हवामें धीरे-धीरे ठंडा करते हैं। अँधेरेमें देखनेपर जब स्पातमें थोड़ीसी लाली रह जाय और कालापन जब अधिक दिखाई देने लगे, तब उसे ६५° शके गरम पानीमें बुझा देते हैं। इस विधिसे स्पात कामके लायक काफी मुलायम हो जाता है।

लोहौषिदके साथ बक्समें बन्द करके यदि देगसार लोहेके किसी पुर्जेको लाल-गरम कर लिया जाय और फिर बक्समें ही उसे धीरे-धीरे ठंडा होने दिया जाय, तो वह भी बहुत ही मुलायम हो जाता है और उसके भीतरी खिंचाव भी मिट जाते हैं।

इस लेखको समाप्त करनेके पहले पाठकोंको यह बता देना आवश्यक है कि उपर्युक्त सब विधियाँ आजकल सब कारखानोंमें कारीगर लोग रोज काममें लाते हैं और कई वर्षोंके अनुभवसे ये सब सफलताप्रद सिद्ध हो चुकी हैं, लेकिन नये कारीगरोंके लिए यह नहीं कह सकते कि वे भी एक दो प्रयोगमें ही पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकेंगे। सफलता प्राप्त करनेके लिए अनुभव, धैर्य और लगातार परिश्रम करनेकी आवश्यकता है। लेखके विस्तार-भयसे बहुत-सी उपयोगी बातें छोड़ दी गयी हैं और कई बातें संक्षेपमें बतायी गयी हैं। यदि यह लेख पाठकोंको रुचिकर उपयोगी सिद्ध हुआ तो इस विषयपर फिर विस्तारसे प्रकाश डालनेकी चेष्टा की जायगी।

धातुकी चद्दरका उद्योग

[पं० ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम्० आइ० एल्० ई०, जे० एस्० एम्० आई, जयपुर]

१. इस उद्योगके लिये क्षेत्र

यदि हम किसी बिसातीकी दुकानपर जाकर उसके मालकी परीक्षा करें तो मालूम होगा कि उसकी दुकानका लगभग ९५ प्रतिशत माल विदेशी है और उसमेंसे भी आधेसे अधिक लोहे, पीतल अथवा ताँबेकी पतली चद्दरका बना हुआ है। इस धातुकी चद्दरके मालकी परीक्षा करने और विचारनेसे मालूम होगा कि उसका लगभग ७५ प्रतिशत भाग ठप्पेमेंसे निकला हुआ है। इस प्रकारके सामानमें बच्चोंके खिलौने, छोटी तस्वीरों और दर्पणोंके चौखटे, छोटे-छोटे प्याले, गिलास, तश्तरियाँ, डिबिया, टीनके बटन, आईलेट, चटखनियाँ, कब्जे, ताले, लालटेनें, कलम और कूचियोंके धातुके भाग, पेन्सिलोंके पोले, निब, कलमदान, व्लाटिंग होल्डर, तराजू, कागज पकड़नेकी क्लिपें और चम्मच आदि मुख्य हैं।

यह सब सामान इस ढंगका है कि इसके तयार करनेमें बड़े-बड़े कीमती यंत्रोंकी आवश्यकता नहीं होती। यदि हमारे देशके शिक्षित नवयुवक इन वस्तुओंके बनानेकी चेष्टा करें तो प्रतिवर्ष लाखों रुपया जो कि विदेशोंको इन नित्यके उपयोगकी चीजोंके खरीदनेमें जा रहा है, बच जायगा और हमारे देशके बेकारोंको काफी धंधा मिल जायगा।

ऊपर जिस प्रकारके सामानकी गिनती की गई है वह एक ही फैक्टरीमें तयार हो सकता है। वे ही मशीनें और औजार थोड़ेसे हेर-फेर साथ ही नाना प्रकारकी वस्तुएँ तयार कर सकते हैं।

हमारे देशके बड़े-बड़े शहरोंमें इस प्रकारकी कई फैक्टरियाँ स्थापित हो गयी हैं लेकिन उनका तयार किया हुआ सामान इतना थोड़ा है कि वह हमारे बाजारोंमें ढूँढ़े भी नहीं मिलता और जो कुछ है वह सुन्दरतामें विदेशी सामानसे बहुत घटिया होता है। इसका कारण उन फैक्टरीयोंके संचालकोंमें उपयुक्त औद्योगिक शिक्षाकी कमी है, जिसे हमारे पढ़े लिखे नवयुवक बड़ी आसानीसे पूरा कर सकते हैं।

२. आवश्यक योग्यता

उपर्युक्त प्रकारकी फैक्टरीका संचालन करनेवालोंको अधिकतर प्रेसों अर्थात् दबानेवाले यंत्रोंसे काम पड़ेगा, जिनमें ऊपर और नीचे स्पातके दो ठप्पे (dies) लगाकर धातुकी चद्दरोंमेंसे नाना प्रकारकी आकृतिवाली, इच्छानुसार, पत्ते अथवा टिकलियाँ (blanks) काटी जा सकती हैं, उन टिकलियोंको मोड़ा जा सकता है और उन्हें दबाकर उनमें इच्छानुसार आकृतियाँ बनायी जा सकती हैं। जब कि ठप्पे तयार हों तब तो उन्हें प्रेसोंमें लगाकर सस्ते मजदूरों द्वारा ही काम लिया जा सकता है, इन मजदूरोंको केवल बन्दरकी तरह काम करना पड़ता है और कुछ भी कारीगरीकी आवश्यकता नहीं होती। लेकिन असली बात तो अच्छे ठप्पे बनाना ही है। अतः ऐसी फैक्टरीयोंमें कमसे कम एक चतुर कारीगर अवश्य होना चाहिये जो स्पातको खोदकर सही-सही ठप्पे बना सके, उनपर आबदारी लगा सके, खराद मशीन, बरमा मशीन और रंदा मशीनपर सही-सही काम कर सके और आवश्यकता पड़नेपर थोड़ा बहुत लोहे पीतलकी ढलाईका काम भी कर सके। ठप्पोंको खोदनेका काम साधारण कारीगरका काम नहीं है, यह हद्दके दर्जेकी कारीगरी है जो केवल निरन्तर अभ्याससे ही प्राप्त हो सकती है। आरम्भमें यह काम किसी भी यंत्र निर्माण अथवा उनकी मरम्मत करनेवाले कारखानोंमें रहकर सीखा जा सकता है। जहाँ-तहाँ कई इंजीनियरिंग स्कूल और कालेज भी बड़े शहरोंमें खुल गये हैं जिनमें लोहे-पीतलका साधारण काम सिखानेका प्रबंध है, उनसे भी फायदा उठाया जा सकता है।

हमारे देशके कई चद्दरका काम करनेवाले कारखानोंमें बढ़िया किस्मके ठप्पे विदेशोंसे तयार करके मँगवाये जाते हैं, लेकिन हमारी रायमें ऐसा करना दूसरोंके कंधेपर बैठकर चलनेके बराबर है।

३. इस उद्योगके लिये कुछ उपयोगी पुस्तकें

1—Practical Sheet and Plate Metal Work by E. A. Atkins. (Pitman) 7s. 6d.

2—Principles of Fitting by J. Horner (Pitman) 7s. 6d.

3—Metal-Turning by J. Horner (Pitman) 6s.

4—Workshop Practice by E. A. Atkins. (Pitman) in 8 volumes. 6s. each.

5–Electroplating–Work Hand–Book series 1s. 6d.

6—Punches and Dies by Frank A. Stanby (Mc. Graw Hill Pub. Co.) 24s.

7—Practical Die-Making by Fred. H. Colvin (Mc. Graw Hill Pub. Co.) 12s.

8—Die-Design and Die-Making Practice (Machinery Publishing Co. Ltd.) 32s.

9—Die and Presstool Work, Cassell's Workshop Series. 3s 6d.

10—Instructions for Forging, Hardening and Tempering Tool Steels by various tool steel manufucturers, for example,

(a) Arthur Balfour & Co. Ltd. Sheffield.

(b) Brown and Baley's Steel Works Ltd. Sheffield.

(c) Edger Allen & Co. Ltd. Sheffield.

Note:—These instruction books mey be had free of cost with the material.

११—यांत्रिक चित्रकारी प्रथम भाग—प्रकाशक—उद्योग मंदिर, अजमेर। मूल्य—२॥)

१२—"विज्ञान"में समय-समयपर प्रकाशित होनेवाले लेख। प्रकाशक, विज्ञापन परिषत्, प्रयाग, वार्षिक मूल्य ३)

४. आवश्यक यंत्र और औजार

(क)—निम्नलिखित यंत्र और औजारोंकी आवश्यकता हरएक हालतमें पड़ेगी। यह सब नये खरीदने चाहिये। पुराने खरीदना अथवा उन्हें एकदम बनवानेकी चेष्टा करना ठीक नहीं होगा, क्योंकि सरकारी और रेल्वेके कारखाने जो इन्हें बनानेका साहस कर सकते हैं वे तो इस प्रकारके कामको हाथमें लेते नहीं और जो छोटी फैक्टरियां है वे स्वयं ही टूटे-फूटे यंत्रोंसे काम चलाती हैं। अतः उनके बनाये यंत्रोंसे ठप्पे आदि भी सही-सही काम तैयार करना असम्भव है।

१—एक खराद मशीन ४" सेन्टरकी जो चूड़ी भी काट सके। डगचक और आवश्यक औजारों सहित। मूल्य लगभग ५००)

२—एक बरमा मशीन जो ½" व्यास तकका छेद कर सके ¹⁄₁₆" से ½" व्यासतकके बरमों सहित। मूल्य लगभग ४०)

३—एक औजारोंके धार लगानेकी सान ६" व्यास। मूल्य लगभग १७)

४—लोहार और फिटरके कामके औजार, जैसे हथौड़े, निहाई, भट्टीका पंखा, बैस, रेतियां, छेनी आदि ४०)

५—बिजलीद्वारा कलई करनेके लिये मोटर और डायनिमों और अन्य आवश्यक औजार—इन औजारोंकी आवश्यकता केवल उन्हींको पड़ेगी जो पीतल और तांबेकी चद्दरके सामानपर कलई करते हों। वैसे तो बड़े-बड़े शहरोंमें बिजलीद्वारा कलई करनेवालोंको भी काफी काम मिल जाता है और उनकी बहुत आमदनी होती है। इसके करनेवालोंको रसायन और विद्युत शास्त्रका साधारण ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है। यह पूरा सामान, जिसमें एक मोटर, ६ वोल्टका डायनिमो, स्विचबोर्ड, पालिश करनेकी मशीन जिसका आगे जिकर होगा, आवश्यक प्रकारके ब्रुश और रासायनिक घोलोंके लिये हौज आदि होते हैं। ८००)से ११००) रुपयेकी लगतमें मिल सकता है।

(ख) निम्नलिखित औजार और यंत्र, जिस प्रकारका सामान फैक्टरीमें बनाया जाय उसकी आवश्यकताके अनुसार खरीदना चाहिये। यह औजार और यंत्र बने बनाये भी मिल सकते हैं और होशियार कारीगर उन्हें बहुत सस्तेमें बना भी सकते हैं। अतः यहाँ उनके साधारण चित्र दिये जाते हैं। इनके पूरे यांत्रिक चित्र (working drawings) यांत्रिक (draughtsman) चित्रकारसे इच्छानुसार तयार करवाये जा सकते हैं।

१—चद्दर काटनेकी कैंची जो ३० इंच तककी लम्बी चद्दर काट सके। इसका चाकू बढ़िया ईस्पातका बना होना चाहिये। यह लगभग ५००)में यंत्र विक्रेताओंके यहाँसे मिल सकती है (चित्र सं० १) यह हाथसे चलायी जा सकती है।
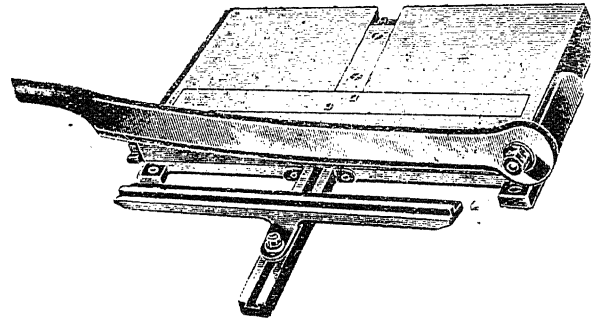
चित्र सं० १

२—उपर्युक्त कैंचीसे कटी हुई पत्तियों अर्थात् चद्दरके टुकड़ोंको सीधा करने अथवा उनमें धारी और सळ डालनेकी बेलन मशीन। इस एक ही मशीनमें सीधे बेलन लगाकर पत्तियोंको सीधा किया जा सकता है और अन्य प्रकारके बेलन डालकर जैसा कि चित्र सं० २ में दिखाया है, उनमें तरह-तरहकी सलें और लहरें डाली जा सकती हैं। यह बेलन बढ़िया मेलके कारबन मिश्रित स्पातके बनाये जाते हैं और उनमें बहुत सख्त आबदारी लगी होती है। बिदेशी बनो हुई मशीनोंके साथ तो एक अथवा दो जोड़े ही बेलनोंके

आते हैं लेकिन अन्य प्रकारके बेलन आवश्यकतानुसार तयार किये जा सकते हैं। यह मशीन लगभग २००) में यंत्र विक्रेताओंके यहाँसे मिल सकती है।
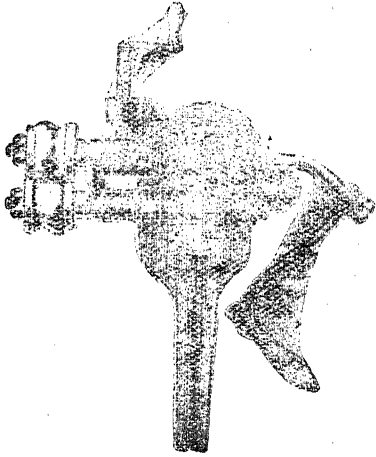
चित्र सं० २

३—चद्दरको गोल झुकानेकी बेलन मशीन। देखिये चित्र सं० ३। इसके द्वारा चद्दरकी बाल्टी, गोल डिब्बे
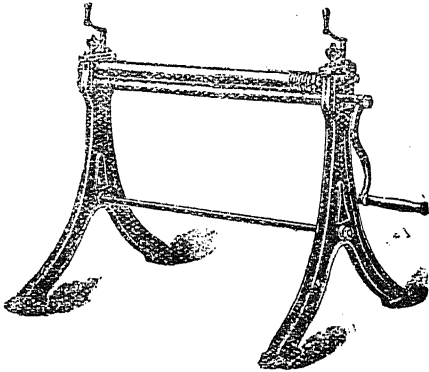
चित्र सं० ३

और ढोल आदिकोंके शरीर गाल झुकाये जाते हैं। ३६ इंच लम्बे बेलनोंकी मशीन लगभग ३००) में यंत्र विक्रेताओंके यहाँसे मिल सकती है।

४—बाल्टियोंके पेंदोंके किनारोंको मोड़ने अथवा चद्दरके किनारोंको मोड़कर उनमें तार डालकर उन्हें मजबूत करनेकी मशीन। देखिये चित्र सं० ४। दोनों कामोंके लिये जुदा-जुदा तरहके बेलनोंकी आवश्यकता पड़ती है। चित्रमें दोनों प्रकारके बेलन दिखाये गये हैं। इस प्रकारकी मशीन लगभग १५०) में मिल सकती है।
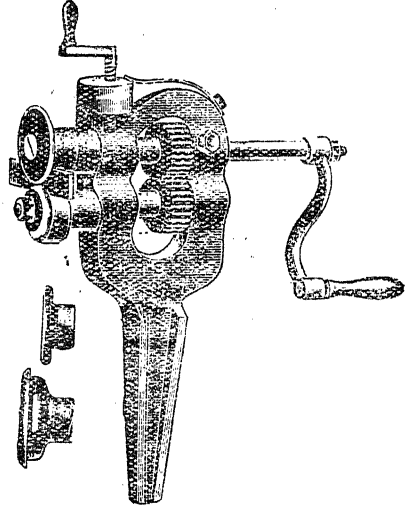
चित्र सं० ४

५—चद्दरके ढोल, बाल्टियों और डिब्बोंके पेंदोंको उनके शरीरसे जोड़नेकी मशीन। इस मशीनसे डिब्बोंमें सामान भरकर उनके ढक्कन भी बिना झाल लगाये जोड़े जा सकये हैं। ऐसी मशीन लगभग १७५) में यंत्र-विक्रेताओंके यहाँ तयार मिल सकती है। देखिये चित्र सं० ५
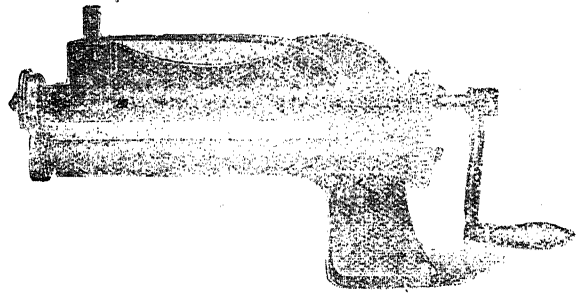
चित्र सं० ५

६—चद्दरकी लम्बी पत्तियोंको लम्बाईमें मोड़नेकी मशीन। देखिये चित्र सं० ६। इसके द्वारा कागजके कलेन्डरोंके ऊपर और नीचे लगानेकी पत्तियां भी तयार की जा सकती है। १७ इंच लम्बी और २४ गेजकी चद्दरको मोड़ने लायक मशीन लगभग २००) में मिल सकती है।

७—पालिश करनेकी मशीन। देखिये चित्र सं० ७। इस मशीनके ऊपर माल लगाकर किसी इंजन अथवा
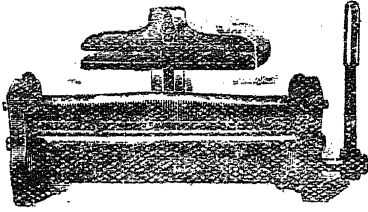
चित्र सं० ६

बिजलीकी मोटरद्वारा इसे बड़ी तेजीसे घुमाया जाता है, इंजनके अभावमें एक बड़ा पहिया भी इसे हाथके द्वारा बड़ी
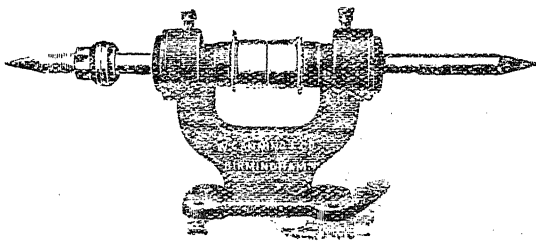
चित्र सं० ७

तेजीसे घुमा सकता है। इस मशीनकी धुरीके सिरोंपर तारका ब्रुश, बालोंका ब्रुश, कपड़ेका ब्रुश अथवा चमड़ेका ब्रुश लगाकर और उसके ऊपर तेलमें मिला कुरंड (emery powder) लपेटकर वस्तुओंपर पालिश की जाती है। इस मशीनके दोनों सिरोंपर दो आदमी, एक साथ, अलग-अलग काम कर सकते हैं। यह मशीन लगभग २००) में यंत्र विक्रेताओंके यहाँसे तयार मिल सकती है।

८—पालिशिंग ड्रम अथवा पालिश करनेका ढोल। देखिये चित्र सं० ८। जब कि बटन और निब जैसी छोटी छोटी वस्तुओंको बहुत बड़ी संख्यामें पालिश करना होता है तब उन सबको इस प्रकारके ढोलोंमें भर दिया जाता है और उनके साथमें कुरंड, बजरी अथवा काँचके छोटे-छोटे टुकड़े भी पानी अथवा तेलके साथमें उसी ढोलमें भर देते हैं, फिर उस ढोलका मुँह बंद करके किसी इंजन, बिजलीकी मोटर और इनके अभावमें किसी बड़े पहियेपर माल लगाकर उसके द्वारा उसे जोरसे घुमाते हैं, जिससे वे सब आपसमें रगड़ खाकर चमकीले और साफ हो जाते हैं। भीतर भरी हुई चीजें आपसमें खूब रगड़ खावें इस उद्देश्यसे इन ढोलोंको छःपहला अथवा अठपहला बनाया जाता है।

९—यदि कुछ वस्तुएँ लोहेकी चद्दरकी बनाई जावें और उनपर लाल, पीला, काला, हरा, सफेद आदि किसी
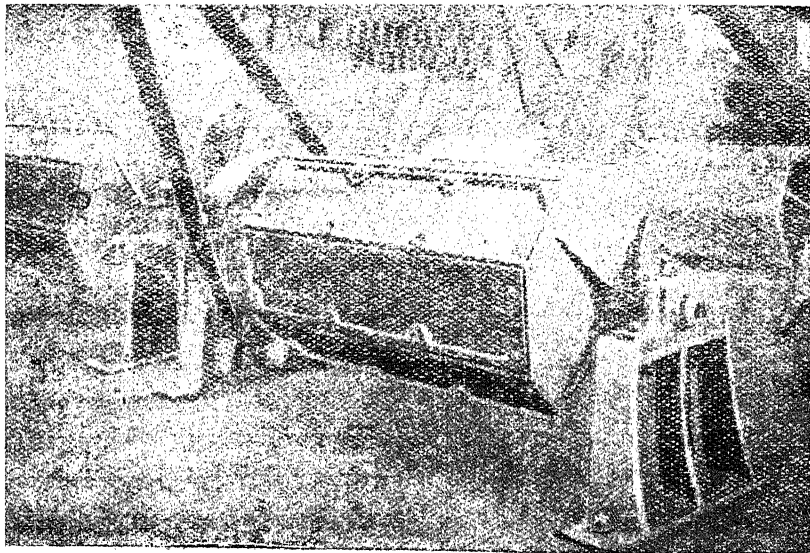
चित्र सं० ८

प्रकारका चमकीला रोगन करना आवश्यक हो तो उस रोगनको सुखानेके लिये लोहेकी तिजोरी-नुमा अंगीठीकी आवश्यकता पड़ेगी। इस प्रकारकी अंगीठीको अंगरेजी भाषामें ड्राइंग स्टोव कहते हैं। और इस प्रकार सुखाकर रंग करनेकी विधिको स्टोव पेन्टिंग कहते हैं। पाठक शायद जानते होंगे कि बाइसिकलोंकी फ्रेमोंपर इसी विधिसे दुबारा रंग किया जाता है। ऐसे स्टोवको खरीदनेकी आवश्यकता नहीं, यह बहुत सस्तेमें तयार हो सकता है।

५. प्रेसोंका चुनाव

टीन आदि धातुकी चद्दरका छोटा-छोटा सामान बनानेवाली फैक्टरीयोंमें आवश्यकतानुसार छोटे और बड़े कई प्रकारके प्रेस लगानेकी आवश्यकता पड़ती है। आजकल नाना प्रकारके ठप्पों (dies) और प्रेसोंके बननेसे लोहे और पीतलका वह हल्का-हल्का सामान जो पहिले या तो ढाला जाता था अथवा मशीनोंकी सहायतासे छील-छालकर थोड़ी-थोड़ी मात्रामें तयार किया जाता था बहुत अधिक मात्रामें तयार होनेके कारण बहुत सस्ता निकलने लगा।
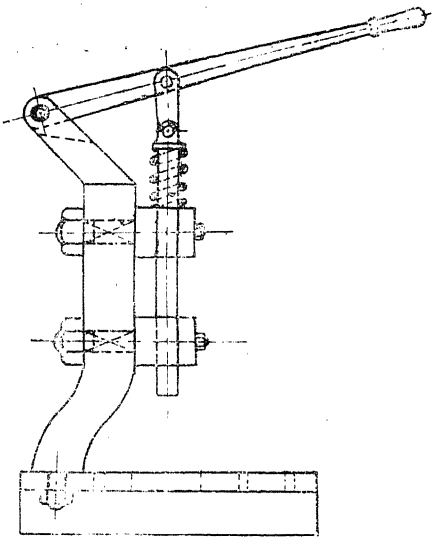
चित्र सं० ९

पाठकोंको जानना चाहिये कि बाइसिकलका चेन व्हील, चेनकी कड़ियाँ अथवा बड़े पहियोंकी रिम आदि प्रेसोंसे ही तयार होती है। घड़ियोंमें लगनेवाले किरें भी प्रेसके द्वारा ही बनते हैं। पाठकोंको ताज्जुब होगा कि रेल्वे और फैक्टरियोंके इंजनोंके क्रेंक आदि कच्चे लोहेके पुर्जे जो ३ अथवा ४ मनके लगभग भारी होते हैं प्रेसोंद्वारा ही बनाये जाते हैं, प्रेस या तो इंजनोंकी शक्तिसे चलते हैं अथवा जलकी शक्तिसे। हमें तो यहाँ केवल हाथ अथवा पैरकी शक्तिसे चलनेवाले प्रेसोंसे ही मतलब है। अतः यहाँ उन्हींका संक्षिप्त वर्णन किया जायगा।

६. हाथसे चलानेके लिवर प्रेस

(क) चित्र सं० ९में एक लिवरप्रेस दिखाया है। यह बड़ी सरलतासे सस्तेमें ही तयार हो सकता है। इसमें एक कमानी लगी हुई है जो इसकी दाब (Ram) और हेण्डिलको अपने आप ही ऊँचा उठा देती है। यदि इसका लिवर १८" लम्बा हो तो इसके द्वारा एक लड़का भी पहले टीनकी १" व्यासकी टिकलियाँ एक घंटे भरमें १०००के लगभग बड़ी आसानीसे काट सकता है।

(ख) चित्र सं० १०में दिखाया हुआ प्रेस भी पूर्व
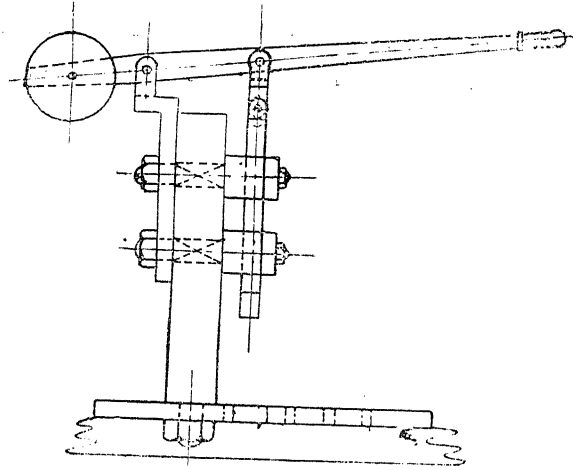
चित्र सं० १०

वर्णित प्रेसके समान ही है लेकिन इसमें दाब और लिवरको अपने आप ऊँचा उठानेके लिये कमानीके बदलेमें, लिवरके दूसरे सिरेपर, एक बोझा लगा दिया गया है।

इन प्रेसोंको दिल्लीमें टीनके बटन बनानेवाले और जैपुर आदिमें चाँदी सोनेकी घूघरियाँ बनानेवाले सुनार खूब काममें

लाते हैं। यदि इनकी दाबें चौकोर और सही-सही चलनेवाली बनायी जावें तो यह प्रेस हल्का दबाव चाहनेवाले सही कामको भी कर सकते हैं।

७. पैरसे चलानेके प्रेस

(क) चित्र सं० ११ में जो प्रेस दिखाया है इसे अंगरेजीमें पेन्ड्युलम फुट प्रेस कहते हैं। इसके नीचेकी तरफ जो लिवर लगा है वह घड़ीके पेन्ड्युलमकी भांति झूलता

चित्र सं० ११

है। प्रेसपर काम करनेवाला जब पेन्ड्युलमको पैरसे पीछेकी ओर ढकेलता है तब प्रेसकी दाब नीचे उतर आती है। यह प्रेस कपड़ेसे मढ़े हुए बटनोंको तयार करने अथवा इसी प्रकारके अन्य हल्के काम करनेके मतलबका है। इस प्रेसपर काम करनेवालेके दोनों हाथ कामको सम्हालनेके लिये खाली रहते हैं। इस प्रकारका प्रेस लगभग २५०) में तयार मिल सकता है।

(ख) चित्र सं० १२ में भी पैरसे चलानेका एक प्रेस दिखाया है। इसमें नीचे जमीनपर जो लिवर लगा हुआ है उसके सिरेको एक पैरसे दबाया जाता है, और तुला यंत्रके सिद्धान्तानुसार यह पैरसे दिया हुआ दबाव कई गुणा अधिक होकर प्रेसकी दाबपर पहुँचता है। चित्रको देखनेसे मालूम होता है कि इस प्रेसकी दाब गोल बनी हुई है अतः बहुत सही कामके लिये इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। अकसर बटनोंके ऊपर और नीचेके हिस्सोंको
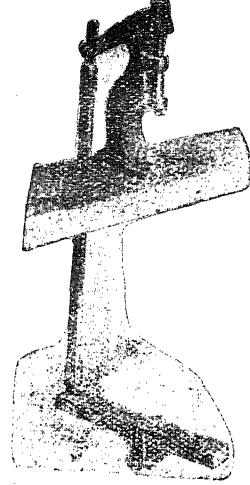
चित्र सं० १२

जोड़ने आदिके काममें इसका उपयोग होता है। वहाँ ठप्पोंकी सही चालका अधिक खयाल नहीं किया जाता। इस प्रकारके प्रेस लगभग १२०) में तयार मिल सकते हैं।
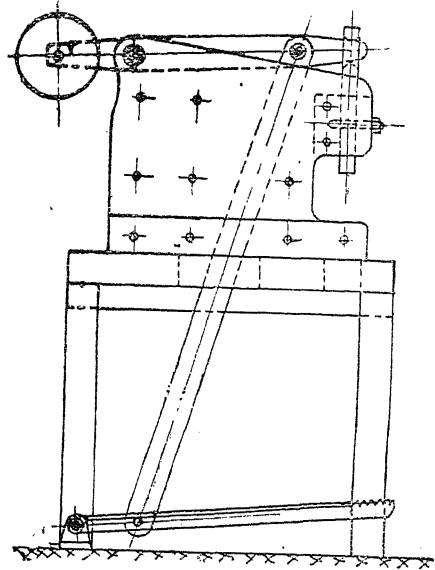
चित्र सं० १३

(ग) चित्र सं० १३ में जो प्रेस दिखाया है वह चलाया

तो लिवरको पैरसे दबाकर ही जाता है लेकिन पूर्व वर्णित प्रेसोंसे यह बहुत शक्तिशाली है और सही काम कर सकता है। इसकी बनावट बहुत सरल है अतः यह बहुत ही सस्तेमें तयार हो सकता है। उदाहरणके लिये, इसका ढाँचा हिंगलैनों और लोहेकी प्लेटका बना हुआ है। इसलिये दूसरे प्रेसोंकी भाँति इसे ढलवानेकी आवश्यकता नहीं। इसके ऊपर और नीचेके लिवरोंका सम्बन्ध मिलानेवाले डंडेमें खिंचाव पड़ता है न कि दबाव, जैसा कि पूर्व वर्णित प्रेसमें है, अतः वह बहुत हल्का बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इसके दाबकी चाल भी काफी है।

८. स्क्रू प्रेस और फ्लाई प्रेस

(क) चित्र सं० १४ में पेंचके द्वारा चलनेवाली एक दाबका प्रेस दिखाया है। इसके पेंचमें दो अथवा तीन
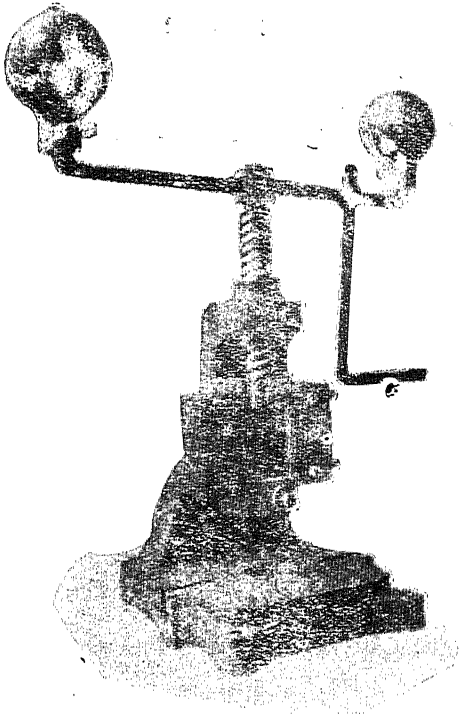
चित्र सं० १४

गलीकी चौकोर चूड़ियाँ होती हैं जिसके कारण इसके हेन्डिलको थोड़ासा अपनी तरफ घुमानेसे अर्थात् चूड़ियोंके फिरनेसे प्रेसका दाब नीचे उतर आता है। इस प्रकारके प्रेस वहींपर काममें लाये जाते हैं जहाँ बहुत सही-सही ठप्पोंसे काम करना हो। ऐसा प्रेस लगभग ३००) में खरीदा जा सकता है।

(ख) चित्र सं० १५ में जो प्रेस दिखाया है उसकी दाब भी पूर्व वर्णित प्रेसकी भांति ही पेंचके द्वारा चलती है लेकिन यह प्रेस पूर्व वर्णित प्रेससे बहुत शक्तिशाली है, इसी कारण इसकी फ्रेम ढाले हुए लोहेकी दोहरी बनी है,
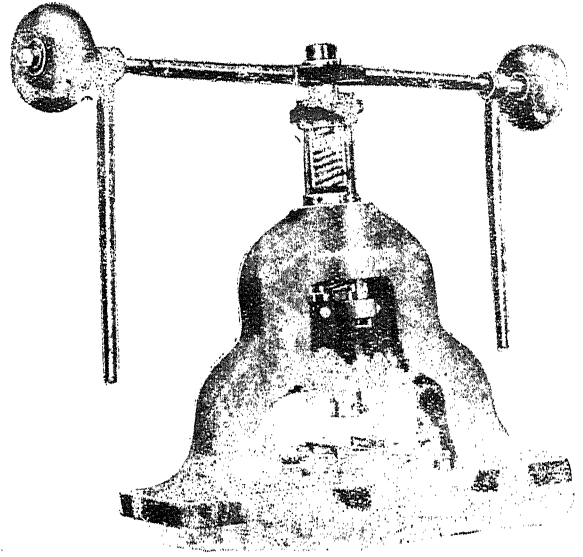
चित्र सं० १५

और पूर्व वर्णित प्रेसोंमें एकहरी थी। मामूली काम तो इसके हेन्डिलपर एक झटका लगाकर ही हो सकते हैं लेकिन भारी कामोंके लिये इसकी दाबको खूब ऊँचा उठाकर ऊपर लगे हेन्डिलको कई चक्कर बड़े जोरसे दिये जाते हैं जिससे उसमें लगे बोझेके कारण दाबमें गतिशक्ति उत्पन्न हो जाती है और ज्यों ही पेंचके घूमनेके कारण दाब नीचे उतरकर धातुकी चद्दरपर (जिसपर काम करना होता है), टप्पे सहित टकराती है, दाबकी गतिशक्ति दबावशक्तिमें बदल जाती है जिससे बड़े भारी शक्ति चाहनेवाले काम जैसे चांदी, सोने अथवा तांबेपर मैडल छापना आदि कार्य सहजमें ही सम्पादित हो जाते हैं। यदि इसके हेन्डिलके

स्थानपर एक भारी फ्लाईव्हील लगा दिया जाय तो इस प्रेसकी शक्ति और भी बढ़ सकती है। ऐसा प्रेस लगभग ७००) में तयार मिल सकता है।

६. यंत्र विक्रेताओंके कुछ पते—

१—अलफ्रेड हरवर्ड (इंडिया) लिमिटेड, बम्बई, कलकत्ता।

२—जेसप एण्ड को०, बम्बई, कलकत्ता और दिल्ली।

३—एशियाटिक मेशनेरी कम्पनी लिमिटेड, बम्बई।

४—हीटले एण्ड ग्रेशहाम लिमिटेड, बम्बई, कलकत्ता।

५—करप, इण्डियन ट्रेडिंग कम्पनी लि० बम्बई।

६—बर्न एण्ड कम्पनी लिमिटेड, कलकत्ता इत्यादि।

इस्पातके निब कैसे बनाये जाते हैं ?

[पं० ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम्० आइ० एल्० ई०, जे० एस्० एम० आई, जयपुर]

हमारे देशके शहरोंमें रहनेवाला कोई भी पढ़ा लिखा व्यक्ति ऐसा न होगा जो धातुके निबोंकी उपयोगितासे परिचित न हो। हमारे गावोंसे भी नरसलकी लेखनीसे लिखनेका रिवाज अब उठता जा रहा है। लाखों ही रूपके निब, प्रतिवर्ष, विदेशोंसे मँगवाये जाते हैं। वैसे तो अब कलकत्ता, मदरास, लाहौर, आगरा और ग्वालियर आदि प्रमुख शहरोंमें इनका निर्माण होने लग गया है, लेकिन वह हमारे देशकी आवश्यकताका सहस्रांश भी नहीं है। कहनेका आशय यह है कि अभी इस उद्योगके लिये बहुत क्षेत्र है और इसी उद्योगके साथ लिखने पढ़नेका अन्य सामान जैसे लेखनी, क्लिप, लिफाफे, तरह-तरहकी फाइलें आदि भी उसी कारखानेमें बड़ी आसानीसे बनाये जा सकते हैं। इस उद्योगमें बहुत अधिक पूँजी भी लगानेकी आवश्यकता नहीं और सारा काम सादे हथकलोंसे लिया जा सकता है जो कि यहींपर बहुत सस्तेमें तयार हो सकते हैं।

इस लेखमें पाठकोंकी जानकारीके निमित्त इंगलैंडके बरमिंघाम नगरकी सुप्रसिद्ध पैरी एण्ड कम्पनी लिमिटेड और जोजेफ जिलेट एण्ड सन्स् लिमिटेडकी फैक्टरियोंमें जिन-जिन क्रियाओंसे स्पातके निब तयार किये जाते हैं, उनका संक्षिप्त वर्णन किया जाता है। इन फैक्टरियोंमें भी सब काम छोटे-छोटे हथकलों द्वारा किया जाता है। हमारे देशके कारखानोंमें निब तयार करनेकी विधि भी करीब करीब ऐसी ही है। और देशी कारखानोंमें जिस प्रकारके हथकलोंका उपयोग किया जाता है अथवा किया जा सकता है उनके चित्र भी साथ-साथमें ही दिये जाते हैं। इन हथकलोंका संक्षिप्त वर्णन, मूल्य आदिका अनुमान और वे कहाँसे प्राप्त किये जा सकते हैं आदि बातें इसी पत्रमें पूर्व प्रकाशित "धातुकी चद्दरका उद्योग" शीर्षक लेखमें बतायी जा चुकी है। निब बनानेकी क्रियाओंमें, निबोंको गरम कर कर मुलायम करना, सख्त करना अथवा आबदारी लगानेका जिकर भी किया गया है। यह एक स्वतंत्र विषय होनेके कारण, इस लेखमें उसका केवल संकेतमात्र ही किया है। इसका विस्तृत वर्णन "लोहेपर पानी चढ़ाना" शीर्षक लेखमें जो कई वर्ष पूर्व "त्यागभूमि" नामक मासिक पत्रमें प्रकाशित हुआ था, किया गया है। वह लेख इस पत्रमें भी लोहेपर पानी चढ़ाना नामसे छपा है। निबके उद्योगसे दिलचस्पी रखनेवालोंको यह प्रस्तुत लेख और उपर्युक्त दोनों लेख मिलकर इतना काफी मसाला दे देंगे जिससे उन्हें मोटे तौरसे मालूम हो जायगा कि स्पातके निब किस प्रकारसे बना करते हैं।

निब बनानेकी क्रियाओंका वर्णन करनेके पहिले एक आवश्यक सूचना और देनी है। क्रिया संख्या ३, ४, ५, ७ और १२ में स्क्रूप्रेस अथवा लिवर प्रेसमें ऊपर और नीचे दो-दो ठप्पों (dies) की आवश्यकता पड़ेगी। यह ठप्पे किस प्रकारके होने चाहिये और कैसे बनाने चाहिये इसका वर्णन आगे चलकर किसी लेखमें विस्तार पूर्वक करेंगे। इन्हें तयार करनेवाले बहुत उच्चकोटिके कारीगर हुआ करते हैं अतः नव-सिखियेको इन्हें बनानेमें सफलता नहीं मिलेगी। इसका आशय यह नहीं है कि जो अच्छे कारीगर नहीं है

वे इस उद्योगको आरम्भ ही न करें। मेरी रायमें तो साधारण स्कूली शिक्षा पाये हुए लोग भी इसे आरम्भ कर सकते हैं। निबोंका नमूना भेजकर कलकत्ता, बम्बई, लाहौर और कानपुर आदि शहरोंके बड़े-बड़े यंत्र विक्रेताओंके यहाँसे ठप्पे बनवाकर मँगवाये जा सकते हैं। जिन प्रेसोंमें उन्हें लगाकर काम करनेकी इच्छा हो उनके अनुसार ठप्पोंके बाहरी नाप सहित यांत्रिक चित्र (mechanical drawing) निबके नमूनेके साथ अवश्य भेजने चाहिये, नहीं तो ठप्पे आपके प्रेसोंमें फिर नहीं होंगे। बाहरी नाप सहित यांत्रिक चित्र किसी ड्राफ्टस्मैनसे बनवाये जा सकते हैं। इस विषयमें उद्योग मंदिर, अजमेरसे प्रकाशित यांत्रिक चित्रकारी प्रथम भागसे भी सहायता मिल सकती है।

पैरी एण्ड कम्पनी लिमिटेड बरमिंघममें निम्नलिखित क्रियाओंद्वारा निब तयार किये जाते हैं। फैक्टरीमें २००० आदमी सब मिलाकर लगभग १ टन निब रोज तयार करते हैं।

क्रिया सं० १ पट्टी काटना—निब बनानेके लिये आवश्यक मोटाईकी चद्दरें बनी बनायी मँगवायी जाती हैं। चद्दरकी मोटाई निबके ऊपरसे माइक्रोमीटर-गेजद्वारा नापी जा सकती है। कई कम्पनियाँ निब आदि बनानेके लिये ठीक-ठीक नापकी चद्दरें बनाती हैं और वे गेजोंके नम्बरसे
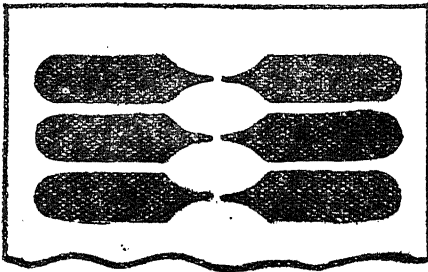
चित्र सं० २ क

बेची जाती हैं। मुख्य-मुख्य कम्पनियोंद्वारा बनायी चद्दरोंकी मोटाई और गेज-नम्बर उपर्युक्त पुस्तकके पृष्ठ सं० १६१ से १६९ तकमें दिये हुए हैं।

बाहरसे मँगवायी हुई चद्दरें आवश्यक नापसे बहुत बड़ी होती हैं, अतः उनमेंसे कैंचीके द्वारा (देखिये पिछले लेखमें चित्र सं० १) आवश्यक चौड़ाईकी लम्बी-लम्बी पट्टियाँ काट ली जाती हैं। पट्टियोंकी चौड़ाई इतनी रखी जाती है जिसमें एक कतारमेंसे दो निबोंके पत्ते (blanks) एक साथ काटे जा सकें और अधिक चद्दर बरबाद न हो। चित्र सं० २ क में दिखाई विधिसे काटनेकी अपेक्षा चित्र सं० २ ख में दिखाई विधिसे काटनेपर चौड़ाईमें कम चद्दर खर्च होती है।

क्रिया सं० २ चद्दरोंको बेलना—चद्दरकी पट्टी काटनेके बाद उन्हें बेलन मशीनमें लगाकर ठंडी हालतमें ही बेला जाता है। इस क्रिया द्वारा यदि पट्टियोंमें कोई गाँठें अथवा
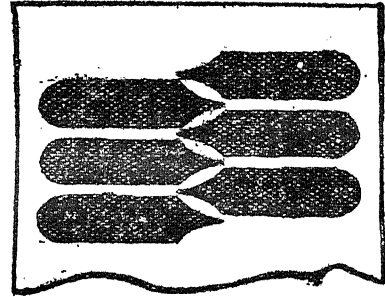
चित्र सं० २ ख

सलें पड़ गई हों तो वे निकल जाती हैं। पिछले लेखके चित्र सं० ३ में जो बेलन मशीन दिखायी है उसमें चद्दरोंमें गोले डालनेके बेलन लगे हैं, इनके स्थानपर हम सीधे बेलन लगा कर इसी मशीनसे काम ले सकते हैं।

क्रिया सं० ३—पत्ते काटना—चद्दरकी पट्टियोंको बेलनेके बाद चित्र सं० २ क अथवा ख के अनुसार ठप्पोंकी सहायतासे निब बनानेके पत्ते काटे जाते हैं। पिछले लेखके चित्र सं० ४,५ और ६ में इसी कामके योग्य प्रेस दिखाये गये हैं। इन प्रेसोंपर लड़के, लड़कियाँ अथवा औरतें भी काम कर सकती हैं।

क्रिया० सं० ४—नाम खोदना—नाम खोदनेका काम पैरसे चलानेके प्रेसोंद्वारा किया जाता है। इस प्रकारके प्रेसपर हाथसे एक पत्ता ठीक जगहपर लगाया जाता है और फिर लिवरको पैरसे दबाते ही ऊपरसे दाब आकर पत्तेके ऊपर ठप्पेसे नाम छाप देती है। नामके छपते ही ज्योंहीं दाब ऊपरको वापस चढ़ती है वह छपा हुआ पत्ता अपनी जगहसे एक कमानी द्वारा उछल कर दूर गिर जाता है और उसकी जगहपर नया पत्ता रख दिया जाता है। इस कामके योग्य प्रेस चित्र सं० ६, ७ और ८में दिखाये

गये हैं। इनपर भी लड़के, लड़कियाँ और औरतें काम कर सकती हैं।

क्रिया सं० ५-छेद करना,—निबोंपर नाम खोदनेके बाद उनमें छेद किया जाता है। छेद भी ठप्पोंके द्वारा ही पेंचकी दाबमें किये जाते हैं। (चित्र सं० ५)। लेकिन छेद करनेके ठप्पे बड़े ही नाजुक होते हैं, इसलिये इस कामको करनेवाली दाब बिलकुल सही-सही चलनी चाहिये अन्यथा ठप्पोंके टूटनेका बड़ा डर रहता है। छेद करनेके उद्देश्यसे पूर्वोक्त क्रियासे निकले हुए पत्ते एक-एक कटकर, हाथसे, सही-सही निशानपर लगा दिये जाते हैं और छेद हो चुकनेके बाद अपने आप ही कमानीद्वारा दूर हटा दिये जाते हैं। यह कार्य भी लड़के, लड़कियों और औरतों द्वारा किया जाता है।

क्रिया सं० ६—मुलायम करना—उपर्युक्त क्रियाके अन्ततक पत्ते चपटे रहते हैं और क्रिया सं० ३, ४ और ५ को करते समय उनमें कुछ बल भी पड़ जाता है और वे कुछ सख्त भी हो जाते हैं इसलिये उन्हें गोलाईमें मोड़ना कठिन हो जाता है। अतः उन्हें मोड़नेके पहले मुलायम कर लेना आवश्यक है। उनको मुलायम करनेके उद्देश्यसे सबको ताँबे अथवा लोहेके तारोंकी बनी जालीकी एक थैलीमें भरकर बिजलीकी भट्टीमें रख दिया जाता है और जब वे आवश्यक तापक्रमतक गरम हो जाते हैं तब उन्हें उसी भट्टे में धीरे-धीरे ठंडा किया जाता है। इस क्रियाको अंगरेजी भाषामें annealing कहते हैं। बिजलीकी भट्टीके अभावमें साधारण भट्टीसे किस प्रकार काम लिया जा सकता है, यह जाननेके लिये "लोहेपर पानी चढ़ाना" शीर्षक लेख देखिये।

क्रिया सं० ७—गोलाईमें मोड़ना—पत्तोंको मुलायम करनेके बाद उन्हें पेंचके प्रेसों अथवा हाथसे दबानेके लिवरके प्रेसोंद्वारा दो ठप्पोंके बीचमें रखकर मोड़ दिया जाता है। इस कामके योग्य प्रेस पिछले लेखके चित्र सं० ५,९ और १०में दिखाये हैं। इस क्रियाको लड़के, लड़कियाँ और औरतें भी कर सकती हैं।

क्रिया सं० ८—सख्त करना—मुड़नेके बाद निब बहुत मुलायम रहते हैं अतः उन्हें हलका लाल गरम कर-कर और फिर उसी गरम हालतमें तेलमें बुझाकर सख्तकर लिया जाता है। यह क्रिया बिजलीकी भट्टीद्वारा की जाती है। इस क्रियाको अंगरेजीमें hardening कहते हैं।

क्रिया सं० ९—आबदारी लगाना अथवा पानी चढ़ाना—क्रिया सं० ८ के पश्चात् निब बहुत सख्त और कड़कीला हो जाता है। इस ऐबको दूर करनेके लिये उन्हें बिजलीकी भट्टीमें अथवा एक लोहेके ढोलमें बंद कर-कर उस ढोलको कोयले अथवा गैसकी आँचपर घुमाकर गरम किया जाता है कि जिससे वे आवश्यकतानुसार मुलायम हो जावें अर्थात् उनकी सख्ती थोड़ी सी कम होकर उनमें लचीलापन आ जावे। इस क्रियाको अंगरेजीमें tempering कहते हैं। यहाँपर जिस ढोलका वर्णन किया गया है वह चित्र सं० ११ से बहुत कुछ मिलता-जुलता होता है। आबदारी लगानेके लिये गहरा आसमानीका तापक्रम उत्तम समझा जाता है।

क्रिया सं० १०—पालिश करना—पानी चढ़ानेकी क्रियाके बाद निबोंको हल्के गन्धकके तेजाबमें कुछ घंटोंतक भिगो दिया जाता है जिससे उनकी चिकनाई छूट जाती है फिर पिछले लेखके पालिशिंग ड्रम चित्र ११ जैसे एक ढोलमें भरकर और उनके साथमें कुछ बजरी और पानी भी भर दिया जाता है और उस ढोलका मुँह बंद कर-कर उसे कई घंटोंतक तेजीसे घुमाया जाता है और जब वे आपसमें और बजरीसे रगड़ खाकर खूब साफ और चमकीले हो जाते हैं तब उन्हें धोकर सुखा लेते हैं।

क्रिया सं० ११—निबोंकी नोंक घिसना—पाठकोंने देखा होगा कि निबोंकी नोंक पीछेको ऊपरकी तरफसे कुछ चमकीली सी दिखाई देती है, यह घिसी हुई होती है। घिसनेकी क्रिया, पालिश करनेकी क्रियाके पीछे ही हुआ करती है। चित्र सं० १२ में दिखाई हुई पालिशकी मशीनकी धुरीपर दोनों तरफ लकड़ीकी एक-एक चकरी लगा दी जाती है और उसके घेरेपर चमड़ेकी पट्टी चढ़ाकर चमड़ेपर कुरंडका बुरादा लगा दिया जाता है। इस प्रकार मशीनको तयार करके उसे पट्टेद्वारा बड़े जोरसे घुमाते हैं और घूमती हुई चकरीपर निबकी नोंकको पीछेसे हाथसे हलका-हलका घिसते हैं। इस कामको लड़के लड़कियाँ और औरतें भी कर सकती हैं।

क्रिया सं० १२—नोंकको चीरना—इतना सब काम

हो चुकनेके बाद निबकी नोंकको चीरा जाता है। यह काम पेंचके प्रेसद्वारा (पिछला लेख चित्र सं० ५) हाथसे ही सही-सही किया जाता है। निबको चीरनेके लिये एक धार तो नीचे लगायी जाती है और दूसरी ऊपर पेंचके सिरेमें लगायी जाती है जो नीचे ऊपर उतरती चढ़ती रहती हैं। इन धारोंका कार्य कैंचीके समान होता है और धारें उस्तरेके समान तेज़ रहती हैं। चीरनेके लिये निबको निशानोंपर सही-सही जमाना आवश्यक है।

क्रिया सं० १३—निबोंपर रंग और रोगन करना—रंग और रोगन करनेकी क्रिया सबसे अन्तिम क्रिया होती है। जो निब सफेद दिखाई देते हैं उनपर या तो बिजली-द्वारा हल्की सी निकलकी कलई कर दी जाती है अथवा वैसे ही उन्हें पालिशके ढोलमें डालकर चाँदीकी भाँति चमका लिया जाता है। कई प्रकारके निबोंपर बिजलीद्वारा ताँबेकी कलई भी चढ़ायी जाती है। कई प्रकारके निबोंपर किशमिशी रंग चढ़ाया जाता है। इस प्रकारका रंग चढ़ानेके लिये चमकते हुए सफेद निबोंको जालीके ढोलोंमें भरकर, घुमाते हुए, कोयलेकी आँचपर गरम करते हैं जिससे ओषजनके प्रभावसे प्राकृतिक किशमिशी रंग चढ़ जाता है। रंग करनेके पीछे उन्हें लाखकी हल्की सी वारनिशमें डुबोकर सुखा लेते हैं जिससे उनपर जंग न लगने पावे।

जोजेफ जिलेट एण्ड सन्स्, बिरमिंघमके कारखानेमें निब बनानेकी वे ही क्रियायें होती हैं जैसी कि ऊपर बतायी गयी है, केवल अन्तर यही है कि नाम खोदनेकी क्रिया, मुलायम करनेकी क्रियाके पीछे होती है।*

वनस्पतियोंके तेलको साफ करनेका उद्योग

[लाला श्रीरामजी अग्रवाल, दिल्लीवालोंके संग्रहसे पं० ओंकारनाथ शर्मा द्वारा अनूदित]

पंजाब प्रांतमे, इस समय, लगभग ६ आधुनिक प्रकारकी तेल निकालने कि मिलें चल रही हैं और इनके अतिरिक्त कई हजार कोल्हू भी काम कर रहे हैं। इन सबके द्वारा, पंजाब प्रान्तमें उत्पन्न हुई वनस्पतियोंसे ही, औसतन २५,००० टन तेल प्रतिवर्ष निकलता है और लगभग इतना ही बाहरसे मँगाये हुए महुए आदिसे निकाल लिया जाता है। लेकिन यह तेल बिना शुद्ध किया हुआ ही बाजारमें बेच दिया जाता है। बिना शुद्ध किये हुए तेलमें कई प्रकारके चिकटे पदार्थ मिले रहते हैं जिनके कारण वह औद्योगिक क्षेत्रमें अनुपयुक्त सिद्ध होता है। शुद्ध किया हुआ तेल बनावटी घी तयार करने, मशीनोंमें देनेका तेल और ग्रीज़ तयार करने, बालोंमें डालनेका तेल बनाने, दवाइयाँ बनाने, रोगन और इनेमल तयार करने, और मोमबत्ती और साबुन आदि तयार करनेके काममें आता है। अतः इससे हम जान सकते हैं कि शुद्ध तेलकी कितनी खपत हो सकती है। तेलको शुद्ध करनेके लिये एक छोटा सा कारखाना ५००० रु० में चलाया जा सकता है, और एक बड़ा कारखाना लगभग ४२,००० रु० में चालू किया जासकता है। दोनों प्रकारके कारखानोंकी योजनाएँ यहाँपर दी जाती हैं। जिन्हें इस विषयमें अधिक जाननेकी इच्छा हो वे संग्रहकर्त्तासे [चांदनी चौक, दिल्ली] पत्रव्यवहार करें।

तेलको शुद्ध करनेकी संक्षिप्त विधि

तेलको शुद्ध करने और उसका रंग उड़ानेके लिये, वैक्युम अर्थात् शून्यके द्वारा, उसे एक विशेष प्रकारके यंत्रमें खींचा जाता है, जिसमें वह लगातार मथा जाता है और मथन करते हुए ही एक विशेष तापक्रमतक गरम किया जाता है। गरम हो जाने के बाद उसमें, एक पंपके द्वारा, कास्टिक सोडाके घोलको बड़े बारीक फुहारोंद्वारा छोड़ा जाता है। इस प्रकारसे उसका शुद्धीकरण (neutralization) समाप्त हो जानेपर जो कुछ भी छिछड़े (soap) उस तेलमें पड़ जाते हैं, उन्हें हटा दिया जाता है और शेष तेलको गरम पानीसे कई बेर धोया जाता

* इन्स्टीट्यूशन आफ मिकेनिकल इंजीनियरस् लंडनकी कुछ रिपोर्टके आधारपर।

है। इसके पश्चात् सज्जी मिट्टी (fullers earth) रेह अथवा कोयला मिलाकर तेलको नीरंग करनेकी क्रिया की जाती है और फिर उसे छान लिया जाता है। तेलको निर्गंध करनेके लिये, एक विशेष तापक्रमकी उत्तप्त वाष्प (super-heated steam) उसमें मिला दी जाती है जबतक कि उसकी गंध बिलकुल गायब न हो जाय। इसके पश्चात् उसे फिर छान लिया जाता है।

तेलको शुद्ध करनेके कारखानेके साथ ही यदि साबुनका कारखाना भी हो तो उपर्युक्त विधिद्वारा निकला हुआ तेलका सब मलबा साबुन बनानेके काममें आ सकता है।

(क) ८ घंटे काम करके प्रतिदिन १३ मन शुद्ध तेल तयार करनेकी फैक्टरीका अनुमानपत्र।

आवश्यक यंत्र—		मूल्य
१—एक कोल्हू मशीन	...	३५०)
२—तेलको मथकर और उसमें दवाएँ मिलाकर शुद्ध करनेका पूरा यंत्र		१५००)
३—एक फिल्टरप्रेस	...	६००)
४—तेल भरनेकी टंकी	...	५००)
५—बिजलीकी २ मोटरें ३ औ ४ अश्वबलकी		६००)
६—फुटकर सामान और औजार	...	५००)
७—यंत्र आदि जमानेका खर्चा	...	५००)
		योग—४५५०)

फैक्टरीकी इमारत—

फैक्टरीके लिये ४० फुट लम्बी और २५ फुट चौड़ी इमारतकी आवश्यकता होगी जो ३) प्रति वर्गफुटके हिसाबसे लगभग ३०००) में बनकर तयार हो सकती है। इसमें जमीनकी कीमत अलहदा होवेगी।

फैक्टरीका मासिक खर्चा—

१—कच्चे मालकी लागत	...	३४३५)
२—मजूरी	...	१८७)
३—शक्तिका खर्चा	...	२०५)
४—किराया, चुंगी और टैक्स आदि तयारीपर २%के हिसाबसे	...	८६)
५—यंत्रोंकी मरम्मत आदि	...	५०)
६—यंत्रोंकी छीजन १०% वार्षिकके हिसाबसे		३८)
७—इमारतकी छीजन २% वार्षिकके हिसाबसे		५)
८—फुटकर खर्च		४००)
		योग—४४०६

फैक्टरीकी मासिक आमदनी—

७% छीजन लगाते हुए भी उपरोक्त फैक्टरी—

(१) ३३५ मन तेल

(२) ६०८ मन खल तयार करेगी।

सब प्रकारकी कमीशन और दलाली आदि देने पश्चात् यदि तेल ११) प्रति मनके भावसे और खल १।।=) प्रति मनके भावसे बेची जावे तो

(१) तेलके द्वारा ३६८५) और

(२) खलके द्वारा ११४०)

अर्थात् कुल ४८२५) रुपयेकी मासिक आमदनी होवेगी।

इस प्रकारसे मासिक लाभ कुल ४१९) होगा। यह लाभ एक वर्षमें ५०२८) होता है।

अथवा यों समझना चाहिये कि इस व्यापारमें कुल पूंजीपर ९०५%का लाभ होता है।

परिशिष्ट

कच्चे मालकी मासिक लागत (एक मास = २६ दिन)

(१) १०१४ मन, तेल निकालनेका कच्चा माल ३।=) मनके भावसे	३४२२।)
(२) ६ मन, तेल साफ करनेकी दवाइयाँ आदि २) मनके भावसे	१२)
	योग—३४३४।)

अथवा—३४३५)

कार्यकर्त्ताओंका वेतन आदि (एक मास = २६ दिन)

१—एक मैनेजर—वेतन ६०) मासिक	...	६०)
२—दो कारीगर—वेतन २०) मासिक	...	४०)
३—चार कुली—वेतन १३) मासिक	...	५२)
४—एक बाबू और भंडारी—वेतन ३५) मासिक		३५)
		योग १८७)

बिजलीकी शक्तिका खर्चा—

दोनों मोटरें कुल मिलाकर ७ अश्वबलकी होंगी

अतः ७ अ० ब० = $\frac{७ \times ७४६}{१०००}$ किलोवाट एक घंटे में खर्च होंगे।

∴ ८ घंटेके दिनमें $\frac{७ \times ७४६ \times ८}{१०००}$ कि० व० घं०

यदि एक कि० बा० घं० की कीमत ≡) पड़ती होती

२६ दिनका खर्चा = $\frac{७ \times ७४६ \times ८ \times ३ \times २६}{१००० \times १६}$ = २०५ रु०

(ख) ८ घंटे काम करके प्रतिदिन २२०० मन तेल शुद्ध करके निकलनेकी फैक्टरीका अनुमानपत्र।

आवश्यक यंत्र आदि—

१—एक, तेलको शुद्ध और नीरंग करनेका यंत्र (आवश्यक साज सामान सहित) सब तरफसे बंद १९९२)

२—एक, तेलकी गंध हटाने, उसे मथने और ठंडा करनेका यंत्र, जो सब तरफसे बंद हो और एक घाणमें २२०० पौंड तेल ले लेवे। कच्चे लोहेका बना हुआ। ३११३)

३—एक, वायु-भारमापक (barometer) सहित घनीकरण यंत्र (condenser) १२९७)

४—एक, हवा देनेका पंखा, आडा सब साज सामान सहित १४८९)

५—एक, पंप पानी दौड़ानेके लिये, पैपोंके अतिरिक्त, सब साज सामान सहित १३८१)

६—एक, फिल्टर-प्रेस-पंप (खड़ा) ९३८)

७—एक, फिल्टर प्रेसके लिये फ्रेम, कपड़ेके अतिरिक्त, सब साज सामान सहित १९६०)

८—एक, फिल्टर-प्रेस, सब साज सामान सहित-बिना कपड़ेके ९३३)

९—एक, उत्तप्त वाष्प तयार करनेका यंत्र ७४२)

योग—१४८४५)

अन्य सामान—

१०—एक कच्चे लोहेकी बनी हुई टंकी जिसमें २५०० लिटर तेल भरा जा सके ... ५७९)

११—तेलको छाननेके लिये एक टंकी जिसमें १२५० लिटर तेल समा सके ... ३१३)

१२—बाजारमें बेचने लायक तयार शुद्ध तेलके भरनेकी एक टंकी, कच्चे लोहेकी बनी, जिसमें १२५० लिटर तेल समा सके। इस टंकीके पेंदेमें सरदीके कारण जमे हुए तेलको गरम करके निकालनेका सामान भी लगा हुआ हो ३१३)

१३—बिकरीके लिये रखनेकी एक टंकी (कच्चे लोहेकी) जिसमें १२५० लिटर तेल समा सके ३१३)

१५—तेलके छिछड़े भरनेकी एक टंकी जो कच्चे लोहेकी बनी हो, सब साज सामान सहित ४१०)

१५—कच्चे लोहेकी एक टंकी जिसमें तेल धोया जा सके ... ... ४३४)

१६—सोडा आदिका घोल तयार करनेकी एक टंकी ३०३)

१७—तयार घोल भरनेकी एक टङ्की ... १६३)

१८—तेल छाननेके दो कपड़े, उपरोक्त ७ और ८ नम्बरके सामानके साथ काममें आनेके लिये ७०)

योग २८९८)

फुटकर सामान—

१९—पैप, उनकी फ्लैंजें, बोल्ट और पैकिंग इत्यादि ३६४०)

२०—धुरे और पुलियोंके ब्रेकट आदि जिनमें मोटर और पट्टे शामिल नहीं हैं ... ६७२)

योग—४३१२)

कुल योग ... ... २१०५५)

उपरोक्त सामानके ऊपर चुंगी, बीमा और किराये आदिका खर्चा २५० के हिसाबसे ५५१३)

बिजलीकी तीन मोटरें क्रमशः १०, २ ३/४ और १/२ अ० व० की ... १०००)

पानीकी टङ्की, बैलट, पुली, धुरे, पट्टे और पंप आदि ... ... ५०००)

उपरोक्त सामानको फिट करनेका खर्चा २०००)

कारखानेके लिये इमारत

उपरोक्त कारखानेके लिये ५० फुट लंबी और ३० फुट चौड़ी इमारत काफी होगी।

इस प्रकारकी इमारत बनवानेके लिये लगभग ४५००) लगेगा जिसमें जमीनका मूल्य शामिल नहीं है।

उपर्युक्त बड़ी फैक्टरीका मासिक खर्चा—

१—कच्चे मालकी कीमत ... ७२५८)

२—कार्यकर्त्ताओंका वेतन ... ५०१)

३—बिजलीका खर्चा ... ३७५)

४—किराया, चुंगी और टेक्स तयार मालपर २% के हिसाबसे ... १९६)

५—यंत्रोंकी मरम्मत	१०)
६—यंत्रोंकी छीजन १०% वार्षिकके हिसाबसे	२९८)
७—इमारत आदिकी छीजन २% वार्षिकके हिसाबसे	७)
८—वाष्प तयार करनेका खर्चा ...	२४०)
९—फुटकर खर्च	१०००)
	योग—२९७५

फैक्टरीकी मासिक आमदनी—

१०% छीजन लगाते हुए भी उपर्युक्त फैक्टरी एक महीनेमें ५१४८० पौंड तेल तयार कर सकेगी। सब प्रकारका कमीशन और दलाली आदि देनेके पश्चात् यदि वह तेल ≡)।।। प्रति पौंडके भावसे बेचा जावे तो एक महीनेकी आमदनी १२०६) होवेगी।

अतः एक महीनेका लाभ	...	२०९०)
∴ एक वर्षका लाभ	...	२५०८०)

अथवा हमें यों समझना चाहिये कि इस व्यापारमें कुल पूँजीपर २१% का लाभ मिल जाता है।

परिशिष्ट

कच्चे मालके खर्चका हिसाब-(१ मास=२६ दिन)

(१)—एक दिनमें तेलका खर्चा = २२०० पौंड

एक मासमें तेलका खर्चा=२६ × २०० = ५७२०० पौंड, एक पौंड तेलकी लागत ≡)

∴ ५७,२०० पौंड तेलकी लागत=७१५० रु०

(२)—५७२०० पौंड तेलको शुद्ध करनेके लिये ५७२ पौंड कास्टिक सोडेकी आवश्यकता पड़ती है जो ≡) प्रति पौंडके भावसे १०८) का पड़ता है।

अतः कच्चे मालका कुल खर्चा = ७२५८)

कार्यकर्ताओंके वेतनका हिसाब—

१—एक, फोरमैन	१५०) मासिक	...	१५०)
२—पांच, कारीगर	२६) मासिक	...	१३०)
३—एक, फिटर	३०) मासिक	...	३०)
४—छः, कुली	१३) मासिक	...	७८)
५—एक, बाबू	३०) मासिक	...	३०)
६—एक, स्टोर बाबू	३५) मासिक	...	३५)
७—एक, चौकीदार	१५) मासिक	...	१५)
८—एक, कोयलेवाला	१३) मासिक	...	१३)
९—एक, बायलरवाला	२०) मासिक	...	२०)
		योग—	५०१)

वाष्प तयार करनेका मासिक खर्च (१ महीना=२६ दिन)

फैक्टरीमें वाष्पका खर्चा प्रति घंटा ३०० किलोज़ = ६६१ पौंड

यदि बायलर और वाष्प नलोंकी कार्यक्षमता ६०% मान ली जावे, तो बायलरको कमसे कम $\frac{६६१ \times १००}{६०}$ = ११०२ पौंड वाष्प प्रति घंटा देनी चाहिये।

∴ १ दिन अर्थात् ८ घंटेमें वाष्पका खर्चा=८८१६ पौंड

यदि एक पौंड कोयला औसतन ८ पौंड वाष्प तयार करनेकी क्षमता रखता हो तो एक दिनमें $\frac{८८१६}{८}$ = ११०२ पौंड कोयला खर्च होगा।

∴ १ महीने अर्थात् २६ दिनमें कोयलेका खर्चा = ११०२ × २६ = २८६५२ पौंड = ३५० मन

यदि कोयलेका भाव = ।।≡) मन होवे

तो मासिक खर्चा = $\frac{३५० \times ११}{१६}$ = २४०) रु०

पानीके पंपोंको चलानेके लिये मोटरोंकी शक्तिका अनुमान—

(क) बायलरमें पानी देनेके लिये मोटर—

वाष्पका एक घंटेमें खर्चा ...	६६१ पौंड
वाष्पकी बरबादी इत्यादि १०%के हिसाबसे	६६ पौंड
योग =	७२७ पौंड

∴ एक घंटेमें पानीका खर्चा = ७२७ पौंड

∴ एक दिनमें पानीका खर्चा = ७२७ × ८ = ५८१६ पौंड अथवा कहिये ५८२० पौंड

यदि इस पानीको पंपके द्वारा ११० फीटकी ऊँचाईपर फेंकना आवश्यक हो तो एक दिनमें ५८२० × ११० = ६४०२०० फुट पौंड कार्य करना होगा।

मान लीजिये यह पानी सबका सब एक ही घंटेमें ऊपर

फेंक दिया जावे तो मोटरको एक मिनटमें = $\frac{६४०२००}{६०}$ फुटपौंड कार्य करना होगा।

यदि मोटर और पंपकी सम्मिलित कार्यक्षमता ६८% हो तो हमें मोटरमें $\frac{६४०२०० \times १०० \times १}{६० \times ६८ \times ३३०००}$ = ·४७५ अश्वबल अथवा ½ अश्वबल लगाना पड़ेगा अतः हमें इस कामके लिये ½ अश्वबलकी मोटरकी आवश्यकता होगी।

(ख) तेलको ठंडा करनेके लिये पानीका खर्चा—

= १२ घन मीटर प्रति घंटा

= १२ × ३·२८१ × ३·२८१ × ३·२८१ × ६२·५

= २६५०० पौंड प्रति घंटा

यदि यह पानी पंपके द्वारा १४० फीट ऊँचा उठाया जावे तो, एक घंटेमें पंपके द्वारा २६५०० × १४० फुट पौंड कार्य होगा। और एक मिनटमें $\frac{२६५०० \times १४०}{६०}$ फुट पौंड कार्य होगा।

यदि पंप और मोटर दोनोंकी सम्मिलित कार्यक्षमता ६८% हो तो उक्त कार्यको करनेके लिये पंपको $\frac{२६५०० \times १४० \times १००}{६० \times ६८ \times ३३०००}$ = २·७५५ अ० ब० शक्ति लगानी पड़ेगी।

अतः हमें २¾ अ० ब० की मोटरकी आवश्यकता होगी।

पानीकी टंकी १२ फुट लम्बी, १२ फुट चौड़ी और ८ फुट गहरी होनी चाहिये, इतनी बड़ी टंकीमें ५४०० गैलन पानी समा सकता है। ढाले हुए लोहेकी ऐसी टंकी २०००) में बनकर तयार हो सकती है। इसमें फिटिंगका खर्चा भी शामिल है।

मोटरोंके लिये शक्तिका खर्चा—

(क) कारखानेकी मोटर—१० अ० ब०

एक दिनका खर्चा = $\frac{१० \times ७४६ \times ८}{१०००}$

∴ एक महीनेका खर्चा = $\frac{१० \times ७४६ \times ८ \times २६}{१०००}$

= १५५२ यूनिट

(ख) वायलटमें पानी देनेकी मोटर—

मोटरका अश्वबल = ½

एक दिनमें शक्तिका खर्चा एक घंटा प्रतिदिनके हिसाबसे | = $\frac{७४६}{२ \times १०००}$

एक मासका खर्चा = $\frac{७४६ \times २६}{२ \times १०००}$

= ९·६ अथवा १० यूनिट

(ग) तेलको ठंडा करनेके लिये पंपकी मोटर—

मोटरका अश्वबल = २¾

एकदिनमें शक्तिका खर्चा = $\frac{११ \times ७४६ \times ८ \times २६}{४ \times १०००}$

= ४२७ यूनिट

∴ कुल शक्तिका योग = १५५२ + १० + ४२७

= १९८९ यूनिट

यदि एक यूनिटकी लागत ≡) पड़ती हो तो

∴ १९८९ यूनिटोंकी लागत = $\frac{१९८९ \times ३}{१६}$ = ३७३ रु० अथवा ३७५) होगी।

बटनोंका निर्माण

(पं० ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम्० आई० एल्० ई०, जे० एस्० एम्० आई, जयपुर)

भारतीय डायरेक्टरीको देखनेसे पता चलता है कि भारतवर्षमें बटन बनानेके कारखाने कुछ उँगलियोंपर गिनने लायक हो हैं। हमारी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये बटन बिदेशोंसे ही आते हैं। भारतीय बटन तो उनके सामने आटेमें नमकके बराबर भी नहीं होते। १९३०-३१में बटनोंकी आयात निम्न प्रकार हुई।

बटनोंकी जाति	केवल करांचीकी मारफत	भारतमें कुल बटनोंकी आयात
धातुके बटन	१६०६८ रु०	६६९४१३ रु०
अन्य प्रकारके बटन	१९२६९० रु०	१११७६६५ रु०

बटन कई प्रकारके पदार्थोंसे बनाये जाते हैं जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं। गलालियथ, कोरोज़ो, सीप, हाथी दांत, हड्डी, सींग और अलम्यूनियम, टीन, पीतल और तांबा आदि। अधिकतर जो बटन हमारे देशमें विदेशोंसे आते हैं वे यातो गलालियथके होते हैं या कोरोज़ोके। कोरोज़ो दक्षणी अमेरिकामें उगनेवाला एक पौदा है, और गलालियथ एक रासायनिक पदार्थ है।

भारतवर्षमें सींग बड़ी अधिकतासे मिलता है अतः यहाँ इसीके बटनोंके बनानेकी एक योजना दी जाती है। इस योजनामें जिन मशीनोंका जिकर है उनमें थोड़ीसी मशीनोंको छोड़कर बाकी सब ऐसी हैं कि धातुके बटनोंके अतिरिक्त अन्य प्रकारके बटनोंके निर्माणमें भी काम आ सकती हैं। क्योंकि उन सबकी निर्माण विधि लगभग एक सी ही है।

सींगके बटनोंके लिये कच्चा माल

दुनियांभरमें भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जिसमें उत्तम प्रकारका सींग प्रचुर मात्रामें मिल सकता है यहांके सींगोंमें जो गहराई और नाना प्रकारके रंगोंकी सुन्दर झांइयां निकलती है वह अन्य देशोंके सीगोंमें नहीं निकलती। भैंसेका सींग सबसे उत्तम होता है। यहां यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि हाथसे तयार किये हुए सींगके बटन बड़े कीमती होते हैं, इसलिये यदि कोई बड़ा कारखाना खोला जाय जिसमें आधुनिक प्रकारकी मशीनें लगायी जावें और उनसे बहुत अधिक मात्रामें बटन तयार किये जावें तो अवश्य ही विदेसी बटनोंसे जो कि हमेशा बहुत घटिया हुआ करते हैं बहुत सस्ते पड़ेंगे।

संक्षिप्त निर्माण विधि—प्रत्येक सींग नोकके पाससे तो ठोस होता है और आगे चलकर पोला होजाता है। कुल सींगका लगभग १/४ भाग तो ठोस होता है जिसमेंसे एकदम खराद कर बटन बना लिये जाते हैं और ३/४ भाग पोला होता है जिसके बटन बनानेके लिये कई प्रकारकी क्रियायें करनी होती हैं जिनका यहाँ वर्णन किया जावेगा। पोले भाग द्वारा बनाये बटनोंको अकसर पोरलिटा (porlitta) बटन कहते हैं।

सबसे पहिले तो सींगको लेकर उसके ठोस भागको पोले भागसे आरी द्वारा काट कर जुदा कर दिया जाता है और फिर पोले भागको सबसे पतले स्थानसे गोल आरी द्वारा चीर देते हैं। इस प्रकारसे चीरे हुए सींग गरम पानीमें डाल दिये जाते हैं। कुछ समयतक उन्हें भीगने देते हैं। काफी भीग चुकनेपर उन सीगोंको जलकी शक्तिसे चलनेवालों प्रेसोंमें गरम और ठंडे प्लेटोंमें दबाकर सीधा कर लिया जाता है। इन सीधे किये हुए प्लेटोंको उपयोग करनेके पहिले रंगतके अनुसार छाँट लिया जाता है और फिर उन्हें कुछ घंटोंतक पानीमें फिर भिगो दिया जाता है। फिर छेद करनेके प्रेसमें उनकी टिकलियाँ काट ली जाती हैं और फिर आवश्यकतानुसार उन टिकलियोंको या तो खरादा जाता है अथवा दबाया जाता है अथवा उनपर ठप्पेके द्वारा डिज़ाइन बना दिये जाते हैं यह सब काम नरम हालतमें ही कर लिये जाते हैं। फिर उन्हें सुखाकर उनपर मशीनोंसे पालिश आदि कर ली जाती है।

आवश्यक मशीनें—

१०० ग्रोस बटन प्रतिदिन निकालनेके लिये निम्नलिखित मशीनोंकी आवश्यकता पड़ेगी जिनमेंसे ❀ निशान लगी मशीनें बहुत आवश्यक हैं और अन्य पीछे भी मँगवायी जा सकती हैं।

आवश्यक मशीनें—

❀१—२ आदी, गोल ...	३३६ रु०
२—१ पानीकी शक्तिसे चलनेवाला प्रेस	१८०८ रु०
३—१ बैलट वाष्प तयार करनेके लिये	१०५० रु०
❀४—४ टिकिया काटनेकी मशीनें ...	१९५२ रु०
❀५—६ खराद मशीनें ...	२४०० रु०
❀६—१ ठप्पा लगानेके लिये प्रेस डाई सहित	४१२ रु०
❀७—३ बरमा मशीनें ...	४९८४ रु०
❀८—पालिश करनेके पहिले बटनोंको माँजनेकी ४ मशीनें ...	१३१२ रु०
❀९—बटनोंको पालिश करनेके २ ढोल ..	६५६ रु०
१०—बढ़िया दरजेकी पालिश करनेकी २ मशीनें	४७२ रु०
११—१ साण, औजारोंके धार लगानेके लिये	२४० रु०
१२—फालतू पुरजे ...	४०० रु०
१३—मोटर, धुरा और अन्य आवश्यक सामान	१५०० रु०
योग—	७५२२ रु०

कारखानेकी इमारत—कारखानेके लिये ६० फुट

लम्बी और २५ फुट चौड़ी जगहकी आवश्यकता होगी, इतनी बड़ी आरेके दाँतनुमा छतकी इमारत ४५०० रु० में तयार हो सकती है।

कार्यकर्ताओंका वार्षिक व्यय—

१ विशेषज्ञ, वेतन १५० रु० मासिक	१८०० रु० वार्षिक
१ फोरमैन, वेतन ७५ रु० मासिक	९०० रु० वार्षिक
२० कारीगर, वेतन २० रु० मासिक	४८०० रु० वार्षिक
२ बाबू, वेतन ७५ रु० मासिक	१८०० रु० वार्षिक
योग—	९३०० रु० वार्षिक

वार्षिक खर्चा—

१—सींग १४४० मन ६ रु० मनके भावसे		८६४० रु०
२—वेतन कार्यकर्त्ताओंका	...	९३०० रु०
३—बिजलीकी शक्ति	...	५४०० रु०
४—किराया कर और चुंगी आदि	...	५०० रु०
५—मरम्मत	...	१००० रु०
६—मशीनोंकी छीजन, १०% के हिसाबसे		१८०० रु०
७—इमारतकी छीजन, २% के हिसाबसे		१०० रु०
८—फुटकर खर्च	...	६००० रु०
	योग—	३२७४० रु०

वार्षिक आमदनी—

एक वर्षमें ३०००० ग्रोस बटन तयार हो सकते हैं। यदि १ रु० ८ आ० प्रतिग्रास भी कमीशन आदि देकर बेचा जावे तो एक वर्षकी बिक्री ४५००० रु० होगी।

अतः वार्षिक लाभ १२२६० रु० होगा।

ऐंठनदार काँचकी चूड़ियोंका बनाना

[पं० ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम्० आई० एल्० ई०, जे० एस्० एम० आई, जयपुर]

पाठकगण ऐंठनदार काँचकी चूड़ियोंसे अवश्य ही परिचित होंगे। उनके भीतर तरह-तरहके रंगके डोरे पड़े होते हैं, इसलिये वे बड़ी सुन्दर मालूम पड़ती हैं और इसीलिये उनकी बिक्री भी खूब होती है। यहाँपर उस प्रकारकी चूड़ीके टुकड़ेका चित्र भी दिखाया है। चित्रमें, रंगोंके डोरे बतानेके बदलेमें दो तरहकी बिन्दु रेखायें बना दी गई हैं। देखिये ऊपरका चित्र।

सन् १९३३ ई०में अजमेर नगरमें श्रीदयानंद निर्वाण अर्ध शताब्दीके अवसरपर जो औद्योगिक प्रदर्शनी हुई थी, उसमें पूनाकी तरफके, काँचकी चूड़ी बनानेवालोंकी एक दुकान आयी थी। उसका नाम तो मैं भूल रहा हूँ। उस दुकानवाले ऐंठनदार चूड़ियाँ वहीं बनाते और बेचते थे, और बनानेकी क्रियाओंका प्रदर्शन जनताके सामने भी करते थे। चूड़ियाँ सुन्दर होनेके कारण खूब बिकती थीं। मुझे भी वह प्रदर्शन देखनेका अवसर मिला और उनका कार्य उपयोगी और मनोरंजक जान पड़नेके कारण मैंने उसे कई बेर ध्यानसे देखा। यहाँ उन क्रियाओंका सचित्र वर्णन कर रहा हूँ, आशा है कई पाठकोंको, जो किसी लाभप्रद और सस्ते हुनरकी तलाशमें हैं उपयोगी सिद्ध हो।

चूड़ियोंका मुख्य अंश पारदर्शक सफेद काँचका बनाया जाता है और उसमें लाल, पीले, हरे, नीले और दूधिया रंगके अपारदर्शक काँचके डोरे डाले जाते हैं। इन सब प्रकारके काँचोंके ढेले जो वजनमें आध सेरसे लेकर एक सेरतक होते हैं, वे लोग फीरोजाबाद आदि स्थानोंसे तयार मँगवा लेते हैं। यही उनका कच्चा माल होता है।

आवश्यक औजार—

१—दो-चार लोहेकी सलाखें जो करीब ½" मोटाईमें गोल और लगभग ३ फुट लम्बी हों। उनके एक सिरेपर लकड़ीका दस्ता होना चाहिये और दूसरे सिरेपर उसे पीटकर जरासा फैला देना चाहिये अथवा खाँचा काटकर उसमें जरा सी आँकड़ी बना देनी चाहिये जिससे काँच उसमें जमकर अटक जावे। इनको वे लोग **आँकड़ी** ही बोलते हैं।

२—एक या दो लोहेके तारके सीधे टुकड़े जो लगभग एक सूत (⅛") मोटे हों और एक फुट लम्बे हों और उनके एक सिरेपर गले हुए काँचको पकड़नेके लिये आँकड़ी

सी बनी हो। इसे वे लोग तकली कहते हैं। यह तकली छतरीकी तीलीसे बड़ी अच्छी बनायी जा सकती है। और इसका छेद्वाला छोटा सिरा जो बिना घुंडीका होता है आँकड़ीका बड़ा अच्छा काम दे सकता है।

३—लगभग आधे दरजन चिकनी मिट्टीके शुन्डाकार (conical) साँचे जो लगभग २ फुट लम्बी और ½" गोल लोहेकी सलाखके एक सिरेपर लगे हों और दूसरे सिरेपर लकड़ीका दस्ता लगा हो। लकड़ीका दस्ता हमेशा लगाना आवश्यक नहीं होता, नवसिखियोंके लिये आवश्यक है। इस औजारको वे लोग कालवुत कहते हैं। देखिये चित्र सं० ८,९ और १० में कालवुतका उपयोग हो रहा है।

४—भट्टी—काँचको तपानेके लिये जैसी भट्टीकी आवश्यकता पड़ती है, वह चित्र सं० १ में दिखायो है। इस भट्टीकी कुल उँचाई, पेंदेसे लेकर, लगभग एक गज होती है और चौड़ाई भी लगभग एक ही गज होती है। यह भट्टी कटे हुए शुन्ड (frustrum of cone) के आकारकी मिट्टी और ईंटोंसे बनायी जाती है। इसके ऊपरका सिरा खुला होता है जो एक शिलासे ढक दिया जाता है।

भट्टीमें ऊपर और नीचे २ खंड होते हैं और उन खंडोंके बीचमें एक गोल छज्जा होता है। नीचेके खंडमें एक दरवाजा होता है जिसमेंसे जलानेके लिये लकड़ी वगैरा डाली जाती हैं। लकड़ी और कोयलेके जलनेके लिये लगभग एक फुट गहरी जमीन खोदकर स्थान बनाया जाता है। देखिये, चित्रमें यह गड्ढा गोलाईमें खोदकर बताया है।

इस भट्टीमें एक विशेषता यह होती है कि उसमें धूआँ नहीं होने पाता, क्योंकि पाठक चित्रमें देखेंगे कि आगकी लपटोंके साथमें जो धूआँ उठता है वह भट्टीके शुन्डाकार होने और ऊपर छज्जा होनेके कारण वापस लौटकर आगकी तरफ जाता है जहाँपर वह गरमीके कारण सब जल जाता है। धूआँका न होना यहाँ बहुत आवश्यक है।

चित्र सं० १

ऊपरके खंडमें तीन तरफ तीन दरवाजे बने होते हैं और चौथी तरफ जिधर नीचेकी ओर लकड़ी झोंकनेका दरवाजा होता है उधर ऊपरके खंडमें, कोई दरवाजा नहीं बनाया जाता। जब दो आदमी काम करते हैं तब उपरोक्त बंद हिस्सेके सामनेका दरवाजा किसी शिलासे ढक दिया जाता है जैसा कि चित्रमें दिखाया है। भट्टीका चित्र कुछ-कुछ पैमानेमें बनाया गया है जिससे पाठकोंको उसके भिन्न-भिन्न भागोंका अंदाजा हो जावे। चित्रका पैमाना, लगभग १ इंच बराबर एक फुटके है।

चूड़ी बनानेकी क्रियाएँ

(डोरे डालनेकी तयारी)

क्रिया १—जिस ही रंगके डोरे डालने हों उसी रंगके काँचके एक ढेलेको भट्टीके ऊपर रखी शिलापर डाल देते हैं, देखिये चित्र सं० २ में "क"। लगभग २० मिनट तक वह काँच वहाँ पड़ा रहने से धीरे-धीरे काफी गरम हो जाता है।
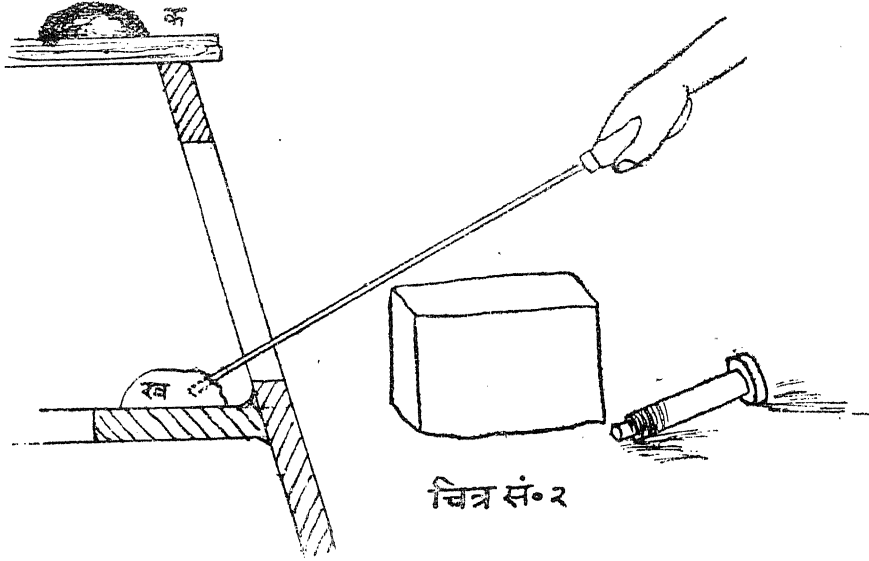
चित्र सं० २

क्रिया २—उपरोक्त काँचको, काफी गरम हो जानेके बाद किसी चिमटेसे पड़कर ऊपरके खंडके दरवाजेमेंसे छज्जेपर भट्टीके भीतर रख देते हैं। देखिये चित्र सं० २ में "ख"। और उसी समय पहली क्रियाके अनुसार दूसरा नया ढेला शिलापर गरम होनेको रखदिया जाता है। छज्जेपर रखा हुआ काँच जब गेहुँआ रंगका लाल हो जाता है तब वह मोमके मुआफिक मुलायम होजाता है।

क्रिया ३—मुलायम हो जानेपर उसमें लोहेकी आँकड़ी घुसेड़कर, उसे बाहिर निकाल लेते हैं। देखिये चित्र सं० २ बाहिर निकालकर पासमें ही पड़े हुए एक चौकोर पत्थरपर रखकर लोहेकी मोगरीसे कूटकर उसे मूलीकी शकलमें लानेकी चेष्टा करते हैं। जैसा कि चित्र सं० ३में दिखाया है। यहाँपर यह ध्यान रखा जाता है कि मूली तो गोल होती है लेकिन हमें उसे चौकोर बनाना होता है। दूसरी बात यह है कि काँचको पत्थरपर रखकर कूटनेसे वह ठंडा होने लगता है और ठंडा पड़नेके कारण वह चटखने लगता है, इसलिये उसे अधिक ठंडा न होने देकर बारबारमें चित्र सं० ४ में दिखाये अनुसार तपाते रहना चाहिये।

चित्र सं० ३

क्रिया ४—जब कि तपाते तपाते और कूटते-कूटते काँचकी बत्तीकी नोंक चित्र सं० ४की भाँति पतली होकर लाल सुर्ख होजावे और मुलामम होनेके कारण नीचेको झुकने लगे तब, उसको जरासा दरवाजेसे बाहिर निकाल
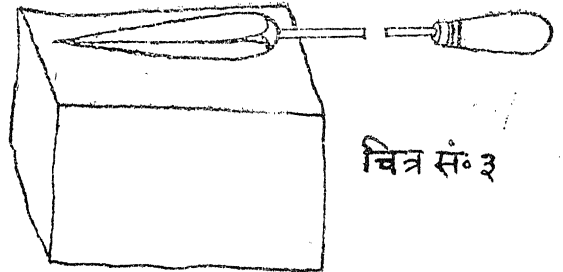
कर, उसमें तकलीकी नोंक फँसा देनी चाहिये और फिर उस बत्तीको दरवाजेके भीतर तपाते हुए, तकलीको धीरे-धीरे बाहिरकी तरफ खींचना चाहिये। देखिये चित्र सं० ५। बाहिर खींचनेसे काँचका तार खिंचता हुआ चला आवेगा और बत्तीको दरवाजेपर रखनेसे उसकी गरमी भी कम न होगी। आरम्भमें तार खींचते समय तो बत्ती बनानेवालेको
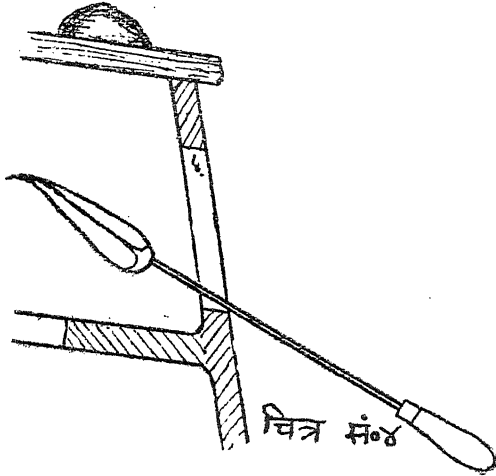
ही एक हाथमें बत्तीकी आँकड़ी थामकर दूसरे हाथसे तार खींचना चाहिये। लेकिन दो फुटके लगभग खींच चुकनेपर तकली दूसरे आदमी को थमा देनी चाहिये। यदि वह दूसरा आदमी होशियारीसे तार खींचे तो दस-बारह फुट तक लम्बा तार खींच सकता है।

सूचना—तार खींचनेवालेको तार खींचते समय अपने हाथको दायें-बायें और आगेपीछे जरा सा हिलाना पड़ता है और अबाधित गतिसे पीछेकी तरफ सरकना भी पड़ता है लेकिन वह किस प्रकार और कितनी तेजीसे हो यह बात केवल अभ्याससे ही आ सकती है। ऐसा करनेसे तार नहीं टूटता। दूसरी बात यह ध्यानमें रखनेकी है कि तारको जितना ही लम्बा खींचा जाता है उतना ही उसमें झोल पड़ता जाता है अतः इससे उसके टूटनेका डर रहता है। उसे झोलके कारण टूटनेसे बचानेके लिये भट्टीमें जलानेकी ही साफ, चिकनी और गोलगोल लकड़ियाँ एक-एक अथवा डेढ़-डेढ़ फुटके फासलेपर जमीनमें रख दी जाती है और काँचके तारको उनपर टिकता हुआ खींचा जाता है जिससे उसमें झोल न पड़ने पावे।

इस तारकी आकृति चपटी होगी, जिसकी चौड़ाई लगभग $\frac{1}{16}$" और मोटाई लगभग $\frac{3}{16}$" होगी। देखिये चित्र सं० ५।
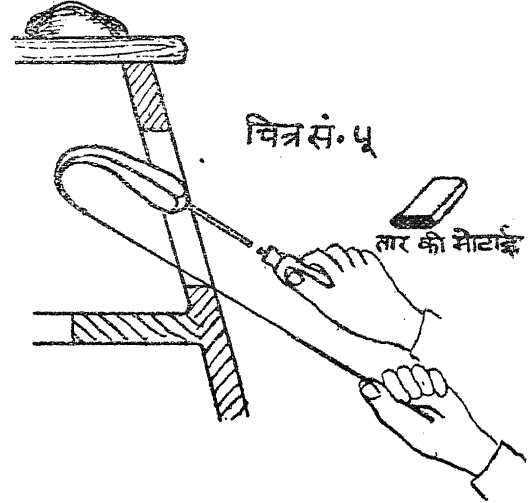
क्रिया ५—आवश्यकतानुसार जितनी भी मात्रामें और जितने भी रंगके तार खींचने हों उतने खींचकर, उस सबके लगभग चार-चार इंचके टुकड़े काट लेने चाहिये और एक किसी डिब्बेमें उपयोगके लिये रख छोड़ना चाहिये। काटनेका काम छः इंच लम्बी एक तिकोरी रेतीसे किया जा सकता है।

(चूड़ीके लिये काँच तयार करना और उसमें रंगीन डोरे डालना)

क्रिया ६—पहिले कहा जा चुका है कि चूड़ीका मुख्य भाग पारदर्शक सफेद काँचका बनाया जाता है और उसके भीतर अपार दर्शक काँचके डोरे डाल दिये जाते हैं। अतः अब चूड़ी तयार करनेके लिये सफेद काँचका एक ढेला, भट्टीके ऊपरवाली शिलापर, गरम होनेके लिये रख दिया जाता है। जैसे चित्र सं० २में "क" स्थानपर दिखाया है।

क्रिया ७—उपरोक्त काँचका ढेला जब काफी गरम हो जाता है तब वह चिमटेसे उठाकर भट्टीके भीतर छज्जेपर रख दिया जाता है, जैसा चित्र सं० २ में "ख" स्थानपर दिखाया है।

क्रिया ८—वहाँपर जब वह गेहूँआ रंगका लाल होकर मुलायम हो जाता है तब उसमें आँकड़ी घुसेड़कर जैसा कि

चित्र सं० २में बताया है बाहर निकाल लेते हैं और उसे पत्थरपर रखकर एक मोगरीद्वारा कूट-कूटकर और बारबार तपाकर लगभग ६" लम्बी, ४" चौड़ी और ½" मोटी सिल्लीके रूपमें बना लेते हैं और उस हालतमें उसके एक किनारेमें आँकड़ी भी लगी रहती है।

क्रिया ९—सिल्ली तयार हो जानेपर उसे फिर तपाया जाता है और फिर उसे चित्र सं० ६में दिखाये अनुसार, बीचमेंसे ऊपरकी तरफ आधा मोड़ देते हैं, जैसे आधी खुली हुई किताब हो।
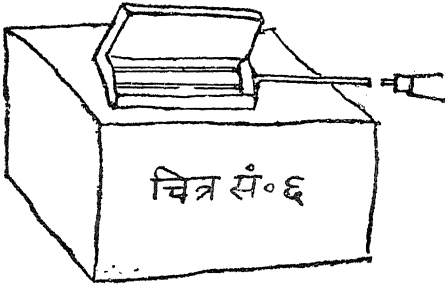
चित्र सं० ६

क्रिया १०—सिल्लीको मोड़नेके बाद उसे फिर तपाकर गेहूँआँ रंगका लाल कर लिया जाता है और फिर उसे भट्ठीके बाहर अधर थामकर, उसके आड़े भागके ऊपर दो अथवा तीन रंग काँचके तारके टुकड़े, जो पहिले ही तयार कर लिये थे, इच्छानुसार, समानान्तर रख दिये जाते हैं। देखिये चित्र सं० ६।

क्रिया ११—इतना करते-करते उसकी गरमी फिर कुछ ठंडी पड़ जाती है अतः उसे फिर तपाकर उसके खड़े परतको पत्थरपर मोगरीसे कूटकर मोड़ देते हैं। देखिये चित्र सं० ७।
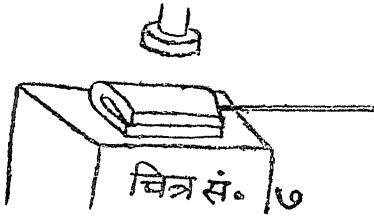
चित्र सं० ७

क्रिया १२—इसके बाद उस काँचकी सिल्लीको बार बार तपाकर और कूट-पीसकर चित्र सं० ३में दिखाये अनुसार बत्ती बना ली जाती है।

क्रिया १३—जब वह बत्ती चित्र सं० ४की भाँति ठीक हो जाती है तब उसकी पतली नोंकमें तकली फँसाकर चित्र सं० ५ और क्रिया सं० ४के अनुसार तार खींचना चाहिये। लेकिन इस बार तार खींचनेमें यह विशेषता होगी कि तकलीको सीधा नहीं खींचकर, एक सा घुमाते अर्थात् बल देते हुए खींचना पड़ेगा। इसका नतीजा यह होगा कि काँचके तारमें भी बल पड़ जावेंगे। यह तार भी १० अथवा १२ फुट लम्बे खींचे जा सकते हैं।

क्रिया १४—आवश्यक मात्रामें तार खींच चुकनेके बाद जिस-जिस नापकी चूड़ियाँ बनानी हों उन ही की (circumference) परिधिके बराबर टुकड़े किसी तिकोरी छोटी रेतीकी सहायतासे काट लेने चाहिये।

यहाँतकका सब काम तो तार खींचनेवाले और उसके सहायकद्वारा ही किया जाता है, और वह भी भट्ठीके एक दरवाजेकी तरफ ही होता है। अब इससे आगेकी क्रियाएँ अर्थात् चूड़ीको गोल करनेकी क्रियाएँ भट्ठीके दूसरे दरवाजेसे होती हैं अतः नीचे उनका वर्णन किया जाता है।

चूड़ीको गोल करनेकी क्रियाएँ

क्रिया १५—उपर्युक्त क्रियाओंद्वारा तयार किया हुआ चूड़ीके तारका एक टुकड़ा भट्ठीके छज्जेपर रख दिया जाता है और दो-तीन मिनट बाद जब वह गरम होनेके कारण
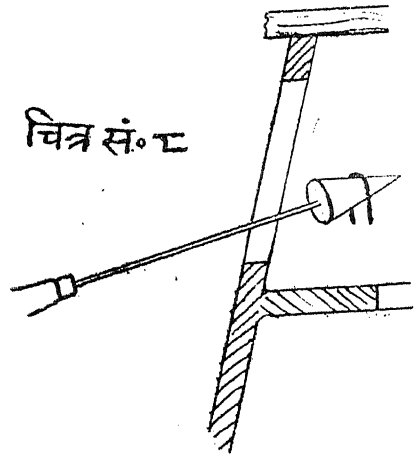
चित्र सं० ८

कुछ मुलायम हो जाता है तब एक चिमटेसे पकड़कर कालबूतके साँचेपर, जैसा कि चित्र सं० ८में दिखाया है, दोनों तरफ लटकता हुआ रख दिया जाता है। और छज्जेपर एक दूसरा टुकड़ा गरम होनेको रख दिया जाता है।

क्रिया १६—लगभग ½ मिनटतक कालबूतपर, चित्र सं० ८की भाँति चूड़ीके तारको गरम करनेसे खासकर उसके लटकते हुए सिरे काफी मुलायम हो जाते हैं। उस समय लोहेकी एक सलाखसे उसके एक लटकते सिरेको उठाकर कालबूतपर ही दूसरे सिरेसे मिला दिया जाता है। देखिये चित्र सं० ९। इस प्रकारसे दोनों सिरे आपसमें जुड़ जाते हैं।
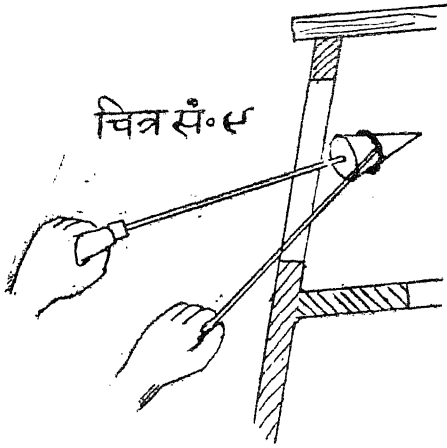
क्रिया १७—अब चित्र सं० १०की भाँति, चूड़ीको "क" स्थानमें रखते हुए कालबूतको दरवाजेके भीतर जोरसे घुमाना चाहिये जिससे चूड़ीकी गोलाई ठीक हो जाय, और फिर चित्रमें जैसे "ख" स्थानपर दिखाया है वैसे चूड़ीको कभी-कभी कालबूतपर बैठाकर देख लेना चाहिये कि वह सही नापपर आ गयी है या नहीं। यदि थोड़ी बहुत छोटी रह गयी हो तो उसे कालबूतके साथ फिर तेजीसे घुमाना चाहिये। भट्ठीके भीतर इस प्रकार तेजीसे घुमानेसे गरम होकर मुलायम होने और उसपर केन्द्रपराङ्मुख बल
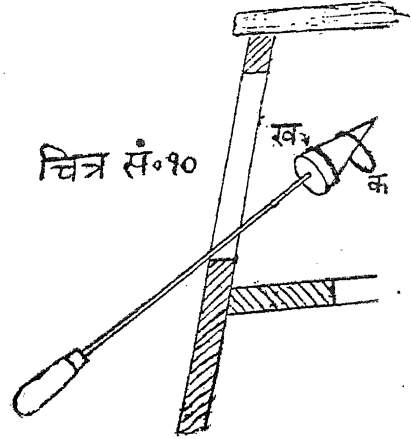
(centrifugal force) पड़नेके कारण थोड़ी सी बढ़ जाती है। जब चूड़ी सही नापपर आ जावे तब चूड़ीको बाहर निकालकर ठंडा होनेको किसी लकड़ीके तख्तेपर रख देना चाहिये चूड़ीको किसी ऐसी जगह नहीं रखना चाहिये जहाँपर वह एक दम ठंडी पड़ जावे नहीं तो वह चटख जावेगी।

सूचना—सीधे तारकी हालतसे चूड़ीकी सही हालतमें आनेतक २ मिनटसे अधिक समय नहीं लगना चाहिये, नहीं तो जो तार पहिलेसे गरम होनेको छज्जेपर रखे होंगे वे गलकर पानी हो जावेंगे।

साबुन बनानेका आसान तरीका

[श्री श्यामनारायण कपूर, बी० एस्-सी]

१. साबुन क्या है

जब तेजाबको किसी धातुपर छोड़ा जाता है तो एक प्रकारका नमक या लवण तैयार होता है। जैसे गन्धकके तेजाबको तपाये ताँबेपर छोड़नेसे जो नीला-नीला पदार्थ-नीलाथोथा-प्राप्त होता है एक प्रकारका नमक है। अब अगर यही तेजाब नमक, शोरे, गन्धक अथवा अन्य कोई खनिज अम्ल न होकर कोई मज्जिकाम्ल हो अर्थात् वह तेजाब हो जो साधारण तेलों और चर्बियोंमें बहुतायतसे मौजूद रहते हैं और ताँबेके बजाय, सैंधकम् (sodium) अथवा पाँशुजम् (potassium) धातु व्यवहारमें लायी जाय, तब इस प्रकारसे जो नमक तैयार होता है उसीको साधारण

भाषामें साबुन कहते हैं। 'पाँशुजम्' को काममें लानेसे 'मुलायम' साबुन और 'सैंधकम्' को काममें लानेसे 'सख्त' साबुन तैयार होता है। हम नित्य प्रति जिन साबुनोंको व्यवहारमें लाते हैं वे अधिकतर 'सैंधकम्'के ही यौगिकोंसे बनते हैं। किसी-किसीमें 'सैंधकम्'के साथ पांशुजम्का भी व्यवहार किया जाता है। परन्तु मामूली तौरपर पांशुजम्के साबुन अधिकतर वस्त्रव्यवसाय और अन्य उद्योगधन्धोंमें काममें लाये जाते हैं। आमतौरपर साबुन बनानेके लिये इन धातुओंके क्षार कास्टिक सोडा और कास्टिक पोटाश काममें लाये जात हैं।

साबुनके गुण केवल धातुओंपर ही निर्भर नहीं होते। उनपर मज्जिकाम्लोंके गुणोंका भी बहुत असर पड़ता है। सख्त साबुनोंके लिये 'अशोषक' (non-drying) और अर्धशोषक' (semi-drying) तेल एवं मज्जिकाम्ल व्यवहारमें लाये जाते हैं। गुल्लर (महुआ) और गोलेके तेल अशोषक तथा सरसों, तिल, रेंडी, मूँगफली, और बिनौलेके तेल अर्धशोषक होते हैं। शोषक तेलों जैसे अलसी कुसुम, पोस्ता रामतिल्ली और मछलीके तेलोंके साबुन बहुत मुलायम होते हैं। चाहे उनमें और सख्त साबुनोंकी मात्रा बराबर ही क्यों न हो। कहनेका तात्पर्य यह है कि साबुनका 'सख्त' अथवा 'मुलायम' होना उसमें मौजूद पानीकी मात्रापर निर्भर न होकर उसके बनानेमें लगे हुए तेलोंके गुणोंपर अधिक निर्भर होता है।

नित्यके व्यवहारमें आनेवाले साबुन कई श्रेणियोंमें बाँटे जाते हैं। यह श्रेणी विभाजन अधिकतर साबुनोंकी निर्माण पद्धतिके आधारपर किया जाता है। इस आधार-पर साबुन तीन श्रेणियोंमें विभाजित किये जाते हैं—

(१) ठण्डी रीतिसे तैयार किये गये साबुन (cold process soaps)

(२) अधऔंटे साबुन (scmi-boiled soaps)

(३) औंटे हुए साबुन (full-boiled soaps)

प्रस्तुत लेखमें हम केवल प्रथम श्रेणीके साबुन बनानेकी विधिको समझानेकी कोशिश करेंगे।

२. ठण्डी रीतिके लाभ

इन तीनों विधियोंमें ठण्डी रीतिसे साबुन तैयार करना बहुत सरल एवं सस्ता है। इसमें धन, जन और समय तीनोंकी ही बचत होती है। इस विधिसे साबुन बनानेके लिये विशेष साधन जुटानेकी भी जरूरत नहीं पड़ती। परन्तु इस पद्धतिमें एक बड़ा ऐब भी होता है। तेल और (caustic alkali) क्षारकी यथोचित मात्राओंके होते हुए भी (saponification) साबुनीकरणकी क्रिया पूर्ण नहीं होती। स्वतंत्र तेल और स्वतंत्र क्षारकी कुछ न कुछ मात्रा अवश्य ही शेष रह जाती है। तेल अथवा कास्टिक के अधिक मात्रामें स्वतंत्र रह जानेसे साबुनमें अनेकों दुर्गुण पैदा हो जाते हैं। अधिक तेल छूट जानेपर साबुनके सड़नेकी सम्भावना होती है। कास्टिकके अधिक हो जानेपर साबुन बदन फाड़ देता है और कपड़ोंको कमजोर और कभी-कभी तो काट भी देता है। अस्तु इस विधिसे साबुन बनानेमें तेल और क्षारकी यथोचित मात्राएँ लेना परमावश्क है। इसके लिये साबुन बनानेवालेको प्रत्येक तेलके भिन्न-भिन्न रासायनिक गुणोंका ज्ञान होना आवश्यक है। इस विषयपर एक स्वतंत्र लेखमें प्रकाश डाला जायगा।

३. साबुनांक

फिर भी यहाँ इतना कह देना जरूरी है कि हरेक तेल और कास्टिक सोडाके संयोगसे साबुन तैयार हो सकता है, परन्तु इन विभिन्न तेलोंसे साबुन बनानेके लिये कास्टिक सोडाकी विभिन्न मात्राओंकी जरूरत पड़ती है। किसी तेलमें ज्यादा सोडा पड़ता है और किसीमें कम। इसी बातको वैज्ञानिक भाषामें इस तरह कहेंगे—प्रत्येक तेलका 'साबुनांक' (saponification number) अलग अलग होता है। कास्टिक सोडाकी मात्रा इसी 'साबुनांक' पर निर्भर होती है। अस्तु साबुन बनाना आरम्भ करनेसे पहिले यह मालूम कर लेना चाहिये कि हम जिस तेलसे साबुन तैयार करना चाहते हैं उसका 'साबुनांक' क्या है।

४. कच्चा-माल

साबुनकी तैयारीके काममें आनेवाले 'कच्चे माल'में (raw materials) तेल और कास्टिक सोडा मुख्य हैं। अच्छे साबुनके लिये यह निहायत जरूरी है कि ये दोनों ही चीजें बिलकुल शुद्ध हों। इनमें किसी भी तरहकी मिलावट आदि न हो। ठण्डी रीतिसे साबुन बनानेके लिये गोले और महुए अथवा गुल्लूके तेल सर्वोत्तम हैं। ये दोनों

तेल भारतवर्षमें प्रचुर मात्रामें पाये भी जाते हैं। उत्तरी भारतमें गोलेकी अपेक्षा गुल्लू या महुएका तेल अधिक सुलभ है। गोलेकी अपेक्षा यह कुछ सस्ता भी पड़ता है पर दोनोंके थोक भावमें बहुत ही थोड़ा फरक होता है। इन दोनों तेलोंके 'साबुनांक' काफी ऊँचे होते हैं अस्तु ये कास्टिक सोडाके गाढ़े घोलोंके संयोगसे साधारण तापक्रम ही पर साबुन बनानेमें समर्थ होते हैं। इन तेलोंमें होनेवाली साबुनीकरणकी क्रिया भी साधारण तापक्रमपर ही और थोड़े ही समयमें ६ से २४ घंटेतकमें पूरी हो जाती है। गोलेके तेलका साबुनांक महुएके तेलसे भी अधिक होता है। इस विशेष गुणके कारण कम साबुनांकवाले तेल जैसे मूँगफली और बिनौलेके तेल भी इसमें मिलाये जा सकते हैं और साधारण तापक्रम ही पर साबुन तैयार किया जा सकता है।

साबुन बनानेके लिये गोले अथवा महुएके तेलमें और कौनसे तेल मिलाये जांय इसका निश्चय तैयार किये जानेवाले साबुनके गुणों और तेलों एवं साबुनके मूल्यको ध्यानमें रखकर करना चाहिये, परन्तु आमतौरपर इन तेलोंमें ऐसे ही तेल मिलाये जाते हैं जिनका मूल्य गोले अथवा महुएके तेलोंसे कम हो और जिससे तैयार होनेवाले साबुनका मूल्य भी कम किया जा सके तथा उसके गुणोंमें भी कोई विशेष कमी न आवे। यदि बिलकुल सफेद साबुन बनाना हो तो मूँगफली एवं बिनौलेके तेलोंकी मात्रा १०–१५%से अधिक न रखनी चाहिये। रंगीन साबुनोंमें इसे अधिक भी रक्खा जा सकता है।

१०% तक रेंड़ीका तेल भी मिलाया जा सकता है। इससे साबुनकी सफेदीपर कोई असर न पड़ेगा और काफी सफेद साबुन तैयार होगा। साबुनीकरणकी क्रिया भी पूर्ण हो जायगी। परन्तु इस तेलमें एक बड़ा भारी दोष है। तुरंतके बने हुए साबुन तो बहुत अच्छे होते हैं परन्तु ३–४ महीनेके बाद उनमें दुर्गन्ध आने लगती है। साबुनके अन्दर होनेवाली रासायनिक क्रियाओंके कारण साबुनका रंग भी बिगड़ने लगता है। धीरे-धीरे सफेदी गायब हो जाती है। साबुन पीला पड़ जाता है और देखनेमें खराब मालूम होने लगता है। हाँ पारदर्शक साबुनों (transparent soaps) में रेंड़ीके तेलका व्यवहार अवश्य लाभदायक होता है। (Alcohol) अलकोहलकी मौजूदगीकी वजहसे यह उन साबुनोंमें दुर्गन्ध आदि उत्पन्न करनेमें असमर्थ हो जाता है।

५. तैयार करनेकी सामग्री और साधन

ठण्डी रीतिसे साबुन तैयार करनेमें किसी विशेष आयोजनकी जरूरत नहीं पड़ती। थोड़ेसे लोहेके बर्त्तनोंसे काम चल जाता है। कास्टिक सोडाका घोल लोहे अथवा काँचके बर्त्तनोंमें ही बनाना चाहिये। अन्य प्रकारके बर्त्तन कास्टिक सोडेके संयोगसे खराब हो जाते हैं। एक बात और ध्यानमें रखनी चाहिये। कास्टिक सोडाको भूलकर भी हाथसे न छुआ जाय और न सूखे अथवा घुले हुए कास्टिक सोडेको अपने कपड़ोंपर ही पड़ने दिया जाय। कास्टिक सोडा शरीर एवं कपड़ों दोनोंको ही काट देता है। घोल बनाते समय उसे लकड़ीसे चलाते रहना चाहिये। घोल बनानेमें गरम पानीके व्यवहारकी आवश्यकता नहीं है। जब कास्टिक सोडा पानीमें घुलता है तब उसमेंसे स्वयं बहुत काफी गर्मी पैदा होती है और उसे तेलमें छोड़नेसे पहिले ठण्डा हो जाने देना चाहिये। जिस बर्त्तनमें साबुन बनाया जाय वह तेल और सोडेकी सम्मिलित मात्रासे बहुत काफी बड़ा होना चाहिये। यदि लोहेके बर्त्तन आसानीसे न मिल सकें तो तामचीनीके बर्त्तन काममें लाये जाँय। ये काफी हलके होते हैं और इन्हें आसानीसे रक्खा उठाया जा सकता है। कास्टिक सोडाका इनपर कोई असर नहीं होता। परन्तु ये बर्त्तन केवल थोड़ी मात्रामें साबुन तैयार करनेके कामके होते हैं। प्रचुर मात्रामें साबुन तैयार करनेवालेको तो अपनी जरूरतके मुआफिक लोहेके बर्त्तन बनवा ही लेना चाहिये। हाँ, तेल अथवा कास्टिक सोडेके घोलको उडेलने आदिके लिये तामचीनीके बर्त्तन भले ही काममें ले आये जायँ। इन बर्त्तनोंके अलावा कास्टिक सोडाके घोलका घनत्व नापनेके लिये एक थर्मामीटर सरीखा ही आला अथवा घनत्वमापक भी रखना चाहिये। अँग्रेजीमें इसे हाइड्रोमीटर (hydrometer) कहते हैं। इसके एक सिरेको घोलमें डुबा देनेसे घोलका घनत्व आप ही मालूम हो जाता है। अपने कामके लिये इसकी सहायताके बिना भी साबुन तैयार हो सकता है। पर अधिक मात्रामें और अच्छे प्रकारका साबुन बनानेके लिये इसका उपयोग किया

जाना जरूरी है। इन चीजोंके अलावा साँचोंकी जरूरत पड़ती है। थोड़े साबुनके लिये लकड़ीके साँचोंसे काम चल जाता है पर प्रचुर मात्रामें साबुन बनानेवालोंको लोहेके साँचे व्यवहारमें लाने चाहिये। इन साँचोंमें वे चाहे लकड़ीके हों अथवा लोहेके एक बात जरूर ध्यानमें रखनी चाहिये। साँचे ऊँचे और तंग न होकर बड़े और चौड़े होने चाहिये। साबुन बनते समय रसायनिक क्रियाओंसे जो ताप उत्पन्न होता है चौड़े साँचोंमें वह साबुनमें समान रूपसे वितरित हो जायगा और साबुनीकरणकी क्रिया भली-भाँति पूरी हो जायगी।

६. साबुन कैसे बनाया जाय ?

ठण्डी रीतिसे साबुन तैयार करना बहुत कठिन काम नहीं है। वास्तवमें इस विधिसे साबुन तैयार करनेके लिये केवल तेलों और उनके लिये आवश्यक कास्टिक सोडाके घोलको साधारण तापक्रमपर भली-भाँति मिलानेहीसे साबुन तैयार हो जाता है। साबुनीकरणकी क्रियाको पूरा होनेमें एक या दो दिनसे अधिक समय भी नहीं लगता। किस तेलमें कितना कास्टिक सोडा लगेगा इसका पूरा-पूरा हाल साबुनांकसे मालूम होता है परन्तु हम यहाँ 'विज्ञान'के पाठकोंके लिये देशी तेलोंमें साबुन बनानेके लिये कितना सोडा लगता है इसकी एक सूची दे रहे हैं—

गोला	तेल का	१८–१८½	प्रतिशत भाग	कास्टिक सोडा
महुआ	”	१३·५–१३·८%	”	”
मूंगफली	”	१३·१–१४%	”	”
रेंड़ी	”	१२·५–१३·७%	”	”
बिनौला	”	१३·५–१४%	”	”

महुए और गोलेके तेल जाड़ोंमें जम जाते हैं। अस्तु साबुन बनानेसे पहिले उन्हें पिघला लेना चाहिये। यह ध्यानमें रहे कि तेल बहुत गरम न होने पावें, वे केवल पिघल जायँ। इन द्रवित तेलोंको साबुन बनानेवाले बर्त्तनमें रखकर धीरे-धीरे कास्टिक सोडाके घोलको छोड़ना शुरू करना चाहिये। कास्टिक सोडाकी मात्रा बिलकुल नपी तुली होनी चाहिये। न कम न ज्यादा। घोल बहुत पतला न होना चाहिये। आम तौरपर जितना तेल हो उससे आधे पानीमें कास्टिक सोडा घोलना चाहिये। जब तेलमें कास्टिक सोडा छोड़ा जाय, तब तेलको लकड़ीसे बराबर चलाते रहना चाहिये। सारा कास्टिक सोडा तेलमें पड़ जानेके थोड़ी देर बादतक बराबर चलाते रहना चाहिये। जब साबुन सीरेकी तरह खूब गाढ़ा पड़ जाय तब उसका चलाना बंद करना चाहिये। साबुन इतना गाढ़ा होना चाहिये कि उसपर चलानेवाली लकड़ीका निशान बन जाय। अगर निशान न बने या बनकर फौरन ही मिट जाय तब थोड़ी देरतक और चलाते रहना चाहिये। परन्तु बीच-बीचमें यह देखते रहना चाहिये कि साबुन गाढ़ा हुआ या नहीं। साबुनको बहुत ज्यादा देरतक चलाते रहना भी ठीक नहीं है। इस काममें १५से ३० मिनटसे अधिक नहीं लगते।

तेल पुराने रखे हुए होंगे तो उनमें सड़ाइंध (rancidity) उत्पन्न हो जानेकी सम्भावना रहेगी। इस सड़ाइंधका कारण तेलोंमें उत्पन्न होनेवाली अम्लता (free acidity) होती है। ऐसे तेलोंसे साबुन बनानेमें बहुत दिक्कत पड़ती है। भरसक ताजे तेल ही लेना चाहिये। लेकिन अगर पुराने तेलोंहीसे साबिका पड़ जाय तो निराश न होना चाहिये। पहिले इस प्रकारके तेलोंकी अम्लता (acidity) दूर कर लेना चाहिये। पहिले तेलमें कास्टिक सोडाका बहुत ही हलका घोल छोड़ना चाहिये। यह हलका घोल स्वतंत्र अम्लताको दूर कर देगा और अपने संयोगसे उसका साबुन बना देगा। यह साबुन तेलके पेंदेमें बैठ जायगा और स्वच्छ तेल ऊपर आ जायगा। इस स्वच्छ तेलको निथार कर साबुन बनानेके काममें लाना चाहिये। पेंदेमें बैठ जानेवाला साबुन और तेल भी साबुन बनानेके काममें लाया जा सकता है।

कास्टिक सोडाके साथ ही अगर थोड़ा सा कास्टिक पोटाश भी मिला लिया जाय तो साबुन और भी अच्छा बनेगा। कास्टिक पोटाशकी मौजूदगीसे साबुनकी सूरत शकल बहुत सुधर जायगी और उसमें फेना भी अच्छा आयेगा। तेल ही की भाँति इन दोनों पदार्थोंका भी अधिकसे अधिक शुद्ध होना आवश्यक है। अगर इनमें दूसरी चीजोंकी मिलावट हुई तो साबुनीकरणकी क्रिया पूरी न होगी। और अच्छा साबुन न बन सकेगा। इनके घोल न बहुत गाढ़े हों और न बहुत पतले। घोलमें कास्टिक सोडा या पोटाशकी मात्रा ३७–३५% से अधिक न होना चाहिये। बहुत ज्यादा गाढ़े होनेपर साबुन बहुत सख्त हो

जायगा और बहुत ज्यादा पतला हो जानेपर उसका बनना भी मुश्किल है। तेलसे आधा पानी या सोडासे तिगुना पानी घोल बनानेके काममें लाया जा सकता है।

ठण्डी रीतिसे साबुन तैयार करनेकी विधि वैसे तो बहुत आसान मालूम होती है परन्तु साबुन बनाते समय बहुत सावधानीसे काम लेना चाहिये। असावधानी करनेपर कभी भी सन्तोषजनक साबुन न बन सकेगा। कास्टिक सोडाकी मात्राके अधिक हो जानेपर साबुन बिलकुल बेकारसा हो जायगा। वह नहाने धोनेके मतलबका तो क्या कपड़े धोनेके मतलबका भी न रहेगा और अगर साबुनमें सोडा कम पड़ा और कुछ स्वतंत्र तेल बाकी रह गया तब साबुन शीघ्रही सड़ जायगा। न सड़नेपर भी उसे व्यवहारमें लानेकी इच्छा ही न होगी और न उससे कपड़े ही साफ हो सकेंगे।

अस्तु जब साबुन खूब गाढ़ा हो जाय तब उसे साँचोंमें भरदेना चाहिये। सांचोंका ढक देना भी जरूरी है। उनके चारों ओर कम्बल या टाटके टुकड़े लपेट दिये जाने चाहिये जिसमें रसायनिक क्रियाओंसे उत्पन्न होनेवाली गर्मी साबुनके अन्दर ही बनी रहे और साबुन बननेकी क्रिया पूरी हो सके। इसमें दो तीन दिन लगेंगे। दो तीन दिनके बाद सांचोंको खोलकर साबुन निकाल लेना चाहिये और लोहेके पतले तारकी सहायतासे काट लेना चाहिये।

७. रंग और सुगंध

अगर साबुनको सुगन्धित और रंगीन बनाना हो तो यह जरूरी है कि रंग और सुगन्ध दोनोंही कास्टिक सोडा छोडनेसे पहलेही तेलमें मिला दिये जांय। रंगको पानीमें घोलकर छान लेना चाहिये। ऐसा न करनेपर साबुनमें धब्बे पड़ जानेका डर रहता है। यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि साधारण बाजारू रंग जो कपड़े आदिके काममें आते हैं साबुनके उपयुक्त नहीं होते। साबुनके लिये विशेष प्रकारके रंग बाजारमें बने बनाये मिलते हैं। एनीलीनके रंगोंकी बहुत थोड़ी मात्रासे बहुतसा साबुन रंग जाता है। १ तोला एनिलीनका अच्छा रंग २-३ मन साबुनके लिये बहुत काफी होता है। जो रंग कास्टिक सोडा द्वारा खराब न हो उन्हें कास्टिक सोडाके घोलमें भी तैयार किया जा सकता है। साधारण तापक्रमपर ही बनाये जानेके कारण इस साबुनमें गर्मी या तापके प्रभावसे उड़जानेवाली सुगन्ध भी डाली जा सकती है। इन सुगन्धोंको जब साबुन गाढ़े पड़ने लगें तब मिलाना चाहिये और मिलानेके बाद भली भांति चला देना चाहिये। साँचेमें डालनेके बाद भी थोड़ी देर तक चलाना जारी रक्खा जा सकता है।

८. रजनका व्यवहार

अब कुछ दिनोंसे ठण्डी विधिसे तैयार किये जानेवाले साबुनमें (rosin) रजनका भी व्यवहार किया जाने लगा है। इससे साबुनीकरणकी क्रियाके पूर्ण होनेमें सहायता मिलती है और साबुनका टिकाऊपन बढ़ जाता है और उसमें सड़ाइंध सा दुर्गन्ध उत्पन्न होनेकी भी आशंका कम होजाती है। औंटे हुये साबुनोंमें तो आम तौरपर रजनका व्यवहार अवश्य ही किया जाता है। यदि साबुनमें रजन डालना हो तो उसे गरम करके पिघला लेना चाहिये और तेलोंके साथ मिला लेना चाहिये। सबको भली-भाँति मिलनेके बाद कास्टिक सोडा डालना चाहिये। रजन स्वयं एक अम्ल है। रजनका साबुन बनानेके लिये उसका १०-११% प्रतिशत भाग कास्टिक सोडा छोड़ना चाहिये।

९. भर्तीकी सामग्री (fillers)

अबतक हमने केवल विशुद्ध साबुन बनानेकी विधि बतलायी है। यह साबुन बाजारू साबुनहीके दामका पड़ेगा परन्तु मामूली सस्ते बाजारू साबुनसे कहीं अधिक अच्छा होगा। बाजारू साबुनमें उन्हें सस्ता बनानेके लिये नाना प्रकारकी उचित और अनुचित चीजें मिला दी जाती हैं। इनमें लकड़ीका बुरादा, चूना, सज्जी, मैदा, आटा, बेसन आदि-आदि नाना प्रकारकी चीजें मिली होती हैं। इनमेंसे अनेक तो फायदेके बजाय नुकसानही ज्यादा पहुँचाती हैं। साबुनको सस्ता बनाने और उसे कुछ विशेष कामोंके उपयुक्त बनानेके लिये भरतीकी चीजें छोड़ी जा सकती हैं। परन्तु उनका व्यवहार सावधानीके साथ किया जाना चाहिये। कपड़े धोनेके साबुनके लिये वाशिंग सोडा या सोडा कारबोनेट और सोडा सिलिकेट नामक पदार्थ बहुत उपयुक्त हैं। इनसे साबुनका टिकाऊपन बढ़ेगा, उसकी शकल भी अपेक्षाकृत अच्छी होगी और कपड़े भी अधिक साफ होंगे। इस प्रकारकी चीजें कास्टिक सोडा मिलानेके

बाद, साबुनको साँचेमें ढालनेके पहिले ही मिला लेना चाहिये। वाशिंग सोडा और सोडा सिलिकेट दोनों ही पानीमें घुल जाते हैं अस्तु पानीमें छोड़नेसे पूर्व उनके घोल तैयार कर लेना चाहिये और इन घोलोंको साबुनमें मिलाकर खूब अच्छी तरह चला देना चाहिये। जब साबुन और बादमें छोड़े हुए घोल भली भाँति मिल जायँ तब साबुन सांचेमें रक्खा जा सकता है।

१०. साबुन बनानेके कुछ नुसखे

ऊपर हम जो कुछ कह आये हैं उसकी सहायासे पाठक अपनी जरूरतके लिये साबुनका नुसखा अपने-आप तैयार कर सकते हैं। उन्हें किसी खास नुसखेके ऊपर निर्भर रहनेकी आवश्यकता न पड़ेगी। जिन तेलोंका साबुन बनाया जाय उन्हींके हिसाबसे कास्टिक सोडाका घोल तैयार कर लें। तेलोंके निर्वाचनमें उनके मूल्य और तैयार होनेवाले साबुनके मूल्यसे सहायता मिल सकती है। फिर भी इनमें महुए और गोलेके तेलकी काफी मात्रा होनी चाहिये। अस्तु हम यहाँपर केवल थोड़ेसे व्यवहारिक नुसखे दे रहे हैं—

गोलेके तेलका विशुद्ध साबुन

(१)	गोलेका तेल	१००
	पानी	५०
	कास्टिक सोडा	१८

इसी साबुनको सस्ता और कपड़े धोने लायक बनानेके लिये इसमें जरूरतके मुआफिक वाशिंग सोडा और सोडा सिलीकेटके घोल मिलाये जा सकते हैं। साबुनका वजन बढ़ानेके लिये पानीकी मात्रा कुछ बढ़ायी जा सकती है। लेकिन बहुत ज्यादा पानी मिलानेसे साबुनका जमना मुश्किल हो जायगा।

(२)	गोलेका तेल	४०—(७·२)
	महुएका तेल	५०—(६.६५)
	रेंडीका तेल	१०—(१.३)
	कास्टिक सोडा	१५.२
	पानी	५०

तेलोंके सामने कोष्ठकोंमें उनके लिये लगनेवाले कास्टिक सोडाकी मात्रा दे दी गयी है। वाशिंग सोडा और सिलिकेट इसमें पूर्ववत मिलाये जा सकते हैं। विशुद्ध साबुन नहाने धोनेके लिये भी अच्छा है।

(३)—	रेंडीका तेल	१०
	मूँगफली या तिलका तेल—	१५
	गोलेका तेल—	५०
	महुआ—	२५

इसमें पड़नेवाले पानी और कास्टिक सोडेकी मात्रा पाठक आप निकाल सकते हैं। यह साबुन नहाने-धोनेके काममें भी लाया जा सकता है।

आँखोंकी रक्षा, बिना किसी खर्चके

[रामदास गौड़]

आँखोंसे अधिक कीमती दुनियामें कोई चीज नहीं। खोयी हुई दृष्टि फिर नहीं मिलती। इसलिये उसकी रक्षाका उपाय जितनी ही जल्दी किया जाय उतना ही अच्छा है। अपनी देखनेवाली ताकत जब रूठकर सारे उपायोंकी पहुँचसे बाहर चली जायगी तो फिर पछताकर क्या होगा ?

इसीलिये समय रहते उपाय करो।

दृष्टि रहते उसकी रक्षा करो।

[१५, दरियागंज] दिल्लीके डा० रघुबीरशरण अग्रवालने आँखोंकी स्वाभाविक चिकित्साकी जैसी विधियाँ प्रकाशित की हैं उनमें एक पैसेका खर्च नहीं, केवल आँखोंकी कसरत है। इन्हीं विधियोंमें आँखोंकी रक्षा भी सम्मिलित है। उनकी रक्षाकी विधियाँ भी हमारे देशके लिये बिलकुल स्वाभाविक हैं। अपने पाठकोंके सुभीतेके लिये हम वह विधियाँ यहाँ देते हैं।

१. बचपनकी निगाह

जबसे बच्चा पैदा हो कमरेमें एक कड़वे तेलका चिराग

या मोमबत्ती जलती रखनी चाहिये। बच्चा जबतक जागता रहता है अपनी दृष्टि बराबर उसपर जमाये रखता है। उसमें उसे आनन्द आता है। चिराग बुझा दो तो बच्चा रोने लगता है, जलानेसे चुप हो जाता है। यह प्राकृतिक भाव है। इससे उसकी आँखें अच्छी रहती हैं, दृष्टि एकाग्र और तेज होती है।

पाला हुआ काजल बच्चोंको नित्य आँखोंमें लगानेसे आँखें अच्छी रहती हैं।

बच्चोंको पालने या झूलेमें झुलानेसे एक तरहका मानसिक आराम मिलता है। कोई काले रंगका खिलौना या और कोई मनोरंजक वस्तु पालनेपर लटका दी जाय कि बच्चेकी दृष्टि उधर रहे तो विशेष लाभ होता है। जिन बच्चोंको भिंगापन हो जाता है उन्हें इससे ज्यादा लाभ होता है।

बच्चेको दूध पिलाते समय उसके चेहरेको ढक लेना चाहिये, चेहरा न ढका रहनेसे बच्चा बाहरकी वस्तुओंको दूध पीते समय देखने लगता है। ऐसा करनेसे उसकी आँखें दूसरी तरफ झुकती हैं। जिस करवटसे दूध पीता है उसकी उलटी तरफ निगाह फेरता है। यह बात हानिकारक है।

जिधरको सिरका झुकाव हो उधरको ही आँखोंका रुख होना चाहिये। सिरको कपड़ोंसे ढकनेके सिवा दोनों तरफ़से दूध पिलाना चाहिये।

बच्चोंको थोड़ी देर सूर्यकी ओर मुँह करके लिटाना चाहिये। जाड़ेमें तो किसी समय भी लिटा सकते हैं परन्तु गर्मीके मौसममें सिर्फ सुबहके समय ही लिटाया जा सकता है। सूर्यकी किरणें बन्द नेत्रोंपर पड़ती है तो शक्ति बढ़ती है। पीड़ा क्षणभरमें दूर होती है। बच्चा धूपमें लेटनेसे रोता हो तो गोदीमें भी इस भाँति लेकर हलके-हलके घुमाया जावे कि सूर्यकी किरणें बच्चेकी आँखोंपर पड़ती रहें। शायद बच्चा पहले एक या दो मिनट रोवे पर फिर चुप हो जाता है। जिन बच्चोंकी आँखें जल्दी-जल्दी दुखती रहती हैं, और उजालेमें नहीं खुलतीं उनको तो यह प्रयोग बड़ा ही लाभदायक है, फौरन ही फायदा नजर आने लगता है। इससे नुकसान या तकलीफ बढ़नेका डर जरा भी नहीं है। जब बच्चे जरा बड़े होकर खेलने कूदने लगें तो उनके लिये आँखमिचौनीका खेल आँख और दिमाग चंगा रखनेके लिये बहुत अच्छा होता है। यह खेल इस तरह खेला जाता है कि एक बच्चा अपनी आँख बन्द करके और हथेलियोंसे ढककर दीवारके सहारे खड़ा हो जाता है और बाकी बच्चे इधर-उधर छिप जाते हैं तो आँखें मीचनेवाला बच्चा छिपे हुए बच्चोंको ढूँढ़ता है। तब बच्चे उस जगहको छूनेकी कोशिश करते हैं जहाँ कि बच्चेने आँखें मीची थीं। यही आँख मींचनेवाला बच्चा किसीको अपनी जगह छूने देनेसे पहिले छू लेता है। तब वह दूसरा बच्चा चोर कहलाता है और अब वह आँखें मींचता है। अकसर इस खेलमें गलती यह होती है कि बच्चे आँख जब मींचते हैं तो आँखोंको उँगलियोंसे दबा लेते हैं। ऐसा करनेसे आँखोंपर जोर पड़ता और हानि होती है, आँखें कमजोर हो जाती हैं। बच्चा आँखें बिना जोर डाले ढकता है तो फायदा होता है। जिस बच्चेकी दृष्टि कमजोर हो उससे बार-बार आँखें मिंचवायी जावें।

जब बच्चे पढ़ने लिखने योग्य हो जावें तब उनको नित्य दृष्टि जाँचनेवाला बोर्ड (Eye-testing chart) १० फुट या २० फुटसे पढ़ना चाहिये। एक-एक आँखसे अलग-अलग पढ़नेसे ज्यादा लाभ होता है। जब एक आँखसे पढ़ा जावे तब दूसरी आँखको हथेलीसे बिना दबाव डाले पढ़े। इस प्रयोगसे बच्चेके नेत्र कभी कमजोर नहीं होते। हर एक घरमें दृष्टि जाँचनेवाला बोर्ड रहना चाहिये। जिन बच्चोंकी दृष्टि कुछ कमजोर भी होती हैं वह भी जल्दी ही इस प्रयोगसे ठीक हो जाती है। और यह अनुभव १५ या २० दिनमें ही हो सकता है। ज्यादासे ज्यादा ५ मिनटका सबक है।

अक्सर बच्चे जब जरा बड़े हो जाते हैं तब पलक मारनेकी क्रिया भूल जाते हैं। वह पढ़नेमें भी कई सफे पढ़नेपर भी पलक नहीं मारते। ऐसा करनेसे उनके नेत्र निर्बल होने शुरू हो जाते हैं। बच्चोंको यह सिखाना चाहिये कि वह हलके-हलके हर समय पलक मारते रहें। हर समय पलक झपकनेसे नेत्र स्वस्थ रहते हैं।

बच्चोंको पढ़ने-लिखने, सीने-पिरोने, कातने, सिनेमा देखने इत्यादि बातोंमें नेत्रोंका ठीक इस्तेमाल सिखाना चाहिये।

२. लिखें पढ़ें कैसे ?

पढ़ती बेर किताब आँखोंकी सीधमें न रक्खो बल्कि आँखोंसे नीचे रक्खो। धूपमें बैठकर न पढ़ो, क्योंकि जब

धूप किताबके सफेपर पड़ती है तब उसकी चमक आँखोंपर पड़ती है और इस चमकसे नेत्र जल्दी थक जाते हैं। पढ़ते समय धीरे-धीरे पलक झपकाते रहना चाहिये।

सुई कपड़ेपर हो तब दृष्टि भी कपड़ेकी तरफ होनी चाहिये और जब सुई ऊपर आवे तब दृष्टि भी ऊपर आनी चाहिये। चलती सिलाई, मशीनकी सिलाईमें पलक झपकनेका ध्यान

लिखें पढ़ें कैसे ?

चित्र १—पढ़नेका गलत तरीका

चित्र २—पढ़नेका ठीक तरीका

लिखते समय दृष्टि कलमकी नोकके साथ-साथ घुमाना चाहिये और हलके-हलके पलक झपकते रहना चाहिये। लिखनेमें गलती यह होती है कि लिखते आगेको हैं और साथ-साथ पीछेके अक्षर भी देखते जाते हैं। यदि ठीक तरीकेसे लिखा जाता है तो खत अच्छा लिखा जाता है और यदि गलत तरीकेसे लिखा जाता है तो खत खराब आता है और नेत्र जल्दी थक जाते हैं।

रखना चाहिये। जिन स्त्रियोंके सिरमें सीते-सीते दर्द होने लगता है वे सीनेकी विधिका ध्यान रखते हुए सीयें तो उनकी यह तकलीफ जल्दी ही जाती रहेगी और अच्छा सीने लगेंगी।

४. कातनेका तरीका

कातनेका तरीका भी जानना जरूरी है। विधि-पूर्वक

सीने पिरोनेकी रीति

चित्र ३–गलत रीतिसे सीना। निगाह कपड़ेपर है। चित्र ४–ठीक रीतिसे सीना, निगाह सुईके साथ घूमती है।

३. सीने पिरोनेकी रीति

सीनेमें दृष्टि सुईके साथ-साथ घुमानी चाहिये। जब

कातनेसे दृष्टि बढ़ती है। यदि तीस सालकी उम्रके बाद स्त्री कातती रहे तो उसकी दृष्टि कभी न गिरे और न

मोतियाबिन्दकी शिकायत होने पावे। परन्तु यह बात नियमसे नित्यप्रति करनी चाहिये—चाहे थोड़ीसी देर ही कातना हो। कातनेमें दृष्टिको पूनीके साथ-साथ घुमाना चाहिये। दृष्टि रूईमें जिस जगहसे बारीक तागा निकलता है उस जगह रखनी चाहिये। पूनीको अपने चेहरेकी तरफ लाना चाहिये। यदि पूनी और तरफ ले जानेकी बान पड़ी हो तो दृष्टिके बदले सिर घुमाना चाहिये। यदि सीने और कातनेके साथ कोई गाना भी आनन्दसे गाया जावे तो अति लाभ होता है। जिनको सीते-सीते या कातते समय चक्कर आने लगता है या सिरमें दर्द हो जाता है वह कातनेमें यह गलती करती हैं कि दृष्टि तकवेपर जमाये रखती हैं और पलक झपकना भूल जाती हैं।

करनेसे उनके नेत्रोंपर जोर पड़ता है और नेत्र रोगोंकी शिकायत हो जाती है। यदि इन सिनेमा या और तरहपर सामने या परदोंवाले तमाशे देखनेवालोंको देखनेकी रीति सिखा दी जावे तो कोई नेत्रपीड़ा न होने पावे और बजाय कुछ भी नुकसानके नेत्रोंको लाभ हो और उनकी तबीयतसे यह भ्रम भी दूर हो जावे कि तमाशे देखनेसे नेत्रोंको हानि होती है।

ऊपरवाली पलक उठाये रखने, पलक न झपकने और घूरते रहनेकी विधि गलत है और आम तौरसे लोग इसी तरह देखते हैं। तसवीरसे यह बात साफ-साफ मालूम हो जाती है। यह गलत तरीका है। ठीक विधि यह है कि जरा ठोढ़ी ऊपरको रखो, ऊपरकी पलक नीचे रखो, पलक झपकते रहो।

कातनेका तरीका
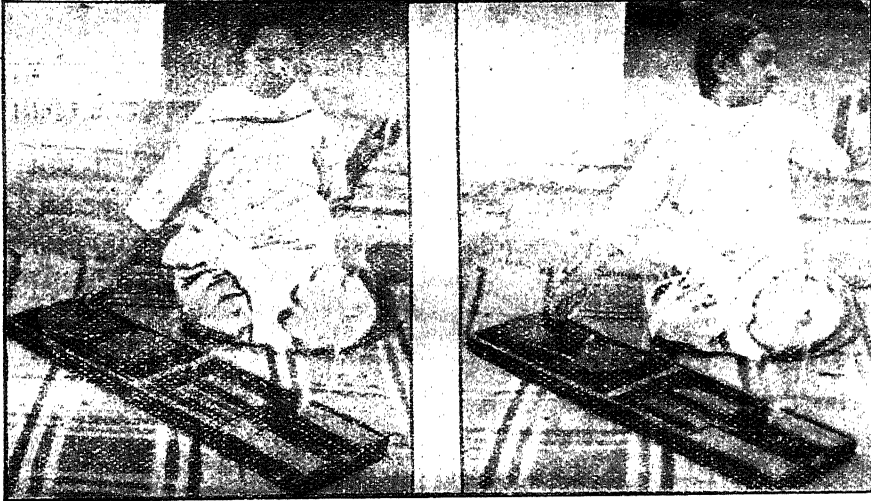
चित्र ५—गलत। काततीबेर निगाह तकुएकी नोकपर जमाये रहना। चित्र ६—सही। निगाह परेनीके साथ घूमती रहे।

५. सिनेमा

जबसे बोलनेवाला सिनेमा चला है तबसे आम तौरपर सिनेमा देखनेकी चाट बढ़ गयी है। परन्तु सिनेमा नेत्रोंको हानिकारक बतलाया जाता है, और वास्तवमें यह देखनेमें भी आता है कि सिनेमा देखनेके बाद बहुतोंकी आँखोंमें लाली दर्द और धुँधला दीखनेकी शिकायत हो जाती है। इसका कारण यह है कि वह अपनी दृष्टि पलक उठाये, बिना पलक मारे, तसवीरकी तरफ जमाये रखते हैं। ऐसा

६. साधारण रीतिसे देखना

देखनेकी क्रिया भी ठीक ठीक सीखनी चाहिये। आँखके कोयोंको न घुमाकर निगाहके साथ सिर फिरना चाहिये। चित्र ९—१२ में आँखोंकी गलत और सही हालत दिखायी गयी है।

चित्र ९ (4) गलत। पलक और कोयेको ऊपर उठाना।

चित्र १० (5) गलत। पलक उठाकर सिरकी उलटी दिशामें आँखको घुमाना।

चित्र ११ (6) गलत । पलक नीची करके चेहरा सीधा रखना मगर आँखको दहने घुमाना ।

चित्र १२ (7) आँखकी ठीक स्थिति

समाप्त करनेपर सूर्यकी ओर पलक झपकते देखते हुए जल नीचे धार बाँधकर गिराओ और गिरानेके बाद अपनी अंगुलियोंसे जमीनसे जलमें उँगली भिगाकर नेत्रोंके कोयोंपर

सामने तमाशा या नाटक देखना

चित्र ७—गलत । ऊपरीपलक उठाये रहना और पलक न मारना ।

चित्र ८—सही । ठोढ़ी ऊँची करके ऊपरी पलक गिराये रहना और पलक मारते रहना ।

७. पूजा करनेकी विधि

नित्य सुबहको सूर्यकी ओर नेत्र बन्द करके बैठनेसे दृष्टि बहुत तेज होती है । नेत्रपीड़ा, लाली, दर्द, चकाचौंध, आखें दुखना इत्यादि कष्ट बहुत जल्द जाते रहते हैं । और फायदा तो करीब-करीब हर एक १० मिनटमें ही देख सकता है । हिन्दूधर्मने सूर्यको नेत्रका देवता माना है और वास्तवमें सूर्यसे नेत्रोंको बहुत ही लाभ होता है । नुकसानका लगाओ । ऐसा करनेसे और ज्यादा लाभ होता है । उस समय सूर्यकी ओर मुँह करके न बैठिये जब सूर्यकी किरणोंमें गर्मीकी तेजी आ जावे । जाड़ोंमें तो किसी समय भी बैठा जा सकता है । परन्तु गर्मीके मौसममें सिर्फ सुबहको ही बैठना चाहिये ।

८. प्राकृतिक नेत्र-चिकित्सापर पुस्तकें

इस विषयपर अनेक पुस्तकें अंगरेजीमें लिखी अमरीकासे

चित्र ९ चित्र १० चित्र ११ चित्र १२

तो नाम ही नहीं । नेत्र स्वस्थ रखनेके वास्ते कमसे कम १० मिनट रोज सूर्यकी तरफ नेत्र बन्द करके आरामसे बैठकर भगवानका सुमिरन करो । अच्छा तो यह हो कि एक लोटा पानी भरकर अपने पास रक्खो और अपनी पूजा

मिलती हैं । इस पद्धतिके उद्भावक डा० बेट्स हैं । उनकी पुस्तकोंका समझना बड़ा मुश्किल है । भारतमें भी अब इस विषयपर ज़ोर दिया जा रहा है । अभी हालमें माइन्ड-ऐन्ड-विज़न नामकी पुस्तक अंगरेजीमें लिखी गयी है । यह

पुस्तक अति सरल है। फोटो समेत दृष्टि ठीक करनेकी अनेक विधियाँ हैं। इससे जनता बहुत फायदा उठावेगी। हिन्दीमें इसके अनुवादकी कोशिश की जा रही है। इस ग्रंथके लेखक स्वयं डाक्टर अग्रवाल साहब हैं और १५, दरियागंज, दिल्लीसे यह उपयोगी पुस्तक ४) में मिल सकती है।

९. आँखोंकी स्वाभाविक चिकित्साका एक चमत्कार

यह उपाय तो हमने उन लोगोंके लिये बताये हैं जिनकी आँखें अच्छी हैं। परन्तु इन्हीं उपायोंसे अन्धे तक अच्छे हुए हैं। डाक्टर अग्रवालने अभी सालभर पहलेकी बात है कि एक लड़केको जो पढ़ते-पढ़ते अंधा हो गया था, इन्हीं विधियोंसे दस दिनमें अच्छा कर दिया। यहाँ हम उस बालकका चित्र देते हैं और उसके पिता दिल्लीके हजारी लालजी जड़ियाकी लेखनीसे उसका वर्णन।

ब्रह्मचारी सत्यवान् गुरुकुल कांगड़ी

मेरा बालक जो ६ वर्षीय है गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार) में शिक्षा प्राप्त कर रहा है। वह लगभग ४-५ माहसे बहुत कुछ अंशोंमें अंधा हो चुका था। उसे २—३ हाथ दूर खड़ा हुआ मनुष्य भी दिखाई न देता था। अपने पठ्यक्रमकी पुस्तक नाकके नजदीक लगाकर पढ़ता था। लिखना अन्दाजी तौरपर करता था। चलना फिरना आदि शरीरके आवश्यक कार्य अपनी श्रेणीके अन्य ब्रह्मचारीको देखकर कर लिया करता था। क्योंकि प्रायः इसे १ हाथकी दूरीका दिखाई देता था। यह बालक गुरुकुलके अध्यापकोंसे कम दिखाई देने और नेत्र पीड़ाकी शिकायत करता रहा। इसपर वहाँ मामूली इलाज होता रहा। बालक अपने सारे कार्य आपही करता रहा, इससे अधिकारियोंको यह जाँचनेकी शंकातक न हुई कि बालक किस दर्जे तक अंधा हो गया है। जब मैं स्वयं गुरुकुल गया तब इसकी बारीकियोंको देखा। पश्चात् नेत्रपरीक्षा करानेपर यह सब कुछ स्पष्ट हो गया। गुरुकुलकी चिकित्सा सम्बन्धी व्यवस्था सुधारनेको आये हुए कैप्टन रामचन्द्रजी सिविल सर्जनने बालककी नेत्रपरीक्षाका परिणाम प्रायः निराशाजनक बताया। अन्यान्य डाक्टरोंने भी इसे देखा और केवल ऊँचे नंबरोंका चश्मा दिया जिससे न तो दृष्टिको ही पूरी सहायता मिली और न नेत्रपीड़ा ही कम हुई। ऐसी ही स्थितिमें बालकने अपनी परीक्षा दी जिसमें कुल २५५ हरीक्षांकोंमेंसे २२३ नंबर प्राप्त किये। व्याकरण, संस्कृत साहित्य तथा गणितमें प्रायः पूरे पूरे नंबर प्राप्त किये। परीक्षाके इस परिणामको देखकर एवं बालकके अंधेपनकी अवस्था, दोनों समस्याओंके विचारसे मेरे हृदयमें जो मर्मान्तक वेदना उत्पन्न हुई उसे लेखनीद्वारा वर्णन नहीं कर सकता।

अस्तु, देहलीमें डा० आर० एस० अग्रवालकी जो दरियागंजमें रहते हैं प्राकृतिक नेत्रचिकित्साने जादू कर दिखाया। १०-१२ दिनके अंदर ही बालककी आँखें पूर्ववत देखने लगीं। दृष्टि निर्मल हो गयी। इसी प्रकार इस प्राकृतिक चिकित्सा प्रणालीसे अनेक लोग लाभ प्राप्त कर रहे हैं। इस पद्धतिमें केवल पलकों और नेत्रोंका व्यायाम किया जाता है जो कि भिन्न-भिन्न प्रकारका होता है। लेखक स्वयं ८ वर्षसे चश्मा लगाता है इस संबन्धमें डाक्टर साहबने इसे भी जो नेत्र व्यायाम बतलाया है उसके श्रीगणेशका परिणाम देखकर आशा है कि चश्मा छूट जायगा। डाक्टर साहबका कथन है—"बालकोंको यदि प्रारम्भसे ही पलक मारने और पुतलीको प्राकृतिक ढंगपर एक विशेष स्थितिमें रखनेकी शिक्षा दी जाय तो दृष्टि कभी मंद नहीं हो सकती। डाक्टर साहब स्कूल और कालेजोंमें जाकर भी इन बातोंका प्रचार किया करते हैं। डा० साहबकी इस प्राकृतिक नेत्रचिकित्सा प्रणालीका प्रचार होना लोकहितकी दृष्टिसे अत्यंत लाभदायक है।

विज्ञानके पिछले पचीस बरस

२. हमारे विश्वकी रचना

[रामदास गौड़]

१. विश्वका केन्द्र

भारतके प्राचीन ज्योतिर्विद् अपने विश्वको अपने खगोलके भीतर सीमित समझते थे और खगोलका व्यास अठारह पद्म योजन कहते थे। एक योजनका ठीक-ठीक परिमाण यदि दस मील मान लिया जाय तो खगोलका व्यास मीलोंमें एक संख अस्सी पद्म मील हुआ। वह अपने सूर्य्य-प्रधान ब्रह्माण्डको इस विश्वके मध्यमें मानते थे।

पच्छाहीं विद्वान् पहले इस धरतीको ही संसारका केंद्र मानते थे। फिर सूर्य्यको केंद्र मानने लगे। परन्तु ठीक पचीस बरस हुए कि पच्छाहीं ज्योतिर्विदोंने आकाश गंगाको अपने विश्वका केन्द्र मानना आरंभ किया।

२. आकाश गंगामें क्या है ?

अँधेरी रातमें जब आकाश स्वच्छ रहता है, उस समय आकाश-गंगा फैली हुई दीखती है। उसे कुहार भी कहते हैं। यह बारी-बारीसे दो धाराएँ सी दीखती हैं, और धरतीके घूमते रहनेसे चक्कर लगाती सी लगती हैं। ध्यानसे देखनेसे दोनों धाराएँ अटूट और एक ही कुंडलीके भिन्न-भिन्न भाग सी लगती हैं। सर विलियम हर्शलने दूरबीन लगाकर देखा था तो उनको उस समय ऐसा लगा कि आकाश गंगामें सिक्कों सरीखे तारोंके पुंज जहाँ-तहाँ बिखरे हुए हैं।

परन्तु पच्चीस बरस बीते कि ज्योतिर्विदोंने निश्चय किया कि आकाशगंगा स्वयं एक अत्यन्त विशाल सर्पिल है। साँपकी तरह कुंडली मारे हुए श्वेतताका पुंज समस्त व्योममंडलमें जो पसरा हुआ है उसमें सफेदी कई कारणोंसे है। कुछ तो चक्कर लगानेवाली छोटी नीहारिकाएँ हैं, कुछ नीलाभ तारे हैं और कुछ घूमते-घूमते एक दूसरेको ढक लेनेवाले ज्योतिष्पिंड हैं जो इस क्षेत्रके चारों ओर मक्खियों-की तरह घेरे हुए हैं। उस समय इस अपनी आकाश गंगाको और विश्वोंका नमूना सा मान लिया गया और ऐसा विचार स्थिर किया गया कि आकाशमें हमारी आकाश गंगासे दूर जो असंख्य सर्पिल नीहारिकाएँ देख पड़ती हैं वह सभी इस आकाश गंगाकी तरह अंडाकार हैं। हर्शलने इन्हें अलग-अलग विश्व ठहराया था परन्तु उसके पीछे लोगोंने इस विचारको पसन्द नहीं किया। पिछले संवत् १९७१में एडिंग्टनने लिखा था कि "सर्पिल नीहारिकाओंके सम्बन्धमें वही विचार फिरसे चल पड़ा है। फिर भी अभी इस बातका कोई प्रमाण नहीं है कि ये पिंड-समूह तारामय व्योमके भीतर हैं, या बाहर"। इसीके बाद ही श्रीहब्लने इन पिंड समूहोंकी बड़ाई और दूरी निकालनेकी विधि निकाली और इस समस्याको सुलझाया। बात यह है। कुछ प्रामाणिक पिंड ऐसे हैं जिनके सम्बन्धमें ऐसा विश्वास किया जाता है कि देशमें वे कहीं भी हों समान अन्तर्ज्योतिसे चमकते हैं। इनकी चमकमें दृश्य कमी आनेसे उनकी दूरीका पता लग जाता है। ऐसे प्रामाणिक पिंड जैसे, cepheid variables of assigned period (निश्चित अवधिवाले किरीटीके चलतारे) long period variables, लम्बी अवधिवाले चलतारे blue stars of spectral type नीलाभतारे और Novie-at maximum पूर्वोच्च नोवी-पिंड आदि।

इन प्रामाणिक पिंडोंमेंसे अधिकांशके उदाहरण पासकी नीहारिकाओंमें मिल सकते हैं और सौभाग्यसे इन नीहारिकाओंकी दूरीके विषयमें सबकी गवाही एक सी ही है। उनका साक्ष्य है कि सबसे पासकी नीहारिका जो triangulum में "म-३३" है, वह लगभग आठ लाख प्रकाश-वर्षकी दूरीपर है और देवयानीकी बड़ी नीहारिका "म—३१" जो दूरीमें उसके बाद ही पड़ती है, उससे ३/१०० ही अधिक दूरीपर है। यह दूसरी नीहारिका व्योममंडलमें केवल पाँच अंशके कोणका भुज बनाती है। इसलिये उसका व्यास लगभग ७०,००० प्रकाशवर्षकी

दूरीका होगा। हमारी आकाशगंगाके मंडलका व्यास इसके तिगुनेके लगभग होगा।

इन नापोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि ये दूरकी नीहारिकाएँ भी हमारी आकाशगंगावाली नीहारिकाकी तरह तारामंडल है। यदि प्रत्येक ताराको हम ब्रह्मांड कहें तो जैसे आकाशगंगा ब्रह्मांडोंका समूह है वैसे ही प्रत्येक नीहारिका ब्रह्मांडोंका समूह या मंडल है। यदि आकाश गंगा हमारा एक विश्व है, तो प्रत्येक नीहारिका एक-एक विश्व है।

३. क्या नीहारिकाएँ भी घूमती हैं ?

हमारी आकाशगंगा देखनेमें चिपटी सी लगती है। इसी तरह अधिकांश नीहारिकाएँ भी चिपटी ही दीखती हैं। बहुत दिनोंसे ऐसा समझा जाता रहा है कि यह चिपटापन चक्करके कारण मालूम होता होगा। अभी हालमें ही रश्मिमापक यंत्रद्वारा यह पता लगा है कि कई नीहारिकाएँ घूमती हैं। उदाहरणके लिये देवयानी तारा मंडलकी बड़ी नीहारिकाका मध्यभाग लगभग एक करोड़ साठ लाख बरसोंमें एक चक्कर पूरा करता है। कन्या राशिकी N. G. C. 4594 नम्बरकी नीहारिका इससे लगभग दूने वेगसे चक्कर लगाती है। अभी थोड़े ही दिनोंकी बात है कि ऊर्ट, प्लास्केट, लिंड ब्लाड आदिने पता लगाया है कि हमारी आकाश-गंगा भी घूम रही है। जैसे, सनीचरकी पगड़ीके अंश या कण परिक्रमा करते हैं, या जैसे ग्रह प्रदक्षिणा करते हैं, उसी तरह ये तारे या ब्रह्मांड भी आकाश गंगाके भीतर चक्कर लगाते रहते हैं। ज्यों-ज्यों हम बाहरकी ओर निकलते जाते हैं त्यों-त्यों चक्करकी मीयाद बढ़ती जाती है। केंद्रके पास तो चक्कर छोटा हुआ ही चाहे। हमारी आकाश-गंगाका चक्कर सूर्यकी दूरीपरसे कमसे कम बीस करोड़ बरसोंका है। यह देवयानीवाली नीहारिकाके मध्यभागके चक्करसे १२॥ गुना ज्यादा है। परन्तु इसका कारण यह है कि यह लगभग छः गुने अधिक बाहरकी ओरकी स्थितिकी कथा है। यदि देवयानीकी सारी नीहारिका केन्द्रपर या उसके पास घनीभूत होती तो सूर्यकी सी दूरीपर उसका चक्कर २३॥ करोड़ बरसोंका होता। इस तरह इन चक्करोंको हम अनुपातसे थोड़ा बहुत समझ सकते हैं।

४. नीहारिकाओंकी वस्तु-मात्रा

जब चक्करकी मीयादका पता चल गया, तब तो नीहारिकाओंकी वस्तुमात्राकी भी कुछ अटकल की जा सकती है। नीहारिकाओंमें अरबों सूर्योंकी वस्तुमात्राका पता लगता है। और **आकाशगंगाकी वस्तुमात्रा तो कमसे कम एक खरब सूर्योंकी है।** हमारी नीहारिका, हमारी आकाशगंगाका विश्व और विश्वोंसे वस्तुमात्रामें भी अत्यन्त बड़ा है और आकारमें भी। यदि और विश्वोंको हम विशाल विस्तीर्ण व्योमसागरके छोटे-छोटे द्वीप मानें तो अपने विश्वको एक महाद्वीप मानना पड़ेगा।

अँग्रेजीमें गैलक्सी, मिल्की-वे आदिसे आकाश गंगाका बोध होता है। ये अँग्रेजी शब्द "दूध सा मार्ग या डहर" का बोध कराते हैं। पुराणोंमें क्षीरसागर अर्थात् दूधके सागरका वर्णन सृष्टिप्रकरणमें आया है। हमारा अनुमान है कि हमारे महाविशाल विश्वका क्षीर-सागर यही आकाश गंगा है, जैसा उसके विस्तारके वर्णनसे पता लगता है।

५. दो विश्वोंका अन्तराल कितना है ?

हम ज्यों-ज्यों अनन्त देशमें बाहरकी ओर बढ़ते हैं त्यों-त्यों the cepheid variable और अन्य प्रामाणिक ज्योतिर्चिह्न एक-एक करके अदृश्य होते जाते हैं। परन्तु हब्लका कहना है कि ऐसी दशामें निश्चित आकार और रचनाकी नीहारिकाएँ स्वयं एक अच्छी हदतक अच्छे प्रमाण हैं। इस तरह नीहारिकाओंकी मंद ज्योति स्वयं उनकी दूरीका पता देती है। और जहाँतक दूरबीनकी गति है वहाँतक मन्दसे मन्द प्रकाशवाली नीहारिकाओंकी दूरीका अन्दाजा लगाना संभव है। सर जेम्स जीयन्सके अनुसार सिद्ध होता है कि नीहारिकाएँ एक दूसरीसे प्रायः समान अन्तरालपर स्थित हैं और शायद औसत तौरपर हर दो नीहारिकाओंके बीचका फासला अठारह लाख प्रकाशवर्ष है। यह $१०^{१८}$ मीलसे भी ज्यादा होता है। जीयन्सका अन्दाजा है कि हमारे विशाल विश्वगोलका व्यास भी $१०^{१८}$ मीलसे ज्यादा है। इस तरह जीयन्सके अनुसार हमारे विश्वका व्यास और दो विश्वोंकी औसत दूरी प्रायः समान ही है। भारतीय ज्योतिर्विद् भी प्राचीन कालसे खगोलका व्यास $१०^{१८}$ मीलोंके लगभग मानते आये

हैं और खगोल हमारे विश्वका विस्तार है। इसलिये प्राचीन भारतीय अटकलसे आजकलका वैज्ञानिक अनुमान बिल्कुल ठीक-ठीक मिल जाता है। हमारे ऋषियोंकी बुद्धिकी अलौकिक पहुँचका यह बहुत भारी प्रमाण है।

६. विश्वमात्राका घनत्व

यदि इन सब विश्वों वा नीहारिकाओंमें बिखरी हुई वस्तुमात्रा समानरूपसे इस देश-समुद्रमें बिल्कुल बराबर बराबर बिखेर दी जाय, कहीं घनी कहीं विरल न हो, तो वस्तुमात्राका घनत्व अत्यन्त सूक्ष्म होगा—प्रति सीसी $१०^{-३०}$ ग्रामांश होगा। इस बातसे नीहारिकाओंकी रचनाका भी पता लग सकता है। ऐसे सूक्ष्म घनत्वके वायव्यका घनीभवन भी यदि अनन्त देशके अनन्त शीतमें हो जाय तो वैसी ही सूक्ष्म मेघकी तरह फैली हुई दूधिया सीकर-राशि बन सकेगी जो नीहारिकाओंकी वस्तुमात्रामें देख पड़ती है। यदि इसी प्रकारके समान सूक्ष्म घनत्वके विश्वव्यापी वायुमंडलके घनीभवनसे नीहारिकाएं उत्पन्न हुआ करती हैं, ऐसा मान लिया जाय, तो नीहारिकाओंके वर्त्तमान आकार और रचनाकी समानता भी सहजमें समझमें आ जाती है।

७. विश्व-मंडल फैल रहा है

इन सूदूरवर्त्ती विश्वोंसे आनेवाले तेजकी रश्मियोंका यंत्रोंद्वारा जब विश्लेषण किया जाता है तो सारा रश्मिचित्र क्रमसे जगह बदलकर लाल सिरेकी ओर चला जाता है। रश्मियोंके इस स्थानान्तरणको यदि हम सीधे-सीधे डाप्लर-प्रभाव मानलें, तो ऐसा जान पड़ेगा कि ये नीहारिकाएं हमारे विश्वसे जितनी ही दूर हैं उतने ही अधिक वेगसे उससे परे भागी जाती हैं। मोटी तौरसे प्रत्येक लाख प्रकाश-वर्ष पीछे साढ़े-दस मील प्रति सेकंडके वेगसे भाग रही हैं। और यदि अपने विश्वमें सूर्य्यकी गतिका हिसाब भी रख लिया जाय, तो यही बात निकटकी नीहारिकाओंके विषयमें ठीक उतरती है। सारांश यह कि सारा विश्व एक समान गतिसे पसरता हुआ जान पड़ता है और उसकी दीर्घताका परिमाण प्रति दो करोड़ बरसोंमें एक प्रतिशत बढ़ता जाता है।

यह बहुत संभव है कि देखनेमें इन नीहारिकाओंका दूर भागती रहना ज्योतिर्विज्ञानकी एक घटनामात्र न हो, क्योंकि सापेक्षवादकी साधारण धारणा तो यह चाहती है कि देशमात्रका प्रसरण वा संकोच, वा प्रसरण और संकोच दोनों होता रहे। शायद इन नीहारिकाओंकी इस तरहकी गति इस लिये हो कि ये निहारिकाएं नहीं, बल्कि जिस अनन्त देशमें ये नीहारिकाएँ हैं, वह अनन्त देश ही पसरा और सिकुड़ा करता हो, और इस कालमें वह पसर रहा हो।

८. देश-कालका अनन्त अपार अगाध महार्णव

सारा आकाश देश-कालसे व्याप्त है। यह देश-काल-महार्णव स्वभावसे ही वक्र है। वस्तुके सान्निध्यमें इस महार्णवकी वक्रता बढ़ जाती है और ग्रहादि सभी पिंडोंका मार्ग इसीलिये वक्र हुआ करता है। प्रतीत गुरुत्वाकर्षणका कारण यही है। सापेक्षवादकी यह धारणा गणित-सिद्ध और प्रयोगपुष्ट है। परन्तु यदि सारी वक्रता इसी प्रकारकी है, तो "देश" निश्चल नहीं रह सकता। उसमें संकोच और प्रसार बराबर होते रहना चाहिये। इस असंगतिके निवारणके लिये ऐन्स्टैनने यह कल्पना की कि इस महार्णवमें स्वतः एक अतिरिक्त बक्रता है, जो वस्तुसत्ताके सान्निध्यसे प्रभावित नहीं है, प्रत्युत देशका अन्तरंग गुण है। "विश्वका स्थिरांक" निकालकर उन्होंने इसका स्पष्टीकरण किया। इस स्थिरांकका मूल्य सर्वत्र एक समान है जिससे कि देशका पूरा आयतन स्थिर और अविकृत रहता है। परन्तु ऐसे स्थिरांककी सत्ताका कोई देखने लायक प्रमाण नहीं है, क्योंकि यह बक्रता इतनी सूक्ष्म है कि नापी नहीं जा सकती। इस स्थिरांककी इसीलिये ऐन्स्टैनने कल्पना की कि उसके ख्यालमें देश स्थिर था। परन्तु देश स्थिर तो नहीं मालूम होता। इसलिये इस स्थिरांककी न तो अब कोई जरूरत ही है और न उसे नामंजूर करनेकी ही मजबूरी है। बात यह है कि ऐन्स्टैन और डीसिटरने यह भी मालूम किया है कि ज्योतिर्विज्ञानकी किसी देखी हुई घटनावलीके विरुद्ध भी स्थिरांक नहीं जाता। साथ ही इस स्थिरांकके मूल्यका शून्यसे लेकर दोनों ओर बड़ा विस्तार संभव है।

९. देश-कालकी अन्य कल्पनाएँ

देश-कालकी कल्पना एक नदीसे कीजिये जिसका पाट अर्थात् आर-पारकी दूरी देश है और बहावकी धारा काल

है। यदि देश स्थिर आकारका है, तो इस नदीका पाट स्थिर रहेगा और दोनों किनारे समानान्तर होंगे। ऐन्स्टैनकी पहले ऐसी ही कल्पना थी। किन्तु फ्रीडमान और ल'मैत्रने सिद्ध किया कि ऐसा देश अस्थिर होगा और मौलिक सूक्ष्म वायव्यके घनीभवन सरीखी साधारण घटना या अनियमितताले उसमें प्रसार या संकोच होने लगेगा। ल'मैत्रने इसीलिये समान पाटवाली नदीके बदले साधारण नदीका रूपक लिया और जैसे बहुत कम पाटसे उत्तरोत्तर बढ़ते-बढ़ते बड़े पाटकी नदी बनती जाती है उसी तरह यह देश कालकी नदी भी बराबर फैलती जाती है। डी सिटरने इसे पनामावाली नरहकी तरह बतलाया कि पहले देशमें संकोच होते-होते जब एक हदतक संकोच हुआ तो फिर देश पसरने लगा और बेहद पसर गया। डी सिटरके अनुसार स्थिरांकके मूल्यसे प्राप्त दो कल्पनाओंमें एक यह कल्पना होती है, और दूसरी यह कल्पना संभव है कि देशकालकी धारा ऐसे रूपमें संकोच और प्रसार करती है कि क्रमसे झील और जल डमरुमध्य बनते जाते हैं।

ल'मैत्रकी साधारण नदीके रूपकमें एक यह दोष आता है कि नदीका आरंभ अत्यंत सूक्ष्म अवस्थामें और शान्त होता है। उसकी धारा, जो काल है, इतनी सीमित लम्बाईका हो जाता है कि उतनेमें ब्रह्मांडोंका उद्‌भव और विकास नहीं हो सकता।

डीसिटर और ऐन्स्टैनकी और कल्पनाएँ हैं जो कल्पनामात्र हैं परन्तु उनपर आपत्ति नहीं होसकती। ऐन्स्टैनने अब सोचा है कि सृष्टिका स्थिरांक शून्य हो सकता है और देश अनन्त है। परन्तु इतनेसे सन्तोष नहीं हो सकता। संभवतः भविष्यमें देशकाल सम्बन्धी और कल्पनाएँ निकलेंगी जिनसे विज्ञानसंसारको सन्तोष हो जायगा।

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

नोबल-पुरस्कार-विजेता प्रो० शाड्‌विक

सन् १९३५का नोबेल-पुरस्कार भौतिक विज्ञानमें विशेष अनुसन्धान करनेके लिये प्रो० शाड्‌विक्‌को मिला है। इन्होंने मैंचेस्टरमें डिगरी ली थी और लड़ाईके पहले वहीं काम करते थे। सन् १९१९में लार्ड रदरफोर्डके साथ केम्ब्रिज आये और केवेंडिश प्रयोगशालामें आल्फा-कणोंके बिखरनेपर जो खोज की वह आज भी मौलिकोंके परमाणुकेंद्रकी खोजमें महत्त्वशाली समझी जाती है। फिर उन्हींके साथ इन्होंने आल्फा कणोंकेद्वारा मौलिकोंके कृत्रिम विघटन-सम्बन्धी प्रयोग किये। वर्तमान परमाणु-केन्द्र सम्बन्धी विज्ञान इन्हीं मूल खोजोंपर अवलम्बित है। चिनगारियोंकी गणनावाली विधि ही उस समय संभव थी और उसकी कठिनाइयोंके कारण उन्नति संभव न थी। इन्होंने गिननेकी वैद्युत विधिका विकास किया और कुछ हलके मौलिकोंके विघटनके विस्तृत परिशीलनमें इनका प्रयोग किया। इन अनुसन्धानोंका सबसे बड़ा महत्त्व था, क्योंकि इनसे केन्द्रस्थ-सामर्थ्य-सीमाका ठीक ठीक परिमाण मालूम होने लगा।

जब योलियो-क्युरी दम्पतीने आल्फा-कणोंद्वारा बेरीलमके विघटनमें निकलनेवाली कुछ किरणोंके विपरीताचरणकी सूचना दी, तो शाड्‌विकने थोड़े ही समयमें प्रयोग द्वारा इसका निश्चय करा दिया कि विपरीताचरणका कारण "न्यूट्रन" है। "न्यूट्रन" के अस्तित्वकी संभावनापर पहले बहुत विचार हो चुका था और सन् १९२२ में ही इसकी खोज होने लगी थी। अपने पहले लेखमें ही इन्होंने "न्यूट्रन" की मात्राका ठीक ठीक अनुमानकर लिया था, और साथियोंकी सहायताले उसके गुणोंका अनुसन्धान किया और विशेषतः यह पता लगाया कि "न्यूट्रन" और मौलिकोंको विघटित कर देनेका सामर्थ्य रखता है। अभी हालमें गामा किरणोंसे डिउटरनके विघटनका पता लगाकर उन्होंने न्यूट्रनकी मात्राका निश्चयात्मक और विश्वसनीय मान निकाल लिया है। यह बात सर्ववादिसम्मत है। केन्द्रोंकी रचनाके सम्बन्धमें न्यूट्रनकी खोजने हमारे विचारोंको कितना स्पष्ट और पूरा कर दिया है, इस बातसे न्यूट्रनके आविष्कारका हमें वास्तविक महत्त्व समझमें आ जाता है।

नोबल-पुरस्कार-विजेता योलियो-कुरी दम्पती

कुरी दम्पतीकी तरह ही योलियो-कुरी दम्पतीका भी वैज्ञानिक आविष्कारमें अनुपम जोड़ा है। रश्मिविकिरणके विविध विभागोंमें सफल आविष्कार करके इस दम्पतीने उचित यश कमाया है। धन विद्युत्कणको निकालकर इन्होंने उसे पैदा करनेके अनेक उपाय निकाले और बहुत पहले ही यह पता लगा लिया कि गामा किरणोंके अतिरिक्त भी किसी तरह उन्हें निकाला जा सकता है। विशेषतः उन्होंने यह बात देख पायी कि आलफा किरणोंके द्वारा कुछ विशेष हलके मौलिकोंको विघटनमें न्यूट्रनोंके साथ ही साथ धनाणु भी निकलते हैं। इसी खोजमें आगे बढ़कर उन्होंने यह अद्भुत बात निकाली कि आलफाकणों द्वारा तोड़-फोड़के साथ ही उसी दम तो न्यूट्रन निकलते हैं, परन्तु धनाणुओंका निकलना स्वतंत्र ही है और तब आरंभ होता है जब आलफाकणोंका स्रोत ही नहीं रह जाता। कई तरहके प्रयोगोंसे वह यह दिखा सके हैं कि हमने नये रश्मिविकीरक पिंड बना पाये हैं और कई बातोंमें उनके रश्मिविकीरण गुणोंको परिचायक मानकर उन्होंने उनकी रासायनिक प्रकृतिकी जांच भी की यह बड़े महत्त्वकी मौलिक खोज है और मौलिक–परिवर्त्तनकी खोजका एक नया और शक्तिशाली उपाय है।

सन् १९३४में यह प्रमाण भी मिला कि नये रश्मिक (radio–active) पिंडोंके निर्म्माणमें न्यूट्रन बड़ा प्रभावशाली है और इन तथा और सभी खोजोंसे इस नयी प्राकृतिक घटनाका महत्त्व बढ़ गया है। इससे अनेक समस्थानीय मौलिकोंका आविष्कार ही नहीं हुआ है, बल्कि रश्मि–विकिरणकी असलीयतका ठीक-ठीक पता लगाना भी इससे संभव मालूम होता है।

रसायनविज्ञानमें योलियो-कुरी दम्पतीने १९३५ का नोबल–पुरस्कार पाया है। यह उचित ही हुआ है। दोनों विजेता अभिनन्दनीय हैं। रा० गौ०

परीक्षाओंकी परीक्षा

दिवंगत प्रो० एजवर्थने जब यह पता लगाया कि लातीनी भाषाके एक ही गद्यांशकी परीक्षा करके २८ विभिन्न परीक्षकोंने ४५से लेकर १०० अंकतक दिये हैं, तो उन्होंने परीक्षाओंके सम्बन्धमें अपनी पूर्ण अनास्था प्रकट की जैसी कि उनसे पहले भी साधारण परीक्षाओंके व्यवस्थापकोंके हृदयमें पहलेसे थी। बात यह नहीं है कि परीक्षाओंके उद्देश्यकी पूर्ण सफलताके लिये यथेष्ट कड़ाई नहीं बरती जाती। वह कड़ाई कितनी ही हो परीक्षणको वैज्ञानिक पैमानेपर सच्ची और स्पष्ट जाँच बनानेमें समर्थ नहीं होती। परीक्षाएँ सारे सभ्य संसारमें फैली हुई हैं। अतः इनपर विचार करनेके लिये अन्ताराष्ट्रिय परीक्षा-परीक्षण-परिषत् बैठी। उसकी आंग्लीय समितिने भी जो जाँच अपनी ओरसे की है, उसका एक छोटासा विवरण सर फिलिप हार्टोग और डाक्टर रोड्सने लिखा है। इसमें कुल ८१ पृष्ठ हैं। मकमिलनसे एक शिलिंगमें मिलता है। **नेचरने** इसपर विस्तृत आलोचना करके यह माना है कि इस जाँचसे यह निश्चय ही स्पष्ट हो जाता है कि जिन परीक्षाओंपर छात्रोंका जीवन और उनकी रोजी निर्भर करती है, उनके फलमें संयोग या अदृष्टका बहुत बड़ा हाथ है, और अबतककी पद्धति कोई ऐसा निश्चित पैमाना नहीं बना सकी है जिससे परीक्षितकी प्रकृत योग्यता की ठीक-ठीक और सच्ची जाँच हो सके। **नेचर**का प्रस्ताव है कि परिषत् सुधारके उपाय बतावे और सम्प्रति इंग्लिस्तानकी प्राथमिक पाठशालाओंमें छात्रकी उन्नतिका दैनिक विवरण रखनेकी जो पद्धति चल रही है उसीको लोग बरतें। यह पद्धतियाँ "१९३५की यिअरबुक् अव् एजुकेशनमें" विस्तारसे दी हुई हैं।

पक्षाघातसे बच्चोंकी रक्षा

अमेरिका राकफेलर इंस्टिट्यूटके डा० साबिन, ओलिट्स्की और काक्सने लिखा है कि (Sodium alum) सोडियमवाली फिटकरी या (Tannic acid) टानिकाम्लका चार प्रतिशत घोल यदि बचावके लिये विषका प्रभाव होनेके पहिले नाकमें डाला जाय, या उससे नास लिया जाय तो सौमें पंचानबे बच्चे तो अवश्य बच जा सकते हैं।

झोंपड़ोंमें रेशमका कारखाना

पूर्ण संख्या—*Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and*
२५५ *Central Provinces, for use in Schools and Libraries.* Reg. No. A. 708
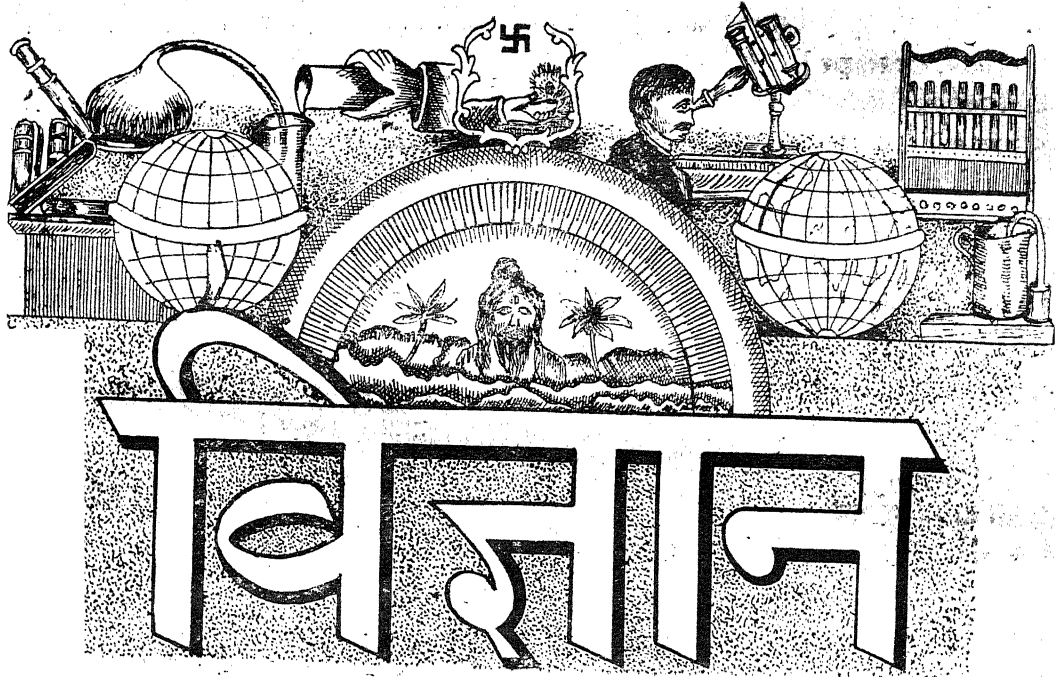
विज्ञान

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का मुखपत्र, जिसमें अमृतसरका
आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

भाग ४३ | मिथुनार्क, संवत् १९९३ | संख्या ३
Vol. 43 | जून, १९३६ | No. 3

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [इस प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

पत्र-व्यवहार करनेवाले नोट कर लें

१—बदलेके सामयिक पत्र, समालोचनार्थ साहित्य, आयुर्वेदको छोड़ और सभी विषयोंके लेख एवं सम्पादन-सम्बन्धी पत्रादि "सम्पादक, विज्ञान, बनारस शहर" इस पतेसे भेजना चाहिए ।

२—विज्ञान एवं विज्ञान-परिषत्, विज्ञापन, वैज्ञानिक साहित्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी समस्त पत्र, मनीआर्डर आदि "मंत्री, विज्ञान परिषत्, इलाहाबाद" इस पतेसे भेजना चाहिए ।

३—आयुर्वेद-सम्बन्धी सभी लेख उस विषयके विशेष सम्पादक स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य, पञ्जाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसरके पतेसे भेजे जाने चाहिए ।

माधव रामचन्द्र कालेने श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेसमें मुद्रित किया

तथा मंत्री विज्ञानपरिषत् प्रयागके लिये वृन्दावनविहारीसिंहने विज्ञान-कार्यालय काशीसे प्रकाशित किया ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,

विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४३ } प्रयाग, मिथुनार्क, संवत् १९९३ वि० । जून, सन् १९३६ ई० { संख्या ३

मंगलाचरण

खोज

[पण्डित श्यामनारायण पांडेय, साहित्यरत्न, साहित्यशास्त्री,
माधव-संस्कृत-विद्यालय, सारंग-तालाब, काशी ।]

नभका सदैव शामियाना रहता है तना,
फरस महीका है बसन्तकी बहार है ।
सूर्य चन्द्रमाकी जलती है ज्योति दोनों ओर,
सुन्दर दिशाओंका हरेक खुला द्वार है ॥
झरने फुहारे बने तारे बने फूल-फल,
पंखा मलयाचलकी झलती बयार है ।
न्याय करनेके लिये बैठते कहाँ हो तुम,
कितना मनोहर तुम्हारा दरबार है ॥

दरिद्रोंके झोंपड़ोंमें रेशमका कारखाना

अंडी रेशमके कीड़े पालना

[ठाकुर शिरोमणि सिंह चौहान, विद्यालंकार, एम० एस-सी०, विशारद, सब-रजिष्ट्रार]

रेशम, रेहू, लाख, गोंद, सन, गूदड़, गिट्टी,
बहुत तरहकी घास, लकड़ियाँ, कंकड़, मिट्टी,
अजब-अजब फल, फूल, छाल, जड़, बूटी, गल्ले,
धातें, नील, कपास आदि हैं जिसके पल्ले,
यह देश कहो व्यापार कर क्या-क्या कर सकता नहीं ?
यह कभी दूसरे मुल्ककी पर्वा कर सकता नहीं ॥
(पूर्ण)

१. रेशमका रोजगार

रेशमी वस्त्र अति कोमल और सुन्दर होते हैं। भारतवासी तो इसे अत्यंत पवित्र समझते हैं और भोजन करते समय रेशमी या ऊनी वस्त्रोंका ही उपयोग करते हैं। हाँ, बहुमूल्य होनेके कारण रेशम जन-साधारणके कामकी चीज नहीं हैं; सब इसे खरीद कर नहीं पहन सकते हैं।

कहते हैं कि लगभग चालिस शताब्दियां बीती होंगी जब रेशम पैदा करनेका उद्योग पहले-पहल चीन देशमें आरंभ हुआ था। बहुत दिनोंतक रेशमके व्यापारपर चीनियोंका एकाधिकार रहा, अन्य देशके निवासी इस उद्योगके रहस्यको न जान सके। यहांके लोग लाख यत्न करने पर भी, इस व्यवसायके रहस्यको न, समझ सके। बौद्ध-युगमें यहांके राजा-महाराजाओंके वैवाहिक सम्बन्ध चीन देशमें भी हुआ करते थे। कहते हैं कि उसी समय चीनकी एक राजकन्या रेशमके कीड़ोंको अपने सिरके केशोंमें छिपाकर भारत ले आयी। रेशम उत्पन्न करनेका सूत्रपात इस देशमें तभीसे हुआ। भारतवर्षसे फिर इसका प्रचार-प्रसार यूरोप आदि देशोंमें हुआ। इस मशीन-युगमें भी चीन और भारतमें रेशमका काम प्रायः हाथों ही से किया जाता है। इस कारण ये देश इटली और जापान आदि देशोंसे प्रतिद्वन्द्विता नहीं कर पाते हैं। हाथका कता हुआ रेशम उतना सस्ता नहीं पड़ता जितना मशीनोंसे बना हुआ बाजारोंमें बिकता है। मशीनसे रेशमका कार्य करने-वालोंकी अपेक्षा हाथसे कार्य करनेवालोंको कम लाभ होता है और इसी कारण भारवर्षमें रेशमके व्यापारको उतना महत्त्व न मिला। मशीनोंसे रेशम उत्पन्न करनेका कार्य बड़ी कुशलतासे होता है। थोड़े व्यय और थोड़े समयमें अधिक उत्पादन होता है जो व्यावसायिक सफलताकी कुंजी है।

यहाँ बंगालमें रेशम पैदा करनेका उद्योग अत्यधिक होता है। सन् १७७६ ई०तक इटली और चीनको छोड़ अन्य प्रति द्वंद्वियोंको बंगाल रेशमके व्यवसायमें पीछे हटाये रहा। उस समय यहाँसे ढाई करोड़ रुपयेसे अधिकका रेशम विदेशोंको जाता था। पर इंग्लैंडमें रेशमके व्यव-सायके जम जानेपर यहाँका उद्योग गिरा। सन् १८७२ ई०में केवल मुर्शिदाबादमें ८३४ तकुए चलते थे। चार वर्षके उपरान्त उनकी संख्या घटकर २०१ रह गयी। सन् १९११ ई० में इनकी संख्या केवल २३ रह गयी जिनमें लगभग ४, ९०७ आदमी काम करते थे। इस कमीका प्रमुख कारण तो यह था कि चीन और जापानके रेशमके आगे बंगालके रेशमकी पूँछ कम रह गयी। मुर्शिदाबादके रेशमके उद्योगके नष्ट होनेका एक कारण रेशमके कीड़ोंमें रोग फैल जाना भी था।

ऐसी गिरी दशामें भी भारतवर्षसे एक करोड़ रुपये-से कमका रेशम बाहरको नहीं जाता। 'बंगाल कोआप-रेटिव सिल्क यूनियन'का जन्म इस लिये हुआ है कि वह वैज्ञानिक उपायोंसे कीड़ोंके रोगोंको दूर करे और छोटे-छोटे कारखानोंको सहायता करके यहाँ एक (standard) परिमाणका रेशमी सूत तैयार कराये। आसाम, काश्मीर, मैसूर और बंगालमें रेशमका व्यापार अब भी

ज़ोरोंपर है। काश्मीर और मैसूरमें तो इसका कार्य कलों द्वारा होता है। यहाँके कच्चे रेशमकी खपत तो अब भी विदेशोंमें अति अधिक है।

२. रेशमके प्रकार

आजकल बाज़ारोंमें दो प्रकारकी रेशम पायी जाती है, एक बनावटी रेशम और दूसरी प्राकृतिक। 'प्राकृतिक रेशम' छोटे-छोटे कीड़ोंसे प्राप्त होती हैं। भरण-पोषण करते हैं। पतझड़के अवसरपर इन वृक्षों और झाड़ियों परसे रेशमके कोशोंको चरवाहे आदि एकत्र कर लेते हैं।

व्यवसायकी दृष्टिसे वही रेशम महत्वपूर्ण है जिसे पालतू कीड़े उत्पन्न करते हैं। रेशम पैदा करनेवाले चार प्रकारके पालतू कीड़े होते हैं जो भिन्न-भिन्न प्रकारकी रेशम पैदा करते हैं।

तूत या मलबरी-रेशम (Mulberry silk) को
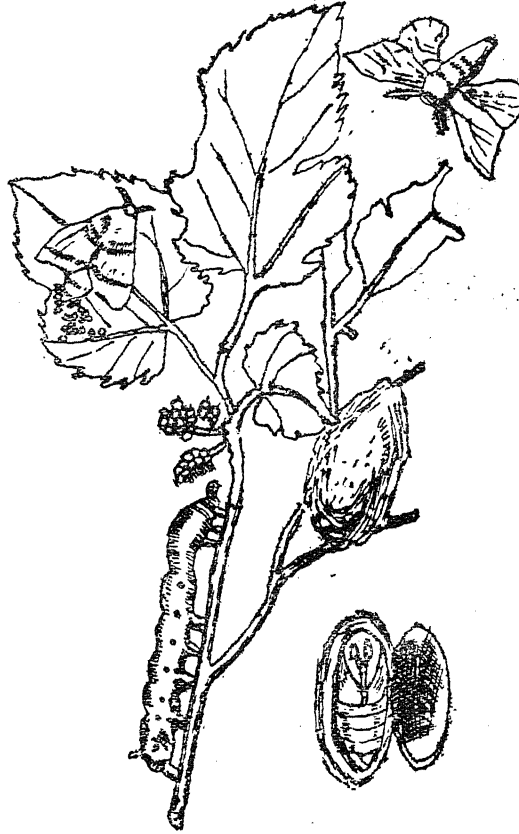
तूत-रेशमके कीड़ेका जीवन-क्रम

रेशम जैसे बहु-मूल्य वस्त्रके द्वारा ही ये नन्हे-नन्हे कीड़े मानव समाजका अपार उपकार करते हैं। रेशम उत्पन्न करनेवाले कुछ कीड़े तो स्वाभाविक अवस्थाहीमें पाये जाते हैं और कुछ पाले भी जाते हैं। जंगली अवस्थामें पाये जानेवाले कीड़ोंके रेशमको 'कोशा' रेशम कहते हैं। ये कीड़े वृक्षों और झाड़ियोंकी पत्तियोंको खाकर अपना

उत्पन्न करनेवाले कीड़ोंको अंग्रेजीमें बाम्बिक्स मुराय (Bombyx mori) कहते हैं। इन कीड़ोंका प्रधान भोजन शहतूतकी पत्तियाँ है। अतएव जहाँ शहतूतके वृक्षोंका बाहुल्य हो, तूत-रेशमके कीड़े वहीं पाले जा सकते हैं। तूत-रेशमका रंग सफेद या पीला होता है। स्थानीय खपत और विदेशोंके निर्यातके अर्थ यह रेशम बंगाल,

पंजाबके कुछ भूभाग, बिलोचिस्तान और काश्मीरमें उत्पन्न की जाती है।

टसर-रेशम (Tasar) उत्पन्न करनेवाले कीड़ोंको ऐंथीरिया पैफीया (Antheraea paphia) कहते हैं। ये कीड़े जंगली वृक्षोंकी पत्तियोंको खाकर अपना गुज़र-बसर करते हैं। टसर-रेशम, तूत-रेशमकी अपेक्षा अधिक कड़ी और खुरदरी होती है और देखनेमें मैली और भूरी। इसके डंठलदार (peduncle) होते हैं। टसर-रेशमके कोसे तागे मोटे और चपटे होते हैं। कीड़ोंके कोसे (Cocoon) बम्बई, मदरास, मध्यप्रदेश, बंगाल, युक्तप्रान्त और पंजाबके जंगलोंमें इकट्ठे किये जाते हैं। भारतवर्षके सिवा टसर-रेशम चीनमें भी काफ़ी पैदा होती है।

मूंगा-रेशमके उत्पन्न करनेवाले कीड़ोंको ऐन्थीरिया आसामा (Anthereae Assama) कहते हैं। ये कीड़े प्रधानतः पालतू अवस्थाहीमें पाये जाते हैं। रेशम या तो सफेद या पीली होती है। आसाम और पूर्वीय बंगालमें अपने उपयोग भरको लोग पैदा कर लेते हैं।

जिन कीड़ोंकी बदौलत हमें अंडी-रेशम प्राप्त होती है उन्हें अटैकस रेसिनाई (Attacus Ricini) कहते हैं। ये कीड़े प्रमुखतः पालतू ही अवस्थामें पाये जाते हैं और एकमात्र अंडीके पत्तोंको खाते हैं। अंडी-रेशमके कीड़ोंका घर आसाम है। अंडी-रेशम कुछ-कुछ लाल लिये हुए सुफेद होता है। आसामके सिवा बंगाल और बिहारमें भी लोग अपने काम भरको अंडी-रेशम पैदा कर लेते हैं। अंडी-रेशम उत्पन्न करना वहाँ घरेलू-व्यवसाय है। अपने उपयोगके सिवा तूत आदि रेशमोंके (waste) कूड़ा-कर्कट के साथ बुननेके हेतु इस रेशमकी विदेशोंमें बड़ी माँग है।

टसरी-रेशमकी नर-तितली

३. अंडी रेशमका रोजगार सबसे अच्छा है

प्राकृतिक रेशमोंमें अंडी-रेशमही 'घरेलू-रोज़गार' के लिये अधिक उपयुक्त है, क्योंकि अंडी-रेशमके कीड़ोंके पालनेकी विधि सहज है और बहुत कम व्ययसे यह कार्य

हो सकता है। जो लोग सूत कातना और सूती वस्त्र बुनना जानते हैं उनके लिये अंडीसे सूत कातना और उससे वस्त्र बनाना कठिन नहीं। यह कार्य परिवारके सभी लोग कर सकते हैं। इन कीड़ोंको रोग आदि भी कम सताते हैं। टसर,

अन्य बहुतसे कीड़ों की भाँति अंडी-रेशमके कीड़ों-के जीवन-क्रमकी भी चार अवस्थाएँ होती हैं। अर्थात् अंडे, इल्लियाँ (caterpillar), या कोया, और तितली (moth)। अंडे और गोटियाँ कुछ नहीं खातीं।
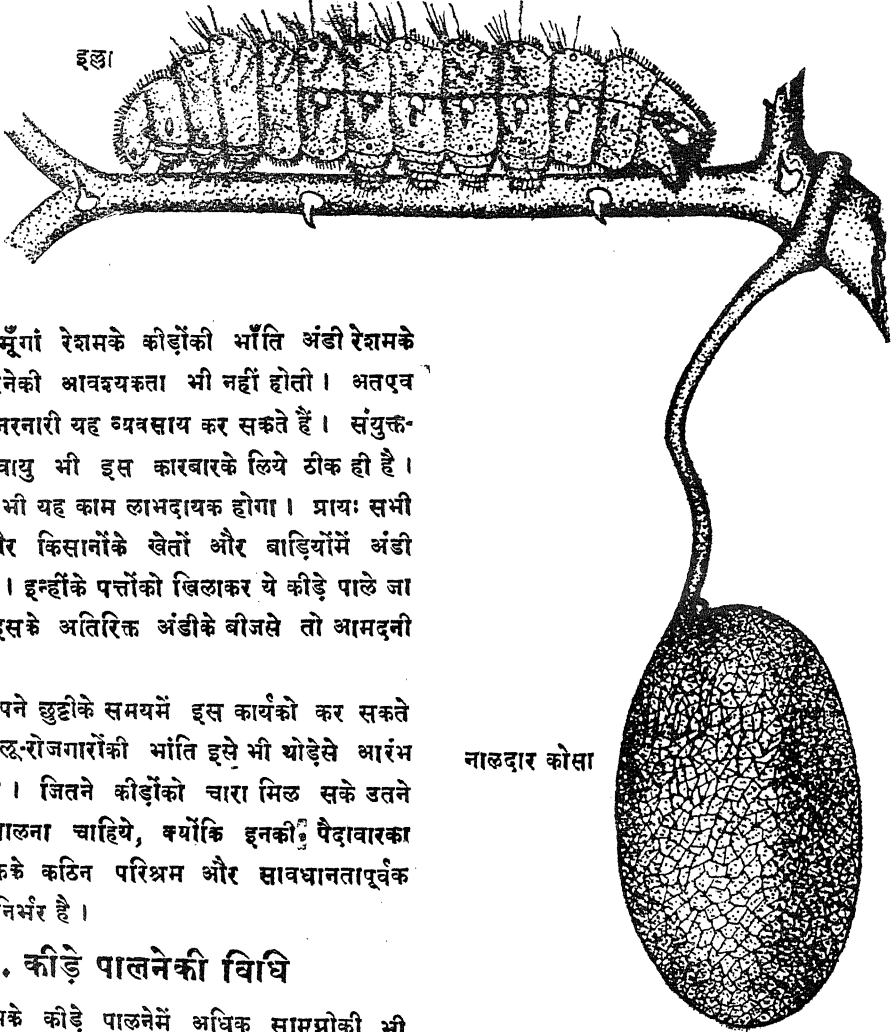
मलबरी और मूँगा रेशमके कीड़ोंकी भाँति अंडी रेशमके कीड़ोंको मारनेकी आवश्यकता भी नहीं होती। अतएव सभी धर्मोंके नरनारी यह व्यवसाय कर सकते हैं। संयुक्त-प्रांतका जल-वायु भी इस कारबारके लिये ठीक ही है। इसलिये यहां भी यह काम लाभदायक होगा। प्रायः सभी जिमीदारों और किसानोंके खेतों और बाड़ियोंमें अंडी बोयी जाती है। इन्हींके पत्तोंको खिलाकर ये कीड़े पाले जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त अंडीके बीजसे तो आमदनी होवेगी ही।

गृहस्थ अपने छुट्टीके समयमें इस कार्यको कर सकते हैं। अन्य घरेलू-रोजगारोंकी भांति इसे भी थोड़ेसे आरंभ करना चाहिये। जितने कीड़ोंको चारा मिल सके उतने ही कीड़ोंको पालना चाहिये, क्योंकि इनकी पैदावारका दारमदार कृषकके कठिन परिश्रम और सावधानतापूर्वक काम करनेपर निर्भर है।

४. कीड़े पालनेकी विधि

अंडी-रेशमके कीड़े पालनेमें अधिक सामग्रीकी भी आवश्यकता नहीं होती, यह काम एक हवादार कोठरीमें सुविधापूर्वक किया जा सकता है। बाँसोंका एक मचान, बाँसहीकी कुछ डलियाँ-पिटारियाँ, आम अथवा केले आदिकी सूखी पत्तियाँ और कीड़ोंका चारा-बस इतने ही सामग्रीकी ज़रूरत होती है।

इल्लियों (cocoon) अथवा सुड़लियोंको ही लोग आम तौरपर 'कीड़ा' कहते हैं। रेशम एक नोषजनिक पदार्थ है और इन्हीं कीड़ोंके मुँहसे निकली हुई लारसे बनता है। तूत-रेशमके कीड़ों की ग्रन्थियाँ पतली-पतली नलियोंसे

होकर एक छिद्रद्वारा बाहरको खुलती हैं। इसका तागा लगा रेशम इन्हीं ग्रन्थियोंका रसस्राव (continuous) होता है। वायुके संसर्गमें आनेसे यह तागे कड़े और मजबूत हो जाते हैं। इन तागोंको कीड़े अपने आस पास लपेटते हैं जो बादको एक छोरसे दूसरे छोर तक उधेड़कर पिंडियोंमें सुविधापूर्वक लपेटा जा सकता है। तन्तुओंको अविच्छिन्न रूपमें प्राप्त करनेकेही उद्देश्यसे उसके भीतरके कीड़े गरम जल या भाफमें उबालकर मार डाले जाते हैं ताकि वे तन्तुओंको तोड़-फोड़ न डालें।

अंडी-रेशमकी मादा-तितली
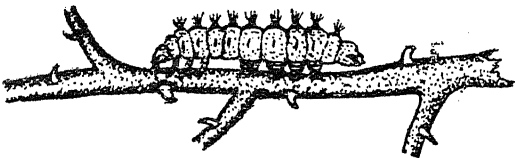
रेशमका कीड़ा। पूर्ण बाढ़को पहुँची हुई इल्ली

अंडी-रेशममें यह बात नहीं है। इसके कीड़ों द्वारा उगला हुआ पदार्थ अविच्छिन्न तन्तुओंके रूपमें नहीं होता वरन् इसके कोये (cocoon) रेशमी-पदार्थसे तहोंके रूपमें बनते हैं। रेशमकी यह तहें पृथक-पृथक की जा सकती हैं। इस भाँति मलबरी आदि रेशमकी भाँति अंडी-रेशम कोसोंसे तागोंके रूपमें नहीं उधेड़ी जा सकती।

इससे यह ज्ञान हो गया कि गोटियोंसे रेशम दो विधियोंसे निकाला जाता है। एकमें कोओंको उष्ण जल, या भाफमें उबाला जाता है जिस क्रियामें तितली कोएके भीतर ही मर जाती है, और जिसे रेअरिंग कहते हैं। दूसरे प्रकारके रेशमको 'कतान' कहते हैं। कतान रेशमके कोये उबाले नहीं जाते वरन् कोएमेंसे तितिलियाँ (moths) स्वतः को काटकर बाहर निकल आती हैं। अंडी रेशमके कोओंको उबालनेकी आवश्यकता नहीं होती। तितली निकल जानेके बाद कोएका जो भाग बच रहता है वह टूट कर टुकड़े टुकड़े हो जाता है। इसे धुन लेते हैं और एक तार या दो तार मोटा सूत बट लिया जाता है। काशी-सिल्क भी कतान-रेशम होता है। 'रेअरिंग' रेशम 'कतान' से अधिक मुलायम और सुन्दर होता है। 'कतान' की अपेक्षा यह महँगा भी अधिक होता है, क्योंकि कतानमें मिलावटकी गुंजायश रहती है और उसका कारबार 'रेअरिंग' की अपेक्षा कहीं सुगमता और शीघ्रतासे होता है।

अंडी-रेशम उत्पन्न करनेके लिये उनके कीड़ोंको पालना आवश्यक है। कीड़ोंको पालनेसे पूर्व उनके भोजन, अंडी-

बेरपर टसरी रेशमका कुकून (कोसा)
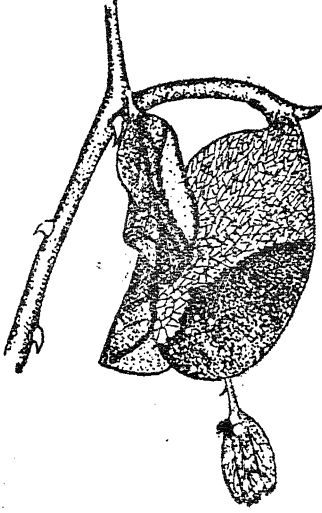
की पत्तियोंका समुचित प्रबन्ध कर लेना चाहिये। कीड़ोंके जीवनपर स्थानीय जल-वायुका भी प्रभाव पड़ता है। इसके व्यवसायमें सफलता वहीं होती है जहाँका जल-वायु नम होता है और सर्दी-गर्मी साधारण (मातदिल) होती है।

कीड़े पालनेका काम जुलाईसे मार्चतक करना चाहिये। आरंभ जुलाई अथवा अगस्त मासमें करना चाहिये। हाँ, कीड़ोंके नये अंडोंके हेतु पहलेसे ही लिख देना चाहिये ताकि ठीक समयपर आ जावे। पूसासे नीरोग अंडे प्राप्त हो सकते हैं। कीड़े पालनेका आरंभ करनेके लिये गोटियोंका माँगना उचित नहीं है क्योंकि गोटियोंमें प्रायः रोगोत्पादक कीटाणु भी चले आते हैं। अधिक गर्मी पड़नेपर अप्रैलसे जूनतक कीड़ोंके पालनेका काम रोक देना चाहिये। उत्तम रेशमके लिये सफेद गोटियोंकी आवश्यकता होती है जिसके हेतु पुष्ट अंडोंको चुनना चाहिये।

बाहरसे जब अंडे आजावें तो उन्हें छेद वाले बक्स या चलनीमें कागज अथवा वस्त्रके टुकड़ोंपर रख देना चाहिये। अंडे गोल और चपटे होते हैं और उनका रंग प्रायः भद्दा-सफेद होता है। रखते समय अंडोंको खूब फैलाकर रखना चाहिये। गर्मीकी ऋतुमें जिन पात्रोंमें अंडे रखे हुए हैं उन्हें भी तो बस्त्रसे ढक देना चाहिये। सर्दीमें भी पात्रको भींगे वस्त्रसे ढककर धूपमें रख देना चाहिये। अंडोंके ऊपरका वस्त्र सदा भींगा रहना चाहिये। सफेद अंडे जब कुछ-कुछ भूरे होने लगें तब जान लेना चाहिये कि अंडे पक गये हैं और अब दो-ही-एक दिनोंमें फूटने वाले हैं। अंडोंसे कीड़े (इल्लियाँ caterpillar) निकलनेकी अवधि गर्मीमें एक सप्ताह और सर्दीमें लगभग तीन सप्ताह होती है। जिन अंडोंका रंग सबके साथ न बदले तो उन्हें बेकाम समझकर रद्द कर देना चाहिये।

तरह-तरहके रोगोंसे अंडोंकी रक्षाके लिये बीच-बीचमें उन्हें तूतियाके घोलमें धो डालना चाहिये। दो-डेढ़ सेर साफ़ जलमें, रुपया भर तूतिया मिट्टीके पात्रमें घोल कर रख लेना चाहिये। अंडे धोनेके लिये यह घोल बड़ा अच्छा है। धोनेकी क्रियामें अंडोंको महीन साफ कपड़ेमें बाँधकर तूतियाके घोलमें इस भाँति डुबावें कि सब अंडे घोलमें भींग जावें। घोलमें धोनेके अनन्तर अंडोंको ताज़े जलमें भी धो डालना चाहिये। धो लेनेके बाद अंडोंको फिर पात्रमें फैलाकर रख देना चाहिये।

जब अंडे पककर भूरे हो जावें तो उन्हें खूब फैलाकर उनपर अंडीकी मुलायम पत्तियाँ बिछा देनी चाहिए। अंडोंसे निकल कर नन्हीं-नन्हीं इल्लियाँ (कीड़े) इन पत्तियों पर रेंगने लगेंगी। इन इल्लियोंको स्वच्छ वायु और तरावटकी बड़ी जरूरत होती है। साथ-ही-साथ भोजन भी नियत समय और उचित मात्रामें देना चाहिये। पत्तियाँ सदैव ताज़ी और थोड़ी-थोड़ी करके कई बार देना उचित है। मैली, भींगी अथवा मुरझायी हुई पत्तियाँ न देना चाहिये। पत्तियोंके गर्द-गुबारको जलसे धोकर हवामें (धूपमें नहीं) सुखा डालना चाहिये। कीड़ोंको देनेसे पूर्व पत्तियोंके डंठल तोड़ डालना चाहिये और हाथसे मसलकर दो-दो चार-चार टुकड़े कर देने चाहिये। कीड़ोंकी किशोरावस्थामें उन्हें कड़ी पत्तियाँ कदापि न देनी चाहिये। पत्ते एकदम इतने न देने चाहिये जिनसे कीड़े ढक जावें। पत्तियोंके सूख जानेपर अथवा जब वे

खा ली जावें तो उन्हें निकालकर और ताज़ी पत्तियाँ दे देनी चाहिये।

डालियोंमें कीड़ोंको भलीभांति फैलाकर रखना चाहिये। जहाँतक हो सके अंडोंसे एक ही दिन पैदा हुए कीड़ोंको एक डालमें साथ-साथ रखना चाहिये। नहीं तो बड़े कीड़े छोटोंको सतावेंगे। वे उन्हें दबा देंगे और खाने न देंगे। इन बातोंसे बचानेको डालमें बहुत कीड़े न रखने चाहिये। आरंभमें उन्हें दिनभरमें कम-से-कम दोबार खानेको पत्तियाँ देनी चाहियें। जो पत्तियाँ बाहरसे आयी हों या देर तक बन्द पड़ी रही हों, खाने को न दी जायँ। गर्मीके दिनोंमें चारेकी पत्तियोंको भींगे कपड़ेसे ढँक देना चाहिये।

जिन डालोंमें कीड़े रक्खे हों उन्हें नित साफ़ भी करते रहना चाहिये। साफ़ करनेकी क्रियामें कीड़ोंको हाथसे कभी न छूना चाहिये। उत्तम विधि यह है कि सफ़ाई करते समय कीड़ोंपर ताज़ी पत्तियाँ बिछा देनी चाहिये। इन पत्तियोंपर कीड़े चढ़ आवेंगे। कीड़ोंके चढ़ आनेपर इन पत्तियोंको उठाकर दूसरे डालोंमें रखकर उन्हें खूब साफ़ कर ले।

कीड़ोंके जीवन चक्रमें इल्लीकी अवस्था (growth) बाढ़की अवस्था है। इस अवस्थामें उनकी खाने और पचानेकी ताकत अत्यन्त बढ़ जाती है। इस अवस्थामें वे कई बार अपनी चमड़ी या केंचुल बदलते हैं। जब कीड़े पत्तियोंका खाना छोड़ दें और कुछ बीमार और सुस्तसे जान पड़ें तो जान लो कि अब उनके केंचुल बदलनेका समय आ गया है। ये कीड़े चार-बार प्रायः हर तीसरे दिन केंचुल बदलकर बढ़ते हैं। तूत आदि रेशमके कीड़े तो इस अवस्थामें पत्तियोंसे रेंगकर शाखाओंपर आ जाते हैं और वहीं रेशमकी कताई आरंभ करते हैं। प्रायः तीसरे दिन आंच देकर इन गोटियोंके भीतरकी तितलियोंका बलिप्रदान कर दिया जाता है। फिर पिंडीके तन्तुके सिरोंको पकड़कर उनकी लच्छियाँ बना लेते हैं। परन्तु अंडीके कीड़ोंसे ऐसा बरताव नहीं किया जाता।

प्रथमबार केंचुल बदलनेके बाद अंडी-रेशमके कीड़े पुनः भले-चंगे और चैतन्य दिखाई देने लगते हैं और भोजन भी बड़े चावसे करने लगते हैं। इस समय इन्हें ताज़ी और मुलायम पत्तियां देनी चाहियें। दिन-रातमें कम-से-कम चार- पाँचबार पत्तियां देनी चाहिये। जो कीड़े केंचुल न बदलें, उन्हें डालोंमेंसे बहिष्कृत कर देना चाहिये। इसी भांति ये कीड़े चार बार केंचुल बदलकर अपनी अन्तिम अवस्थाको पहुँच जाते हैं। इस अवस्थामें यह खूब भोजन करते हैं। अब दिनमें पाँच-छः बार और रातमें दो-एक बार मुलायम पत्तियां खानेको देना चाहिये। डालोंमें यदि कुछ कीड़े मर जावें तो उन्हें फौरन् निकाल कर नष्ट कर देना चाहिये।

पूर्ण बाढ़को पहुँच जानेपर ये कीड़े (इल्लियाँ) लगभग साढ़े तीन इंचके हो जाते हैं। अब ये कीड़े इधर-उधर रेंगने लगते हैं और सफेद कीड़ोंका रंग पीला हो जाता है। इस समय डालोंमें वे विष्ठा अधिक गिराने लगते हैं। यही नहीं, भोजन बन्द कर देनेके कारण वे नाप-तौलमें भी कम हो जाते हैं। ऐसे समयमें जान लेना चाहिये कि ये कीड़े गोटी (cocoon) बनाने योग्य हो गये हैं।

अब इन कीड़ोंको चुनकर ऐसी पिटारियोंमें रखना चाहिये जो लगभग एक फुट गहरी हों और जिनका व्यास लगभग डेढ़ फीट हो। इन पिटारियोंके पेंदेमें आम अथवा केलेके सूखे पत्ते, रद्दी कागज़, लकड़ीका छीलन, या पुआल बिछाकर उनपर थोड़ा-थोड़ा बीच देकर कीड़ोंको बिछा देना चाहिये। कीड़ोंकी इस तहके ऊपर पुनः आमके सूखे पत्ते अथवा रद्दी कागजकी तह बिछाना चाहिये। पत्तों या कागजकी तहपर पहलेकी भांति फिर कीड़ोंकी तह बिछानी चाहिये। इस भांति कीड़ों और सूखी पत्तियों-की यथा-क्रम तहोंसे पिटारी भर देना चाहिये। पिटारी भरते समय इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि न तो पिटारीका कोई भाग खाली रह जाय और न वह कीड़ोंसे ठूँस कर ही भर दी जावे। पिटारीको ठूसकर भर देनेसे प्रायः कीड़े एक दूसरेसे दबकर अथवा आभ्यन्तरिक ऊमसके कारण मर जाते हैं। एक पिटारीमें लगभग पाँच सौ कीड़े रक्खे जा सकते हैं।

इस भांति कीड़ों और सूखी पत्तियोंसे भर जानेपर पिटारीको टीन अथवा दूसरे डालेसे ढँक देना चाहिये। टोकरीको उलटकर रख देनेसे भी काम चल जाता है। यह सब इसलिये कि कीड़े पिटारीके मुँहसे बाहर न निकल

भागें। अब इन टोकरियोंको हवादार कोठरीमें बाँसके मचानोंपर रख देना चाहिये अथवा सनई या रस्सीसे छतोंमें लटका देना चाहिये। कीड़े रातको गोटियाँ बनाना आरंभ कर देते हैं। गर्मियोंमें पाँच दिन और जाड़ोंमें आठ दिनके बाद गोटियाँ बनकर तैयार हो जाती हैं। इस अवधिके बाद टोकरियोंको सीधा करके गोटियोंको निकाल लेना चाहिये। इन्हें हाथसे साफ़ करके दूसरे डालोंमें खूब

निकल जानेके बाद (Cocoon) कोयोंको धोकर धुन लेते हैं और फिर सूतकी तरह तागोंमें कात लेते हैं। गोटियोंसे जब तितलियाँ निकल आवें तो कुछ घंटों तक उन्हें छेड़ना नहीं चाहिये। वायुके संसर्गसे जब उनके पंख फैल जाय तो उन्हें एकत्र करके खाली पिटारियोंके किनारों-पर इस प्रकार रख देना चाहिये कि एक मादा तितलीके पास एक नर-तितली होवे। नर और मादा तितलियोंकी

टसरी-रेशमके अंडे और इल्लियाँ
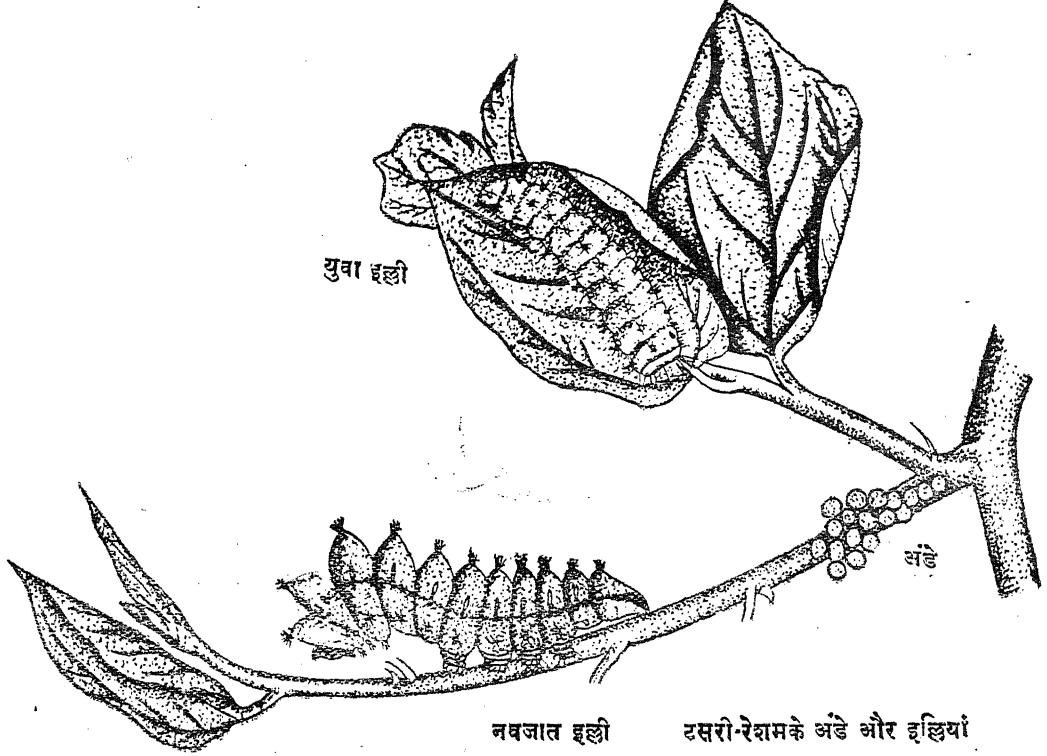
फैलाकर बिछा देना चाहिये। गोटियाँ प्रायः सुफेद होती हैं; कुछ भूरे रंगकी भी होती हैं। भूरे रंगकी गोटियोंको पालनेके काममें न लाना चाहिये। अंडोंके लिये बड़ी-बड़ी सुफेद गोटियाँ छाँट लेना चाहिये। ऐसी गोटियोंसे उत्पन्न तितलियाँ अति पुष्ट और नीरोग अंडे देती हैं। टोक-रियोंमें फैलानेके गर्मियोंमें दस दिनों बाद और सर्दीमें लगभग चालीस दिनोंके बाद गोटियोंमेंसे तितलियों का निकलना आरंभ हो जाता है। तितलियाँ गोटियोंके खोलको काटकर बाहर निकल आती हैं। तितलियोंके

पहिचान उनके शरीरकी बनावटसे सहजमें की जा सकती है। मादा तितलीका शरीर मोटा और बड़ा होता है और नरका शरीर पतला और छोटा होता है। नरकी अपेक्षा मादा अधिक चैतन्य होती है। नर मादा तितलियोंके जोड़ोंसे जब पिटारी भर जावे तो उसके मुँहको ढाँककर उन्हें 'जोड़ा' खानेको छोड़ देना चाहिये। एक दिन-रातके बाद पिटारी खोलकर यह देखना चाहिये कि कौन-कौनसी तितलियाँ 'जोड़ा' खाती हैं और कौन-कौनसी नहीं? जो जोड़ा खाती दिखाई दें उन्हें दूसरे दिनतक जैसे-के-तैसे

छोड़ देना चाहिये और जो जोड़ा खाती न दिखाई पड़ें उन्हें उस टोकरीसे निकालकर दूसरी टोकरीमें ऊपर लिखी हुई विधिसे सम्हालकर रख देना चाहिये।

तितलियाँ जब 'जोड़ा' खा चुकें तो नरोंको मादियोंसे अलग कर लेना चाहिये। फिर मादा तितलियोंको खाली टोकरियोंके किनारेपर स्वतंत्रतापूर्वक अंडे रखनेको छोड़ देना चाहिये। अंडे देते समय तितलियाँ न खाना ही खा सकती हैं और न भाग सकती हैं। प्रत्येक मादा-तितली दो-तीन सौ अंडे देती है। जिन अंडोंको तितली पहले रखती है पालनेके लिये वे ही अच्छे होते हैं। उनसे पुष्ट इल्लिया और सुदृढ़ गोटियाँ बनती हैं। इन अंडोंको चाकू अथवा बाँसकी खपाचसे खुरचकर एकत्र कर लेना चाहिये। अंडे देनेके बाद नर और मादा तितलियाँ उपवासकी अवस्थामें मर जाती हैं।

कीड़े सदैव उतने ही पालने उचित हैं जितनोंकी भली-विधि देख-भाल की जा सके। जिन चलनों, डालों और पिटारियोंमें कीड़ोंके पालनेका काम किया जावे उन्हें बीच-बीचमें तूतियाके घोलमें धोकर स्वच्छ रखना चाहिये। घोलमें धोनेके बाद उन्हें धूपमें अच्छी तरह सुखा लेना चाहिये। सफाई कीड़ोंको अनेकों रोगोंसे बचाती है।

अंडी-रेशमके कीड़े बीमार भी होते हैं। बीमार होकर अच्छा होनेसे तो रोगसे बच जाना ही अच्छा होता है। रहन-सहन और पालन-पोषणकी विधियोंमें सावधान रहनेसे अनेक रोगोंसे रक्षा हो सकती है। इसलिये अंडी-रेशमके कीड़ोंके पालनेके कारबारमें कुछ बातोंपर विशेष ध्यान रखना चाहिये। जहाँतक हो सके पालनेका काम आरम्भ करते समय बाहरसे निरोग और ताज़े अंडे मंगाना चाहिये। आसामसे अंडे न मंगाना चाहिये क्योंकि वहाँ रेशमका कारबार बहुत दिनोंसे हो रहा है इसलिये कीड़ोंकी बीमारियोंकी बहुतायत है। पालनेके लिये पूसासे अच्छे अंडे मिल जाते हैं। पालनेका काम जुलाईसे मार्चतक ही जारी रक्खा जावे क्योंकि कीड़े अधिक गर्मी बरदाश्त नहीं कर सकते। कीड़ोंको डालोंमें सदैव फैलाकर रखना चाहिये और जहाँतक हो सके एक डालमें उन्हीं कीड़ोंको रखना चाहिये जो अंडोंसे उसी दिन निकले हों। जबतक कीड़े छोटे रहें, तबतक सदा ताज़ी और मुलायम पत्तियाँ नियमतः कई दफेमें थोड़ी-थोड़ी दी जावें। पत्तियोंसे कीड़ोंको दाब न देना चाहिये। सूखी और गर्द-गुबारसे सनी पत्तियाँ कीड़ोंको खानेको न देना चाहिये। डाले, चलने और पिटारियाँ बराबर साफ़ रखना चाहिये। जहाँ तक हो सके कीड़ोंको छेड़ना नहीं चाहिये और न हाथसे छूना चाहिये। गर्मीके दिनोंमें कोठरीके फर्शपर दो-चार बार ठंडे जलसे छिड़काव कर देना चाहिये।

रोगोंके सिवा कीड़ोंके शत्रु भी होते हैं। एक प्रकारकी मकड़ी इन कीड़ोंकी जानी दुश्मन होती है। वह इल्लियोंके पेटमें अंडे देती है। कुछ समयके उपरान्त अंडोंसे बच्चे उत्पन्न होते हैं जो इल्लियोंके रक्तको चूस लेते हैं और उनके शरीरको छेदकर बाहर निकल आते हैं और कीड़े मर जाते हैं। यह मकड़ी आसाममें बहुत पायी जाती है। इसी-कारण पालनेके लिये वहाँसे अंडे मँगाना उचित नहीं। इसके अतिरिक्त चूहे-चुहियाँ भी इन्हें बड़ी हानि पहुँचाती हैं। ये गोटियोंको बड़े चावसे खाती हैं। इसलिये गोटियों-वाली पिटारियोंको रस्सियोंसे बाँधकर छतसे लटकाना चाहिये ताकि चूहे आदि इन्हें हानि न पहुँचा सकें। साथ-ही-साथ चूहोंके विनाशका भी कुछ-न-कुछ प्रबन्ध करना चाहिये। चूहेदानी, विषैली रोटी या आटा पिटारियोंके नीचे रखकर उनके मार डालनेके उपाय करने चाहिये। चूहोंके सिवा चीटियाँ भी कीड़ोंको बहुत हानि पहुँचाती हैं। इनसे सुरक्षित रखनेके लिये जिन मचानोंपर डाल अथवा पिटा-रियाँ रक्खी जायँ उनके पाँवोंको क्रूड आयल इमल्शनसे पोत देना चाहिये। चिड़ियों और मक्खियोंसे भी इन्हें सुरक्षित रखना चाहिये।

५—उपसंहार

अब हमारे पाठक समझ गये होंगे कि अंडी-रेशमके कीड़ोंके पालनेका व्यवसाय बहुत सुगम और कम खर्चसे हो सकता है। जिन परिवारोंमें कीड़ोंके पालन-पोषण और देख-भालका कार्य स्वयं किसान और उसके स्त्री-बच्चे करेंगे और गोटियोंसे सूत कातकर बुनाईका कार्य भी अपने ही घरपर करेंगे उन्हें तो इस व्यवसायसे बहुत लाभ होगा।

दुःख है कि भारतमें रेशमकी बुनाईका जो काम होता

है वह प्रधानतः विदेशियोंके हाथमें है। यहाँके व्यापारियोंमें औद्योगिक योग्यता, संगठन और विदेशियोंसे होड़की शक्ति कम होनेके कारण वे उनका मुकाबला नहीं कर पाते हैं। विदेशी अपनी पूँजीकी बदौलत रेशमका सारा कच्चा माल कौड़ीके मोल अपने अधिकारमें कर लेते हैं और बादको उसीसे अपार धन कमाते हैं।

इन पँक्तियोंके द्वारा देहातके असंख्य पढ़े-लिखे परन्तु बेकार नवयुवकों, ग्राम-उद्योग संघों तथा प्रतिवर्ष देशके कोषसे करोड़ों रुपये व्यय करनेवाले कृषि-विभागके कार्यकर्त्ताओंका ध्यान विशेष रूपसे इस ओर आकर्षित किया जाता है कि वे अंडी-रेशमके व्यवसायकी ओर ध्यान दें और देहातके असंख्य निर्धन और अपढ़ किसानोंको इस व्यवसायमें लगावें और उन्हें हर प्रकारकी सहायता दें।

इस लेखके चित्र लखनऊ-विश्व-विद्यालयके जीव-विज्ञान-विभाग के चित्रकार श्री बी० एन० भाट्ट द्वारा बनाये गये हैं।

पेन-होल्डरोंके निर्माणकी योजना

[लाला श्रीरामजी अग्रवाल, मंत्री असोसियेशन फर दी डेवलपमेन्ट आफ स्वदेशी इंडस्ट्रीज़, चाँदनी चौक, देहलीके संग्रहसे पंडित ओंकारनाथजी द्वारा अनूदित]

उपक्रम

लिखने पढ़नेकी सामग्रीमें पेनहोल्डर एक बड़ी आवश्यक वस्तु है। भारतवर्षमें इनकी सालाना खपत क्या है इसके आँकड़े तो हमारे पास इस समय नहीं हैं, लेकिन यह अवश्य कहा जा सकता है कि इनका खर्चा बहुत ज्यादा है, और यहाँकी खपतका अधिकांश विदेशोंसे ही आता है, और भारतवर्षमें बहुत थोड़ासा भागही बनने पाता है। पेनहोल्डर बनानेके लिये एक फैक्टरी तो अभी हालहीमें अमृतसरमें चालू हुई है और दूसरी फैक्टरी लाहौरमें बन रही है। इनके अतिरिक्त बँगाल और मद्रासमें भी दो-दो फैक्टरियाँ हैं लेकिन फिर भी हमारे देशमें ऐसी कई फैक्टरियोंकी और गुंजायश है। पेनहोल्डरोंके बनानेके लिये कच्चा माल हमारे देशमें बहुतायतसे प्राप्त हो सकता है। पेनहोल्डरोंका लकड़ीका भाग बनानेके लिये देवदारू, कैत, शीशम, झुँड, महुआ और बाँसकी लकड़ियाँ, विशेषज्ञोंकी परीक्षाके लिये दिल्लीसे जरमनी भेजी गयी थीं। वहाँकी रिपोर्टसे मालूम हुआ कि बाँसको छोड़कर उक्त सब भारतीय लकड़ियाँ पेनहोल्डरोंके दस्ते बनानेके लिये ठीक हैं। धातुके भागके लिये "टाटा टिन एण्ड स्टील शीट वर्क्स" की बनाई हुई चद्दरें बड़ी अच्छी होंगी।

संक्षिप्त निर्माण विधि

पेनहोल्डर बनानेके लिये दो काम अलहदा अलहदा किये जाते हैं। एक तो लकड़ीके दस्ते बनाना और दूसरे निबको पकड़नेके लिये धातुके भाग तयार करना। लकड़ीके दस्ते बनानेके लिये तो पहिले तख्तोंमेंसे चौकोर डंडे चीर लिये जाते हैं फिर उनको खराद कर सही नाप और आकारका बना लिया जाता है। इसके बाद चपटे सिरेमें धातुका भाग फसानेके लिये छेद कर दिया जाता है।

धातुकी फुल्ली और कमानियाँ आदि बनानेके लिये पंचिंग प्रेसके द्वारा पहिले तो चपटी टिकियाएँ काट ली जाती हैं, फिर दूसरे प्रेसमें उन्हें मोड़ दिया जाता है। और उन्हें लकड़ीके हेन्डिलमें जमानेका काम हाथसे किया जाता है। सब तयार हो जानेपर होल्डरोंपर रंग और रोग़न कर दिया जाता है।

एक दिनमें ५० ग्रोस पेनहोल्डर तयार करनेवाली फैक्टरीके लिये आवश्यक यंत्र आदिकोंका अनुमानपत्र

१—एक, तख्ते चीरनेका आरा जो एक तख्तेमेंसे एकसाथ कई पचरें चीर दे। ४९०)

२—एक, खाँचा काटने और रंदा करनेकी मशीन, हाथकी फीड सहित ... १०२६॥=)॥।

३—एक, रुखानी तेज़ करनेकी मशीन जिसमें सरेस कागजका ढोल होवे	२६१।~)।
४—एक, गावदुम (conical) खरादनेकी मशीन जिसमें साम भी लगी हो।	७००)
५—एक, होल्डरोंकी लकड़ीमें सूराख करनेकी मशीन, जो लकड़ी स्वयं बीचमें भी जमा देवे (Self-centering) ...	४९०)
६—एक, टैनन कटर। यह यंत्र बोरिंग मशीनके साथमें काम करता है। ...	४८।=)॥।
७—एक, पेन होल्डरोंकी लकड़ीका मत्था गोल करनेका औज़ार ...	४२)
८—एक, पालिश करनेका स्टेन्ड ...	२४१॥=)॥।
९—एक, डिपिंग अपरेटस ...	१४०)
१०—एक, डिपिंग बोर्ड ...	११=)।
११—एक, ट्रेड मार्क आदि छापनेकी मशीन	३०३।~)।
१२—एक, कटिंग प्रेस	५५५।~)।
१३—एक, हाथसे चलानेका राउंडिंग और वीडिंग प्रेस ...	११६२।)॥।
१४—फुटकर सामान	३३५।=)।
	५७९९।)।
१५—एक, बिजलीकी मोटर-६ अ० ब० ...	६००)
१६—कर और बीमा आदि ५० %	२८९९॥=)
योग ...	९२९८॥=)।

कारखानेके लिये इमारत

इस कारखानेके लिये ४० फुट लम्बी और २६ फुट चौड़ी इमारतकी आवश्यकता होगी जिसकी लागत लगभग ४५००) बैठेगी।

फैक्टरीका मासिक खर्चा—(१ महिना=२६ दिन)

१—१८७२०० पेनहोल्डर बनानेके लिये कच्चे मालका खर्चा—

(क) देवदारुकी लकड़ी ...	१८२)
(ख) रंग और बारनिश ...	४०७)
(ग) धातुकी चद्दर आदि ...	१५६)
	योग ७४५)

२—कार्यकर्त्ताओंका वेतन ...	६१९)
३—बिजलीका खर्चा ...	१७५)
४—किराया, चुँगी और कर आदि तयारीके ऊपर २% के हिसाबसे ...	४४)
५—यंत्रोंकी मरम्मत ...	५०)
६—यंत्र आदिकोंकी छीजन १०% वार्षिकके हिसाबसे ...	७८)
७—इमारतकी छीजन २% वार्षिकके हिसाबसे ...	८)
८—पैकिंगका खर्चा ...	२५०)
९—फुटकर खर्च ...	२५०)
	योग—२२१९)

फैक्टरीकी मासिक आमदनी—

५% टूट-फूटके लिये छोड़नेके ऊपर एक मासमें १७७८४० पेनहोल्डर = १२३५ ग्रोस पेनहोल्डर बिक्रीके लिये तैयार हो सकेंगे। दलाली और कमीशन आदि देनेके बाद यदि एक ग्रोसकी कीमत २।) भी लगायी जावे तो मासिक आमदनी २७७८) होवेगी।

∴ मासिक लाभ = ५५९)

∴ वार्षिक लाभ = ६७०८)

अथवा यों समझिये कि इस व्यापारमें कुल पूँजीके ऊपर २५% का लाभ मिलता है।

परिशिष्ट

(क) कच्चे मालका हिसाब—

लकड़ी—एक देवदारुका लट्ठा ५ फुट लम्बा और १० इंच × ९ इंच, ५० ग्रोस पेन होल्डरोंके लिये काफी होगा। (इसमें कटाई और छीलन वगैराकी गुँजाइश खूब रख दी गयी है) इस प्रकारके एक लट्ठेके दाम लगभग ७) होते हैं।

अतः यदि पचास ग्रोस पेनहोल्डर यदि रोज़ बनाये जावें, जैसा कि पहिले निश्चित हो चुका है एक महीनेमें (२६ दिनमें) २६ × ७ = १८२)की लकड़ी खर्च हो जावेगी।

रंग और रोगन—एक ग्रौस पेनहोल्डरोंके लिये लगभग ।-) का रंग और रोगन खर्च हो जाता है।

$\therefore$ एक दिनमें $\frac{५ \times ५०}{१६} = \frac{२५०}{१६}$ रु०

और एक महीने (२६ दिन) में = $\frac{२५० \times २६}{१६}$

$= ४०६\frac{१}{४}$ रु०

अथवा ४०७

धातुकी चद्दरोंका हिसाब—

एक होल्डरका धातुका भाग वज़नमें = १·७ ग्रेन

अथवा = २ ग्रेन

$\therefore$ ५० ग्रौसके लिये = $\frac{२ \times ५० \times १४४}{४५३·४}$

= ३२ पौंडके लगभग

यदि टीनकी चद्दरका भाव ≋) प्रति पौंड हो तो एक दिनमें $\frac{३२ \times ३}{१६}$ = ६ रु० की चद्दर खर्च हो जावेगी

$\therefore$ एक महिनेमें २६ × ६ = १५६)की चद्दरें खर्च हो जावेंगी।

अतः कच्चे मालका कुल खर्च = ७४५)

(ख) कार्यकर्त्ताओंके वेतनका हिसाब—

एक फोरमैन, वेतन १५०) मासिक	...	१५०)
एक मिस्त्री, वेतन ३०) मासिक	...	३०)
बारह कारीगर, वेतन १) रोज़ाना	...	३१२)
चार कुली, वेतन ॥) रोजाना	...	५२)
एक बाबू वेतन ३०) मासिक	...	३०)
एक स्टोर बाबू वेतन ३०) मासिक	...	३०)
एक चौकीदार वेतन १५) मासिक	...	१५)

कार्यकर्त्ताओंके वेतनका योग = ६१९)

(ग) बिजलीका खर्चा—

६ अ० ब० की मीटरमें प्रतिघंटा $\frac{६ \times ७४६}{१०००}$ कि० वाट०

$\therefore$ एक दिनमें = $\frac{६ \times ७४६ \times ८ \times २६}{१०००}$ किलोवाट

$\therefore$ २६ दिनमें = $\frac{६ \times ७४६ \times ८ \times २६}{१०००}$ किलोवाट

यदि किलोवाटका मूल्य ≋) हो तो एक महीनेमें $\frac{६ \times ७४६ \times ८ \times २६ \times ३}{१००० \times १६}$ = १७५ खर्च होंगे।

हाथके बने कागज

(श्रीबापू वाकणकर, बी० एस-सी०, लंका, बनारस)

१. कोरे कागजकी महत्ता

कागजका व्यवहार एक तरहसे सभ्यताका पैमाना कहा जा सकता है। कागजका सभ्यता और संस्कृतिकी रक्षामें, उसकी बढ़ंतीमें और प्रचारमें बहुत बड़ा हिस्सा है। मनुष्यकी सभ्यता कैसे-कैसे बढ़ी इसका इतिहास कागज बिना कैसे लिखा जाता? निदान कागज ही आजकी दुनियाके फैले हुए सारे कारोबारका भारी सहारा है! पर, खुद कागजका ही इतिहास जब हम ढूँढ़ने निकलते हैं, तब उसके जन्म और कर्म्मका पता मिलना कठिन हो जाता है।

आजकल तो मशीनोंसे नित्य मनों कागज तैयार होता है। और इस तेजीसे और मात्रामें तैयार न होता रहे तो हमारा तो काम ही न चले। हाथका कागज अगर हमारे सभी बेकार मिलकर तैयार भी करने लगें तो भी हमारी माँगको वे पूरा न कर सकेंगे। इसलिये अगर हम अपने सभी बेकारोंको कागजके काममें लगा दें तो भी मशीनें बन्द करनेकी जरूरत न होगी। इसलिये हमें चाहिये कि निजी कामोंमें हम अपने देशके हाथके बने ही कागज बरतें जिसमें हमारे बेकार भाइयोंको काम मिले और कुछ भूखे भाइयोंको अन्नका सहारा।

२. कोरे कागजकी कहानी

भारतमें कागजका इस्तेमाल तबसे होता आ रहा है, जब संसारके और देशोंके लोग इसे जानते भी न थे।

जिन दिनों अलेक्जेंडरने ईसाके ३२७ वर्ष पूर्व भारतपर हमला किया था, पंजाबमें एक प्रकारकी वस्तुको, जो चीथड़ोंसे बनती थी, लिखनेके काममें लाते थे। वह कागज ही हो सकता है। परंतु इससे भी पहले जब भारतमें कागजका आविष्कार नहीं हुआ; लोग लिखनेके लिये हड्डी, पत्थर, ईंटें, तांबेका पत्र, लकड़ीके तख्ते, बाँसके चींपट, खली लगाया हुआ कागज आदिका व्यवहार करते थे। मिस्र देश और यूरपमें चमड़ा और 'पपिरस'का व्यवहार होता था। ईसासे पहले चीनियोंने भी चिथड़े तथा बाँससे कागज बनानेकी रीति निकाली थी। आठवीं शताब्दीतक चीनियोंने इस कलाको छिपा रखा था। परंतु इसके पीछे मुसलमान शत्रुओंने कुछ चीनियोंको कैद कर लिया, उन्हें समरकंद ले गये, और जबरदस्ती भेद खोलनेको लाचार किया। धीरे-धीरे यह कला और देशोंमें भी फैली और मुगलोंके जमानेमें हिंदुस्थानमें इसका अच्छा प्रचार हुआ।

नेपाली हिन्दुओंने, ल्हासाकी राहसे, यह कला सीख ली थी। और इसलिये वे बाँस और महादेव पुष्पके पेड़का उपयोग करते थे।

मुहम्मद गज़नीके हमलेके बाद यहाँ कागजके काफी कारखानें बने। कुछ अच्छे कारखानें सम्राट् अकबरके जमानेमें काश्मीरमें भी थे। मुसलमानोंने भी यह कला और जातियोंसे इसी तरह छिपा रखी थी। इसी कारण भारतके अधिकांश कागजी मुसलमान ही रहे। हाथके कागजके लिये, मालदा, ढाका, शाहाबाद, काल्पी, काश्मीर, अमदाबाद, एरंडोल, दौलताबाद और जुन्नर आदि शहरोंमें प्रसिद्ध कारखाने थे।

३. इधरका हाल

सन् १८७० तक हिंदुस्थानमें यह धंधा जोरोंपर था। पर सन् १८७०में सरकारने यह कागज जेलोंमें भी बनवाना शुरू किया और यही कागज सरकारी दफ्तरोंमें चलने लगे। कागजके मुख्य खरीदार सरकारी दफ्तर थे। अब उनका सहारा छूट जानेसे यह धंधा नष्ट होने लगा। फिर हिंदुस्थानमें कागजके मशीनवाले कारखानें निकले जिन्होंने इसे बरबाद ही कर डाला। आज हिंदुस्थानके ऐसे ५८ कारखानोंसे २ करोड़ रुपयोंका कागज तैयार होता है और ४ करोड़का परदेशोंसे आता है। सौभाग्यसे हमारे वणिक बही खातेके लिये देसी कागजका उपयोग करते आये हैं जिससे कुछ थोड़ीसी जान हाथ-बने कागजके धंदेमें बची थी और इसका कारण राष्ट्रीय दृष्टिकोण नहीं किंतु धार्मिक कल्पना थी। १९०७, १९२० तथा १९३० के स्वदेशी आंदोलनोंके दिनोंमें भी इस धंदेकी ओर कम ही ध्यान गया। परंतु महात्मा-गाँधीजीने ग्रामोद्योगसंघमें इसे जगह देकर भारतके इस मरते धंधेमें फिरसे जान डाली है। गत अप्रैलकी लखनऊ काँग्रेसमें जो प्रदर्शनी हुई थी वह मानो महात्माजीका ग्रामोद्योग आन्दोलन मूर्त्तिमान खड़ा था। इस प्रदर्शिनीमें वर्धा नालवाड़ी आश्रमके श्रीवाणुसकरका चर्मालय, श्री पारनेरकरका दुग्धालय, मधुमक्खी गृह, मुर्गियोंका पालना, तथा श्रीयादवराव चौधरीका हाथबने कागजका कारखाना, रेशम तथा खादीके लूम तथा कपड़ोंके प्रदर्शन विशेष उल्लेखनीय थे। महात्माजीने स्वयं अपने 'हरिजन' पत्रमें (दिसंबर ७, १९३५) हाथके कागज बनानेकी श्री चौधरीद्वारा निकाली सुधरी हुई विधि भी प्रकाशित की है।

४. हाथ-बने कागजकी विधि
लुगदीकी तैयारी

बांसके टुकड़े, पुराना फटा या सड़ा हुआ कपड़ा, छापाखानोंमेंके रद्दी कतरन, आदिसे लुगदी बन सकती है। कागजके कतरन हों तो उन्हें रगड़नेके पहिले सिर्फ सड़ाया जाता है, परन्तु बांसके टुकड़े, कपड़ेके चीथड़े या मछली पकड़नेवालोंके पुराने जाल हों तो उन्हें चित्र नं० १ में

चित्र १
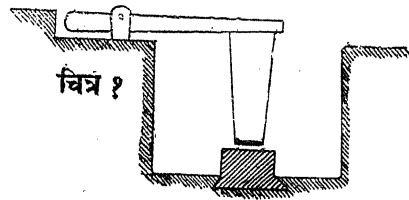
दिखाये अनुसार एक ढेंकीके नीचे कूटकर उसकी लुगदी बनायी जाती है। ढेंकीके हाथौड़ेके नीचे लोहेकी नाल होती है और कपड़ाकी जाल आदि एक पक्के पत्थरपर रखे जाते हैं। जैसे धान कूटते हैं उसी तरह पैरसे दूसरा सिरा दबाकर कुटाई की जाती है।

५. लुगदीकी सफाई

अब १०० पौंड लुगदी, १ पौंड दाहक सोडा (कॉस्टिक सोडा) और यथोचित पानीका मिश्रण १२ घंटेतक मिलाकर एक हौज़में या पीपेमें रखते हैं। फिर उसमें पानी बहाकर पैरसे कुचल-कुचलकर धो डालना चाहिये। कपड़े धोनेका १॥ पौंड साबुन, १ पौंड उबलते पानीमें घोलकर उसे लुगदीमें मिलाकर ४ घंटेतक वैसा ही रख देते हैं और फिर रगड़-रगड़कर लुगदीको धोते हैं।

धोनेके लिये पासमें नदी हो तो दो आदमी अपने कमरमें झोलीके दो सिरे बाँधकर उसमें लुगदी डाल लेते हैं। और झोली आधी पानीमें रहे, इस हिसाबसे खड़े होकर झुक-झुककर लुगदीको हाथसे हिलाते रहते हैं। जो नदी न हो तो चित्र नं० २ में दिखाये अनुसार हाथसे पत्थरपर
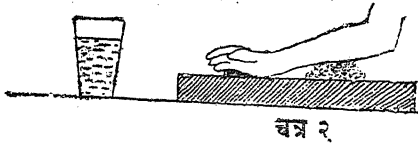
चित्र २

रगड़ते हैं। फिरसे १॥ पौंड साबुनमें इसी विधिसे एकबार और धोते हैं।

६—लुगदीकी परीक्षा

एक काँचके ग्लासमें पानी लो। उसमें १ तोला लुगदी डालकर घासकी कांड़ीसे हिलाना चाहिये। यदि उसमें गुठलियां या चीथड़े दीखें तो उसे फिरसे रगड़ना जरूरी है।

७—ताव तैयार करना

चित्र नं० ३में दिखाये अनुसार एक हौजमें लुगदीको
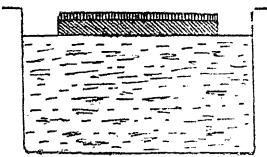
चित्र ३ हौज़

डालकर लकड़ीसे हिलाना चाहिये। अब एक लकड़ीकी चौकटपर घासकी चटाई रखकर उसके दो सिरोंपर दो लकड़ीकी पट्टियाँ रखते हैं। हौजमेंका मिश्रण हिलाकर थोड़ा चौकटपरकी चटाईपर लेते हैं और चौकटको तैरनेके लिये छोड़ देते हैं (चित्र नं० ३)। सब पानी निकल जानेपर चौकटको उठाते हैं (चित्र नं० ४)। एक पत्थरपर या
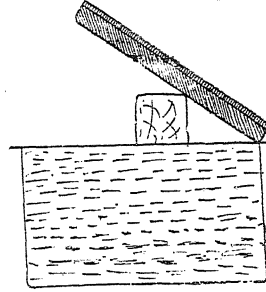
चित्र ४

लकड़ीके पीढ़ेपर कपड़ा बिछाकर, चौकटपरसे चटाई उठाकर, उसपर उलटी रखते हैं। चटाई धीरेसे उठा लेनेसे कागदका ताव कपड़ेपर ही रहता है। फिर उस कपड़ेको बिछाकर दूसरा ताव रखते हैं। इस प्रकार १०० ताव निकालनेपर उसपर लकड़ीका पीढ़ा और वज़न रखते हैं। पीढ़ा ढलाऊ रखनेसे पानी जल्दी बह जाता है। छः घंटेके बाद कपड़ेको तारपर सूखनेके लिये टाँग देते हैं और सूखनेपर कपड़ा तानकर कागज खींचकर निकाल लेते हैं।

श्री० चौधरीजीने कपड़ेपर सुखानेकी यह विधि जब तक नहीं निकाली थी तबतक एक-एक कागज भीतपर चिपकाया जाता था।

चित्र ५

८. स्याही न फूटनेके लिये संस्कार

चार भाग फिटकरी और १ भाग सरेस, कागजके चार गुने वजन पानीमें उबलनेतक गरम किये जाते हैं। और यह मिश्रण एक थालीमें या तश्तमें डालकर ठंडा करते हैं। उसमें कागदके ताव भिगो-भिगोकर तारपर सुखाते हैं। पहिले जमानेमें कागजमें आटेकी खली लगाते थे जिससे कागजका निष्कारण वजन बढ़ता था। पानी पड़नेपर कागज़ खराब होते थे। सूखनेके लिये अधिक समय

लगता था और चूहोंको कागज खानेका मोह होता था।

चित्र ६

८. चमकीलापन लानेके लिये घोंटाई

सूखा हुआ ताव गोलाकार लकड़ीपर रखकर कौड़ी या पेपरवेटसे रगड़नेपर अच्छी चमक आती है।

१०. उपसंहार

कागज बनानेकी विधि, जो ऊपर दी गयी है, अत्यंत सरल है और कुछ कष्ट करनेपर अच्छे कागज कोई भी अपने घरपर बना सकता है। पाठक सज्जनोंसे प्रार्थना है कि, यद्यपि पुस्तकें छापनेके लिये यह कागज थोड़ा महँगा पड़ेगा, तो भी निजी पत्रव्यवहार करते समय हाथ-बने कागजका वे अवश्य उपयोग करें इससे भी कई गरीब किसानों और भाइयोंका आप काफी सहारा दे सकते हैं।

धातुके निबोंके निर्माणकी योजना

[लाला श्रीरामजी अग्रवाल, मंत्री, असोसियेशन फार दी डेवलपमेन्ट फार दी स्वदेशी इंडस्ट्रीज़, चाँदनी चौक, देहलीके संग्रहसे श्री पंडित ओंकारनाथ शर्मा द्वारा अनूदित]

उपक्रम

पेनहोल्डरोंके साथ ही निब भी, पढ़ने लिखनेकी सामग्रीमें एक बड़ी आवश्यक वस्तु है। इस समय भारतवर्षमें इनके तयार करनेवाली तीन फैक्टरीयाँ ही मुख्य हैं। एकतो बम्बईमें हैं, दूसरी ग्वालियरमें और तीसरी कलकत्तेमें। उनकी रिपोर्टोंसे मालुम होता है कि वे अच्छा नफा कमा रही हैं। इस प्रकारकी और भी कई फैक्टरीयोंकी हमारे देशमें अभी गुँजाइश है। निब कई प्रकारकी धातुओंसे तयार किये जाते हैं यथा—स्पात, ताँबा, पीतल, जरमन सिलवर अलम्यूनियम और सोना। सोंनेके निबोंमें, उनकी नोंकपर, इरिडियम जैसी सख्त धातुकी बूँद ढालनेके पाइपके द्वारा रख दी जाती है जिससे वह जल्दी न घिस जावे। निबोंके निर्माणके लिये कच्चामाल-के रूपमें धातुकी चद्दरें ही काममें आती हैं। यह कहनेकी आवश्यकता ही नहीं कि चद्दरोंकी धातु बहुत बढ़िया और एक सी होनी चाहिये। यह चद्दरें फिलहाल बाहिरसे ही मँगवानी पड़ेंगी।

संक्षिप्त निर्माण विधि—सब प्रकारके निबोंकी निर्माणविधि लगभग एक सी ही होती है, धातुकी भिन्नताके कारण थोड़ा थोड़ा सा कुछ फर्क जरूर हो सकता है। इसका वर्णन "इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका" के ११ वें संस्करणकी २१ वीं जिल्दके ८३ वें पृष्टपर बड़ा उत्तम दिया है और इंगलैंडके बिरमिंघाम नगरकी एक फैक्टरीकी निर्माण विधिके आधारपर एक लेख इसी पत्रमें अन्यत्र प्रकाशित किया गया है। आशा है पाठक उन्हें देख लेंगे।

८ घंटे प्रतिदिन काम करके एक दिनमें ६५,००० निब बनाने वाली फैक्टरीके लिये यंत्र आदिका अनुमानपत्र—

आवश्यक यंत्र आदि—

१—(क) एक, दोहेरा क्रेंक प्रेस ...	२११८)
(ख) एक, सीधा करनेका औज़ार उपरोक्त प्रेसके लिये ...	५६०)
२—एक, खोलने वाली (Wind off) रील	५०)
३—एक, लपेटने वाली (Wind up) रील	९८)
४—(क) दस, डबल फिलर ८ स्क्रू प्रेस	२२४०)
(ख) उपरोक्त प्रेसोंके लिये स्टाप नट	२८०)
५—(क) दस, खुली हुई पीठके फ्लाई स्क्रू प्रेस	२५२०)
(ख) उपरोक्त प्रेसोंके लिये स्टाप नट	२८०)
योग ...	८२२६)

फैक्टरीके लिये इमारत—इस फैक्टरीके लिये ४० फीट लम्बी और २० फीट चौड़ी इमारत काफी होगी, जो लगभग २५०० रुपयेमें तैयार हो सकती है।

फैक्टरीका मासिक खर्चा—

१—कच्चे मालकी कीमत …	१११३)
२—कार्यकर्त्ताओंका वेतन … …	६८५)
३—किराया, चुंगी और कर तैयार मालके ऊपर २% के हिसाब से …	११२)
४—यंत्रोंकी मरम्मत …	८०)
५—यंत्र आदिकोंकी छीजन १०% प्रतिवर्षके हिसाबसे …	८८)
६—इमारतकी छीजन २% प्रतिवर्षके हिसाबसे	४)
७—पैकिंगका खर्चा …	३००)
८—निबोंके ऊपर आबदारी लगाने और उन्हें मुलायम करने आदि क्रियाओंका खर्चा कच्चे मालके ऊपर २५% के हिसाबसे	२७८)
९—फुटकर खर्च …	३००)
	२९६०)

फैक्टरीकी आमदनी—(एक महीना = २६ दिन)

६५००० निब प्रति दिनके हिसाब से २६ दिनके महिनेमें १५९०००० तयार होंगे। यदि इनमेंसे ५% टूटफूटके निकाल दिये जावें तो १६०५५०० निब बिकनेके लिये तयार रहेंगे। यह निब ११६४९ ग्रोस होते हैं। कमीशन और दलाली आदि देकर भी यदि एक ग्रोसके दाम ॥) रखे जावें तो एक मासकी आमदनी = ५५७४) होगी।

∴ एक मासका कुल लाभ २६१४) होगा और एक वर्षका कुल लाभ = ३१३६८) होगा अथवा यों समझिये कि मासिक पूँजीके ऊपर लगभग ९०% का फायदा होता है।

परिशिष्ट

कच्चे मालका हिसाब—

एक दिन में ६५००० निब तयार होंगे।

∴ एक मासमें १६९०००० निब तयार होवेंगे।

यदि एक निबका बोझा ०.६ ग्राम हो और एक ही निब को तयार करनेमें ०.१५ ग्राम चद्दर बरबाद हो जाती हो तो एक निबकी कुल तयारी में ०.६५ ग्राम अथवा ०.७ ग्राम चद्दर खर्च होवेगी।

∴ एक मासमें $\frac{१६९०००० \times .७}{४५३.६ \times ८२}$ मन = ३१.८१ मन चद्दर खर्च हो जावेगी।

यदि एक मन चद्दरके दाम ३५) हों तो एक मासमें १११३) की चद्दर खर्च हो जावेगी।

कार्यकर्त्ताओंके वेतनका हिसाब—

१—एक फोरमैन-वेतन १००) मासिक …	१००)
२—इक्कीस, कारीगर—वेतन ।॥=) रोजाना	४७७॥)
३—दो लड़के—वेतन ॥) रोजाना	२६)
४—दो बंडल बाँधनेवाले ॥) रोजाना	२६)
५—एक बाबू—वेतन ३०) मासिक	३०)
६—एक स्टोर बाबू-वेतन ३०) मासिक	२६)
कार्यकर्त्ताओंके वेतनका योग =	६८४॥)
अथवा	६८५)

पैकिंगके खर्चका हिसाब—

यदि एक ग्रास निब एक डिब्बेमें पैक किया जावे तो एक मासमें ११९४९ डिब्बे खर्च होंगे।

यदि १००० डिब्बोंकी कीमत २५ रु० होवे तो कुल

मासिक खर्चा $= \frac{२५ \times ११९४९}{१०००} = २७८)$

यदि लेबिलोंकी कीमत २५) हो तो कुल पैकिंगका खर्च २७८ + २५ = ३०३)

अथवा = ३००)

गरीबोंके लिये सरल रोगोपचार

(स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य)

१. साधारण और विशेष रोग

रोग दो प्रकारके होते हैं एक साधारण दूसरे विशेष ।

साधारण रोग वह है जो या तो हमारे कुपथ्यसे उत्पन्न हो जाते हैं या हमारे अनियमित अधिक आहार-विहारसे । जैसे खांसी, बुखार, सिर दर्द, पेट दर्द दस्त, प्रमेह, स्वप्नदोष आदि ।

विशेष रोग वह है जिनमें हमारे कृतिका दोष तो आरम्भिक मात्र होता है, किन्तु कारण बाहरसे आ जाते हैं । जैसे न्यूमोनिया (फुफ्फुस प्रदाह), क्षय (तपेदिक), हैजा, कुष्ट, विषमज्वर (मलेरिया) आदि ।

साधारण रोगोंकी चिकित्साके लिये यदि मनुष्य थोड़ा समझदार हो तो उसे किसी डाक्टर वैद्यके पास जानेकी आवश्यकता नहीं होती, वह अपनी चिकित्सा स्वयम् कर सकता है ।

यह साधारण रोग क्यों होते हैं ? शत प्रतिशत इनका कारण क्या होता है ? और इनसे किस प्रकार बचा जा सकता है ? यदि रोग हो जाय तो उसकी साधारण चिकित्सा क्या है ? हम अपना तीस वर्षका अनुभव पाठकों के सामने रखते हैं । आशा है विज्ञानके पाठक इससे लाभ उठावेंगे ।

२. रोगोंके खास सबब खानेकी भूलें हैं

थकावट, परिश्रम, सर्दी, गर्मी, चिन्ता आदि कई एक रोगोंमें कारण होते हैं । किन्तु रोगका मुख्य कारण प्रायः उदर-विकार, पाचन दोष या बदहजमी होती है ।

हमको खाना कितना खाना चाहिये ? हमारे शरीरको कितने भोजनकी आवश्यकता है ? कितनी खुराक हमारा पेट ठीक-ठीक पचा सकेगा ? इस बातको अक्सर आदमी नहीं समझते । हम देखते हैं कि हजार पीछे ९९९ आदमी अपनी जिह्वाके गुलाम होकर खाना खाया करते हैं । खुराक किस बातके लिये खायी जाती है ? खुराकका हमारे शरीरसे क्या सम्बन्ध है ? पेट कितनी खुराकके लिये इजाजत दे रहा है ? इस बातकी तरफ हमारा ध्यान ही नहीं जाता । स्वादिष्ट, चटपटी वस्तु होनी चाहिये, चाहे पेटमें जगह हो या न हो, स्वादके लालचसे हम खाते चले जाते हैं । इसकी नसीहत हमें हाथों-हाथ मिल भी जाती है । किसीको पेट दर्द, किसीको खट्टी डकार, किसीको दस्त, किसीको पेटमें गुड़गुड़ाहट, किसीको सिरदर्द किसीको बुखार हो जाता है । किसीका मुँह पक जाता है । किसीका गला पक जाता है । परन्तु, मनुष्य जो आदतोंका गुलाम जिह्वाका क्रीतदास है, जहाँ जरा अच्छा हुआ इस नसीहतको चट भूल जाता है, मानो आजसे दो दिन पहले कोई कष्ट हुआ ही नहीं था, फिर उसी तरह खाने लगता है, और अधिक-से-अधिक खाकर यह चाहता है कि जो कष्ट दो दिन पहले हुए थे जिसके कारण शरीर निर्बल हो गया है उसकी चटपट पूर्त्ति कर लूँ । इसका परिणाम फिर उसे वही देखनेको मिलता है । किसी न किसी बुखार, दर्द आदिसे कष्ट उठाता है । बारंबार प्रकृति उसको नसीहत देती है, रोगोंको भेजकर सावधान करती है, कि हे मनुष्य ! तू यह समझ कि तुझे कितना खाना चाहिये । कितना भोजन तेरे स्वास्थ्यके लिये हितकर है । पर यह बिना मोल जिह्वाका दास और काम-पिपासाका अत्यन्त पियासा मरुभूमिके मृगकी तरह सदा यही चाहता रहता है कि मेरी शारीरिक शक्ति अतुल हो जाय । मेरा शरीर इतना भोजन हजम कर ले कि मैं खा खाकर खूब मोटा बलिष्ट बनकर अतृप्त रहनेवाली कामवासनासे अपने मनको तृप्त कर लूँ । जिह्वाके अधिक स्वादवश और कामवासनाकी अधिक तृप्ति इन्हींको प्रबल कारणोंके अधीन मनुष्य अपनी पाचनशक्तिसे अधिक खाता रहता है । सौ सिद्धान्त का एक सिद्धान्त यह है कि मनुष्य अधिक खाकर ही बीमार होता है । रोगोंका प्रधान कारण अधिक खाना ही है ।

रोग किन्हीं कारणोंसे क्यों न हो जाय, पेटकी खराबी इसमें जरूर होगी। मलेरिया, प्लेग, न्यूमोनिया, सीतला या चेचक, खसरा आदि अनेक प्रकारकी ज्वरयुक्त बीमारियोंमें भी निश्चय ही पेट खराब होता है। और इन भयंकर व्याधियोंसे रोगी मरते ही वही हैं जिनका पेट रोगके पहले और रोगकी हालतमें भी साफ नहीं होता। रोगकी हालतमें यदि पेट साफ न हो, पेटमें खुराक पड़ती ही रहे तो वह खुराक कभी ठीक-ठीक हजम होती ही नहीं। उसमें ऐसी सड़ाइँध उत्पन्न होती रहती है जो रोगको रोकनेमें, और रोगीकी निर्बलताको दूर करनेमें, सहायता नहीं देती, उलटे रोगको बढ़ानेमें ही पूरी-पूरी सहायता होती है। न्यूमोनियाँ और टाइफाइड वगैरह ज्वरोंमें तीव्र ज्वर क्यों हो जाता है? सन्निपातिक हालत होकर रोगी क्यों बड़बड़ाने और उठ-उठ कर भागने लगता है? इसका प्रधान कारण ही यह होता है कि इस रोगकी वृद्धिमें पेटका बिगाड़ महान् सहायक हो जाता है। रोगकी हालतमें अगर पेट साफ रक्खा जाय और खानेके स्थानपर जल या फलोंका रसमात्र हो तो भयंकरसे भयंकर व्याधिकी ताकत कमजोर हो जाती है और रोगी नहीं मरता।

३. इलाजका हमारा दस्तूर

इन्हीं बातोंका हजारों वर्षसे अनुभव प्राप्त कर आयुर्वेदज्ञोंने यह सिद्धान्त बनाया था कि "सर्वेषामेवरोगाणां निदानं कुपिता-मलाः" समस्त रोगोंका मूलकारण पेटके मलोंका कुपित होना है अर्थात् पेटका बिगड़ना। अजीर्ण अपचके दोषसे ही ज्वर होता है। इसीलिये तो इन्होंने उपदेश दिया कि "अजीर्णे लंघनं कुर्यात्" "ज्वरादौ लंघनं कुर्यात्" अजीर्ण और ज्वरके होनेपर सबसे प्रथम लंघन करो अर्थात् कुछ न खाओ।

हमारा अपना यह नियम है कि कोई भी नवीन रोगका रोगी आवे हम उससे उस समय कोई लम्बी चौड़ी बात नहीं पूँछते। कोई मल पाचक औषध दिनमें दे देते हैं। रातके लिये ऐसी रेचक औषध दे देते हैं जिससे सुबह एक दो दस्त खुलकर आ जायँ। साथमें हिदायत कर देते हैं कि खबरदार जब तक हम न कहें कुछ मत खाना। पानी खूब पियो। इस साधारण सी व्यवस्थासे सौमेंसे ७५ रोगी अनायास ही ज्वर, सिरदर्द, पेटदर्द, दस्त, वमन आदि रोगोंसे मुक्ति पा जाते हैं। कई रोगी दो-दो चार-चार दिन भी ले लेते हैं, पर बिना किसी झंझटके आसानीसे अच्छे हो जाते हैं। बवासीर, भगन्दर, दमा, कुष्ट वगैरह रोगोंसे हमारा यहाँ कोई मतलब नहीं। बल्कि यहाँ हम उन कारणों और उन रोगोंकी चर्चा कर रहे हैं जिनसे आगे चलकर यह भयंकर व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनका इलाज असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होता है। मैं जो कुछ रोगके और स्वास्थ्यके सम्बन्धमें कह रहा हूँ, दूसरोंपर ही अनुभव करके नहीं कह रहा हूँ प्रत्युत अपने ऊपर इसका अच्छी प्रकार अनुभव कर चुका हूँ।

४. अपने शरीरसे अनुभव

इसपर कुछ अपनी राम कहानी पाठकोंके लाभार्थ रख देना अनुचित नहीं समझता। मैं कुछ ऐसी परिस्थितिमें पैदा हुआ कि जन्म लेनेके बाद ही रोगी हो गया। पालन-पोषणमें ज्यादा लाड़प्यार होनेके कारण जितनी अधिक बे-समझी हुई उसका वर्णन वृथा है। मैं शरीरका कृश था। मुझे इसलिये अधिक खिलाया-पिलाया जाता था कि मैं मोटा हो जाऊँ। जितना अधिक खिलाया-पिलाया जाता था उतना ही उतना मैं बजाय मोटा होनेके कृश होता जाता था। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि जितना अधिक मुझे खिलाया जाता था पचता न था, इसीलिये वह बिना पचा हुआ भोजन मलमार्गसे निकल जाया करता था। जो चीज बिना पचे निकल जाय वह कभी ताकत नहीं दे सकती, बल्कि उल्टे ताकतखींच ले जाती है। पाठक कहेंगे यह किस तरह? सुनिये! जितना कुछ हम खाते हैं उस खुराकमें मुँह पेट और आँतोंसे निकलकर कई रस ऐसे मिलते हैं जिनके मेलसे खुराक हजम होती है। यदि खुराक जरूरतसे इतनी ज्यादा हो कि ये रस मिलकर भी उसे हजम करनेके लायक न बना सकें तो ऐसे न पचे हुए भोजनको हमारा पेट अपने भीतर जमा रखना नहीं चाहता। वह उसे जल्दी निकाल देनेकी कोशिश करता है। इसीसे दस्त आने लगते हैं। इस दस्तके रास्तेसे भोजन ही नहीं निकलता बल्कि भोजनमें मिली भोजनकी पचानेवाली वह ताकत जो रस रूपमें आकर मिली थी, साथमें

निकल जाती है । न जाने कितने परिश्रमसे शरीरने उन पचानेवाले रसोंको उत्पन्न किया था । और शरीरके कार्यकर्ताओंको आशा थी कि वह रस भोजनमें मिलकर उसको ऐसा बना देगा जो पचकर रस रूप होकर हम तक पहुँचेगा और हम उसे खाकर अपनी ड्यूटी अच्छी प्रकार बजा लावेंगे । उन्हें निराश होना पड़ा । बाहरसे आयी हुई खुराकसे उन्हें जो कुछ मिलना था । जिसकी प्राप्तिके लिये परिश्रम किया, कुछ न मिला । पाठक ही बतलायें जो विचारे दिन-रात काम करनेवाले हों यदि उनको उदरपूर्तिभर खाना न मिलता रहे तो वह कब अपनी पहिली हालतमें रहकर काम कर सकते हैं ।

शरीरका एक दूसरे अंगोंसे अन्योऽन्य सम्बन्ध है । साधारणसे-साधारण विशेषसे-विशेष कोई भी अंग ऐसे नहीं जो एक दूसरेसे अच्छी तरह बँधे न हों । एकका काम रुकते ही औरोंके काममें भी बाधा पड़ जाती है । एक अंग रोगी हो जाय तो सारा सरीर रोगी हो जाता है । अस्तु । मेरे घरवाले मुझे अधिक खिला-खिलाकर मोटा तो न बना सके, हां पूर्णतया रोगी जरूर बना दिया । अधिक खानेसे पेटका आकार बढ़ गया, ओझरी या आमाशय इस अधिक खुराकको रखनेका इतना बुरा अभ्यासी हो गया कि फिर थोड़ी खुराकसे संतोष ही न पाता था । सदा रो-रोकर अधिकसे-अधिक खाना मांगता और खूब खाता तथा जितना खाता उससे अधिक पायखाना करता रहता । कभी सिरदर्द, कभी पेटदर्द, कभी बुखार, कभी बदहज्मी, तीसौं दिनका बीमार, कभी अच्छा होनेमें न आता पिता चिकित्सक बाबा चिकित्सक, पर रोगी बेटेको दवाई खिला-खिलाकर स्वस्थ तो न बना सके, हाँ रोगी बनानेमें पूर्ण सफलता पायी । उन्हें वहम सिरपर सवार रहता था । कहा करते अपनी दवासे वरमें कभी लाभ नहीं होता । अन्य वैद्यों डाक्टरोंको दिखाने और कई-कई मास लगकर चिकित्सा करानेपर परिणाम वही ढाकके तीन पात प्राप्त होते । इस प्रकार मेरा बाल्यकाल बीता । मैं भी पढ़कर जब चिकित्साकी ओर लग पड़ा तो सबसे पहले मेरे हृदयमें इस धारणाने घर कर लिया कि जो व्यक्ति अपनेको नीरोग नहीं कर सकता वह दूसरेको कभी नीरोग नहीं बना सकता । जिसको अपने शरीरकी स्थितिका पूर्ण ज्ञान नहीं उसे दूसरेके शरीरकी स्थितिका पूर्ण ज्ञान हो ही नहीं सकता । पिता बाबा कहा करते थे "बेटा अपनी चिकित्सा आप नहीं किया करते । कोई वैद्य अपनी चिकित्सा आप नहीं कर सकता ।" पर मेरे अन्दर इस धारणाने घर बना लिया था कि जो व्यक्ति अपनेको नहीं जानता, जिसने अपने शरीरकी स्थितिका अनुशीलन नहीं किया वह औरोंकी स्थितिका—जो उससे बहुत दूर हैं—कैसे अनुशीलन कर सकता है । बार-बार हमारे सामने यह प्रश्न आता था कि क्या हमारा शरीर किसी और तत्वका बना हुआ है और दूसरे आदमियोंका और तत्वका । जब हम एकसी ही वस्तुएं खाते हैं, एक तरहसे खाते हैं, एक तरहसे रहते हैं, एक तरहसे ही मनुष्यमात्रके शारीरिक व्यापार चलते हैं तो कोई कारण ऐसा नहीं जो हम औरोंको समझ तो सकें पर, अपनेको और अपने रोगके कारणको न समझ सकें ।

हमने अपने भोजनको तुलादण्डपर रखकर निश्चित मात्रामें घटा-घटाकर खानेका आयोजन किया । भोजनकी मात्रा कम करते-करते इतनी कम कर दी कि पायखाना बँधकर आने लगा और साफ आने लगा, दिनमें कई बार जानेकी जरूरत मिट गयी । मलका वर्ण भी बदलकर असली भूरा हो गया । तकलीफें भी घटकर न मालूम सी रह गयीं । तब निश्चय हुआ कि यह जितनी खराबी थी अधिक भोजनके कारण ही थी । उस दिनके पीछे आज दिन तक मेरे भोजनकी व्यवस्था बिगड़ने नहीं पायी । जरा भी कष्ट होते ही कई कई दिन भोजन छोड़ देता हूँ । आज तीस वर्ष होनेपर आये कभी बीमार नहीं पड़ा, न कभी सिर दर्दकी शिकायत, न बुखारका आवागमन, न खांसी की खुटक, न पेटकी तकलीफ । जहां-कहीं जब कभी इनमेंसे एक भी नजर आये नहीं कि लंघनका रामबाण उनपर चला दिया । रातको पेट साफ कर डाला, अनीमा ले लिया और जबतक तबीयत ठीक नहीं हुई इसी स्थितिमें रहा, केवल फलोंके रसोंपर निर्वाह किया । बस, यह निश्चय जानिये इस तीस वर्षमें कभी तीन दिन चारपाई पर बीमार होकर नहीं पड़ा ।

५. मेरी चिकित्साका रहस्य

जबसे चिकित्सा करता हूँ मेरी चिकित्सामें मुख्य रहस्यकी बात यही है कि सबसे पहले रोगीका पेट साफ करने और फिर बराबर साफ रखनेका जतन करता हूँ। इसी एक प्रधान विधि सौमें निन्यानबे रोगियोंके इलाजमें अत्यन्त साधारण उपचारसे सफलता पा जाता हूँ।

जब देखो आर्यजाति अपने बुजुर्गोंके स्वास्थ्यकी तारीफ किया करती है। कहती है वह बड़े हृष्ट-पुष्ट और तेजस्वी होते थे। उनकी आयु भी बड़ी-बड़ी लम्बी होती थी। क्या उस समय रोग होते ही नहीं थे? यह बात नहीं। बात यही थी कि वह लोग बड़े-पकौड़ियोंके शौकिन नहीं थे, वह बकरियोंकी तरह सारे दिन खाते ही नहीं रहते थे। उनके समयमें गली-गली दर-दर खोंचेवाले नहीं फिरा करते थे। उनका भोजन अत्यन्त सादा होता था। दिनमें अधिकसे-अधिक दो बार खाते थे, खानेमें भी संयम से काम लेते थे। यह नहीं कि आज स्वादिष्ट चीज बनी है तो खूब खालें। ब्रह्मचारी पूरे रहा करते थे। सन्तान उत्पत्तिके अर्थ ही उनकी कामुकता थी। इन्हीं कारणोंसे उनके नजदीक बीमारियाँ फटकती न थीं। जो मनुष्य स्वस्थ रहेगा उसकी आयुका बढ़ना एक लाजमी बात है। जितना ही नीरोग रहेगा उतना ही आदमी दीर्घायु होगा। रोग ही मृत्युका द्वार है। जो आदमी अपने खाने-पीनेका ठीक बन्दोबस्त न करेगा उसके पास रोग आवेंगे ही और वह रोग उसे जर्जर करके यमराजका निमन्त्रण अवश्य देंगे, यह निश्चित बात है।

वैद्य कहते हैं रोग तो वात, पित्त, कफके शरीरमें घटने-बढ़नेसे होते हैं। यदि वात, पित्त, कफ तीनों शरीरमें ठीक रहें तो शरीर स्वस्थ और नीरोग रहेगा। यह बढ़-घट जायँ तो रोग अवश्यम्भावी है। हमें अपना अनुभव बतलाता है कि तुम्हें वात, पित्त, कफतक जानेकी जरूरत ही नहीं। सबसे प्रथम रोगीके भोजनकी ओर ध्यान दो, पेटकी शुद्धि करो, फिर देखो रोग घटता है या बढ़ता है। यदि इतने ही सरल उपचारसे रोग घट जाय तो तुम्हें अन्य कारणोंकी ओर जानेकी जरूरत क्या? एक प्रत्यक्ष कारणको छोड़ कर अप्रत्यक्ष कारणकी कल्पना करना कौन सी बुद्धिमत्ता है?

जिन आदमियोंको अधिक कब्जकी शिकायत रहती है, पेटमें हवा भरती है, डकार आते हैं उन्हें कोई वातका रोग नहीं होता। इनको भी एक प्रकारका अपच विकार होता है। जिन व्यक्तियोंकी भोजनके पश्चात् छाती जला करती है, खट्टे, कडुवे, बुरे डकार आते रहते हैं, पेटमें जलन, प्यास अधिक लगती है इन्हें भी कोई पित्तका रोग नहीं होता प्रत्युत बदहजमी ही इसके मूलमें कारण होती है। जिनको तीसरे दिन जुकामी सरदर्द नजला वगैरह घेरे रहते हैं कफ बहुत जाया करता है, खाँसी सताती है, यह बीमारी भी कफकी नहीं, बल्कि अधिक विषयी होनेपर क्षीण-वीर्यता जब बनी रहती है और उसकी पूर्तिके लिये खाद्य-पेयकी अधिकता रक्खी जाती है तो उदरविकार एक प्रकारसे अपना घर बना लेता है। इसीसे तीसरे दिनसे ही जुकाम, खाँसी, नजला घेरे रहता है। हमने तो सौ मेंसे सौ रोगियोंमें इसी कारणको पाया है। कोई कहते हैं, अजी हमको तो सर्दी लग गयी है, हवा खा गया हूँ, गर्मी-सर्दी हो गयी है। यह सब कारण तो हैं जरूर पर निमित्त-कारण हैं। अधिक विषयी होनेके कारण शरीरकी शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। सहनेकी शक्ति घट जाती है। आमाशय सदा खराब रहता है। इसीलिये जरासी सर्दी आमाशयकी पाचन क्रियाको बिगाड़नेके लिये काफी होती है। पाठक यह बात ध्यानमें रक्खें कि मनुष्य सर्दी गर्मी बाहरसे खाता है, पर जुकामका स्थान शरीरकी बाहरी-त्वचापर नहीं। फेफड़ेकी अन्दरूनी झिल्लीमें है। शरीरकी क्षीणता और पचन दोषका प्रभाव और उसीसे जनित विकारोंकी मात्रा रक्तद्वारा जब फेफड़ोंपर पहुँचती है तभी जुकाम होता है और जुकाममें जो बलगम जाता है, वह बदहजमीका एक परिणाममात्र है। वात, पित्त, कफ इस तरहके अपचदोषसे उत्पन्न एक लक्षणमात्र हैं न कि रोग मूल कारण। रोगोंका मूल का ण तो अपने आप पैदा किया हुआ है, वह है खान-पानका विकार और अधिक विषय-वासनाका व्यापार।

यदि मनुष्य अपने भोजनकी एक निश्चित मात्रा नियत कर ले और ठीक समयपर खाय, बीचमें कुसमयपर न खाय तो उसको बीमारी नहीं लगती। हमारे पाठक पूँछ सकते हैं कि मनुष्यको कितना खाना चाहिये। इसकी मात्रा किन व्यक्तिमें कितनी हो यह किस प्रकार

जाना जाय, इसका उत्तर बड़ा ही आसान है यदि मनुष्य ध्यान देवे। भोजन अधिक है या ठीक मात्रामें खाया जाता है, इस बातका पता अवशेष मल या विष्ठाको देखनेसे लग जाता है। जो व्यक्ति उचित परिमाणमें आहार करते हैं उनको पायखाना बँधा हुआ ठीक समयपर, बिना अधिक देर पायखानेमें बैठे, चटपट आ जाता है। ठीक भोजन करनेवालेका बँधा हुआ गोलाकार लम्बपिण्डवत उतरता है। इसका रंग भी भूरा-पीत होता है, मलमें दुर्गन्ध भी कम होती है। इसके सिवा भोजन उचित परिमाणमें खाया जाय तो प्यास अधिक नहीं लगती, शरीरमें भार और आलस्य नहीं होता; और न भोजनके पीछे डकार ही आते रहते हैं, न पेटपर बोझ ही प्रतीत होता है। शरीर हल्का रहता है, काम करनेको जी करता है, मुँहका स्वाद भी अच्छा रहता है। यदि मात्रासे अधिक खाया गया हो तो पेट भारी हो जाता है, डकार आते ही रहते हैं, मुँहमें पानी आता रहता है, प्यास ज्यादा लगती है। जबतक वह भोजन हजम न हो जाय चित्त बेचैन रहता है, और ऐसा जी करता है कि पड़े ही रहें। मल या तो पतला आता है, या थोड़ा-थोड़ा उतरता है, या पाखानेमें काफी देरतक बैठना पड़ता है। तब कहीं थोड़ा-थोड़ा करके मल बाहर आता है, सबेरे मुँहका स्वाद फीका रहता है, साबुनकी सी चिकनाहट बनी रहती है। जिन लोगोंके पेट इस तरह खराब रहते हैं, या पखाना साफ नहीं आता उन्हें ही सिरदर्द, पेटदर्द, ज्वर आदिकी अक्सर शिकायत होती रहती है। और इन शिकायतोंको दूर करनेके लिये वह दवा-पर-दवा खाते रहते हैं, पर असली चिकित्सा और दवाकी ओर उनका ध्यान नहीं जाता। जो व्यक्ति भोजनकी व्यवस्था ठीक नहीं करते वह दवाकी सहायतासे चाहे कुछ दिनके लिये अच्छे हो जायँ किन्तु कुछ दिनके बाद उनकी हालत फिर वैसी ही हो जाती है।

६. पाचक और चूरन वैद्यको लाभ पहुँचाते हैं

कितने ही लोगोंको हमने देखा है कि एक ओर कुपथ्य करते रहते हैं और दूसरी ओर दवा खाते रहते हैं। कोई तो दवाका आश्रय लेकर ही कुपथ्य करते रहते हैं और कहते हैं चलो तो कुछ ज्यादा खाया जावेगा तो चूरन चटनी खालेंगे। वैद्य लोगोंके चूरन भी सेरों भोजन हजम करनेके विज्ञापनके साथ होते हैं। वैद्योंके चूरन और हाजमेकी गोलियाँ वास्तवमें वैद्योंके एजेण्ट-का काम करती हैं। जो लोग चूरन और गोलियोंके भरोसे अधिक भोजन करते रहते हैं वह बिना बुलायेही वैद्योंके द्वारे पहुँच जाते हैं। जो लोग यह समझते हैं कि औषध शरीरकी शक्तिको बढ़ा देते हैं, मनुष्य औषधके आश्रयसे जितना चाहे खाकर पचा सकता है" वह भारी भ्रममें पड़े हुए हैं। जिस मनुष्यमें जितनी शक्तिके लिये स्थान होगा उससे अधिक न तो औषधसे पैदा हो सकती है, न किसी अन्य विधिसे बढ़ही सकती है।

किसी भी समझदार स्वास्थ्यकी इच्छा रखनेवालेको किसी औषधके भरोसे अधिक भोजन पचानेकी इच्छा नहीं करनी चाहिये। न अधिक खानेका स्वयं अभ्यासी बननी चाहिये। जो लोग जितना संयमसे भोजन करते हैं वह उतनेही सुखी, स्वस्थ और बलिष्ट रहते हैं। मेरा यह अपना अनेक लोगोंपरसे पाया हुआ अनुभव है कि जो भोजन पूर्णतया पच जाय, चाहे वह बहुतही कम मात्रामें क्यों न हो, जितना बल शरीरको देता है उतना एक अच्छा ताकतवर भोजन, जो अच्छी तरह पेटमें न पचे, नहीं दे सकता।

हम यह देखते हैं कि कई व्यक्ति भोजनकी मात्रा बढ़ाते चले जायँ तो वह अधिक खाने और पचानेमें समर्थ होते हैं। पचानेका अर्थ लोग यह समझते हैं कि जितना खाया जाय वह खाकर दूसरे समय फिर भूख लगे। वास्तवमें यह पचानेका अर्थ नहीं। यह तो अभ्यास है, आदत है। पचानेका अर्थ यह है कि अधिक भोजन नित्य करता रहे फिर आलस्य न आवे, शरीर भारी न हो, चित्त प्रसन्न रहे अपान वायु न सरती रहे, मल सुबहको बँधा हुआ साफ आवे, तब जानो कि अन्न ठीक पचा है। अधिक भोजन करनेका दावा करके दिखानेवाला यदि भोजनके पीछे आलस्यमें भरे सोते रहें, डकार लेते रहें, अपान वायु बारम्बार दुर्गन्धपूर्ण आती रहे, दिनमें कई बार शौचके लिये जायँ, समझो कि वे वृथाकी डींगें मारते हैं।

७. छोटे बच्चोंकी देखभाल

छोटे-छोटे बालकोंको भी नियमित और समयपर आहार देनेसेही वे अच्छे स्वस्थ और हृष्टपुष्ट होते हैं। हमारे देशमें बालकोंकी मृत्युका प्रधान कारण यही है कि हमारी माताओंको इस बातका बिलकुल ज्ञान नहीं होता कि कितने मासके बालकको कितनी मात्रामें दूध देना चाहिये तथा कितनी बार देना चाहिये। मेरा अपना अनुभव बतलाता है कि सौ बालकोंमेंसे ९९ बालकोंको माताएँ अधिक दूध पिलाती रहती है। इसीसे वह बारम्बार बीमारीका शिकार होते रहते हैं। इस तरहका पेटका बिगाड़ जिन बालकोंमें बना रहता है जो अपचदोषके कारण दुबले और कमजोर हो जाते हैं वह प्रायः टाइफाइड, खसरा, चेचक, क्षय, निमोनियाँ आदिके शीघ्र शिकार हो जाते हैं। ऐसेही बालकोंको दाँत निकलनेके समय दस्तोंका रोग अधिक लगता है, तालुकण्टक रोग तो इस उदर विकार, अपचदोषसेही होता है। यदि माताएँ बालककी समस्त परीक्षाओंको छोड़कर एक मलपरीक्षाको सन्मुख रखकर दूध देनेका बन्दोबस्त रक्खें तो निश्चयही बालक समस्त बीमारियोंसे बच सकता है। मलपरीक्षा इस प्रकार करनी चाहिये। माताओंको यह सदा ध्यान रखना चाहिये कि बालकका मल किस रंगका है, कैसा है, बालकका मल जितने दूध पिलानेसे बँधा हुआ काफी गाढ़ा आवे, २४ घंटेमें अधिकसे-अधिक दोबार आवे, मलका वर्ण अधिक पीततायुक्त भूरा या मिट्टीके रंगका हो तो समझना चाहिये कि उतना दूध बच्चेके लिये उपयुक्त है। यदि मल पतला आता हो, दिनमें, रातमें कई-कई बार आता हो, मलमें दूध की या पीले रंगकी फुटकियां निकलती हों तो समझ लो कि बालकको मात्रासे अधिक दूध दिया जा रहा है। हम बालकोंके अनेक रोगोंमें उन्हें कई-कई दिन लंघन कराकर तथा केवल जलके आधारपर रखकर अच्छी तरह परीक्षा ले चुके हैं कि बालकोंको सौमें निन्नानवे रोग अधिक दूध पिलाने और भोजन करानेसे होता है। ऐसा न होता हो तो बालक कभी लंघनसे अच्छा नहीं होना चाहिये था, परन्तु हमें सफलता सौ प्रतिशत मिलती है। इसलिये क्या बालक क्या बड़ा हर एकको भोजनकी उचित व्यवस्था करनी ही चाहिये, तभी स्वास्थ्य ठीक रह सकता है। दवाइयोंके आधारपर नहीं। प्रकृतिने हमें जो स्वभावतः शक्ति दी है उसे उचित रूपमेंही खर्च करना चाहिये। अधिक आहार विहार (विषयेच्छा) करना प्रकृतिकी दी हुई शक्तिका दुरुपयोग करना है।

हमने संक्षेपमें पाठकोंको स्वास्थसम्बन्धी अपना वह अनुभव बतलाया है जो हमारे जीवनको ही सुखी नहीं बना सका बल्कि जो हमारे सहयोगमें आये हैं और जिन्होंने अपने आहार-विहारको संयमसे रक्खा है, सबोंका स्वास्थ्य अच्छा बन गया है। पाठकोंको मेरे उक्त कथनकी जाँच करनी चाहिये, अनुभव लेना चाहिये कि इस कथनमें कहाँतक तथ्य है।

कई पाठक कहेंगे कि अच्छा यह तो हम करके देखेंगे यह तो आगेकी बात है, यदि कोई पहिलेसे ही आहार-विहारके असंयमसे किसी रोगसे घिरा रहा हो तो उसके लिये तो औषध चाहिये। उसे केवल लंघन या पथ्यसे थोड़े ही लाभ होनेको है। उसके लिये कोई न कोई सरल उपचार बतलाओ जिससे गरीबोंका विशेष उपकार हो। जिन पाठकोंके ऐसे विचार हैं वह प्रायः औषधपर अधिक विश्वास रखते हैं। वैद्यों, डाक्टरों चिकित्सकोंकी ओरसे सिखाया भी तो यही जाता है। वह यह नहीं समझते कि वैद्य डाक्टर जो औषध खानेकी ओर अधिक जोर देते हैं उसका अभिप्राय यह नहीं कि औषधमें ही रोगनाशक शक्ति है, प्रत्युत उसके भीतर उनका स्वार्थ इनकी रोटी छिपी होती है। यदि वह कह दें कि जाओ लंघन कर डालो, हरड़का चूरन निमक मिलाकर गर्म पानीसे खाकर पेट साफ कर लो तो बताओ वह क्या खायँ। वह अपनी रोटीका लंघन—जो वैद्य जी स्वयम् रोगी नहीं हैं—कैसे सहन कर सकते हैं? वह उपदेशक बनकर तो बैठे नहीं हैं कि कहींसे वेतन आ जायगा। आखिरकार यही एक रोटीके आनेका द्वार है, फिर क्यों न इसकी पुष्टि करें।

यह मेरा अनेक बारका अनुभव है कि रोगीको इस प्रकारके उपदेशोंसे बहुत कम संतोष होता है। यदि साथमें कुछ औषध दी जाय और फिर पथ्यकी व्यवस्था की जाय तो उसे वह सहर्ष स्वीकार कर लेता है। केवल

लंघन और पथ्य एक भयंकर चीज दिखाई देती है। इसी-लिये हम ऐसे कुछ अपने अनुभूत योग पाठकोंकी सेवामें रखते हैं जो बहुत ही सुलभतासे बननेवाले हैं और उनसे लाभ भी काफी होता है। मैं आशा करता हूँ कि अनेक श्रीमान मेरे इन योगोंकी परीक्षा करेंगे और फिर दवाएँ बनाकर गरीबोंको मुफ्त बाँटकर यशके भागी होंगे।

८. बालकोंके ज्वरपर योग

अतीस, करंजबीज, हरड़, एलवा, रेंवदउसारा, निमक-काला, मस्तगी असली, सब बराबर लेकर पानीमें पीसकर मूँगके बराबर गोली बना लें। १ गोलीसे २ गोलीतक बच्चोंको गरम जलमें घोलकर पिला दें। इससे एक दो दस्त साफ आ जाते हैं और ज्वर, श्लेष्म-विकार, पसली चलना, पेटका दर्द अफारा आदि सब दूर हो जाते हैं। बाज-बाज बालकोंको दो गोलीसे दस्त नहीं आते, उन्हें तीन-चार गोलीतक भी दे सकते हैं। इन्हीं गोलियोंकी आधी मात्रा या आधी चौथाई गोली देनेपर हरे पीले और अपचके दस्त बन्द हो जाते हैं। कई बालकोंको जिन्हें श्लेष्माका विकार अधिक होता है उन्हें इस दवासे वमन भी आ जाता है। इससे घबरानेकी कोई बात नहीं। ऐसी हालतमें बालकोंका दूध या तो बिलकुल बन्द कर देना चाहिये या बहुत कम देना चाहिये चाहे बालक कितना भी छोटा क्यों न हो। हाँ, पानी पिलाते रहना चाहिये।

९. खाँसीका अद्भुत योग

एक पाव साँभर निमक, एक सेर ऐरण्डके हरे ताज़े पत्ते, दोनोंको खूब कूटकर एकत्र कर एक गोला बना ले। इन दोनोंको एक मिट्टीके कुज्जे या गड़वेमें बन्द करके २० सेर कण्डोंके मध्य रखकर अग्नि लगा दें। जब अग्नि शीतल हो जाय निकालकर पीसकर रख ले। इस दवाका रंग काला होगा और खानेमें निमकका स्वाद आवेगा। यह दवा बालकोंसे लेकर बूढ़ोंतकको दीजिये, सबको लाभ देगी। इसके सिवा सूखी हो या गीली सब तरहकी खाँसीमें इसका उपयोग किया जाता है। मात्रा १—२ रत्तीतक। सूखी खाँसीवालेको जलेबीके टुकड़ेमें रखकर या किसी शर्बतमें मिलाकर दिनमें दो तीन बार चटावें। बलगम खाँसीवालेको शहदमें चटावें। खटाई, तेल, अचार वगैरह-से परहेज करावें।

१०. दमा और खांसीका विचित्र योग

एलवा (मुसब्बर) और कालानिमक दोनों बराबर लेकर पीसकर रख लें। इसकी मात्रा ½ से १ रत्ती तक है। यह देखनेमें तो साधारण सी चीज दिखाई देगी। मगर उपयोग करनेपर इसके गुणोंका पता लगेगा।

लाभ। यह दवा जिनको अधिक बलगम जाता है और साथमें श्वांस या दमाको कष्ट होता रहता है। रात-रात भर नींद नहीं आती। अत्यन्त तकलीफ हरदम बनी रहती है। उनको रसकी १ रत्तीकी मात्रा शहदसे चटावें। बड़ा अद्भुत लाभ करेगा। जिन व्यक्तियोंको सूखा दमा और सूखी खाँसी आती हो उनको दूधके साथ खानेको दें। दवा १ रत्ती खाकर ऊपरसे मीठा मिला हुआ सुखोष्ण दूध पीया करें। अनेकों दमेके रोगी तो इसके सेवनसे बिलकुलही अच्छे हो गये हैं। अनेकोंको फायदा होता है, पर रोग मूलसे नहीं जाता। दौरेसे होनेवाले दमा और खाँसीके रोगीको इससे लाभ नहीं होता। दौरेसे होनेवाले दमाके रोगीको देना नहीं चाहिये मगर बलगमको तो यह इस प्रकार ठीक करता है कि इसके चमत्कारीगुणको देखकर आश्चर्य होता है।

११. पार्श्वशूल तथा उदरशूलपर योग

बारासिंगाके (साबरके) सींगको आकके दूधमें तीन दिन भिगोकर इसी तरह खुला कण्डोंकी १०—१५ सेरकी अग्निमें डालकर जला लें। जितना फूँका हुआ यह हो इतना ही मीठा तेलियाविष मिलाकर खरल करें। जब दोनों बारीक हो जायँ तो अजवायनके काढ़ेमें खरल करके उर्दके दानेके बराबर या मूँगके दानेके बराबर गोली बना लें। पसलीकी भयंकर वेदनामें एकसे दो गोलीतक गर्म जलसे दें। अवश्य लाभ होगा, यह पसलीका दर्द सर्दी लगनेसे या न्यूमोनियाँ होनेसे प्रथम होता है।

उदरशूलमें भी गरम जलसे दें। यदि पेट साफ न हो तो प्रथम पेट साफ कर दें। पेटके मामूली दर्दपर भी लाभ करता है। शरीरके अन्य स्थानोंपर साधारण दर्दोंमें भी इससे लाभ होता है।

१२. दर्द-गुर्दापर यदि पथरी न हो

नौसादर, शोरा, इन्द्रायण फलका गूदा, सब बराबर लेकर चूर्ण कर ले। मात्रा १ माशातकसे सेवन करावे। मात्रा अधिक १॥–२ माशेतक भी दे सकते हैं। इससे शौच भी साफ होता है। दर्द बन्द हो जाता है। इस दर्दको कुलंजका दर्द भी कहते हैं।

१२. बिना फूटी कंठमालाका योग

गधेके खुर लेकर अग्निमें डालकर जला डालो, जब जलकर काले कोयलेके सदृश हो जाय निकाल लो। १ तोला भस्ममें ५ तोला गौघृत मिलाकर खूब रगड़ो। जब एक जान हो जाय डिब्बीमें बन्दकर रक्खो। कण्ठमालाकी गाँठें गलेमें या पेटमें या बगलोंमें कहीं भी हों इस मलहम को उन गाँठोंपर लगाकर कुछ देर नित्य मालिश कर दिया करो। पांच सात दिनमें यह क्षयोत्पन्न कण्ठमालाकी गाँठें बिना कष्टके बैठ जावेंगी। सौ रोगीमेंसे ९९ रोगीको इससे लाभ होता है।

१३. कार्बंकल या औंधे फोड़ेकी अचूक मलहम

गेहूँके दाने २ तोला, बिच्छू काले २ नग मरे हुए, अफीम ६ माशा, तेल सरसों का १० तोला, सबको कढ़ाईमें डालकर अग्निमें पकाओ। पकते पकते जब सारी चीजें जलकर काली पड़ जायें तब उतार लो और इसमें ६ माशा मोम डालकर इसको खूब रगड़ो। जब एक जान हो जाय तब निकालकर रख लो।

कार्बंकल फोड़ा प्रायः मधुमेहके रोगीको होता है। इसके औंधा फोड़ा अंधा फोड़ा, वगैरह कई नाम हैं। डाक्टर कहते हैं कि जबतक मधुमेह रोग दूर नहीं होता यह फोड़ा अच्छा नहीं हो सकता। हमने इस मलहमसे बीसों आदमी डाक्टरोंके सामने अच्छे कर दिखलाये हैं। कैसाही खराब फोड़ा क्यों न हो, नासूरे तकको तो यह मलहम एकबार अवश्य भर देता है। इसको कपड़ेके फाहे-पर लगाकर लगाना चाहिये और जख्मको निम्बके पानीसे रोज साफ करना चाहिये।

४

१४. कुकरे या रोहेका अंजन

फिटकरी, समुद्रफेन, निमक सैंधव, शोरा, हरएक २ तोला, नीलाथोथा ६ माशे, सबको पीसकर रख लें। पलकों के जिस स्थानपर रोहे या कुकरे हों उसपर सलाईसे या अंगुलीसे मल दिया करें। दवा लगती जरूर है पर रोहे मर जाते हैं।

१५. आँख दुखनेका अंजन

सुहागा नौसादर, शोरा, नीलाथोथा, अफीम, फिटकरी हरएक चीज दो दो माशे, मिश्री २ तोला, रसौत शुद्ध साफ की हुई २ तोला, सबको गुलाबजलमें डालकर कपड़ेसे छान, अग्निपर मन्द मन्द पकाकर गाढ़ा कर ले। बहुत गाढ़ा न हो जाय इस बातका ध्यान रक्खें। आँख कैसी ही दुखने आयी हो अच्छी न होती हो तो दो तीन बारके सलाई लगानेसे बिलकुल आराम हो जाता है। इस अंजनके लगानेसे धुंध, जाला, कुकरे वगैरह आँखके रोग दूर हो जाते हैं।

१६. सुरमा ज्योतिवर्द्धक

सुरमा काला, साबुन देसी, सोडा बाइकार्ब या सज्जीके पानीसे बना हुआ। कपूर भीमसेनी बाजारी, निमक सैंधव, इलायची छोटीके बीज। सब बराबर लेवें।

बनानेकी विधि—निमक और साबुनको एकत्र कूट-कर गोला बनाकर एक मिट्टीके कुज्जे (हण्डी) में बन्द करके ३०–३५ सेर कण्डोंकी अग्निमें फूँकदें। पश्चात् शीतल होनेपर निकाल लें। भिन्न भिन्न चीजोंको खूब बारीक पीस-कर कपूर पीछेसे पीसकर मिलावें। जब सारी चीजें मिल जाँय, सुरमा तय्यार हो जाय तो इसका वजन करे। १० तोला सुरमा हो तो इसमें १ माशा पिपरमिण्ट डालकर मिलादें और शीशीमें भर रक्खें। इसके लगानेसे नेन ज्योति गिरी हुई पुनः वापस आजाती है।

१७. नजला जुकामकी माजून

हरड़ काबुली, हरड़ देशी, आँवला, बहेड़ा, मुनक्का काला, मगज धनियाँ, गावजवाँ हरएक सात माशे, मगज कद्दू पपिढा १० माशे, खसखश १० माशे, बादाम रोगन

आधा तोला। ऊपरकी हरएक चीजको इलहदा-इलाहदा कूटकर छान लें, फिर तौलकर एकत्र करके बादाम रोगन डालकर खूब मलें। जब एक जान हो जाय तो ३६ तोला मिश्रीकी बर्फीवाली चाशनी तय्यार करके उसमें सब चीजें डालकर खूब मिलाय बरफीकी तरह थालमें जमा दें। जब जम जाय इसको चाकूसे काटकर निकाल रक्खें।

लाभ—इसकी मात्रा १ तोला है। नये या पुराने नजला जुकामवालेको इससे अवश्य ही लाभ होता है। प्रथम पेट अवश्य साफ और ठीक करलें। सौ मेंसे सौ रोगी इससे अच्छे हो जाते हैं। इस माजूनके कुछ दिन सेवनसे पुरानेसे पुराना नजला भी ठीक हो जाता है बशर्ते कि हाजमा भी ठीक रक्खा जाय। जिन व्यक्तियोंको अधिक विषय करनेके कारण दूसरे चौथे जुकाम होता ही रहता है। उनके लिये यह दवा बहुत ही लाभदायक चीज है। खटाई आचारसे परहेज करना चाहिये।

१८. चूरन सुलेमानी

नौसादर देसी १ तोला, निमक काला १ तोला निमक कांच १ तोला, त्रिकुटा १ तोला, मुलहटी, अफतीमून दोनों तीन-तीन माशे, बालछड़ १ माशा, हींग असली ४ रत्ती सबका चूरन बनाकर रख लें। बदहजमीके समय जरा-जरा चाटें। बड़ा स्वादिष्ट होता है।

१९. चूरन स्वादिष्ट नं० २

निमक सैंधव १७॥ तोला, निमक काला २॥ तोला, मिर्च भूरी ७ तोला, जीरा सफेद भुना हुआ ५ तोला, टार्टरी या नीम्बूका सत २॥ तोला, पिपरमिण्ट या पुदीनेका सत ३ माशे, हींग भूनी हुई ३ माशे, सबको कूटकर एकत्र करके बोतलमें भर रक्खें। यह भी बदहजमीके लिये बहुत ही स्वादिष्ट चूरन है। मात्रा १ माशातक दोनोंकी है।

दोनों चूरण पेट दर्द, अफारा, बदहजमी, कय मतली, बदहजमीके दस्त वगैरह बन्द करनेमें अच्छा काम करते हैं।

अब हम अपने आजमाये हुए कुछ कब्जकुशा उत्तम व सरल योग देते हैं जिनका सेवन प्रत्येक रोगोंकी औषधसे सेवन करानेके साथ २ अवश्य होना चाहिये, तथा बीमारको जल्दी लाभ होगा। जबतक पेट साफ नहीं होगा रोगी कभी भी पूर्णतया अच्छा नहीं होगा।

२०—माजून और जुलाब

गुलकन्द गुलाबके फूलोंका ५ तोला लेकर इसको खूब बारीक पीस लें। फिर इसमें १ तोला सकमूनियाँ नरम-नरम हाथोंसे पत्तिका इस गुलकन्दमें मिला दें। जब यह मिल जाय तो ६ माशे इसमें नरम हाथोंसे मस्तगी पीसकर मिला दें। बस तैयार है। रातको दूधके साथ १॥–२ माशा खा लेनेपर सुबहको एक दो पायखाने साफ आ जाते हैं। इसकी मात्रा २॥–३ माशे तक है। नाजुकसे नाजुक मिजाज वालोंके लिये अमीरसे-अमीर तबीयत वालोंके लिये अद्भुत चीज़ है।

२१. गोली जुलाब और विष्टब्धिहर

एलवा, रेवँद उसारा, भुनी हुई हींग, तीनों चीज़ें बराबर लेकर बहुत ही थोड़ा सा जलका अंश लगाकर गोली मटरके दानेके बराबर बना लें। एकसे दो गोली तक रातको शीतल जलसे या गरम दूधसे सोते समय निगलवादें। सुबहको एक दो रेचन आकर पेट साफ हो जायगा।

२२. चूरन जुलाब और कब्जकुशा

हरड़ काबुली, हरड़ देसी पीली, निसोत, सनाय भुनी हुई सोंठ, मस्तगी, सब बराबर सबके बराबर खाँड या मिश्री मिलाकर चूर्ण बना लें। यह स्वादिष्ट चूर्ण ६ माशे रातको जलसे या दूधसे फाड़कर सो जाँय। सुबह मल साफ-साफ आ जायगा। इन योगोंमेंसे कोई योग बनावें सब अनुभूत हैं।

जूतेकी पालिश

[श्रीश्यामनारायण कपूर, बी० एस्-सी, उन्नाव]

जूतोंकी पालिशकी तैयारीमें आम तौरपर तीन प्रकारकी चीजोंकी ज़रूरत होती है। मोम (waxes), घोलक (solvents) जिन्हें 'तेल' के नामसे भी पुकारते हैं और रंग। मोम चमड़ेकी रक्षाके साथ ही साथ उसपर पालिश भी करता है, तेलके मिश्रणसे पालिशमें जूतेपर लगाये जाने योग्य स्निग्धता (Viscosity) आ जाती हैं। जूतोंकी पालिश बनानेमें आम तौरपर तारपीन और ह्वाइट स्पिरिट (white spirit) सरीखे घोलक काममें लाये जाते हैं। पालिश बनानेकी विधि देनेके पूर्व संक्षेपमें इनमेंसे प्रत्येकपर अलग-अलग विचार किया जायगा।

मोम

मोम कई प्रकारके होते हैं। प्राकृतिक मोमोंमें कानूँबा-वेक्स (Carnuba wax) जूतेकी पालिश बनानेमें सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। इस मोममें अन्य मोमोंकी अपेक्षा चमड़ेपर सबसे अधिक चमक पैदा करनेकी क्षमता होती है। अस्तु अधिकांश पालिशोंमें इसका व्यवहार अनिवार्य है। कानूँबाके बाद क्रमशः कन्डेलिला (Candelilla), लाखका मोम (Shellac wax), शहदकी मक्खीका मोम (Bees wax), ओज़ोकेराइट (Ozokerite) और पाराफीनवेक्सका नम्बर आता है। चमक पैदा करनेके साथ ही साथ कानूँबा मोम और कई बातोंमें दूसरे प्रकारके मोमोंसे आगे बढ़ी-चढ़ी है। इसकी झिल्ली (film) या तह, पतली, सख्त और लचकदार (elastic) होती है। पालिशकी तह लग जानेके बाद ब्रुशसे रगड़नेपर उसपर ब्रुशके निशान भी नहीं बनते। इसके विपरीत जापानवेक्स और मधुमक्खीके मोमकी पालिश चिपकदार होती है और उसपर गर्द जम जाती है। वास्तवमें अधिकांश पालिशोंमें पाराफीन वेक्सका आधिक्य होता है।

जूतेकी पालिशका सम और एकरस (Homogeneous) होना परमावश्यक है। उसे उँगलियोंपर दबानेसे द्रव पदार्थ न बहने लगना चाहिये। इसके साथही उसमें यत्रतत्र ठोस कण भी न पाये जाने चाहिये। पालिश चमड़े की रक्षाके साथही साथ उसे चमकदार भी बना देती है। अस्तु जिस पालिशके लगानेसे जितनी अधिक चमक आती है वह उतनीही अच्छी समझी जाती है। चमकके साथही साथ वह चमड़ेको मुलायम और लचकदार भी बना देती है। चमकके लिये अधिकतर कानूँबा, केण्डेलिला और लाखके मोम व्यवहारमें लाये जाते हैं। मानटेन (Montan) श्रेणीके मोमकी पालिशमें उतनी चमक नहीं होती। परन्तु कई एक कारणोंसे कानूँबा वेक्सको अकेले व्यवहारमें नही लाया जा सकता। इसके साथ कुछ मुलायम मोमोंका मिश्रण बहुत आवश्यक हो जाता है। क्रूड मानटेन वेक्स (Crude montan wax) अधिकतर इसी उद्देश्यसे काममें लायी जाती है। आम तौरपर सस्ती होनेकी वजहसे पाराफीन वेक्ससे ही काम लिया जाता है और अधिकांश सस्ती पालिशोंमें कानूँबाके बजाय ज्यादातर पाराफीन और साधारण मानटेन मोमोंका मिश्रण व्यवहारमें लाये जाते हैं। विशुद्ध और साफ की हुई मानटेन वेक्स भी काममें लायी जा सकती है। इससे पालिशको किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचती।

घोलक

आम तौरपर तारपीन और पेट्रोलियम श्रेणीके घोलक जैसे ह्वाइट स्प्रिट व्यवहारमें लाये जाते हैं। कहीं-कहीं असली और नकली तारपीनका—जिसे ह्वाइट स्प्रिट भी कहते हैं—मिश्रण भी व्यवहारमें लाया जाता है। इनमेंसे कौन कितना व्यवहारमें लाया जावे इसका निर्णय अधिकतर दोनोंके मूल्यके आधारपर किया जाता है। तारपीनका तेल पूरी तौर पर उड़ता नहीं, अधिकांश तेलके उड़ जानेके बाद एक हलकी सी झिल्ली बाकी रह जाती है। इसके विपरीत डेकालिन और ह्वाइट स्प्रिट नामक घोलक पूर्णतया उड़ जाते हैं।

पालिशको पतला करनेके लिये कितना घोलक मिलाना चाहिये यह अधिकतर मोमोंकी घोलकको सोख लेनेकी क्षमतापर निर्भर होता है। घोलकोंके घनत्वका भी इसमें काफी हाथ होता है। तारपीनके तेलकी अपेक्षा १० प्रतिशत कम ह्वाइट स्प्रिटसे काम चल जाता है। पालिश को पतला बनानेके लिये घोलकका व्यवहार अनुभवपर भी निर्भर होता है। घोलक मिलानेपर पालिश लेई सी हो जानी चाहिये। ठण्डी हो जानेपर यह कुछ सख्त हो जायगी परन्तु उँगलियोंसे दबाने और रगड़नेपर यह फिर वही गाढ़ा लेई सा रूप धारण कर लेगी। बनाते समय ठण्डा करके इस बातकी जाँच कर लेना चाहिये। कुछ पालिश घोलक मिलानेके बाद फौरन ही बर्त्तनोंमें भरी जा सकती हैं और कुछ घोलक मिला देनेके बाद कुछ देरतक चलाते रहना अनिवार्य है। यह बात अधिकतर कार्नूबा और मानटेन मोमकी उपस्थितिपर निर्भर होती है।

रंग

पालिश बनानेके लिये तेलोंमें घुल सकनेवाले रंग व्यवहारमें लाये जाते हैं। काली पालिशोंके लिये आम तौरपर निग्रोसीन (Nigrosene) रंग व्यवहारमें लाये जाते हैं। बादामी और दूसरे रंगोंकी पालिशके लिये एज़ो रंग (azo dyes) उपयुक्त समझे जाते हैं। रंगकी मात्रा मोमोंके स्वाभाविक रंगपर निर्भर होती है। हलके रंगकी मोमोंकी पालिशमें ४–५ % तक रंग पड़ जाता है, और साधारण गहरे रंगवाली मोमोंमें २–३ % से ही काम चल जाता है। बादामी और गहरे लाल रंगकी पालिशोंके लिये गहरे रंगकी साधारण (crude) मानटेन वेक्स व्यवहारमें लाना जरूरी है।

मोमोंका गलाना

मोमोंको गलानेके लिये लोहेकी मामूली कढ़ाइयाँ उपयुक्त हैं। गलाते समय उन्हें लोहेकी कलछीसे चलाते रहना चाहिये। इन दोनोंके अलावा एक थर्मामीटर भी बहुत ज़रूरी है। यह १५०° सेन्टिग्रेड तकका ताप मापनेमें समर्थ होना चाहिये।

मोमोंको गलानेमें काफी होशियारीकी ज़रूरत है। मोमोंके विभिन्न मिश्रणोंको गलाते समय विभिन्न ढंगोंसे काम लेना पड़ता है। अगर कार्नूबा वेक्सकी मात्रा अधिक है तो उसके छोटे-छोटे टुकड़े करके उसे पहले गला लेना चाहिये। आँच लगानेके साथ ही साथ मोमको चलाना शुरू कर देना चाहिये। इसके अच्छी तरह गल जानेके बाद थोड़ी-थोड़ी देरमें क्रमशः साधारण मानटेन वेक्स, दूसरे प्रकारके मोम और पाराफीन मोम छोड़ना चाहिये। दूसरा भाग छोड़नेसे पूर्व पहिले भागको अच्छी तरहसे गल जानेका मौका देना चाहिये। कढ़ाईमें पकाते वक्त इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि आगकी लपट बर्तनके उस भागको न स्पर्श करें जो मोमकी सतहसे ऊँचा है। आँच बहुत तेज़ न होने पावे। अक्सर मोमोंको तेज़ आँचसे बचानेके लिये कढ़ाईके पेंदेके चारों ओर शुरू ही से पाराफीन वेक्सके बड़े-बड़े टुकड़े रख दिये जाते हैं। इस बातका ध्यान रक्खा जाय कि ताप-क्रम ९५°–१०५° से अधिक न होने पावे। बहुतसे लोग काले रंगकी मोम गलाते समय पाराफीन वेक्स या ओज़ोकेराइट छोड़नेके पहिले ही मिला लेना उचित समझते हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करनेसे रंग अच्छा आता है। दूसरे लोग रंगको सब मोमोंके अच्छी तरह गल जानेके बाद ही छोड़ते हैं। रंग छोड़नेके बाद मोमको भूलकर भी अधिक आँच न दी जाय। काले रंगके अलावा और रंगोंके लिये तो ऐसा करना नितान्त अनिवार्य है। अच्छा तो यही है कि मोमें गल जानेके बाद उन्हें ठण्डा होने दिया जाय और घोलक मिलाकर पतला करनेके पूर्व उनमें रंग मिलाया जाय।

घोलक मिलाना

मोम गल जानेके बाद कढ़ाईको आँचसे उतारकर अलग रख लेना चाहिये और ठण्डा होने देना चाहिये। घोलक ठण्डा होना चाहिये, और उसे मोमके बीचो-बीच पतली-धारसे छोड़ा जाय। घोलक डालते समय मोमको खूब अच्छी तरहसे चलाते रहना बहुत ज़रूरी है। चलाते समय इस बातका ध्यान रक्खा जावे कि मोम कढ़ाईमें इधर-उधर कहीं लगा न रह जावे। सारा घोलक छोड़ चुकनेके बाद भी मोमको कुछ मिनटतक और चलाते रहना चाहिये।

अगर कई एक घोलक व्यवहारमें लाने हो तो उन्हें एक-एक करके छोड़ा जाय। जो घोलक सबसे जल्दी उड़ जानेवाला हो उसे सबसे बादमें छोड़ा जाय और जो सबसे देरमें उड़ता हो उसे पहिले।

पतले करनेके बाद कुछ (Creams) क्रीमोंको फौरन ही बर्तनोंमें भरकर बन्द कर देना अनिवार्य होता है और कुछको थोड़ी देरतक और चलाते रहनेके बाद भरा जाता है। परन्तु दोनों ही प्रकारकी पालिशोंमें तापक्रमको सम्हालना बहुत ज़रूरी है। पहली तरहकी क्रीमको ठीक भरनेके तापक्रम पर ही पतला करना चाहिये। पतला करनेके बाद फिर गरम करना या निश्चित तापक्रमसे अधिक ठण्डा होने देने दोनों ही बातोंसे पालिशके ख़राब हो जानेका अन्देशा रहता है।

काली, सफेद और रंगीन पालिश बनानेकी विधि क़रीब-क़रीब एक ही सी है। कुछ हदतक बादामी और सुर्ख रंगकी पालिश तैयार करना काली पालिशकी अपेक्षा अधिक सरल है। इन सब क्रीमोंके बनानेमें एक बात हमेशा ध्यानमें रखनी चाहिये कि मोमोंको कभी किसी भी दशामें ताँबेके बर्त्तनमें न गलाया जाय। तांबेके बर्त्तनमें गलानेसे कभी अच्छा रंग नहीं आवेगा। रंग क्रीमको पतला करनेके पूर्व ही मोममें मिला दिया जाता है। रंग मिलानेके बाद गली हुई मोमोंको अच्छी तरह चलाना ज़रूरी है। इस बातका ध्यान रक्खा जाय कि मिश्रित मोम अलग न हो जाँय। जबतक तापक्रम उतरकर बर्तनों में भरनेके तापक्रमपर न आजाय तबतक चलाते रहना चाहिये। कभी-कभी बर्तनोंमें भर देनेपर भी क्रीम सन्तोषजनक नहीं बनती। ऐसी हालतमें उसे गरम करके फिरसे चलाकर भरना चाहिये। क्रीमको ठीक तापक्रमपर बर्तनोंमें न भरनेसे बर्तनके ढक्कनपर अन्दरको ओर घोलककी बूँदें उड़कर इकट्ठा हो जाती हैं। ये बूँदे क्रीमपर गिरकर उसे बिगाड़ देती हैं। इसके विपरीत उसे अगर कुछ अधिक समयतक खुली हवामें रहने दिया जाय तो क्रीमके लगानेपर जूतेमें अच्छी चमक न आवेगी और पालिश चिटकनेका भी अन्देशा हो जाता है। नीचे जूतेकी क्रीम बनानेके कुछ नुसखे लिखे जाते हैं। इन्हें बरसोंके अनुभवके बाद तैयार किया गया है। इनमें क्रीमको भरनेका जो तापक्रम लिखा गया है उसमें थोड़ा बहुत अन्तर पड़ सकता है। ठीक-ठीक तापक्रमका निश्चय अपने आप प्रयोग करके मालूम किया जा सकता है।

१. काली चमकदार क्रीम—(भरनेका तापक्रम ४०°-४४° सेन्टिग्रेड)।

क्रूड मानटेनवेक्स	३०
कार्नूबा वेक्स	५
लाखका मोम (शुद्ध)	७
पाराफीन मोम	७५
निग्रोसीन (कालारंग)	१२
तारपीन	२००
ह्वाइट स्प्रिट	५०

२. चमकदार द्वितीय श्रेणीकी क्रीम (भरनेका तापक्रम ३५°-३६°)

कार्नूबा वेक्स	३
क्रूड मानटेनवेक्स	२
साफ मानटेनवेक्स	५
पाराफीनवेक्स	५
रंग	१५
तारपीन	२४०
ह्वाइट स्प्रिट	११०

इसे पतले करनेके बाद कुछ देरतक और चलाते रहना चाहिये और फिर उपरोक्त तापक्रमपर बर्तनमें भर लेना चाहिये।

३. हलके रंगकी क्रीम—

पाराफीन वेक्स (बढ़िया)	१५
कारनूबा वेक्स (साफ)	६
मानटेन वेक्स (साफ)	४
ओज़ोकेराइट (पीला)	१
तारपीनका तेल	७४

पीले रंगकी क्रीमके लिये—

सूडान पीला सोआर (Sudan yellow cr) ·२५% मिलाना चाहिये।

नारंगी रंगकी क्रीमके लिये उपरोक्त क्रीममें

सूडान पीला (सी. आर.) '१५ और सूडान आरेंज (आर) '१०
मिलाना चाहिये।

४. काली बढ़िया क्रीम (भरनेका तापक्रम ४६°–४८°)

कारनूबा वेक्स	३३'५
क्रूड मानटेन वेक्स	२५
ओज़ोकेराइट (मुलायम)	६
मानटेन वेक्स (विशुद्ध)	५
पाराफीन वेक्स (५०°–५२°)	८५
निग्रोसीन बेज (काला रंग)	१४
तारपीनका तेल	३६०

इनके अलावा दो और नुसखे नीचे दिये जाते हैं। इनके बनानेकी विधि उपरोक्त विधिसे कुछ भिन्न है अस्तु उसका अलग उल्लेख कर दिया जायगा।

काली पालीश नं० १

मधुमक्खीका मोम	२½ पौं०
कारनूबा वेक्स	१⅛ पौं०
कास्टिक सोडाको २% घोल या ४० बामे घोल	८ औं०
तारपीनका तेल	६ पैन्ट
निग्रोसीन (काला रंग)	१⅜ पौं०
पानी	१ गेलन (१० पौं०)

विधि—मोमोंको काट-काटकर गरम करके टिघलाओ, मोमोंके गल जानेके बाद कास्टिक सोडाका घोल छोड़ कर चलाते रहो। जब मोमका साबुन-सा बन जाय और एक सा हो जाय तो रंगको तारपीनमें घोलकर मोमके साबुनमें मिला दो। रंग मिलाते समय इस बातका ध्यान रक्खा जाय कि मोम बहुत ठण्डी न हो जाय, गुनगुनी बनी रहे। अन्तमें पानीको खूब गरम करके धीरे-धीरे उपरोक्त मिश्रणको धीरे-धीरे डालकर मिला दो। मिलानेके बाद जब क्रीम शहदकी तरह गाढ़ी हो जाय और ठण्डी हो चले तो उसे काँच या टिनके बर्त्तन-में भर दो।

बादामी

उपरोक्त विधिसे बादामी रंगकी पालिश भी तैयार की जा सकती है। निग्रोसीनकी जगहपर बिसमार्क ब्राउन (Bismark Brown) रंग मिलाना होगा। यह रंग तारपीनके तेलके बजाय पानीमें घोलकर मिलाया जाय।

काली पालिश नं० २

मधुमक्खीका मोम	४ औंस (लगभग २ छटाँक)
कारनूबावेक्स	१½ „
सेरिस्तिन	½ „
तारपीनका तेल	१५ „
पीला साबुन	१½ „
रंग (तेलमें घुलसकनेवाला)	आवश्यकतानुसार
पानी	आवश्यकतानुसार

विधि—साबुनके छोटे-छोटे टुकड़े कर कमसे कम पानीमें घोल लो। घोल बनानेके लिये ज़रूरत पर साबुन और पानीको गरम किया जा सकता है। एक दूसरे साफ तामचीनीके बर्त्तनमें मोमोंको गला लो और बर्त्तनको आगसे दूर ले जाकर तारपीनका तेल मिला दो। (तारपीनका तेल, कभी भी बर्त्तनको आगपर रखकर न छोड़ना चाहिये। इस तेलको आगसे दूर रखना ही उचित है) अच्छी तरह मिलजानेके बाद निग्रोसीन मिला दो। जबतक ठण्डा न हो जाय बराबर अच्छी तरह चलाते रहो। क्रीमको गाढ़ा या पतले रखनेके हिसाबसे तारपीनका तेल छोड़ना चाहिये। दुर्गन्धको कम करनेके लिये बरगोमट या किसी और सुगन्धकी कुछ बूँदें मिलायी जा सकती हैं। इस विधिसे बादामी पालिश भी बनायी जा सकती है। हाँ निग्रोसीनके बजाय बिसमार्क ब्राउन रंग डालना होगा। यह पानीमें घुल जाता है। निग्रोसीन केवल तेलमें घुलता है। पानीमें नहीं।

नोट—इस लेखका अधिकांश लन्दनके Manufacturing Chemist में प्रकाशित F. Kirchdorferके लेखोंके आधारपर है।

आयुर्वेदिक ओषधियोंका होमियोपैथीकरण

(श्री ब्रजबिहारीलाल गौड़, मऊनाटभंजन)

ह विचार उत्तरोत्तर दृढ़ होता जा रहा है कि जो ओषधि जहाँ पैदा होती है वहीं के प्राणियोंके लिये विशेष लाभदायक होती है। भारतीय वनस्पतियोंकी ओर एलोपैथोंका ध्यान बहुत तेजीसे बढ़ रहा है। और इसमें संदेह नहीं कि देशी जड़ी बूटियोंसे बनी एलोपैथी ओषधियाँ उन ओषधियोंसे विशेष लाभप्रद सिद्ध हो रही हैं जो यूरोपीय वनस्पतियोंसे बनती हैं। पर खेदका विषय है कि भारतीय होमियोपैथोंका ध्यान अबतक इधर न गया। वह अबतक ओषधियोंके लिये पराधीन ही बने हुए हैं। मेरा तो कुछ ऐसा विचार है कि आयुर्वेदिक ओषधियोंका यदि होमियोपैथीकरण किया जाय तो वह भारतवर्षके लिये आर्थिक और शारीरिक दोनों दृष्टियोंसे बहुत लाभदायक सिद्ध हों। भारतवर्ष ओषधियोंसे तो मालामाल है। इस क्षेत्रमें आयुर्वेदिक साहित्यसे हमें काफी सहायता मिल सकती है। आयुर्वेदिक ओषधियोंको यदि हनीमानी रीतिसे बरता जाय तो इसमें शक नहीं कि भारतवर्ष चिकित्सा शास्त्रमें प्राचीनकालकी तरह संसारका शिरमौर बन जाय।

पर यह काम व्यक्तिगत प्रयत्नसे सुसाध्य नहीं है। कुछ लोगोंने इधर ध्यान दिया है पर वह दो एक ओषधिसे अधिककी (Proving) परीक्षा न कर सके। यह तो तब सम्भव है जब कि अन्य देशोंकी तरह इसके लिये यहाँ भी संघ स्थापित हो अथवा कमसे कम होमियो विद्यालय ही इस काममें तत्पर हो जायँ। कलकत्तेके डाक्टर शरत्चन्द्रघोषने इस प्रकारके संघ स्थापित करनेपर लोगोंका ध्यान दिलाया। उन्होंने स्वयं अपने बूतेपर "The Hindustan Institute of Indigenous Drug-proving" नामक एक संघ स्थापित भी किया। पर खेदका विषय है कि वह संघ (Provers) परीक्षकोंकी कमीके कारण अधिक दिनों तक न चल सका। पर उनका साहस सराहनीय है। उन्होंने स्वयं ही अनेक ओषधियोंकी परीक्षा की। यह कहते हर्ष होता है कि वह ओषधियाँ व्यवहारमें बहुत ही सफल साबित हुईं।

ओषधियोंकी सिद्धिका पूर्ण विवरण तो यहाँ देना असम्भव सा है। पर हाँ पाठकोंकी जानकारीके लिये मैं उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिये देता हूँ।

कुँदरू मधुमेहकी अचूक दवा

Cephalandra Indica—यह साधारण कुन्दरू है। आयुर्वेदमें शोथ, उदररक्तस्राव, कवँल, मूत्ररोग और मधुप्रमेहके लिये इसकी बड़ी प्रशंसा की गयी है। उक्त डाक्टर साहबने इसकी लगभग दस बार परीक्षा की है। यह दवा होमियोपैथीमें आकर मधुप्रमेहके लिये अति ही लाभदायक सिद्ध हुई है। यहाँतक कि अब इसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिल गयी है।

हरसिंगार ज्वरकी विशेष ओषधि

Nyctanthes Arbor-Tristis—यह मामूली हरसिंगार है। इसकी परीक्षा सन् १९०१में हुई। पाश्चात्य देशोंके चिकित्सा सम्बन्धी सभी प्रमुख पत्रोंमें इसके विषयमें लेख प्रकाशित हुए। इस ओषधिकी उपयोगितासे प्रभावित होकर डाक्टर क्लार्कने अपने (Prescriber) नामक पुस्तिकामें इसकी प्रशंसा की है। और (Boericke and Tafel) द्वारा प्रकाशित (New, Old and For-Gotten Remedies) नामक ग्रंथमें डा० अंशुटजने भी इस ओषधिको आदरसे स्थान दिया है। यह ओषधि पित्तज्वरके लिये रामबाणका काम करती है। डाक्टर घोषने इससे लगभग १५० मरीजोंको लाभ पहुँचाया है। इसकी तुलना यूपेटोरियम परफोलियेटलेमसेकी जा सकती है।

वायविडंग अपूर्व कृमिनाशक

Embelia Ribes—यह बावीरंग है। इसकी परीक्षा सन् १९३२में हुई। यह दवा कृमरोगके लिये बहुत अच्छी है। इसकी तुलना सीनासे हो सकती है।

पुनर्नवा जलोदरकी खास दवा

Bocrhaavia Diffusa—इसे संस्कृतमें शोथाग्नि भी कहते हैं। इसको भी परीक्षा हालमें ही हुई है। शोथ या जलोदरके कई रोगी इस ओषधिसे अच्छे हुए हैं।

अपामार्ग, अतिसार और कार्बंकलकी दवा

Achyranthes Aspera—इसे हिन्दीमें लट-जीरा कहते हैं। इस ओषधिकी पहली परीक्षा १२ नवम्बर सन् १९३४ में हुई। यह ओषधि नवातिसारमें कई बार व्यवहृत हुई और हर बार फल अच्छा ही हुआ। कारबंकल और छुतहे फोड़ेमें भी प्रयोग किया गया। फल सदैव संतोषजनक रहा।

उपर्युक्त ओषधियोंकी पूरी जानकारी और निघंटु-का पूरा ज्ञान प्राप्त करनेके लिये जिज्ञासुओंको डाक्टर साहबकी की हुई परीक्षाओंको पढ़ना चाहिये।

कहनेका तात्पर्य्य यह कि जो ओषधियाँ आयुर्वेदसे होमियोपैथीमें लायी गयी हैं उनका प्रभाव विदेशी दवाओं-से कहीं बढ़कर हुआ है। पर यह व्यक्तिगत प्रयत्न है। इतनेसे क्या हो सकता है? बिना संघ स्थापित हुए काम अच्छी तरह नहीं हो सकता। और यह काम कोई बड़ी संस्था ही कर सकती है। क्या मैं होमियोपैथी सम्मेलनसे यह आशा करूँ कि वह अपनी अगली बैठकमें इस योजनापर विचार करेगी। यदि वह ऐसा कह सके तो भारतको एक बहुत बड़ा व्यवसाय हाथ लगे और अपार धनराशि विदेश जानेसे बच जाय।

एक बात और

क्या मैं डाक्टर घोष साहबसे यह पूछ सकता हूँ कि वह अपनी सिद्ध की हुई दवाओंका नाम लेटिनमें क्यों रखते हैं? क्या हरसिंगारसे (Nyctanthes Abor Tristis) नाम अधिक सुंदर है? यदि नहीं तो फिर भाषाकी यह पराधीनता क्यों?

टर्की-रेड-आयल

(श्रीश्यामनारायण कपूर, बी० एस-सी०, चित्रशाला, कानपुर)

गत सितम्बर १९३४के विज्ञानमें एरण्ड रूख और उसकी सम्पत्ति शीर्षक लेखमें रेंडीके तेलके उपयोगमें बतलाये हुए रेंडीके तेलसे बननेवाले तेल (Turkey Red Oil) टर्की-रेड-आयल की भी चर्चा की गयी थी। प्रस्तुत लेखमें इस टर्की रेड आयलके बनानेकी विधिपर प्रकाश डाला जायगा।

टर्की-रेड-आयल रेंडीके तेल और गाढ़े (Concentrated) गन्धकके तेज़ाबके संयोगसे बनता है। इसी गन्धोनेतित (Sulphonated) रेंडीके तेलको टर्की-रेड-आयलके नामसे पुकारा जाता है। व्यवसायमें यह तेल बहुतायतसे इस्तेमाल किया जाता है। विभिन्न प्रकारके लाल रंगो जैसे टर्कीलाल, अलिजेरीन लाल आदि तथा नफथोल (Naphthol) तथा अन्य कई एक रंगोंसे रेड रंगनेमें इससे बड़ी मदद मिलती है। कपड़ेपर पक्के रंगकी छपाईके लिये तो इस तेलका उपयोग बहुत ही ज़रूरी है। रंगाई और छपाईके अलावा, इस तेलसे कपड़ोंकी तैयारीमें और भी बहुत मदद मिलती है। इसकी सहायतासे रंगीन कपड़ोंकी चमक और रंगकी आभा बहुत बढ़ जाती है।

इसके बनानेकी विधि बहुत कठिन नहीं है। इसकी तैयारीमें विराट आयोजनकी भी ज़रूरत नहीं पड़ती। यह बिना मेशीनोंकी मददके आम तौरपर घरमें तैयार किया जा सकता है। इसकी तैयारीमें लगनेवाला 'कचा-माल' सारे भारतवर्षमें प्रचुर मात्रामें मिल जाता है। इसमें मुख्यतः दो चीज़ोंकी ज़रूरत पड़ती है—रेंडीका तेल और गन्धकका तेजाब। यह दोनों ही वस्तुएँ अपने देशमें बहुतायतसे पायी जाती हैं।

बनानेकी विधि

१०० पौंड रेंडीके तेलमें २०-२५ पौंड गन्धकका तेज़ाब लगता है। इस तेज़ाबका घनत्व (specific gravity) १·८ अथवा ६६° बोमे होनी चाहिये। इसे हाईड्रोमीटर (Hydrometer) नामक घनत्वमापकयंत्र-की सहायतासे बहुत आसानीसे नापा जा सकता है। इस तेलको बनानेके लिये एक हाइड्रोमीटर खरीद लिया जाय तो अच्छा ही है। इसके बिना भी काम चल सकता है। बाज़ारसे ठीक-ठीक घनत्वका तेजाब खरीदा जाय। मामूली पसारियोंके यहाँ ऐच्छिक तेज़ाब मुश्किलसे मिलेगा। हाँ, केमिस्ट लोगोंकी दूकानोंपर अवश्य मिल जाता है।

तेल एक बड़ी सी काठकी नाँदमें रख लिया जाता है। इस नाँदमें सीसेका अस्तर लगा हुआ होना चाहिये, नहीं तो इसके चूनेका डर रहता है। इस तेलको बनानेके लिये केवल यही एक धातु व्यवहारमें लायी जा सकती है। दूसरी धातुओंको तेज़ाब आसानीसे खा जाता है। वैसे मिट्टीकी नांदें भी काममें लायी जा सकती हैं पर उनके टूटने-फूटनेका झंझट रहता है। लकड़ीकी नांदें इस कार्यके लिये अधिक उपयुक्त हैं। अस्तु तेज़ाबको तेलमें बहुत पतली धारसे छोड़ना चाहिये। जिस समय तेज़ाब छोड़ी जाय तेलको लकड़ीके डंडेसे बराबर खूब अच्छी तरह हिलाते रहना चाहिये। तेलमें तेज़ाब डालनेपर रसायनिक क्रियाओंके कारण गर्मी पैदा होगी और उसका तापक्रम बढ़ जायगा। इस तापक्रमको ४०° सेन्टीग्रेडसे अधिक न बढ़ने देना चाहिये। ऐसा करना बहुत ही आवश्यक है। तापक्रमको न बढ़ने देनेके लिये ज़रूरत पड़नेपर बरफ या ठण्डा पानी नाँदके चारों ओर रख दिया जाना चाहिये। तेज़ाब छोड़नेमें तेलकी मिकदार या मात्राके अनुसार ४-६ घण्टेतक लग सकते हैं। सब तेज़ाब छोड़ चुकनेके बाद भी तेलको बराबर एक घण्टेतक और चलाते रहना चाहिये जिससे तेल और तेज़ाब अच्छी तरहसे मिल जावें। इसके बाद मिश्रणको २४ घण्टेतक ऐसे ही छोड़ देना चाहिये। हाँ, नाँदको ढक देना बहुत ज़रूरी है। २४ घण्टेके बाद उसमें १०० पौंड पानी छोड़ा जाना चाहिये और सबको खूब अच्छी तरह मिला देना चाहिये। पानी डालने और उसके तेल आदिके साथ अच्छी तरह मिलनेमें एक घण्टा लग जाता है। अच्छी तरह मिल जानेपर मिश्रित पदार्थ पतली लेईकी तरह गाढ़े हो जाते हैं। पानीको अच्छी तरह मिला देनेके बाद बर्तनको २४-३६ घण्टेतक फिर यों ही छोड़ देना चाहिये।

२४ घण्टेके बाद बर्तनके पदार्थ दो तहों में बट जाते हैं। एक तहमें तेज़ाबकी प्रधानता होती है और दूसरेमें टर्की रेड आयल की। तेज़ाबवाले अंशको बाहर निकाल कर अलग कर देना चाहिये। तेलके भागको नमक या सोडा सल्फेटके घोलसे धोया जाता है। आम तौरपर १½ पौंड नमकको १ गेलन (५ सेर) पानीमें घोलनेपर जो घोल तैयार हो उसे व्यवहारमें लाना चाहिये। धोनेके लिये करीब करीब उतना ही घोल काममें लाना चाहिये जितना कि शुरूमें रेंडीका तेल लिया गया हो। आयतनकी बराबरीपर ध्यान दिया जाना चाहिये। गन्धोनेतित (sulphonated) तेलमें स्वतन्त्र (free) तेज़ाबके जो अंश रह जाते हैं वे इस नमकके घोलके द्वारा धुलकर बाहर निकल जाते हैं।

गन्धोनेतित तेलको धो चुकनेके बाद उसे कास्टिक सोडाके घोलसे शिथिल (neutral) किया जाता है। कास्टिक सोडाके घोलका घनत्व २४° बोमे या १·२ होना चाहिये। इस घोलको बर्त्तनमें बहुत धीरे-धीरे छोड़ना चाहिये। इसे छोड़ते समय तेलको खूब अच्छी तरहसे चलाते रहना चाहिये। कास्टिक सोडा छोड़नेपर तेल पहिले कुछ-कुछ लेई सा हो जाता है। बादमें इसमें धारियाँ (streaks) सी बनने लगती हैं, परन्तु अन्तमें यह बिल्कुल साफ चमकदार और पारदर्शक (transparent) हो जाता है। ज्यों ही यह अवस्था आ जाय, कास्टिक सोडा छोड़ना बन्द कर देना चाहिये। इस अवसरपर थोड़ासा चमकदार साफ तेल एक टेस्ट-ट्यूब (test tube) या किसी साफ सी सफेद शीशीमें निकाल-कर उसमें बराबर मात्रामें पानी मिलाना चाहिये और दोनोंको अच्छी तरह हिलाकर मिला देना चाहिये। अगर तेल पानीमें अच्छी तरह घुल जाय और दोनोंके मिल जाने-पर साफ घोल तैयार हो तब और अधिक कास्टिक सोडा नहीं छोड़ना चाहिये। परन्तु यदि साफ-साफ घोल बननेके

बजाय घोल दूध जैसा (milky) हो जाय तो थोड़ा-सा कास्टिक सोडा या अमोनिया (Ammonia) और छोड़ना चाहिये और जबतक तेल और पानीके बराबर भाग अथवा १ भाग तेल और २ या ३ भाग पानी मिलनेपर भी साफ घोल न बनावें तबतक तेलमें कास्टिक सोडा बराबर छोड़ते रहना चाहिये और सबको अच्छी तरह मिलाते रहना चाहिये। लेकिन इस बातका भी ध्यान रखनेकी ज़रूरत है कि कहीं इतना अधिक कास्टिक सोडा न पड़ जावे कि तेलको १० गुने पानीके साथ मिलानेपर भी पायस (emulsion) न बने।

बाज़ारमें कई प्रकारका गन्धोनेतित तेल या टर्की रेड आयल मिलता है। आमतौरपर यह निम्नलिखित नामोंसे बेचा जाता है—

६६% टर्की रेड आयल
५०% टर्की रेड आयल
४०% टर्की रेड आयल
आदि आदि।

६६%, ५०% और ४०% आदि नामोंसे तेलमें उपस्थित मज्जिकाम्लोंकी मात्राका बोध होता है। मज्जिकाम्लोंकी मात्रा नीचे लिखी विधिसे नियंत्रित की जा सकती है—

जब तेल पानीके तिगुने भागके साथ साफ घोल बनाने लगे तो उसे तौल लेना चाहिये और उसमें इच्छानुसार थोड़ा-थोड़ा करके पानी मिला लेना चाहिये। इस तरहसे तैयार होनेवाला तेल अपने बराबर पानीमें अच्छी तरह घुल जायगा।

बहुतसे लोग तेलको ५० प्रतिशतसे लेकर २० प्रतिशत तक पतला कर देते हैं। वे पानी और कास्टिक सोडाको थोड़ा-थोड़ा करके बराबर तेलमें मिलाते रहते हैं। इस तरहसे जो तेल बनता है वह बराबर भाग पानीमें अच्छी तरह घुल जाता है और दसगुने पानीमें मिलानेपर पायस (emulsion) भी बना देता है। परन्तु वास्तवमें इस तेलको विशुद्ध टर्की रेड तेलका पानीमें घोलमात्र ही कहेंगे।

रेंडीके तेलकी तरह, मछलीका तेल, तिलका तेल, अलसीका तेल आदि आदि तेल भी गन्धोनेतित (sulphonated) किये जा सकते हैं। ये गन्धोनेतित तेल अधिकतर चमड़ेके व्यवसायमें व्यवहार किये जाते हैं। इनकी माँग और खपत उतनी अधिक नहीं है जितनी कि टर्की-रेड-आयलकी। चमड़ेके व्यवसायमें गन्धोनेतित तेलोंसे फेट-लिकर (fat liquor) भी बनाते हैं जो कि चमड़ेको मुलायम करनेके काममें आती है।

टर्की-रेड-आयलकी तैयारीमें तेल और तेज़ाबके मिश्रण के बाद ताप क्रमको ४०° सेन्टिग्रेडपर बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक है। इससे अधिक तापक्रमसे अवांछनीय यौगिक पदार्थ तैयार हो जाते हैं और तेलके ख़राब हो जानेकी आशंका भी रहती है।

आक्सी टर्की रेड-आयल

(Oxy Turkey Red-oil)

बाज़ारमें एक और क़िस्मका टर्की रेड-आयल भी मिलता है। इसे आक्सी-टर्की-रेड-आयल कहते हैं। यह साधारण विधिसे बननेवाले टर्की-रेड-आयल से ही तैयार किया जाता है। टर्की रेड-आयलको साधारण विधिकी ही भाँति मामूली नमकके घोलसे धोया जाता है और धोनेके बाद गन्धक बाहर निकालनेके लिये तेलको ११०°–१२०° सेन्टिग्रेडतक गरम करते हैं। उसके बाद तेलको साधारण विधि की भाँति कास्टिक सोडाकी सहायतासे शिथिल (neutral) करते हैं। कतिपय वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि साधारण टर्की रेड-आयलकी तुलनामें आक्सी-टर्की-रेड-आयल अधिक उपयोगी होता है।

टर्की रेड-आयलके साबुन

टर्की रेड-आयलके साबुन भी बनाये जाते हैं। ये साबुन बाज़ारमें नफथाल सोप (Naphthol soap) मानोपोल सोप (Monopol soap) आदिके नामसे बेचे जाते हैं। आजकल विदेशोंमें (toilet material) शृङ्गार-सामग्री में भी टर्की रेड-आयलका बहुत उपयोग किया जाने लगा है। द्रव साबुन (liquid soap) आदि भी इसकी सहायतासे बनाये जाते हैं। कई प्रकारके Disinfectant वायुशोधक आदि बनानेमें भी इसका उपयोग किया जाने लगा है। अमेरिका और इंगलैंड आदिमें तो इसकी सहायतासे नानाप्रकारकी चीज़ें तैयारकी जा रही हैं।

सम्पादकीय-टिप्पणियाँ

हा ! डाक्टर क० म० नदकर्णी

मंगलोर शहरके डोंगरकरी मुहल्लेमें बहत्तर बरसकी उम्रमें डाक्टर क० म० नदकर्णीका १४ मार्चको स्वर्गवास हो गया। आप एक उच्च सारस्वत वंशीय ब्राह्मण थे। आपकी शिक्षा मंगलोर और मद्रासमें हुई थी। आपकी चित्तवृत्ति बाल्यावस्थासे ही धार्मिक थी। आपने धन-कमानेके अवसरोंको लात मारकर अपने जीवनको अधिकांश जनसेवामें बिताया। सन् १८९२ ई० में आपने "डाक्टर्स मैगेजीन" निकाला जिसका सम्पादन स्वयं करते थे। अगलेवर्ष एक और डाक्टरीका पत्र निकाला। फिर डाक्टरी-की लैब्रेरी और विदेशी अखबार मँगवानेकी एजेंसी कायम की। आप गायनविज्ञानके भी रसज्ञ थे। आपने आर्य्यगायन-रक्षक-मंडल स्थापित किया। इसके पीछे आप युरोप और अमेरिकाकी कई वैज्ञानिक समितियोंके सदस्य बनाये गये और आपकी विद्वत्ताका यश संसारमें फैल गया। १९०४ में आपने भारतीय ओषधियोंका एक बृहत निघंटु अंग्रेजीमें लिखा था जो अबतक एक प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। आपके दो पुत्र हैं और एक कन्या है जिसका विवाह श्रीनियमपल्लीसे हुआ है जो बड़ोदेमें अकौंटंट जेनरल हैं। हम वियुक्तोंके साथ अपनी सहवेदना प्रकट करते हैं। भगवान् डाक्टर साहबको परलोकमें शान्ति और सुख दे। —रा० गौ०

हवाई हमलोंसे रक्षा

हवाई हमलोंसे बचनेके उपाय बहुत बरसोंसे खोजे जा रहे हैं। जान पड़ता है कि अभीतक सफलता नहीं मिली है। कमसे कम हबशदेशकी हार तो बचनेके उपाय न होनेसे ही हुई। गतवर्ष फरवरीमें श्री टिजर्डकी अध्यक्षतामें इंग्लिस्तानमें एक समिति इसी खोजके लिये बनी थी। उसने बहुतसे मत एकत्र किये हैं, जो प्रकाशित हुए हैं। नेचरका कहना है [नेचर, ४-४-१९३६] कि इनमेंसे अधिकांश तो अव्यावहारिक हैं क्योंकि लिखनेवालोंको स्थितिका ज्ञान न था। कुछ मत एक हदतक व्यावहारिक हैं परन्तु जमीनसे बैरी देख पड़े या रक्षक विमान चढ़ाई करनेवालोंतक पहुँच सके तभी सफल हो सकते हैं। परन्तु विमानविद्याने अब ऐसा संभव कर दिया है कि शत्रु अपनेको बादलोंकी आड़में रखकर बराबर हमला करता रहे। बादल फटे भी तो बड़े वेगसे वे निशानेके बाहर भाग सकेंगे। परन्तु कुछ सुझाव बड़े कामके हैं। बेतारकी बिजली द्वारा मनुष्यहीन विमान बम गोलोंसे भरे चलाये और शत्रुओंसे टकराये जा सकते हैं, या पहुँच सकनेवाले गोले जरूर चलाये जा सकते हैं।

साधारण सुबोध विज्ञानकी पढ़ाई

विलायतकी सायंसमास्टर्स असोसिएशनने एक दिन साधारण सुबोध विज्ञानकी पढ़ाईके विषयपर विचार करनेके लिये शिक्षकोंका एक सम्मेलन कर डाला। पहली बैठकमें सर विलियम ब्रैग सभाध्यक्ष हुए थे। आपकी रायमें हर पढ़े लिखे आदमीको यह जानना चाहिये कि मनुष्यके विचारोंका विकास आजतक किस तरह हुआ है और इस ज्ञानके लिये आज विज्ञानकी साधारण परन्तु रूपरेखा सरीखी पूरी जानकारी बहुत जरूरी है। ऐसी समझदारीका वाता-वरण भी बन जाना चाहिये जिसमें खोजोंके फलके दुरुप-योगकी संभावना भी न रहे। सम्मेलनमें इन्हीं भावोंका विस्तार हुआ। इस प्रकारके सम्मेलन हमारे देशमें भी प्रयोजनीय हैं। —रा० गौ०।

जहरीली और झुलसानेवाली हवा

आज सुर-देश, हबश-देश, अपनी सारी बहादुरी और देशभक्तिके होते भी शत्रुओंके हाथमें पड़ गया। इसका कारण यही था कि इटलीने जहरीली और झुलसाने-वाली गैसोंसे काम लिया। यह गैसें रसायन विद्याकी करामात हैं जिनका दुरुपयोग पैशाचिक नरसंहारके लिये हुआ है। यह हवा मुख्यतः चार प्रकारकी होती है।

१—दम घोंटनेवाली। यह कई हैं। एक तो हरिन गैस, है जिसे क्लोरीन कहते हैं। दूसरा फासजीन $COCl_2$ है। पहले हरिनका प्रयोग अप्रैल १९१५ में हुआ। फिर दोनों मिलाकर महासमरके अन्ततक ब्रिटिशोंने प्रयोग-किया। "त्रिहरोदारी लहरो पिपीलेत (CCl_3 ओकह$_3$)

भी फासजीन सा ही गुण रखती है, परन्तु यह १२७° शतांशपर खौलती है, अतः अधिक स्थायी है। जर्म्मनोंने अपने गोलोंमें इसका प्रयोग किया था।

२—मुंह खोलवानेवाली। ये भी कई हैं। यह जोरोंसे छींक-खांसी और कय लानेवाली हवाएं हैं जो मुँहतोपके भीतर घुस जाती हैं और वह भयानक उपद्रव करती हैं कि मुँहतोपको बरबस उघाड़ना पड़ता है। और ज्योंही मुँहतोप उघाड़ा कि उससे कहीं अधिक उग्र गैसें घुस आयीं। पहले-पहल १९१७ की जुलाइमें इस कामके लिये द्विदिव्यील संक्षीणि हरिद [(क$_६$ उ$_५$)$_२$ क्षकनो] काममें आया। १९१८की मईमें इसीका श्यामिद काममें आने लगा, क्योंकि हरिदकी अपेक्षा श्यामिदमें अधिक उग्रता थी। युद्धकालमें ही द्विदिव्यील-अमीन-संक्षीणि हरिद [नोउ (क$_६$ उ$_५$) क्षह] नामक एक तीसरे वायव्यका पता लगा और काममें आया।

३—रुलानेवाली। इन वायव्योंसे आंसू जारी हो जाते हैं। परन्तु और कोई हानि नहीं होती। युद्धमें इन वायव्योंसे बचनेको मुंहतोप काफी होता है। इसलिये ये समरमें तो बहुत उपयोगी नहीं होते, परन्तु बलवाइयोंको बेकार कर देनेके लिये और भीड़को तितर-बितर करनेके लिये ये वायव्य उपयोगी हैं। पुलीसने इनसे खूब काम लिया है। बानजील अरुणिद क$_६$ उ$_५$ कउ$_२$ और वनील अरुणिद शुरूमें काममें आये। परन्तु देखा गया कि इनसे अरुणोसिरकोन और उससे भी अधिक उग्र हरो-प्रबलीन है। हरो-सिरको दिव्योनमें सबसे बड़ा सुभीता यह है कि सबसे कम उड़ता है और २४६° शतांशपर ज्योंका त्यों स्रवण किया जा सकता है। अतः सुभीतेसे यंत्रद्वारा फैलाया जा सकता है।

४—जलानेवाली। कुछ वायव्य ऐसे भी हैं कि वायव्य दशामें ही खालसे छू जायँ तो छाले पड़ जायँ। ये छाले बड़ी कठिनाईसे और देरमें अच्छे होते हैं और छूतसे फैलनेवाले होते हैं। आंखोंपर और फेफड़ोंपर भी इनका हमला होता है और अधिक मात्रामें तो इनका प्रभाव पाचनशक्ति और नाडीमंडलपर भी बहुत हानिकर होता है। ये वस्तुतः सारे शरीरकी क्रियाओंको अस्तव्यस्त कर देते हैं। इन्हींका अधिक प्रयोग इटलीने हबशियोंपर किया है।

द्विहरो-द्विज्वलील-गंधिद, वा सर्षप-वायव्य तो आज १४ बरससे मालूम है। इससे बचनेको मुँहतोप काफी नहीं है। एक विशेष प्रकारके वस्त्र-कवचसे सारा शरीर ढका रहना चाहिये। यह गन्धहीन और वर्णहीन होता है। घंटों बाद छाले पड़ते हैं। इसलिये इसका पता नहीं लगता। हवाई बमोंमें यह भरा गया है और विमानोंसे यह फुहारेकी तरह फैलाया गया है। इस प्रकार हबशी बेचारे कुछ कर न सकते थे।

हरो-विनील-संक्षीणि द्विहरिद इसी प्रकारका एक और वायव्य है। इससे भी छाले पड़ते हैं।

ये सभी वायव्य बड़ी मुद्दतसे मालूम हैं। जिन वैज्ञानिकोंने इनका पता लगाया उन्होंने कभी ऐसा न समझा कि ये नर-संहारके काममें लाये जायँगे। शायद और भी इसी प्रकारके वायव्योंकी खोज हुई हो। परन्तु श्रीआर्थर मार्शल इस विषयपर १५ फरवरीके नेचरमें विस्तारसे लिखते हुए स्वीकार करते हैं कि इनके अतिरिक्त उनको ऐसे और वायव्योंका पता नहीं है।

अभी हालमें डाक्टर क्रम्बकी लिखी जर्म्मन भाषामें **"समरवायव्योंका रसायन"** नामकी पुस्तक छपी है, जिसकी आलोचना **नेचरने** अपने ११ अप्रैलके अंकमें की है। इसमें लगभग पचास ऐसे वायव्योंका वर्णन है। साथ ही उनका पूरा इतिहास भी दिया हुआ है। —रा० गौड़

कास्मिकांशुओंसे विकासको उत्तेजना

डा० हामशा टामसका एक लेख नेचरके कई अंकोंमें निकलकर १८ जनवरीके अंकमें समाप्त हुआ है। आपने विशेषरूपसे यह दिखाया है कि समुद्रतटके शैवाल और दलदली या जलीय वनस्पतियोंमें करोड़ों बरसोंसे विकासकी स्थिरता सी है। परन्तु पहाड़ोंपर इसी कालमें बड़े-बड़े द्रुतगामी परिवर्त्तन हुए। डा० टामसका अनुमान है कि इसका कारण कास्मिकांशुओंकी प्रचुर वर्षा है जो चट्टानोंकी ऊँचाईपर अधिक घनी हुआ करती है। जान पड़ता है कि किकस्मांशुओंसे विकासको उत्तेजना मिलती रहती है।

आगपर चलना

ई० एस० टामसका ८ फरवरीके नेचरमें एक लेख "आगपर चलना" विषयपर है। यह विषय भारतीयोंके लिये अनोखा नहीं है। लम्बे-चौड़े अग्निकुंडमें दहकते

अंगारोंपर पाँव धोकर नंगे पैर लोग जल्दी-जल्दी चले जाते हैं और तलवा झुलसता नहीं। कहते हैं कि मंत्रसे अग्निको बाँध दिया जाता है। खुदाबख़्श नामके किसी सज्जनने अग्नि बाँधनेकी यह क्रिया युरोपमें और इङ्गलिस्तानमें कई जगह दिखायी और वहाँके लोगोंको नंगे पैर आगपर चलाया। यह चमत्कार अनेक वैज्ञानिकोंके समक्ष अनेक बार हुआ। श्री हंट, श्री ब्रौन, श्री लांग्ले, श्री फुल्टन, श्री स्टुआर्ट, श्री वाटरस्टन, श्री प्रैस, श्री पेनेट तथा श्री डार्लिंगनने इस सम्बन्धमें परीक्षाएँ कीं और लेख लिखे। श्री टामसने ऐसे चालीस प्रयोगोंकी मीमांसा की, परन्तु वैज्ञानिक व्याख्या न मिली। समस्या जहाँ थी वहीं रही। लेखकने अपने अनेक अनुमान इस चमत्कारकी व्याख्यामें लिखे हैं और अन्तमें इस बातको कबूल किया है कि इस चमत्कारकी प्रत्यक्ष घटना विचित्र है और किसी प्रकार समझमें नहीं आती।

नेचरने अपने १८ अप्रैलके अंकमें लंडन विश्वविद्यालयके परान्वेषण-विभागकी बुलेटिनकी चर्चा की है। इसमें आगपर चलनेके दो ऐसे प्रयोगोंका पूरा वर्णन दिया है, जिसमें रत्तीसे रवातक पूरी देखभाल की गयी। किसी वैज्ञानिक पहलूको छोड़ा नहीं गया। भीतरी और ऊपरी तापक्रम बराबर लिये गये। चमड़ेका कितनी देरतक अँगारोंसे स्पर्श रहा, यह भी देखा गया। ४३०° श०पर चार कदम जल्दी-जल्दी रखनेकी बात थी जिसमें हरबार आधे सेकंडके लगभग आगपर पाँव पड़ता था। खुदाबख़्शके पाँवोंकी पहलेसे रासायनिक रीतिसे पूरी परीक्षा हो चुकी थी। उसके पाँव ज़रा भी नहीं झुलसे। दो और सज्जनोंने कोशिश की। उनके पाँव झुलस गये। नेचरका सम्पादक कहता है कि खुदाबख़्शके पाँव न झुलसनेके दो कारण हो सकते हैं एक तो अभ्यास और दूसरे विश्वासद्वारा स्व-सम्मोहन। रिपोर्ट सचित्र है। रा० गौ०।

दो सौ इंचोंके व्यासके परावर्त्तक दर्पणकी दूरबीन

कालिफोर्निया इंस्टिट्यूट अव् टेकनालोजीकी ओरसे पासाडीनामें एक मानमन्दिर और प्रयोगशाला स्थापित हुई है जिसमें दो सौ इञ्च व्यासका परावर्त्तक दर्पण लगा हुआ एक विशाल दूरदर्शक यंत्र स्थापित हुआ है। इससे दूर-दूरकी नीहारिकाओंका परिशीलन होगा, अधिक पा सके। बड़े सर्पिलोंका विश्लेषण होगा, और अपनी ही आकाशगंगाके अनेक तारोंके अत्यन्त ऊँचे विकिरणोंका पूर्ण रश्मिमापक अन्वेषण हो सकेगा। इस २०० इञ्चके दर्पणमें प्रकाशके इकट्ठे करनेकी जो भारी शक्ति है उसका विविध प्रकारसे भविष्यमें उपयोग हो सकेगा और उसके सहायक यंत्रोंसे भी बड़े महत्त्वके काम लिये जा सकेंगे।

भूकम्प सहनेवाले मकान

नेचरके ११ जनवरी सन् १९३६के अंकमें डा० चार्ल्स डेविसनका एक लेख उपर्युक्त शीर्षकसे छपा है। योग्य लेखकने मकान बनानेवालोंको बड़े कामकी बातें सुझायी हैं। उनके सुझाये हुए उपायोंसे मकान बनेंगे तो भूकम्पमें उनको कमसे कम हानि न पहुँचेगी। उनके लेखका हम सारांशमात्र यहाँ देते हैं।

(१) नींव सदा खूब गहरी दी जाय और ईंटें बँधी लगायी जायँ, केवल एक-पर-एक न रहें। लिंटर-सीमेंट हो तो और अच्छा। वह इस तरह हो कि पहले जमीन कसी जाय फिर ईंटोंकी पक्की जोड़ाई, फिर लिंटर, फिर पक्की जोड़ाई, फिर लिंटर। इस प्रकार दीवार बढ़ायी जाय नींवका आरम्भ पहले लिंटरसे समझा जाय।

(२) मकानोंको समकोणीय आयताकार होना चाहिये। वर्गाकार हो तो और अच्छा। खुले समकोणीय, वा वक्राकार न बनाना चाहिये। दीवारें ऊँचाईमें एकसी हों, बुर्ज या भारी कारनिसोंसे लदी न हों और कर्णोंमें अर्थात् आमने-सामने कोनोंसे बँधी हों। छतें हलकीसे हलकी हों और कड़ियाँ और धरनें दीवारोंपर पूरे पनहे भर हों तो उत्तम है, नहीं तो दोनों ओर दो-दो तिहाई तो जरूर हों।

(३) सारी इमारत ठोस हो, एक साँचेमें ढली सी हो और नींवसे लेकर छततक एकाकार सी हो। यदि सभी लिंटरकी बनी हो तो बहुत उत्तम हो। लकड़ी या ईंटोंकी इमारत ४२ फुटसे अधिक ऊँची न हों। १०० फुट तो हद ही है।

(४) ईंटोंको जोड़नेका मसाला ऐसा हो जो लगायी जानेवाली ईंटोंसे ज़रा भी कम मज़बूत न हो। एक ही मंजिलका मकान सर्वोत्तम है। यदि एक दो मंजिल और ऊपर बढ़ाना जरूरी हो तो दीवारें पतली हों और धरने गहरी घुसी हुई हों। छतें भरसक हलकी हों।

साहित्य-विश्लेषण

हीरालाल अंक—हैहय क्षत्रियमित्र, १९३६के जनवरी फरवरीका संयुक्तांक। विशेष सम्पादक डा० गोरखप्रसाद। प्रकाशक, हैहय क्षत्रिय सभा, ४३० मुट्ठीगंज प्रयाग। इस अंकका मूल्य १) वार्षिक मूल्य २॥)। मोटा चिकना कागज। उत्तम आदर्श छपाई। बहुत सुन्दर स्पष्ट और साफ हाफटोन चित्रोंसे सुसज्जित।

स्वर्गीय डाक्टर हीरालाल हैहयवंशियोंके भूषण तो थे ही, वह हिन्दीके हीरा और भारतीय विद्वत्ताके लाल भी थे। यह विशेषांक निकालकर हैहय क्षत्रियमित्रने विशाल भारत, नागरीप्रचारिणी पत्रिका आदिको विद्वानोंके विशेषांक निकालनेके काममें पीछे छोड़ दिया। डाक्टर हीरालालजी विद्वत्ताके सभी क्षेत्रोंमें अग्रणी थे। ऐतिहासिक खोज और पुरातत्त्वके तो वह अप्रतिम पण्डित थे। उनकी जीवनीकी अच्छी सामग्री प्रस्तुत करके इस विशेषांकने हिन्दी जगतको अनुगृहीत किया है। विषयकी स्थापनाका क्रम उसकी शैली और भाषा सभी रोचक हैं। डा० हीरालालकी जीवनीसे देशके नवयुवकोंको यह भारी शिक्षा मिलती है कि किस प्रकार अपनी शुद्ध योग्यताके बलसे बहुत छोटे पदसे एक प्रतिभावान् पुरुष ऊंचेसे ऊंचे पदपर आरूढ़ हो सकता है। हम विज्ञानके पाठकोंसे सिफारिश करेंगे कि अनेक शिक्षाओं-से भरे इस विशेषांकको अवश्य पढ़ें।

सन्देश, परिहास-अंक—यह सुन्दर सचित्र साप्ताहिक कविसम्राट साहित्यरत्न पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्यायकी संरक्षकतामें प्रभातसाहित्यकुटीर आजमगढ़से निष्कलता है। यह हमारे देशकी देवियोंको सत् सन्देश सुनानेवाला एकमात्र विचारपत्र है। इसे बड़े सजधजसे हर शुक्रवारको प्रकाशित करते रहनेका श्रेय हमारे नवयुवक मित्र श्रीपरमेश्वरीलाल गुप्तको है। इन्हींके उत्साह, अध्यवसाय और योग्यतासे आजमगढ़ जैसे स्थानसे ऐसा अच्छा साप्ताहिक निकल रहा है। सन्देशका परिहासांक होलीपर निकालनेवाला था, परन्तु उसके बाहरी ढांचेकी तैयारीमें कुछ कसर रह गयी थी, इसीलिये कुछ देर हुई। फिर अगर बुढ़वामंगलको ही निकला तो क्या बुरा हुआ। परिहासांक भीतर बाहर हर तरहपर परिपूर्ण परिहास है और उसके आनन्दको परिपूर्ण करनेवाले परिपूर्णानन्दजी उसके सम्पादक हैं। इस अंकसे हिन्दीके हास्यरसके साहित्यके विकासका पता लगता है। होलीके अंकोंमें अब बहुत कुछ सुधार हो गया है। फिर भी लोगोंके नाम लेकर उन्हें खिताब देना अथवा ऐसे वैयक्तिक व्यंग लिखना जिससे गुदगुदीके बदले बातें कुछ चुभ भी जायँ, रवाजके अन्दर है। सन्देशका परिहास-अंक इन दोषोंसे बरी है। उसका मजाक लतीफ है, जो दिलको खुश करता है, चेहरेपर मुस्कुराहट लाता है, मगर कहीं न तो चुभता है, न चोट करता है। वस्तुतः समाजकी बुराइयोंको आपके सामने ऐसे ढंगसे रखता है कि गन्दा दृश्य सामने लाये बिना ही उसके प्रति तुच्छता और घृणा का भाव उत्पन्न हो जाता है। देवियोंके पत्रको ऐसा ही स्वच्छ और निर्दोष होना चाहिये।

इसका वार्षिक मूल्य ३) है। परिहास अंकका ॥) अनुचित नहीं है। रा० गौ०

केयर अव् दि ऐज़—आँखोंकी रक्षा। इस छोटीसी पुस्तिकामें आँखोंकी रक्षाकी विधिके साथ-साथ बिना ऐनक लगाये अपनी निगाहको सुधारनेके उपाय संक्षेपसे दिये हुए हैं। इसमें अनेक चित्रोंद्वारा ठीक विधिसे देखना और आँखोंका इलाज समझाया गया है। इसमें निगाहकी परीक्षा करनेके बड़े और छोटे अक्षरोंवाले कार्ड भी दिये हुए हैं। जो बड़ी पुस्तकें खरीद नहीं सकते उन्हें यह चार-आनेकी पोथी खूब काम दे सकती है। यह अंग्रेजीमें है। हमारा अनुरोध है कि डाक्टर साहब इन विषयोंकी एक हिन्दी पुस्तिका अवश्य प्रकाशित करें। फिर भी जो अंग्रेजी जानते हैं और जिन्हें अपनी आँखों जैसे अनमोल रतनकी परवा है, उन्हें यह चार आनेकी पुस्तिका डाक्टर आर० एस्० अग्रवाल, १५ दरियागंज, दिल्लीसे अवश्य मँगवा लेनी चाहिये। —रा० गौ०।

तरंगिणीकी कुछ तरंगें। पंडित किशोरीदासजी वाजपेयी शास्त्री काव्यतीर्थके अनेक लेखों और कुछ वैज्ञानिक दोहोंसे भी विज्ञानके पाठक पूर्ण परिचित हैं। आप केवल संस्कृतके विद्वान् नहीं हैं। हिन्दी साहित्यके आप सुप्रसिद्ध समालोचक हैं। काव्यके क्षेत्रमें तो आप छिपे

रुत्तम निकले। आप किस ऊँचे दरजेके सुकवि हैं, अबतक कम लोग जानते थे। आपके दोहोंके कुछ नमूने "तरंगिणी की कुछ तरंगें" नामसे प्रकाशित हुए हैं। खड़ी बोलीकी इस खड़ी दुपहरीमें भी व्रजभाषाकी शान्त शीतल कविता हमारे हृदयको आनन्द प्रदान करेगी इसकी आशा नहीं थी। वाजपेयीजीकी कविता ऐसी दशामें उसके पुनरुद्धारका आशामय सन्देश है। वाजपेयीजीके दोहोंमें व्रजभाषा जीती जागती और पूर्ण बलवती देख पड़ती है। इन दोहोंको देखकर हमें तो आशा हो गयी कि अभी हिन्दीके बिहारियोंके युगका लोप नहीं हुआ है। शास्त्रीजीके दोहे भी नावकके तीरकी तरह चुभनेवाले हैं। इनमें प्रसादगुण है, चमत्कार है, ओज है और समयानुकूलता तो कूट-कूटकर भरी है। मेरा तो अनुमान है कि वाजपेयीजी सरीखे कवि समयानुकूल रचनाओंद्वारा विहारीको कहीं पीछे छोड़ देंगे। विहारीकी विशेषता श्रृंगार रसमें थी परन्तु वाजपेयीजी समयकी आवश्यकता समझते हैं। इन दोहोंमें जहाँ श्रृंगार रसकी रचना है वहाँ उसकी आनुषंगिक अश्लीलतासे दूर रहनेका सफल प्रयत्न है। पवित्र श्रृङ्गाररस वस्तुतः आदरणीय है। हम अपने साहित्यकी इस इष्ट श्रीवृद्धिका सानन्द स्वागत करते हैं और वाजपेयीजीको उनकी सुन्दर रचनाओंपर हृदयसे बधाई देते हैं। —रा० गौ०।

योगाङ्क—कल्याणका विशेषांक। श्रावण, भाद्रपद और आश्विनका संयुक्तांक। ६०० से अधिक पृष्ठ। चित्रों और नकशोंसे सुसज्जित। गीताप्रेस गोरखपुरसे प्राप्य।

विशेषांकोंके लिये कल्याणने हिन्दीके मासिकपत्रोंमें अपना विशेष स्थान बना लिया है। आरम्भसे हम देख रहे हैं कि इसका प्रत्येक विशेषांक अपने पूर्वगत विशेषांकोंसे बढ़कर निकलता है। प्रस्तुत योगाङ्क तो भारतीय विज्ञानका भांडार है। हम भारतीय विज्ञान इसलिये कहते हैं कि पाश्चात्य विज्ञान परिस्थितियोंके अनुभवसे आरम्भ होता है और अभीतक उसीके सागरमें गोते मार रहा है। भारतीय विज्ञान आत्मासे आरम्भ करके परिस्थितियोंतक जाता है और परिस्थितियोंमें विचारण करते हुए भी अध्यात्मविज्ञानको नहीं भूलता। योगदर्शन भारतीय विज्ञान है। इस विशेषांकमें उसके सभी पहलुओंपर विस्तीर्ण विचार हैं। उनके सम्बन्धमें यहाँ कुछ कहना दुःसाहस मात्र है। जिज्ञासुको इस ग्रन्थोदधिका मरजीवा बनना चाहिये।

ईशावास्योपनिषत्, केनोपनिषत्, कठोपनिषत्, प्रश्नोपनिषत् और मुण्डकोपनिषत्—ये पाँच उपनिषदें, मूल, शाङ्करभाष्य और उसके हिन्दी अनुवाद सहित डिमाई अठपेजी आकारमें अलग-अलग गीताप्रेसने प्रकाशित किये हैं। पदभाष्य और वाक्यभाष्य दोनोंके सीधे सादे भाषानुवाद दिये हुए हैं। विचारवान् जिज्ञासुके लिये विचार और स्वच्छन्द परिशीलनके लिये पूरी और अच्छी सामग्री है। जालिमसिंह आदिके उपनिषदोंके संस्करणोंमें शाङ्करभाष्यकी विशेषता नहीं है। इसी प्रकार सभी उपनिषदोंके शाङ्करभाष्य गीताप्रेस प्रकाशित कर दे तो हिन्दीके दार्शनिक साहित्यका यह अंग सुपल्लवित हो जाय। इनके दाम भी बहुत सुलभ हैं। क्रमसे तीन, आठ, नव, सात और सात आने हैं। —रा० गौड़

श्री तुकारामचरित्र—(जीवनी और उपदेश)। मूल-मराठीलेखक श्री लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर, बी० ए०, अनुवादक श्री लक्ष्मण नारायण गर्दे, प्रकाशक गीताप्रेस, गोरखपुर। मू० १=) सजिल्द १।|), डबलक्राउन १६ पेजीके ६६८ + ३२ = ७०० पृष्ठ। सचित्र।

तुकारामजी महाराष्ट्र देशके एक प्रसिद्ध और पहुँचे हुए वैष्णव संत हो गये हैं। कबीरकी साखीकी तरह उनकी भी साखियाँ (साक्या) मशहूर हैं। वह आवेशमें आकर कीर्त्तन करते नाचते जाते और धारा-प्रवाह साक्या उनके मुखसे निकलती आती थीं। हिन्दी-भाषी संसार भक्तमालाद्वारा अनेक सन्तोंके चरित्र जानता है, परन्तु दुर्भाग्यवश किसी भक्तमालमें तुकाचरित्र नहीं देखा। गीताप्रेसने तुकाचरित्र प्रकाशित करके न केवल एक सन्तसे हिन्दी संसारको परिचित कर दिया बल्कि महाराष्ट्रके एक यशस्वी सन्त कविके लोकप्रिय मराठी काव्यका भी हमें रसास्वादन कराया। हमारी हिन्दीके राष्ट्रभाषात्वके प्रतिपादक इस महान् कार्य्यका हम हृदयसे हर्षपूर्वक स्वागत करते हैं। —रा० गौड़

मुमुक्षु-सर्वस्वसार—श्री मन्मुक्तिनाथ मुनीन्द्र संकलित। श्रीमुनिलालकृत हिन्दी अनुवाद सहित। डबलक्राउन १६ पेजीके ४०२ + ८८४१० पृष्ठ। मूल्य ।||) सजिल्द १) सचित्र प्रकाशक गीता प्रेस।

संस्कृतका मुमुक्षुसर्वस्व नामका वेदान्तग्रन्थ श्रीमुक्तिनाथने बृहत् आकारमें लिखा था और उन्हींने यह उसका सार भी लिखा था। इस दुर्लभ ग्रंथकी प्राचीन प्रतिसे ही अनुवादकने अनुवाद किया और गीताप्रेसने छापा है। इस ग्रंथमें मूलसंग्रह कर्त्ताने निगमागम पुराणादिके वाक्यों का संग्रह करके अपने श्लोकोंद्वारा उनका सम्बन्ध ऐसा जोड़ा है, कि चूलमें चूल मिल गयी है, और वेदान्त-प्रक्रिया और तदुपयोगी साधनोंका प्रतिपादन किया है। यह ग्रंथ सचमुच मुमुक्षुओंका सर्वस्व है। श्रीमुनिलालजीने इसका अनुवाद भी बहुत अच्छा किया है। पुस्तक बड़ी सरस है। उपादेय है। मुमुक्षुओंके लिये तो सब कुछ है ही। रा० गौ०

श्रीश्रीचैतन्यचरितावली; खंड १–५। लेखक श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी। पृष्ठसंख्या कुल १०००से ऊपर। डबल क्रौन १६ पेजी। अत्यन्त सुलभ मूल्यपर। चित्रोंसे अलंकृत। छपाई सफाई उत्तम। प्रकाशक, गीताप्रेस गोरखपुर।

भगवन्नामकीर्त्तनके प्रचारार्थ ही महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्यका अवतार हुआ था। उनके जन्मकर्म्मसे बंगालका उद्धार हो गया। उन्हींकी बृहत् जीवनीका संकलन करके दूसरे "प्रभु" श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीने हिन्दी जगत्के साथ भारी उपकार किया है। और उनसे अच्छा अधिकारी इस ग्रंथके लिये मिल नहीं सकता था, क्योंकि कीर्त्तनके अखंड षाण्मासिक यज्ञके वह विधाता हैं। भक्तोंके चरित पढ़कर पुण्य लूटनेवाले तो ऐसे ग्रंथ रत्नको खोजकर पढ़ेंगे ही, परन्तु साधारणतया जीवनी पढ़नेके सभी इच्छुकोंको ऐसी सुन्दर साहित्यिक रचना बिना पढ़े न रहना चाहिये।

शरणागति रहस्य—वाल्मीकि रामायणमें भगवच्छरणागति। लेखक भट्ट मथुरानाथ शास्त्री साहित्याचार्य कविरत्न साहित्य प्रधानाध्यापक, राजकीय संस्कृत कालेज, जयपुर। डबल क्रौन १६ पेजीके ३५४+८=३६२ पृष्ठ। मूल्य ५॥ प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर। सचित्र। छपाई कागज आदि उत्तम।

स्वर्गीय श्रीकृष्णानन्दजीकी आदरणीय स्मृतिमें

वे न तो कोई वैज्ञानिक थे न साहित्यिक। न पंडित थे, न विद्वान्। वे आदमी थे, और कमयाब आदमियोंमें थे, और उन आदमियोंमेंसे थे जो बड़े भाग्यसे मिलते हैं और खो जानेपर जैसोंका मिलना दुश्वार होता है। मैं उन्हें २३ बरसोंसे जानता था जब पहलेपहल हाथकी तकलीफ होनेपर अपना लेखक नियुक्त किया था। उन्होंने केवल लिखनेकी सेवा न की वरन् किसी प्रकारकी सेवामें कभी उज्र न किया। वे कट्टर आर्यसमाजी थे। मुझसे बहस करनेका उन्हें बड़ा शौक था। परन्तु अकसर समयाभावसे मैं उन्हें निराश कर दिया करता था। पीछे वे विज्ञान-परिषत् प्रयागमें जाकर लेखक हो गये। अपनी होशियारी, सचाई और परिश्रमके कारण वे उसके सब कुछ थे। उन्होंने परिषत्की लगभग १२ वर्ष सेवा की और कार्य्यालयकी देखभाल उन्हींके हाथमें थी। उन्होंने बड़े परिश्रम और ईमानदारीसे सारा काम किया। जो कोई उनके संसर्गमें आता उनकी सच्चाईसे बिना प्रभावित हुए नहीं रहता था। इधर वे कुछ वर्षोंसे जीर्णज्वरसे पीड़ित थे। उनका जीवन एकाकी था और अत्यन्त सादा जीवन व्यतीत करते थे। मृत्युके समय भी उनके पास कोई न था, और संभवतः अन्ततक वे होशमें रहे।

सामाजिक साहित्यसे उनकी बड़ी रुचि थी। छोटी-मोटी एक दर्जन पुस्तिकाएँ भी उन्होंने लिखी थीं और निर्धन होते हुए भी समाज-सुधारकी दृष्टिसे २००० पुस्तिकाएँ (ट्रेक्ट) उन्होंने अपने खर्चसे वितरण करायी थीं।

प्रयागमें ही १८ जनवरी, १९३६, शनिवारको उनका स्वर्गवास हो गया। उनकी सेवाओंकी पुण्य स्मृतिमें ये पंक्तियाँ अर्पित हैं।

रामदास गौड़।

बाजारकी ठगीका भंडाफोड़

पूर्ण संख्या—*Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and*
२५६ *Central Provinces, for use in Schools and Libraries.* Reg. No. A. 708
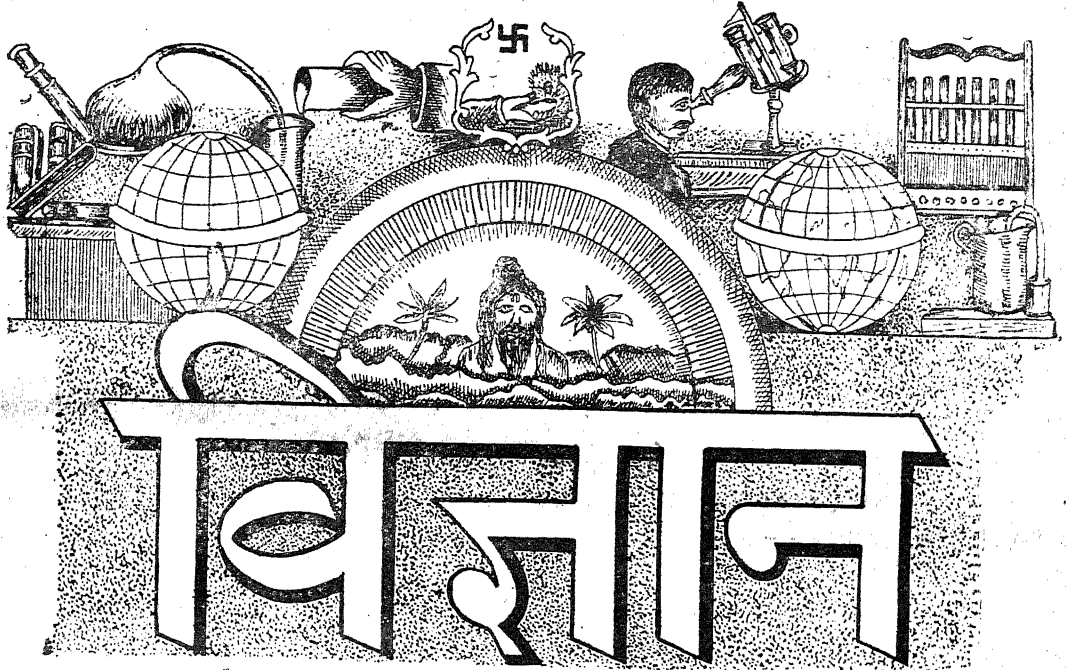
प्रयागकी विज्ञान-परिषद्‌का मुखपत्र, जिसमें अमृतसरका
आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

भाग ४३ कर्कार्क, संवत् १९९३ संख्या ४
Vol. 43 जुलाई, १९३६ No. 4

प्रधान सम्पादक—रामदास गौड़, एम्० ए०

विशेष सम्पादक—

गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी, (गणित और भौतिक-विज्ञान) स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य (आयुर्वेद-विज्ञान)
रामशरणदास, डी० एस्-सी०, (जीवन-विज्ञान) श्रीचरण वर्मा, एम्० एस-सी०, (जंतु-विज्ञान)
श्रीरंजन, डी० एस्-सी०, (उद्भिज्ज-विज्ञान) सत्यप्रकाश, डी० एस-सी०, (रसायन-विज्ञान)

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [इस प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्के अधिकारी

पत्र-व्यवहार करनेवाले नोट कर लें

१—बदलेके सामयिक पत्र, समालोचनार्थ साहित्य, आयुर्वेदको छोड़ और सभी विषयोंके लेख एवं सम्पादन-सम्बन्धी पत्रादि **"सम्पादक, विज्ञान, बनारस शहर"** इस पतेसे भेजना चाहिए ।

२—विज्ञान एवं विज्ञान-परिषत्, विज्ञापन, वैज्ञानिक साहित्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी समस्त पत्र, मनीआडर आदि **"मंत्री, विज्ञान परिषत्, इलाहाबाद"** इस पतेसे भेजना चाहिए ।

३—आयुर्वेद-सम्बन्धी सभी लेख उस विषयके विशेष सम्पादक स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य, पञ्जाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसरके पतेसे भेजे जाने चाहिए ।

माधव रामचन्द्र कालेने श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेसमें मुद्रित किया
तथा मंत्री विज्ञानपरिषत् प्रयागके लिये वृन्दावनविहारीसिंहने विज्ञान-कार्यालय काशीसे प्रकाशित किया ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,

विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४३ } प्रयाग, कर्कार्क, संवत् १९९३ वि० । जुलाई, सन् १९३६ ई० { संख्या ४

मंगलाचरण

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः । ओषधीभ्योऽन्नम् । अन्नाद्रेतः । रेतसः पुरुषः । स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः ।

(तैत्ति० २।१।)

बाजारकी ठगीका भंडाफोड़

[स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, अमृतसर]

नौसादर

देशी नौसादर—पूर्वकालमें नौसादर, कुम्हारके आवा लगाते समय, आवामें कूड़ा-करकटके जलनेके समय ऊपर उड़कर लग जाता था। उसको एकत्र करके जलमें घोल देते थे और उस जलमें जब वह घुल जाता था तब उस जलको निथार कर गाढ़ा कर लेते थे। उस गाढ़े जलको जमा देनेपर नौसादरकी ठीकरी जम जाती थी। आजकल भी वह ठीकरीके नौसादरके नामसे बिकता है। यह नौसादर बिलकुल शुद्ध नहीं होता। इसमें कुछ मिट्टी आदिकी अशुद्धि तथा कुछ अन्य क्षार व लवण भी होते हैं किन्तु हमारे देशमें इसका प्रयोग खूब होता है और इसे अच्छा समझा जाता है।

विलायती नौसादर—बहुत समयसे विलायती नौसादर तीन रूपमें हमारे देशमें आता है, एक चूर्णरूपमें, दूसरा डण्डारूपमें और तीसरा टिकियाके रूपमें। विलायतसे बनकर आनेवाला यह नौसादर अमोनियम नामक वायुको उज्जहरिद नामक वायुसे संयुक्त करके बनाते हैं। वास्तवमें शुद्ध नौसादर अमोनियम हरिद नामका योगिक है। इसमें किसी चीजका मिश्रण नहीं होता, यह शुद्ध नौसादर होता है। किन्तु आज पाँच सात सालसे यह मिलावटी भी मिलने लगा है। इसका कुछ विवरण दे देना अनुपयुक्त न होगा।

विलायती नौसादरका चूर्ण विलायतसे जब आने लगा तब इसका भाव १६)–१७) रु० हण्डरवेट घरमें पड़ता था। विलायती टिकिया पहिले—जो विलायतसे बनकर आती थीं वह थोक २२)—२४) रु० हण्डरवेट बिकती थीं। कलकत्ता, लाहौर और अमृतसरके कुछ टिकिया बनानेवालों-ने नौसादर चूर्ण बड़ी भारी मात्रामें खरीद कर टिकिया बनाना शुरू किया और विलायतके मुकाबलेमें वह २) रु० कमके भावमें माल देने लगे। इनका माल बाजारमें काफी बिकने लगा। और इस प्रकारसे इन्हें ३), ४) रु० प्रति हण्डरवेट बच जाता था। किन्तु, विलायतवालोंने अपने मालकी बिक्री बन्द होते देखकर एकदम भाव गिराकर १८) रु० मन कर दिया। ऐसी हालतमें जिन टिकिया बनानेवालोंके पास काफी नौसादर पड़ा था वह अब टिकिया बनाकर इस भावपर देनेमें असमर्थ हो गये। विलायत-वालोंका मुकाबला करना कठिन हो गया। आखिरकार उन्हें मिलावटकी सूझी, और एक हण्डरवेट नौसादरके चूर्णमें दसवाँ हिस्सा पिसा हुआ नमक मिलाकर उन्होंने टिकिया बनाना शुरू कर दिया। इस प्रकारसे विलायतवालोंके मुकाबलेमें आजतक वह डटे हुए हैं। इससे आगे विलायतवाले रुपये आठ आना घटाकर भी वे इनका मुकाबला न कर सके। और इधर हमारे देशी व्यापारियों-ने १६)–१७) प्रति हण्डरवेट तक भाव घटाकर विलायत-वालोंका मुँह तोड़ दिया। इस प्रकारका देशी नौसादर आज तक बाजारमें बराबर बिक रहा है।

वैद्योंको चेतावनी:—जो वैद्य देशी नौसादरको टिकियाओंका प्रयोग करते हैं उन्हें इस बातको नहीं भूलना चाहिये कि इस प्रकारकी नौसादरकी टिकियोंमें दशमांश निमक मिला होता है। निमक मिले नौसादरकी टिकिया एक तो बड़ी श्वेत और चमकीली होती है, दूसरे सस्ती होती है। असली नौसादरकी टिकिया इतनी श्वेत और चम-कीली नहीं होती। विलायती टिकियायें भी अब अच्छी श्वेत और चमकीली आने लगी हैं, सम्भव है इसमें भी निमककी मिलावट होती हो। अतः याद रखना चाहिये कि ठण्डा और पाउडरका नौसादर असली होता है। और ठीकरी तथा टिकियाका नौसादर क्रमशः अशुद्ध और मेलका होता है।

लाल फिटकरी

लाल फिटकरी भी बनावटी चीज है। सफेद फिटकरीमें, पकाते समय, कुछ लोह यौगिक अथवा गेरूका जल मिला दिया जाता है और फिर उसे घड़ोंमें जमा देते हैं। वह लाल फिटकरी बन जाती है। लाल फिटकरी असली चीज नहीं होती। वास्तवमें फिटकरी अल्यूमिनियम गन्धेत और

एमोनियम गन्धेत् तथा जलकण कार्यौगिक है। जो व्यक्ति लाल फिटकरीको भिन्न या असली समझते हैं वह भूल करते हैं। सफेद फिटकरी और लाल-फिटकरी एक ही चीज़ है।

सतपिपरमेण्ट

पिपरमेण्टका सत जापान, चीन और जर्मनीसे आता है। पुदीनावर्गकी एक वनस्पतिको पानीमें डालकर, भभकेसे उसे अर्करूपमें परिश्रुत करके उसके तेलको अधिक ठण्ढकमें रखकर रवे जमा लेते हैं। यह असली होता है। अमृतसर, देहली और बम्बईमें कुछ लोग इसमें शोरेकी कलम मिलाकर भी वेचते हैं। अमृतसरमें एक व्यापारी तो शोरेके गाढ़े घोलमें पिपरमेण्टके तेलका मिश्रण कर उससे रवे बनाता है। किन्तु उसका स्वाद लेनेपर शोरेका स्वाद आता है और मिश्रणका पता लग जाता है।

शिलाजीत

आयुर्वेदमें शिलाजीतका बड़ा महत्व है। औषधोपयोगमें इसकी खपत काफी है। चन्द्रप्रभा आदि प्रसिद्ध योग बिना इसके नहीं बनते। देशमें शिलाजीतकी जितनी खपत है उतनी उसकी आय नहीं है। किसी वर्ष निकलती है तो किसी वर्ष नहीं निकलती। जब इसका अभाव होता है तब लोग नकली अधिक बनाने लगते हैं। हम असली-नकलीके सम्बन्धमें आज विशेष जानकारी वैद्योंके सामने रखते हैं।

शिलाजीतकी उत्पत्ति—शिलाजीतका उद्भवस्थान प्रायः हिमालय प्रदेश है। अक्सर यह निम्न स्थानोंसे आती है। (१) जिला हरीपुरहजारा (पंजाब) के चिलासस्थानसे जो कश्मीरसे १५०–२२० सौ मील पश्चिमको है। यह स्थान काबुलकी सीमाके समीप है। इसके व्यापारका केन्द्र रावलपिण्डी है। (२) गिलगित लदाखके आस-पासके प्रान्तसे। इस प्रान्तकी शिलाजीत कश्मीरमें आती है। श्रीनगर इसके व्यापारका केन्द्र है। (३) पित्ती और भोट देश जो कुल्लूकांगड़ा और रायपुर विसहर (शिमला जिला) से ऊपर तिब्बतके सीमा प्रान्तीय देश हैं। पित्तीकी शिलाजीत कुल्लूमें आती है और भोट देशकी रायपुरमें। (४) बद्रीनारायण और नैपालके तिब्बती भाग और अल्मोड़ासे ऊपरके तिब्बती भागसे। इसके व्यापारिक केन्द्र हैं—कर्ण प्रयाग, अल्मोड़ा तथा अल्मोड़ा जिलेका बागीश्वर नामक एक प्रसिद्ध ग्राम और नैपालगंज। इन्हीं मार्गोंसे समस्त हिमालय प्रान्तकी शिलाजीत भारतमें आकर बिकती है।

इनमेंसे उपरोक्त तीन प्रान्तोंकी शिलाजीतमें कोई मिश्रण या मिलावट नहीं होती। मिलावट और ठगीका समस्त व्यापार अल्मोड़ा, बागीश्वर और काठमण्डूके लोग ही करते हैं। और इसी देशकी शिलाजीतकी अधिक खपत भी है।

किस प्रान्तकी शिलाजीत उत्तम है?—हमने समस्त देशोंसे शिलाजीतका संग्रह किया है और सबोंका काफी उपयोग किया है। तिब्बत और नैपालोत्तर हिमालय देशकी शिलाजीतसे बद्रीनारायणके ऊपरकी शिलाजीत जितनी अधिक गुणदायी है इतनी अन्य प्रान्तकी नहीं। बद्रीनारायण अल्मोड़ासे उतरकर रामपुर विसहर कुल्लूकी तथा उससे कम काश्मीरकी और काश्मीरसे कम चिलास रावलपिण्डीकी होती है और इस अन्तरका कारण भूमि-भेद है तथा कुछ अन्य कारण भी हैं, जिसका हम आगे उल्लेख करते हैं।

शिलाजीत जहाँ-जहाँसे निकलती है उनमेंके कई स्थानोंको मैं देख चुका हूँ। शिलाजीत वास्तवमें जलज पाषाणोंके सन्धिस्थलोंमें भरा हुआ या संचित होनेवाला वह पार्थिक द्रव्य है जिसमें कई वानस्पतिक अंग, धातु योगिकों तथा कुछ धातुओंका मिश्रण होता है। अनेक प्रान्तोंकी निकली शिलाजीतका अच्छी प्रकार निरीक्षण और परिक्षण हुआ है। इन परीक्षणोंसे मालूम हुआ है कि उनकी रचनामें कुछ न कुछ वानस्पतिक मिश्रण, धातु अधातु यौगिकोंकी न्यूनाधिकता होती है। यहाँ पर शिलाजीतके एक नमूनेका विश्लेषण दिया जाता है। यहाँ पर यह बता देना आवश्यक है कि सब प्रकारकी शिलाजीतोंके विश्लेपण एकसे ही नहीं होते।

अनांगारिक अंश

जलानेपर उड़ जानेवाले जलकी मात्रा	२९·०३
प्राणिज और वनस्पतियोंका द्रवशेष	१८·३४

रेत जो लवण और अम्लमें अविलेय शेष रहता है	२·०९
लोह ओषिद (लो२ ओ३)	०·६४
स्फटम् ओषिद (स्फ२ ओ३)	२·६१
खटिकम ओषिद (ख ओ)	४·०२
मानम् ओषिद (म ओ)	१·२०
पांसजम् ओषिद (पा२ ओ)	३·८१
गन्धकाम्ल (ग ओ३)	०·९१
नोषहरिद (सैह)	०·५०
स्फुराम्ल (स्फु ३ ओ ५)	०·२४
अन्य नोषजन यौगिक	३·३६
बाकी जल भाग	

आंगारिक अंश

जल	२९·०३
लोबान अम्ल	८.५८
अश्वमूत्रिकाम्ल	६·१३
वंसाम्ल	१·३६
राल और मोम सा पदार्थ	२·४४
गोंद	१७·३२
अंडसितोद	१६·१२
वानस्पतिक द्रव्य, रेत आदि	२·१५

ये विश्लिष्ट द्रव्य छः स्थानोंकी शिलाजीतमेंसे लगभग एक जैसे निकले। रस ग्रन्थोंमें तो लिखा मिलता है कि शिलाजीत लोह, चांदी, स्वर्ण आदि भिन्न २ धातु खानोंकी भिन्न होती है। पर इन देशोंमें जहाँ शिलाजीत उत्पन्न होती है, स्वर्ण, चांदी आदि धातुओंकी कोई खान नहीं पायी गयी है। बल्कि यह जलज चट्टानोंकी सन्धियोंमें सञ्चित वह पार्थिव द्रव्य है जो अनेक धातव ओषिदों, अम्लोंके तथा आंगारिक पदार्थोंके योगसे बनता है। तथा अनेक आंगारिक पदार्थ जो जलज चट्टानोंमें किसी समय दब चुके हैं उनके विविध योगका यह द्रव रूप काला मिश्रण है।

तिब्बत, अल्मोड़ाकी शिलाजीतोंमें वानस्पतिक अंश कम होता है। चिलासकी शिलाजीतमें वानस्पतिक पदार्थ बहुत अधिक होता है। इसीलिये यह शिलाजीत कटु अधिक है। दूसरे इसके गुण भी कम हैं।

नकली और असली शिलाजीत

प्राकृतिक रूप—शिलाजीत किसी भी देशकी हो सबकी सब निकलते समय द्रव रूपमें (लुक फिनैल जैसी गाढ़ी) निकलती है। किन्तु पत्थर मिट्टी या तो बाहर टपक २ कर गिरनेके समय मिश्रित हो जाती है या कुछ मिला भी देते हैं। इसके प्रायः गाढ़े होकर व हवा लगकर डले बँध जाते हैं।

स्वाद—खानेपर कुछ कटुता युक्त कसैला होता है और उसमें मिट्टी व रेतकी उपस्थितिका पता चलता है। इसके दो चार रत्ती खा लेनेपर कुछ खुश्की सी गलेमें ज्ञात होने लगती है।

जलमें—इसको जलमें डालनेपर धीरे २ यह लाल कत्थई रंग देकर जलमें घुलने लगती है। जब यह जलमें घुलने लगता है तब उसका कत्थई रंग बादलोंकी घटाके समान फैलता हुआ दिखाई देता है। अल्मोड़ा और बद्री-नारायणकी शिलाजीत घुलते समय कुछ-कुछ तन्तु छोड़ती हुई घुलती है।

अग्निपर—अग्निपर डालनेसे गोंदवत् पकती (फद-फदाती) हुई फूल कर लिंगाकार हो जाती है। अग्निमें चिलास काश्मीर वाली तो धुँआ देती है पर तिब्बत भूटानकी धुँआ नहीं देती। जो धुआँ नहीं देती उसको अच्छा समझा जाता है।

नकली शिलाजीत—हम पीछे बतला चुके हैं कि शिलाजीत बेंचनेका सबसे अधिक व्यापार अल्मोड़ा और गढ़वाल जिलाके आदमी जितना अधिक करते हैं उतना अन्य प्रान्तके नहीं करते। यह लोग शीलाजीत, कस्तूरी और अभ्रक लोह आदिकी भस्में लेकर कलकत्ता, बम्बई मद्रास तक पहुँचते हैं। और असली शिलाजीतके स्थानपर नकली शिलाजीत तथा नकली कस्तूरी व न जाने काहे-काहेकी भस्में अभ्रक लोहके नामसे बेंचते हैं।

नकली शिलाजीत तयार करनेकी विधि—वाँझ नायक एक वृक्षका गोंद एकत्र करते हैं, यह गोंद रंगमें काला भूरा होता है। इसको गोमूत्रमें घोलकर गाढ़ा करते हैं। जब वह गाढ़ा हो जाता है तब काली मिट्टी जो सुहागा बनानेके समय निकलती है (इस देशमें सुहागाकी

बहुत बड़ी २ खानें हैं उनकी मिट्टी व सुहागा मिट्टी दोनों ही तिब्बतसे नीचे आती रहती हैं) उसको इस गाढ़े गोमूत्र व गोंदके घोलमें मिलाकर या तो डब्बोंमें भर लेते हैं या टिकिया बना लेते हैं। इस नकली शिलाजीतका स्वाद फीका चिकना होता है। गन्ध गोमूत्रकी अवश्य आती है पर शिलाजीतकी गन्धसे इसकी गन्ध मिलती नहीं। अनेक लोग तो इसमें कुछ न कुछ शिलाजीतकी भी मात्रा मिला देते हैं। इससे उसमें शिलाजीतका स्वाद आ जाता है। पर फिर भी गोंदके मिश्रणका स्वाद अवश्य ही आता रहता है। दूसरे गोंदका ल्हेसपन जरूर रहता है।

इस बाँझ वृक्षके गोंदकी विशेषता—इस गोंदमें सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जब यह जलमें घुलता है तो इसमें से इसके घोलके तन्तु जलमें फैलने लगते हैं। इन लाल-लाल तन्तुओंका जलमें प्रसार देखकर वैद्य इस तन्तु जालमें फँस जाते हैं। वास्तवमें शिलाजीतके लिये ऐसा कोई बन्धन नहीं पाया जाता कि समस्त शिलाजीत तन्तु छोड़कर ही जलमें घुलें। तन्तु रहित ही अधिक शिलाजीत घुलती है। इस गोंदमें दूसरा गुण यह है कि इसे अग्निमें डालो तो बिना धुआँ दिये ही फूलकर लिंगाकार हो जाता है। इससे भिन्न सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह गोंद खानेमें अच्छा पौष्टिक है। वीर्यको गाढ़ा करता है और पुरानीसे पुरानी कटि पीड़ा व धातुक्षीणताजन्य कटि-पीड़ाको शमन करता है। यह गोंद वास्तवमें अच्छा लाभदायी पदार्थ है। इसीलिये, यह शिलाजीतके नामसे खाया जानेपर अपने गुणके कारण कृत्रिमताके दोषको दबा लेता है। लोभके कारण ही इसका प्रचार बढ़ रहा है। इस बाँझके गोंदको निकालने व मिलानेकी प्रथा अल्मोड़ा, बागेश्वर, काठमण्डू आदिमें ही है। शिमला, कश्मीरकी ओर न तो इसे निकालते हैं न मिलाते ही हैं।

असली और नकली शिलाजीतमें अन्तर :—यदि असली और नकली शिलाजीतोंका अन्तर देखना हो तो दो बर्तनोंमें पानीको उबालिये। इस उबलते जलमें दो भिन्न भिन्न बर्त्तनोंमें असली और नकली शिलाजीतकी डालियां रख दीजिये। असली शिलाजीत तो पिघल जायगी, नकली कभी नहीं पिघलेगी। दूसरे असली शिलाजीतको गरम तेल या घीमें डालकर गरम करिये, शिलाजीत होगी तो घृत या तेलमें मिल जायगी और यदि नकली होगी तो कदापि नहीं मिलेगी। तीसरे असली शिलाजीतके डले होते हैं यदि वह बहुत ही सूखी होगी तो चटखदार टूटेगी गीली हुई तो मृदुता लिये बढ़ जायगी। नकली तोड़नेमें कठिन होती है। इसमें ल्हेस होती है या जिसमें मिट्टी अधिक होती है वह मिट्टीवत ही टूटती है।

शुद्ध शिलाजीतकी परीक्षा

अनेक व्यक्ति शुद्ध शिलाजीत या सूर्यतापी शिलाजीत की परीक्षा भी शास्त्रमें दी परीक्षाके अनुसार ही करने लगजाते हैं। यदि केवल जल मात्रमें ही घोलकर शिलाजीत शुद्धकी गई हो तब तो वह शास्त्रीय परीक्षामें ठीक उतरती है किन्तु जिस शिलाजीतको त्रिफला जल, गौमूत्र व दुग्ध तथा भृंगराजके रसमें भावित किया गया हो उसपर शास्त्रीय परीक्षा पूरी नहीं उतर सकती। क्योंकि इसप्रकारकी शुद्ध शिलाजीतमें जो उक्त वनस्पति अंश तथा दुग्धादिका मिश्रण हो जाता है इनसे शिलाजीतको स्वाद व परीक्षाके वह रूप नहीं रहते। यह अग्निमें धुआँ अधिक देती है। जलमें धीरे धीरे घुलती है और जलमें बैठकर नीचेसे घुलती है। इसप्रकारकी शुद्ध शिलाजीतकी परीक्षाका विधान कहीं भी शास्त्रमें नहीं देखा जाता।

ओज क्या है ?

[स्वामी अच्युतानन्द, बी० ए०, वैद्यराज]

आयुर्वेद ग्रन्थोंमें शरीरके भीतर ओज नामसे एक ऐसी वस्तुका वर्णन आया है, जिसके सम्बन्धमें आयुर्वेदज्ञ अभी तक कोई मत स्थिर नहीं कर सके, कि यह क्या है। इस लेखमें हम इसके सम्बन्धमें कुछ विवेचन करेंगे।

चरकका मत—ओजके संबंधमें आयुर्वेदान्तर्गत हमें दो मत दिखाई देते हैं। एक चरकका और दूसरा सुश्रुतका। चरकजी तो कहते हैं—

हृदितिष्ठति यच्छुद्धंरक्तमीषत सपीतकम्।
ओजः शरीरे संख्यातं तन्नाशान्न विनश्यति ॥

अर्थ—ओज हृदयमें रहता है जिसका वर्ण श्वेत कुछ लाल पीताभ है। ओजकी शरीरमें एक निश्चित मात्रा है जिसके नाशसे शरीरका नाश हो जाता है। वह मात्रा कितनी है, इसपर चरकजी कहते हैं।

प्राणाश्रयस्यौज सौऽष्टौविन्दवो हृदयाश्रिताः।

अर्थ—यह ओज प्राणका आश्रय है अर्थात् इसके कारण ही शरीरमें प्राण रहते हैं। उस ओजकी मात्रा आठ बूँद है, हृदय इसके निवासका स्थान है। चरकजीने 'तत्परास्यौजसस्थानम्' एक स्थानपर कहकर पर और अपरभेदसे दो प्रकारका ओज माना है, ऐसा प्रतीत होता है। उन्होंने पर ओजको ही शायद हृदयमें रहनेवाला माना है। परन्तु अपर ओजकी शरीरमें स्थिति कहाँ है, इसका आपने कोई स्थान निर्देश नहीं किया। शायद उन्होंने रस और रक्तवाही स्रोतोंको अपर ओजका स्थान माना है। क्योंकि आपने एक स्थानपर निर्देश किया है कि रक्तोल्वण अंश और मधुमेहमें भी ओजका क्षय होता है। यथा—

तैरावृतगतिर्वायुरोज आदथ गच्छति।
यदावस्तिंतदाकृच्छ्रो मधुमेहाप्रवर्त्तते ॥

इत्यादि और भी प्रमाण हैं। यहाँपर मधुमेहमें ओजका जाना जिस तरह लिखा है इसी प्रकार रक्तार्शमें भी ओजका जाना माना गया है। इस प्रकारसे रोगोंमें जानेवाला ओज अपर ओज होगा, ऐसा चरकका मत प्रतीत होता है।

अब सुश्रुतका मत देखिये।

ओजः सोमात्मकं स्निग्धं शुक्लं शीतं स्थिरं सरम्।
विवक्तं मृदुमृत्स्नञ्च प्राणायतन मुत्तमम् ॥
देहसावयवस्तेन व्याप्तोभवति देहिनाम्।
तदभावाच्च शीर्य्यन्ते शरीराणि शरीरिणाम् ॥

और देखिये—

तत्ररसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजः तत्खल्वोजः।

वाग्भटका मत—

इसी प्रकार वाग्भटजीने भी लिखा है। यथा—

ओजस्तु तेजोधातूनां शुक्रान्तानां परंस्मृतम्।

किन्तु इन्होंने चरक और सुश्रुतजीके मतको 'हृद्तिष्ठति' लिखकर मिश्रण कर डाला है।

खैर! हमको यहाँ चरक सुश्रुतके ही मतपर विचार करना है। सुश्रुतजीने ओजको। सोमात्मक स्निग्ध शुक्ल है शीत है स्थिर है आदि कहकर केवल प्राणाधार ऐसा कहा है। और उसे सावयव देहमें व्यापक है, ऐसा माना है और यह भी कहा है कि इसके अभावसे शरीर नाशको प्राप्त हो जाता है। यह ओज रससे लेकर शुक्र पर्यन्त धातुओंका सार स्वरूप है—तेज रूप है।

सुश्रुतका मत वैदिकमतसे मिलता जुलता है। क्योंकि वेदोंमें प्रार्थनाके समय कई स्थानोंपर आया है कि "ओजोमेदेहि तेजोमेदेहि बलमेदेहि"। यहाँ जो ओज, तेज और बल शब्द आये हैं यह पर्य्याय हैं ऐसा प्रतीत होता है। सुश्रुत व वाग्भट भी तो 'ओजस्तु तेजोधातुनां' ऐसा ही मानते हैं। ओज धातुओंका तेज है। उपरोक्त प्रमाणोंको सन्मुख रखकर यदि इन पर विचार किया जाय कि ओज क्या है? तो मेरे विचारमें ओजके स्वरूपको इस भेदके रहते जानना कठिन है। वास्तवमें अब तक जितने भी

लेखकोंने ओज निर्णयपर लेखनी उठाई है किसीने भी ओजका निर्णय नहीं किया, बल्कि भिन्न २ ग्रन्थोंके मत ही दे दिये हैं।

यदि हम चरकके मतको मानकर हृदयको ओजका निवासस्थान मानें तो आधुनिक शरीर-विज्ञानके अनुसन्धान बतलाते हैं कि हृदयमें कोई भी ऐसा स्थान नहीं जहाँ आठ बूँद तो दूर एक बूँद वस्तु भी रुकती हो। हृदय एक ठोस ग्रन्थी है जिसके भीतर चार कोठरियाँ हैं। इनमें कपाट लगे हैं और कपाटोंके बाहरसे रक्तवाहनी धमनियोंके मुँह जुड़े हैं। जिनमें से रक्तका प्रवाह आता है और हृद्कपाट खुलते हैं तथा कुछ मात्रा रक्तकी अन्दर प्रवेश करती है। फिर उसके दबावसे आगेके दूसरे किवाड़ खुल जाते हैं जिससे रक्त दूसरी ओर धकेला जाता है। इस प्रकार रक्त एक ओरसे आता और दूसरी ओरसे निकल जाता है, तथा फिर फुफ्फुसमें होकर वापस होता है और फिर हृदयके भीतरसे होकर धमनियोंमें धकेला जाता है। यह हृदयरूपी पम्प दिन रात रक्तके इस आवागमनको बनाये रखता है। हृदयकी तुलना पूरी पम्पसे होती है जो सदा ही चलनेवाला है। इस पम्पमें कोई वस्तु ठहर नहीं सकती। इसीलिये हृदयको ओजका निवास-स्थान माना जा नहीं सकता। यदि हम प्राणोंका आधार ओजको मानें तो प्राणोंके आवागमनका स्थान फुफ्फुस हैं। फुफ्फुस तक ही प्राण (आक्सीजन वायु) का सञ्चार है। फुफ्फुसमें भी रक्तके आगमनके साथ प्राणवायुके मिश्रणकी क्रिया होती है। कर्बन द्विओषिद वायव्य रक्तसे यहाँपर भिन्न किया जाता है तथा ओषनजका रक्तमें मिश्रण किया जाता है। यहाँ भी कोई ऐसा स्थान नहीं जहाँ अन्य वस्तु आकर रह सकें। फुफ्फुसके सम्बन्धमें तो शास्त्रकी कल्पना मानी भी नहीं जाती। क्योंकि फुफ्फुसके शरीरमें क्या २ कार्य है इसका शास्त्रोंने कोई विशेष उल्लेख नहीं दिया।

अब दूसरे मतकी ओर आइये, सुश्रुतजीका यह मत प्रतीत होता है कि ओज सर्व शरीर व्यापी वस्तु है। अब इस सर्वशरीर व्यापी वस्तुओंमें देखना यह है कि इस समय तक कौन २ सी ऐसी वस्तुएँ शरीरमें व्यापकरूपसे पाई जाती हैं जो ओजके स्वरूप गुणसे मिलती हैं। आधुनिक शरीरशास्त्रके अनुशीलनसे ज्ञात होता है कि हमारे शरीरमें सदा व्यापक रूपसे विचरनेवाला रक्त द्रव है जिसमें रक्त कण, आहाररस (लसिका) तथा अनेक प्रकारके शरीरक ग्रन्थोद्भूत रसोंका मिश्रण विद्यमान रहता है। यदि हम रक्तके इन समस्त पदार्थोंको भिन्न २ करें और इनके रूप गुणोंको देखें तो इनके निम्नलिखित स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं।
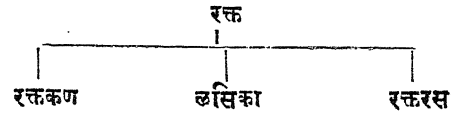
रक्तकणोंका वर्ण लाल होता है। लसिकाका वर्ण श्वेत दूधिया। तथा रक्त रसका वर्ण स्वच्छ ईषत् पीत। अब हम शास्त्रीय वर्णित ओजसे इन तीनोंके रूपका मिलान करें तो रक्त रससे ओजका स्वरूप अवश्य मिलता है, अन्योंसे नहीं। प्राचीनकालमें रक्तसे रक्त-रसको भिन्न करनेका विधान तो था नहीं किन्तु, रक्त श्राव होनेपर जब रक्त जमता था तो कुछ न कुछ रक्त रस उससे भिन्न हो जाता था। मैं जहाँ तक समझता हूँ चरकजीने उक्त रक्त रसको देखकर ही उसका ओज नाम दिया हो तो आश्चर्य नहीं ? क्योंकि जब यह रक्त जमनेके पश्चात् देखा जाय तो इसका वर्ण 'रक्त मीषत सपीतकम्' ही दीखता है, लालिमा तो रक्त कणोंकी कुछ न कुछ मात्रा भी विद्यमानतासे दिखती है, ईषत्पीत वह होता ही है। और जब किसी कारणसे रक्तका श्राव होता है, तब यदि शरीरसे रक्तकी मात्रा अधिक निकल जाय तो प्रायः और हृदयकी गति बन्द हो जाती है इस प्रकारकी मृत्युको देखकर ही शायद चरकाचार्यने यह अनुमान किया हो कि हृदयसे ओजके क्षीण होनेपर इस रक्तश्रावीकी मृत्यु हुई है। तत्पश्चात् उक्त सिद्धान्त निश्चित किया हो तो आश्चर्य नहीं। चरक वर्णित ओज पर जहाँतक मैं इसपर विचार कर सका हूँ इसी परिणामपर पहुँचता हूँ कि रक्तरस ही इनका ओज था। और रक्त श्रावके कारण जब शरीर विवर्ण हो जाता था तो यह विश्वास किया गया कि ओजकी क्षीणताके कारण ही ऐसा होता है। उस समय इस विवर्णतामें रक्तको प्रधानता न देकर ओजको प्रधानता दी गई थी।

अब सुश्रुतजीके वर्णित ओजकी ओर आइये यदि हम उनके ओजका स्वरूप देखें तथा उसकी उत्पत्ति और स्थितिको चरकजीके ओजसे मिलावें तो यह भिन्न दिखाई

देता है। सुश्रुतजीका ओज क्या है ? अब हम इसपर कुछ विचार करते हैं। सुश्रुतजी कहते हैं, रस धातुसे लेकर शुक्र पर्य्यन्त सातों धातुओंका तेज व सार वस्तु ओज है। जो समस्त शरीरमें व्यापक है। चरकजीने ऐसा कहीं नहीं लिखा। सुश्रुतजी इसे प्राणका आधार मानते हैं, किन्तु, इन्होंने यह कहीं नहीं कहा कि ओजका निवास हृदयमें है और उसकी मात्रा आठ बूँद है यह मात्रा निर्द्धारित नहीं करते। न यह उसकी रक्त ईषत् प्रति स्वरूप वाला बतलाते हैं, बल्कि यह भी कहते हैं कि ओज सोम स्वरूप, स्निग्ध, शुक्र, शीत और स्थिर सा है। ओजको चिकना सफेद कहनेसे उसका अभिप्राय किसी दूसरी वस्तुसे ही निकलता है मैं इसपर अधिक विचार करनेपर इस परिणामपर पहुँचता हूँ कि सुश्रुतजी वीर्य ग्रन्थीरस, लाला ग्रन्थीरस, शिश्नमूल ग्रन्थीरसोंमेंसे किसी एक या मिश्रित रस प्रभावको ओज मानते थे।

आयुर्वेदज्ञोंसे यह छिपा नहीं कि हमारे शास्त्रोंने रससे रक्त बनाने तथा रक्तसे माँस और माँससे मेदादिके बननेका जो क्रम माना है वह यह है कि एक आहार रससे रक्त बननेके लिये ३ दिन और रक्तसे मेद बननेके लिये ३ दिन, इसी क्रमसे मज्जासे शुक्र बननेके लिये ३ दिन लगते हैं। अर्थात् आहारसे २० दिन या एक मासके लगभग जाकर शुक्र बनता है यदपि शुक्र धातुको शास्त्र शरीर व्यापी मानता है। इस शुक्रसे ही आगे चलकर ओजकी उत्पत्ति मानी है, और ओजको बल स्वरूप, तेज स्वरूप और प्राणाधार आदि भी माना है। अर्थात् शरीरमें तेज, बलकी विद्यमानता ओजके कारण है ऐसा वेदोंसे लेकर सुश्रुतजी तकका मत ज्ञात होता है। ओजकी शरीरमें स्थितिसे तेज कान्ति आती है, यह तेज स्वरूप है ओजकी शरीरमें विद्यमानतासे स्फूर्ति उत्साह और बल बढ़ता है। इसीलिये तो वेदोंमें प्रार्थना करके **"ओजोमेदेहि तेजो मेदेहि, बलं मेदेहि"** माँगा है।

शरीरके तेज, कान्ति, और बलके विषयमें आधुनिक विज्ञानका मत

आधुनिक शरीर शास्त्रके अनुशीलनसे यह स्पष्ट है कि न तो वीर्य शरीर व्यापि पदार्थ ही है, और न वीर्यकी उत्पत्ति समस्त शरीरमें ही होती है। प्रत्युत वीर्यकी उत्पत्तिका स्थान मुष्क है मुष्क (वृषण) में ही वीर्य बनता है और इसीमें संचित होता है वीर्यके कहनेसे वीर्यके किसी एक पदार्थका बोध नहीं होता। बल्कि वीर्य, पूँगीफलाग्रन्थिरस, शिश्नमूलग्रन्थी रस, और मुष्कग्रन्थी रसोंके मिश्रणका नाम है। जो प्रायः मुष्कग्रन्थीमें ही एकत्र होते हैं। जो व्यक्ति विषय वासनासे बचे रहते हैं और अधिक काल तक बचे रहते हैं उनकी ग्रन्थियोंमें जो रस बनते हैं यदि उन रसोंका वाह्य उपयोग न हो तो शरीर विज्ञानके नियमानुसार उक्त ग्रन्थियाँ उन रसोंको एक ओर बनाती तो दूसरी ओर उनका रक्तमें सात्म्यीकरण करती रहती हैं। अर्थात् इन ग्रन्थियोंके रस रक्तमें मिलने लग जाते हैं। अनेक परिक्षणोंसे पता लग गया है कि जिन व्यक्तियोंका वीर्यच्युत नहीं होता, न पूर्णफलादि अन्य ग्रन्थियोंके रसका श्राव होता है तो ऐसे व्यक्तियोंका शरीर हृष्ट-पुष्ट व कान्तियुक्त हो जाता है। रक्तमें वीर्यरसकी विद्यमानतासे शरीरका अधिक विवर्द्धन होता है शरीरके प्रत्येक अंग, उपांग परिपुष्ट होकर सस्नेहित रहते हैं; उनमें कान्ति, सुडौलता, बल, तेज दिखाई देता है। इसके विपरीत जिन व्यक्तियोंका वीर्य व अन्य ग्रन्थियोंके रस क्षीण होते रहते हैं वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बल हो जाते हैं। उनके चेहरे फीके पड़ जाते हैं। आभा, प्रभाव, बल, स्फूर्ति सब जाती रहती है।

सुश्रुतजीके मतका आधार

शरीरकी इस दशाको देखकर सुश्रुतजीने अनुमान किया कि शरीरकी निर्बलता, निस्तेजतामें प्रधान कारण ओजकी स्थिति है। ओजसे ही शरीरमें कान्ति स्फूर्ति बल आदि आते हैं। उन्होंने ग्रन्थी रसोंको देखकर ही स्निग्ध सा आदिवाला ओज माना। क्योंकि इनके निकलनेसे ही क्षीणता देखी जाती थी। जो ब्रह्मचारी रहते थे उनमें तेज कान्तिकी वृद्धि देखी जाती थी। उससमय शिश्नमूल ग्रन्थी व पूँगीफला ग्रन्थीका पता नहीं लगा था न मुष्क ग्रन्थीके कार्यका ही पूरा २ ज्ञान हो पाया था। इसीलिये इन ग्रन्थीरसोंके वाह्य निस्सरणके रूपको देखकर इसका नामी ओज दिया। ओजका वीर्य धातुसे बननेवाला या उसका सार रूप, तेज

रूप द्रव्य मानना इस बातकी पुष्टिका प्रबल प्रमाण है कि सुश्रुतजी वीर्य ग्रन्थी रसकोही ओज मानते थे। क्योंकि वीर्य क्षीणताके कारण शरीरको निस्तेज होना पाते थे।

हमारा मत

हम भी उक्त ग्रन्थियोंके साम्यरूप रसको ही ओज माननेके पक्षमें हैं। यही अभिप्राय वैदिक प्रार्थनाका है। विषय वासना प्राणीमात्रको सताती हैं, मानसिक विषय विकारसे बड़े २ ब्रह्मचारी भी कठिनतासे बचते थे। इसलिये, इस विकारसे बचनेके लिये ब्रह्मचर्यकी स्थितिको दृढ़ करनेके लिये जहाँ प्रार्थना की जाती थी वहाँ अन्यगुणोंको माँगनेके साथ ही "ओजो मे देहि तेजोमे देहि" की प्रार्थना भी होती थी, क्योंकि पूर्वकालसे आर्य जातिको विश्वास रहा है। ईश्वर ही बुराईयोंसे हमारी रक्षा कर सकता है उसका ध्यान ही हमें सन्मार्ग पर लगाये व बनाये रख सकता है। उसीका ध्यान हमारे मनके विकारोंको रोकनेका उत्तम साधन है। जो योगी या तपस्वी सतेज दिखाई देते हैं निश्चय ही वे ब्रह्मचारी और जितेन्द्री हैं जिसके कारण ही उनका तेज स्थिर रहता है।

आयुर्वेदिक ओषधियाँ और उनका व्यवसाय

[आयुर्वेद महोपाध्याय वैद्यराज कल्याणसिंहजी, अजमेर, लेट सीनियर प्रोफेसर आयुर्वेद, डी० ए० वी० कालेज, लाहौर।]

आयुर्वेदिक-चिकित्सा-पद्धति अत्यन्त प्राचीन है। लाखों वर्षोंके और सहस्त्रों ऋषि मुनियों के अव्यर्थ अनुभव आयुर्वेदमें ज्योंके त्यों रखे हुए हैं। इनके सिवाय लाखों ही सिद्ध प्रयोग लोगोंके पास फुटकर रूपमें संग्रहीत हैं जो पुस्तकोंमें नहीं हैं पर सीना ब सीना बराबर चले आ रहे हैं, वे भी सब कामयाब नुसखे हैं और जादू रकम। इनमेंसे एक-एक नुसखे या प्रयोगको लिये हुए कितने ही लोग स्थानिक सिद्ध बने बैठे हैं। निस्सन्देह उस बीमारीका वे कामयाब इलाज करते हैं जिसका नुसखा उनके पास है। अगर वे चीजें बाजारमें आवें तो उनसे व्यापार सम्बन्धी भारी लाभ हो सकता है और स्वदेशी दवाइयोंका प्रचार मुफ्तमें। झंडूने द्राक्षासवका प्रचार किया अब द्राक्षासवकी लाखों शीशी बाजारमें बिक रही है और कितने ही मैन्युफैक्चरर या औषधनिर्माता इसे बनाने लगे हैं। निश्चय ही यह फेफड़ों, श्वासनाली और अंतड़ियोंकी बीमारियोंकी उम्दा दवा है और उत्तेजक और शक्तिवर्धक भी। बंगाल कैमिकल वर्क अपने ढंगपर आयुर्वेदिक औषधियाँ बना रहा है, परन्तु हमें कई एक खालिस आयुर्वेदिक औषध निर्माण शालाओंकी और भी भारी जरूरत है अथवा कई कारखाने भिन्न भिन्न प्रकारकी औषधियोंका निर्माण करें। देशके धनी लोगोंकी अभी तक इस तरफ तवज्जह नहीं खिंची है, और किसीने खींची भी नहीं है। हमारा विश्वास है कि यह क्षेत्र बहुत विस्तीर्ण है और यदि इधर कुछ काम किया जाय तो इसमें भारी लाभकी गुंजाइश है। आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धतिपर लोगोंकी अवस्था है, खासकर आयुर्वेदका औषध-विभाग इतना उन्नत है कि उसके मुकाबलेकी उम्दा दवाइयाँ कोई चिकित्सा पद्धति बनानेमें समर्थ नहीं हुई जटिल और पुराने रोगोंको जड़से आरामकर देनेकी सामर्थ्य इन औषधियोमें ही है और वर्तमान वैज्ञानिक युगमें बहुत करके आयुर्वेद इन्हींके आश्रित जी रहा है। विशेषकर आयुर्वेदका रसशास्त्र औषध निर्माणकी जो पद्धति उपस्थित करता है वह अव्यर्थ है, लाजबाब है, सर्वथा वैज्ञानिक है और उसकी तरफ कदाचित् पाश्चात्य वैज्ञानिकोंका ध्यान ही नहीं गया है वर्ना तूफान बर्पा हो जाता।

पारा, गन्धक, धातुओंकी भस्में और जड़ी बूटियाँ, इनको लेकर प्राचीन रसशास्त्रियों योगियों सिद्धों और वैद्योंने इतना कठिन परिश्रम किया और ऐसी-ऐसी गुणकारी चीजें बनाई कि वाह २। पारा और गन्धकपर भारी तजर्बे किये गए, भाँति-भाँतिसे इनका शोधन संस्कार और

जारण-मारण किया गया और मिश्रण बनाए गए। ये मिश्रण या रासायनिक द्रव्य बड़े भारी गुणकारी, रोगनाशक और टॉनिक सिद्ध हुए। रस सिन्दूर, ताल सिन्दूर मल्ल सिन्दूर, मकरध्वज, रसचन्द्रिकादि ऐसे ही मिश्रण है।

इसके अतिरिक्त जो दवाइयाँ (वनस्पति द्रव्य) पारे गन्धककी कज्जलीके साथ घुट जाती हैं उनमें कभी भी उत्क्षेचन क्रिया या फर्मेंटेशन (Fermentation) नहीं पैदा होती चाहे सैकड़ों वर्ष धरी रहे, वरंच वे जितनी ही रक्खी रहती है उनका गुणवर्धन ही होता रहता है। ऐसा होनेपर ऐसी औषधियोंकी मात्रा कम हो जाती है। जो दवा दो चार तोले खानेपर गुण करती उसका उतना असर रत्ती दो रत्ती दवा खानेसे ही होने लगता है। ऐसी दवा बड़ी आशुकारी हो जाती है और तत्काल फल दिखाने लगती हैं। पारे गन्धकके इस महान गुणसे वनस्पति द्रव्य समूहमें नई जान पड़ जाती है। बात यह है कि पारे गन्धककी कज्जली इतनी आशुकारी है कि वह वनस्पति औषधिके गुणोंको साथ लेकर तत्काल त्वचामें प्रवेश करती है और फैलती है सम्पूर्ण ज्ञान और कर्मतन्तुओं और गिल्टियोंमें नवजीवनका संचार करती है, उत्तेजना पैदा कर देती है और शरीरके भिन्न क्रिया स्थानोंको कार्यशील बना देती है।

धातुओंकी भस्मोंने और भी अद्भुत चमत्कार दिखाया, लौह और अभ्रक हज़ार २ बार तक फूंके गए और भिन्न २ प्रभावकारिणी जड़ी बूटियोंका रस घुटाईमें साथ २ दिया गया। ये भस्में जटिल रोगोंको आराम करनेमें लाजवाब साबित हुई। उस दिन श्रीयुक्त डाक्टर डी० पी० शर्मा एम० बी० बी० एस फर्माने लगे कि एक दिन हमारे कर्नल साहबने अपने व्याख्यानमें ऐसा कहा कि इंडियन वैद्य लोग धातुओंपर साठ २ गुणा आक्सीजन चढ़ा देते हैं जिससे ये वस्तुएँ बड़ी प्रभावकारी हो जाती हैं डाक्टरी पद्धतिमें ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं है। मैं सुनकर आश्चर्य चकित हो गया, क्योंकि वैद्य बेचारोंको यह खबर ही नहीं है कि धातुओंको अधिक पुट देनेसे उनपर आक्सीजन अधिक मात्रामें चढ़ता चला जाता है, गुणवृद्धिकी बात वे अवश्य जानते हैं।

धातुओंमें भी पारागन्धकके साथ मिश्रण बनानेमें अत्यधिक गुण वृद्धि हुई है। ऐसे नुसखे आयुर्वेदमें बेशुमार हैं जो बड़े ही प्रभावकारी हैं मिसालके लिये **पर्पटी रसों** को लीजिये—**स्वर्ण पर्पटी** में पारागन्धकके साथ सुवर्ण मिलाया जाता है, पञ्चामृत पर्पटीमें अभ्रक लौह और ताम्र और विजय पर्पटीमें सोना और चाँदी इनसे अधिक और मिलाए जाते हैं, ये पर्पटी रस क्षय मन्दाग्नि संग्रहणी और अंतड़ियोंकी अनेक बीमारियोंपर अव्यर्थ प्रमाणित होती है। अन्न बन्द करके केवल दूधपर रोगीको रखते हैं और धीरे २ पन्द्रह बीस सेर तक प्रतिदिन दूध पिला देते हैं। रोगी सर्वथा रोग युक्त होकर निर्मल मोतीकी तरह आबदार जिस्म लेकर तैयार हो जाता है। ऐसी एक भी दवा डाक्टरी ऐलोपैथिक तो क्या संसारकी किसी भी चिकित्सा पद्धतिमें नहीं है।

मकरध्वज अपनी शक्तिके लिये विख्यात है यद्यपि वह बहुत अच्छी तरह नहीं बनाया जाता यदि वह बुभुक्षित पारदके द्वारा बनाया जाय तो क्या कहने हैं अमृतरूप होता है।

यहांके वैद्योंको चाहिये कि वे उत्तम प्रकारसे संघ बनाकर धनिक लोगोंकी पूँजीकी सहायता लेकर ऐसी २ उत्तम वस्तुएँ तैयार करें पुष्कल मात्रामें इनका भारी व्योपार हो सकता है भारत ही में नहीं विदेशमें भी यह वस्तुएँ आदर्शरूपमें पेश की जा सकती हैं और इनका भारी खप हो सकता है।

जड़ी बूटियोंका कोई अच्छा प्रामाणिक भंडार भारत-भरमें नहीं इसके लिये भी भारी उद्योगकी ज़रूरत है और इससे भी बहुत लोग जीविका प्राप्त कर सकते हैं। अभी इतनी ही आवश्यकता हुई तो हम और बहुत सी गुप्त और उपयोगी बातोंपर भी इस विषयमें प्रकाश डालेंगे।

गरीबोंकी आजीविका

[आयुर्वेद महामहोपाध्याय रसायन शास्त्री भागीरथस्वामी आयुर्वेदाचार्य्य १४३ हरिसन रोड कलकत्ता ।]

प्राचीन पुरुष "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" अर्थात् जननी जन्म भूमि स्वर्गसे भी उत्तम है, इस सिद्धान्तानुसार अपने देशमें और अपनी जन्मभूमिमें रहना अच्छा समझते थे। आज इस सिद्धान्तके मनुष्य बहुत कम दृष्टि गत होते हैं। प्राचीन समयसे हमारे घरकी स्त्रियाँ भोजनादि कार्योंसे निवृत्त होकर चरखा कात ।) =) वा =) नित्य पैदा करती थीं। चरखा कातनेके लिये प्रति मुहल्ले अपने २ घरोंके सामने १०। २० स्त्रियाँ मिलकर प्रति स्पर्धासे नित्य सूत कातती थीं। सायङ्कालमें आपसमें कहती थी कि अमुक स्त्रीने इतना सूत काता अमुक स्त्रीने इतना सूत काता। चाँदनी रात्रिमें भी बैठकर बराबर सूत कातती थी। इस सूतसे घरमें बिछानेकी दरियाँ, ओढ़ने बिछाने और पहिननेके कपड़े कभी मोल नहीं लेने पड़ते थे। कपड़े बिननेवाले कोरियोंको सूत देकर कपड़ा, दरी आदि ले लिये जाते थे। इसीमें जितना महीन सूत काता करती थी उतनीही उनके सूत कीमती होती थी। उतनाही अच्छा कपड़ा बनता था। इस ढँगसे प्रत्येक गृहस्थी कपड़ेके खरचसे बचे रहते थे। जिनके घर खेती होती थी वह सब पुरुष खेती करते थे। जिसके कारण समस्त धान्य घरमें हर समय भरा रहता था तो ये नाममात्र पेटकी चिन्ता नहीं थी। धान्य विशेष होनेपर क्रय विक्रय कर कुछ धन एकत्रित कर लेते थे। जिससे विवाह आदि खरच चल जाते थे। चरखाकी प्रथा तो इतनी थी कि धनवानोंकी स्त्रियाँ भी चरखा कातकर अपने वस्त्र बनवा कर पहनने को या उन वस्त्रोंको विवाह आदि पुण्य कार्य्यमें लगानेको अपना पवित्र ध्येय मानती थी। कितनी ही स्त्रियोंके तो इस चरखेके कारण अबतक इतिहास चलरहे हैं। ग्रामोंके नाम प्रसिद्ध हो गये हैं। राजपूतानेमें आगरा अचनेराके आगे बाँदीकुई, एक स्टेशन है। प्राचीन समयमें वह देहली आदि आनेका प्रधान मार्ग था फिर भी वहाँ कोई कूप न था। केवल जंगल पड़ता था।

वहाँ पर टिकनेवालो तथा आने जाने वालोंको जलकी तकलीफ होती थी किसी समय कदाचित् राजपूतानेके किसी जमीदारकी या राजाकी एक बाँदी भी इधर होकर निकली और उसने जलके कष्टको देखा। उस समय अपने चरखेकी कमाईसे प्राप्त धन लगाकर एक छोटा कूप (कुई) बनवा दिया। उसी समयसे उस स्थानका नाम बाँदीकुई होगया। आज हमारी प्राचीन प्रथा मोटे और हाथके सूतसे बने हुये कपड़े पहरनेकी प्रथा नष्ट हो गई। हमारे देशकी रुई हमारे देशमें न रहकर दूर देशों में जाती है। किन्तु उसी रुईका वा यूरोपमें उत्पत्ति हुई रुईका यूरोपके यन्त्रों तथा हाथोंके द्वारा बना हुआ कपड़ा भारतमें आकर बिकता है। भारतका बना हुआ मोटा कपड़ा भारतवासी पहरते नहीं। अतः वह कपड़ा बनता नहीं है। इसी कारण भारतका करोड़ो रुपया यूरोपमें जाता है इसी कारण माहात्मा गान्धीने खद्दरका प्रचार किया था। इस समय पुनः वह प्रचार शान्त हो रहा है यूरोप और जापानका कपड़ा करोड़ों रुपयेका आकर बिक रहा है। जितना खद्दरका प्रचार हो रहा है। जितना खद्दर-अन्य मोटा कपड़ा लोग पहर रहे हैं वह नहींके बराबर समझा जाता है। इतना भी यह खद्दर भारतीय मनुष्योंके हाथका बना हुआ भारतीय रुईसे तैयार किया हुआ नहीं हैं किन्तु कांग्रेसके कार्य्यकर्ता व अग्रगण्य लीडर भी यह बात सहसा नहीं जान सकते कि यह भारतीय बजाजों द्वारा जापानसे मंगाया जाता है। इसका पता व्यापारी ही जानते हैं। तब हम किस प्रकार कह सकते हैं हमारे गरीबोंका व्यापार भारतवर्षमें चल सक्ता है। जो देशी कपड़ोंके बेचनेवाले प्रचार करनेवाले स्टोर खोले गये हैं। वह दूगना ड्योढ़ा नफासे कम नफा लेना पाप समझते हैं तब विचारे गरीबोंको मोटा कपड़ा किस प्रकार मिल सकता है।

इन्हीं कारणोंसे देशी मोटे खद्दरका प्रचार नहीं हो पाता विदेशी कपड़ोंका प्रचार होता है। छोटे २ ग्रामों तथा नगरोंमें चातुर्मास्यके समयमें तथा अन्य कई समयोंमें गरीब लोगोंको कुछ भी काम नहीं होता है बैठे-बैठे खाना पड़ता है। कार्य्याभावसे भोजनका चलना भी कठिन पड़ता है। तब

क्या करना चाहिये, यह चिन्ता-रूपिणी चिता रात्रि दिन शरीरको जलाती है। मेरी समझमें ऐसे समयमें छोटे-छोटे कपड़ा बिननेके लकड़ीके करघे बनाकर प्रत्येक घरोंमें लगा दिये जावें तो कमसे कम प्रत्येक मनुष्य ॥) वा १) नित्य पैदा कर सकता है। जिस करघेसे निवार गुलूबन्द रुपया रखने की थैली आदि ४०–४२ प्रकार कपड़ा बना सकते हैं, लकड़ीके करघा बनानेमें चार पाँच रुपये व्यय होते हैं।

करघेका वर्णन—यह करघा इस प्रकारका होता है कि यह छोटेसे छोटा जिसमें छोटी चीजें बनसकती हैं और बड़ीसे बड़ी दरी आदिभी तैयार होसकती है। उसमें दो दो गजके पतले दो स्तम्भ धरतीमें गाड़ दिये जाते हैं। उसके मध्यमें १ डंडा लगाया जाता है। उसके ऊपर एक २ हाथके ५। तथा लकड़ीके टुकड़े छिद्‌दार रहते हैं। वह ऊपरकी तरफ जिस प्रकारका कपड़ा बनाना हो उतनी ही रस्सियाँ लगाई जाती हैं मध्यमें डोरीको १।२।३ कंघियाँ अपेक्षानुसार लगाई जाती हैं। उसके आगे लोह तथा बाँसकी कंघी बनाकर लगाई जाती है। सूतको एक बार कंघीयोंके भीतर पोना पड़ता है। फिर सर्वदा कपड़ा इच्छानुसार चाहे जितने गज बनाते जाइये। कुछ भी करना न पड़ेगा।

पठानी गोटा

इसी मशीनसे पठानी लम्बा-पतला-चौड़ा गोटा तैय्यार हो सकता है। ऐसा करघा आगरेकी किसी संस्थाने बनाया था जिसकी कीमत १५ रु० थी। उसके साथमें पुस्तक भी दी जाती थी जिसके द्वारा बिननेकी विधि सिखाई जाती थी। मैंने स्वयं पंद्रह-पंद्रह रुपया दिलवाकर संस्कृतके विद्यार्थियोंको सिखवाया था। यदि कोई चाहे तो तलाश करनेपर आगरेकी संस्थाका पता चल सकता था। उसका पता मुझे याद नहीं परन्तु उस पुस्तककी नकल मेरे पास है। इस करघेके बाबत कह सकते हैं। इसमें तो रुपये खरच होते हैं। सबलोग इसको नहीं कर सकते हैं। गरीबोंके लिये ऐसी कोई युक्तिकी अपेक्षा है कि एक भी पैसा न लगे केवल मेहनत करनेसे पैसा पैदा हो जाय।

आज हम विज्ञानके पाठकोंको कुछ ऐसी प्रकारकी बातें बताते हैं जिसके द्वारा गरीब मनुष्य धनवान् हो सकता है। संसारमें ऐसी बहुतसी वस्तुएँ हैं जो सर्वदा हजारों मनकी तादादमें उत्पन्न होकर नष्ट हो जाती है। मेहनत करनेवाले ऐसी वस्तुओंसे १२ मास अपनी ग्रहस्थीका पेट भरते हैं।

१—पवाड और उसके बीजोंका उपयोग

पवाड चौमासेमें उत्पन्न होकर कार्तिक मार्गशीर्ष तक समाप्त हो जाता है। यह सर्वदा सभी ग्राम नगरोंमें मनोंकी तादादमें मिलता है। सबसे प्रथम जबतक कच्चे पत्ते रहते हैं तब तक शाक बेचकर पैसा पैदा कर सकते हैं। यदि शाक नहीं बेचें तथा न बिक सकें तो छोड़ दीजिये। आश्विनमें इसको उखाड़कर एक मैदानमें डाल दीजिये सूखनेपर डंडोंकी मारसे गिरे हुवे बीजोंको संग्रह कर बोरोंमें भरकर पसारियोंको बेच दीजिये। अथवा पासके किसी बड़े नगरको जाकर पसारियोंको बेच दीजिये। इसमें आपकी केवल मेहनत प्रधान है। जितना अधिक बेचेंगे उतने रुपये आपको मिलेंगे।

२—चनेके पत्तोंसे चणकाम्ल

चनेके पैदा होनेके समय शीत ऋतुमें चनेके खेतमें जाकर एक पतलावस्त्र चनेके वृक्षोंपर डालकर खींच लीजिये। जिससे पतला वस्त्र गीला पड़ जाय। धोती अगोंछेकी तरह मट्टीकी हाँडीमे निचोडकर सैकड़ों घड़े भर सकते हैं उस पानीको अग्निसे सुखाकर गाढ़ाकर कर लीजिये। चणकाम्ल बन गया यह अनेक पाचक चूर्णोंमें पड़ता है। इंग्रेजी बने हुए टाइट्रिक एसिड, इमलीका सत्व साइट्रिक एसिड इसके सामने सब तुच्छ है। अर्थात् इनकी खटाई इस खटाईके सामने कुछ भी नहीं। इसको चनेका खार कहते हैं। यह बाजारमें असली कभी नहीं मिलता है। सर्वदा नकली मिलता है। एक आना तोला सस्तासे सस्ता बिक सकता हैं। अन्यथा चार आने तोला तक बिकता है। विचारिये इसमें कितनी पैदा है।

३—आकके पत्तोंसे अर्कक्षार

ग्रामोंके आस-पास आकके जंगलोंके जंगल है। उनको काटकर सुखा दीजिये। पीछे एक गड्ढेमें डालकर जला दीजिये। श्वेत भस्मको अठगुने पानीमें डालकर दो दिन रखकर स्वच्छ पानी उसके ऊपरका निकालकर रख लीजिये पश्चात् कडाहीमें या मृत्तिकापात्रमें रखकर अग्नि द्वारा जलाकर सुखाकर बोतलोंमें भर लीजिये। यह अर्कक्षार

है। यह बालक, युवा आदि सभी मनुष्योंके उदरशूल मन्दाग्नि आदि रोगोंके काममें आता है। यह भी आध आना एक आना दो आना तोला तकमें बिक सकता है।

४—अन्य उपयोगीक्षार

इसी प्रकार **पुनर्नवाका खार** बनाकर बेचिये। **जवासाका खार** भी अच्छा काम करता है। इसी प्रकार जवके दरख्तोंके भूसाको जलाकर भी बनाया जाता है **मूलियों** के पड़ जानेपर खेतवाले उखाड़ कर फेक देते हैं। उनको जलाकर भी अत्युत्तमक्षार बनता है। इस प्रकार अनेक उदाहरण काम करनेवाले और मेहनत कर पेट भरने वालोंके लिये हैं।

५—सत्यानाशीके बीजोंका तेल

सत्यानाशी, भीड़भंगा, स्वर्गक्षरी मनोंकी तादातमें आजकल मिलती है। इसको काटकर एकत्रित कर बीज निकाल लीजिये। बीजोंको अपने पास बोरे भरकर धर लीजिये। बीजोंका तेल तेलीसे निकलवा लीजिये। यह तेल जलानेके काम आता है। इसकी रोशनी सफेद बढ़िया होती है। इसका तेल खाज आदि अनेक त्वचाके रोग नष्ट करता है। इसके बीज पसारियोंके यहाँ भी बेंचे जाते हैं। बाजारोंमें बराबर बिक सकता है। कितने ही स्थानोंमें गरीब लोग इस तेलको निकालकर जलाते हैं। बेचकर पेट भरते हैं। यह सम्पति सबकी है। इसका मालिक कोई एक नहीं है।

६—करंजके बीज और नीमका तेल

इसी प्रकार करंज सेमलके बीज एकत्रित कर मीलोंमें बाजारोंको जाकर बेच सकते हैं। नीमके फल जंगलोंमें पड़े रहते हैं। उनको एकत्रित कर तेल निकालकर बेच सकते हैं। यह तेल भी बड़े कामकी वस्तु होती है।

७—रद्दी कागजोंका उपयोग

आजकल पुराने कागज मार्गोंमे बहुत पड़े हुए मिलते हैं। इन सबको एकत्रितकर बड़ी २ कपड़ेकी गाठोंकी समान गाँठ बाँधकर कागजकी मिलोंको बेच सकते हैं। इससे सैकड़ों रुपयाकी प्राप्ति हो सकती है। इसी प्रकार पुराना लोहा पुरानी सीसियाँ टूटी हुई सीसियाँ संग्रहकर बेचनेसे भी सैकड़ों रुपयेकी प्राप्ति हो सकती है।

अथवा कागजोंको गलाकर कूटकर छोटे २ बड़े नाना प्रकारके पात्र बनाकर उनपर रोगनकर बेचनेसे भी गरीबोंको अच्छा लाभ हो सकता है। अथवा इस कागजके नाना प्रकारके खिलौने भी बनाकर बेचनेसे अत्यन्त लाभ हो सकता है। किम्वा बेत या बासके पात्रोंपर कागज चढ़ाकर भी हलके मजबूत सुन्दर पात्र बन सकते हैं।

अन्य भी टीनके अनेक प्रकारके कार्य्य है। जिनसे रुपये दो रुपये रोज पैदा हो सकते हैं।

८—अन्य उपयोगी वस्तुएँ

जिन जंगलोंमें **हरड बहेडा आमला** है उसको सुखाकर मनोंकी तादादमें बेचकर पैसा पैदा कर सकते हैं।

पहाड़ोंमें **दारु हल्दी** के वृक्ष बहुत पाये जाते हैं। उनको काटकर रसोत बनाकर बेचिये हजारों रुपये पैदा कर सकते हैं। ऐसे २ कामोंसे देशकी दरिद्रता मिट सकती है।

मैं देखता हूँ विशेषतया हिन्दुओंमें प्रायः ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके लड़के पढ़ लिखकर भी बेरुजगारी बनकर घूमते हैं। उनका पेट भरना कठिन है। परन्तु दुर्भाग्यसे वह हाथसे मिहनत करना नहीं चाहते हैं। किन्तु आजकल बायस्कोपोंकी शीक्षासे चोरी करना चालाकीसे माल मारना सीखकर अपने जाति अपने स्वभावको नष्ट कर सर्वदाके लिये पतित हो जाते हैं। आजकल कलकत्तेमें पाकेटमार, जूताचोर, नवसरवाज मुसलमान तो अधिक तादादमें थे और हैं फिर भी हिन्दू अधिक मिलते हैं। इसका कारण यह है कि मोटा कपड़ा पहरना, जव गेहूँ की रोटी खाना, घरमें रहना और प्राचीन चालसे चलना पसन्द नहीं है। मोटा कपड़ा चुभता है। घरकी रोटी स्वादिष्ट नहीं लगती है। इसलिये होटलमें विशेष पैसा खरचकर खाना खाते हैं। घरकी स्त्रियाँ बेतमीज होती हैं। इसलिये वाराङ्गनाओंका सेवन करना पड़ता है व्यापार हाथसे करके खाना अच्छा इसलिये अच्छा नहीं लगता है। इसमें झंझट बहुत है। इसलिये घरका करना ही श्रेयस्कर समझा है।

बाप दादोंकी भांति समयपर स्नान संध्यादि करना तो कभी याद भी नहीं आता। किन्तु दिनके १० बजे तक सोना यही बड़ा आदमीपन है।

कलम-पैवंद*

[श्रीशंकर राव जोशी, खातेगाँव]

१. कलम-पेबंद लगानेकी आवश्यकता

किसी पौधेके तना, टहनी, पत्ता आदि किसी अवयवपर की आँख (पत्र-कलिका) मेंसे नवीन बाढ़ शुरू करनेके लिए ही कलम-पेबंदका आसरा लिया जाता है। इन अवयवोंसे जड़ें छुड़ाकर उनके द्वारा भावी पौधेके भरण-पोषणका प्रबंध करना होता है। अतएव कलम पेबंद द्वारा नया पौधा तैयार करनेकी क्रियामें सफलता प्राप्त करनेके लिए वनस्पतिके जीवन-व्यापारकी कुछ जानकारी होना, प्रत्येक मालीके लिए आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य्य भी है। 'विज्ञान'में 'वनस्पति-विज्ञान' पर एक लेखमाला प्रकाशित हो चुकी है। इसलिए तरु-जीवनपर यहाँ कुछ नहीं लिखा गया है। इस लेखमें कलम-पेबंदकी आवश्यकता पर ही लिखा जाएगा।

'कलम' यह शब्द फारसी भाषाका है। हिन्दीमें यह लेखनीके अर्थमें प्रयुक्त किया जाता है। उद्यान-विद्याका व्यावहारिक ज्ञान रखनेवाले प्रत्येक व्यक्ति इस शब्दके असली अर्थसे भले प्रकार परिचित हैं। भारतवर्षके निरक्षर देहाती माली, पौधेके किसी अवयवको (बीज छोड़कर) जड़ें उगाकर नवीन पौधा तैयार करनेकी क्रियाको 'कलम-लगाना' कहते हैं। अँगरेजी शब्द ग्राफ्ट (Graft) में सभी प्रकारके कलम-पेबंदका समावेश होता है, जिनकेद्वारा कुशल माली पौधोंकी संख्या-वृद्धि करता है। बीज बोकर पौधे तैयार करनेकी क्रियाका इसमें समावेश नहीं होता है। अतएव ग्राफ्टकी वैज्ञानिक व्याख्या होगी, बीजके अलावा अन्य साधनोंसे वनस्पतिका वंश-विस्तार करना।

दो सजातीय पौधोंके गुणोंका एकीकरण एक ही पौधेमें करके उनकी वृद्धि करनेके लिए ही पेबंद-चश्मा बिठानेका आसरा लिया जाता है। जिन दो गुण-धर्मवाली वनस्पतियोंका एकीकरण किया जाता है, उनका एक ही वर्ग और जातिका होना अनिवार्य्य है। दो भिन्न जातीय वनस्पतियों-का पेबंद बाँधनेमें भी सफलता मिली है। किन्तु इस ओर बहुत कम प्रयत्न किए गए हैं। अतएव यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता है कि किन-किन विजातीय वनस्पतियोंके पेबंद बाँधे जा सकते हैं। संभव है कि वनस्पति संसारका वर्तमान वर्गीकरण ही गलत हो और जिन भिन्न-जातीय वनस्पतियोंके पेबंद बाँधनेमें सफलता प्राप्त हुई है, वे सजातीय ही हों।

प्राणि-संसारमें पुरुष जननेंद्रियधारी और स्त्री जननें-द्रियधारी व्यक्तियोंके शरीर अलग अलग होते हैं। यह बात वनस्पति संसारमें नहीं पाई जाती हैं। इसलिए वनस्पति संसारकी वंश-वृद्धि बिलकुल जुदे तरीकेसे होती है। वनस्पतिके बीज या किसी अवयवको बोकर या दो पौधोंके अवयवोंको संयुक्त करके नए पौधे तैयार किये जाते हैं।

सर्वसाधारण नियम यह है कि सभी जीवधारियोंमें, क्या प्राणी क्या वनस्पतिमें, सन्तति उसी जातिकी होती है जिस जातिका बीज बोया जाता है। उसके गुण-धर्म और स्वभाव भी जातिके अनुरूप ही होते हैं। बबूलके बीजसे आम या इमलीका पौधा कभी पैदा नहीं होता है। मतलब यह कि जिस पौधे का बीज बोया जाता है, उसकी सन्तति भी वैसी ही होती है। तथापि कुछ पौधे ऐसे भी हैं, जिनके बीजसे पैदा होनेवाले पौधोंके गुण-धर्म और स्वभाव, जिस पौधेका बीज बोया गया है, उसके गुण धर्म और स्वभावसे कुछ या बिलकुल ही जुदे होते हैं। गुलाबाँस और पपीता इसके उत्तम उदाहरण है। लगातार चार-पाँच वर्ष-तक भिन्न-भिन्न रंगके फूलवाले गुलाबाँसको पास-पास बोते रहनेपर, यदि इनके बीज जमा करके बोये जायँगे तो फूलोंका रंग ही बदला हुआ नजर आएगा—फूलोंपर भिन्न-भिन्न रंगके छींटे दिखाई देंगे। एक ही फलके बीजोंको बोकर तैयार किए हुए पपीतेके पौधोंमें नर, मादा और

* लेखककी 'कलम-पेबंद' नामक एक अप्रकाशित पुस्तकके एक परिच्छेदके आधारपर।

उभय-लिंगी पौधे पाए जाते हैं। कलमी आमके बीजको बोकर तैयार किए हुए पौधेके फलका स्वाद, आकार आदि जुदे ही प्रकारके होते हैं। इस परसे यह साबित होता है कि बीजसे पैदा होनेवाले पौधेमें मातृ-पौधेके सभी गुण पूर्ण रूपसे नहीं उतरते हैं। अतएव किसी पौधेके गुण, धर्म और स्वभावको सन्ततिमें लानेके लिए कलम-पेबंदद्वारा नये पौधे तैयार करना ही एक मात्र उपाय है।

बीज बोकर तैयार किए गए सोनचम्पा, गुलाब, आम आदिके पौधे बहुत दिनोंमें फूलते फलते हैं। आमका पौधा करीब सात आठ सालमें फलता है। गुलाब करीब दो साल बाद फूलने लगता है और सोनचम्पाके पौधेको करीब तीन सालमें फूल आते हैं। यदि कलम-पेबंद द्वारा रोपे तैयार किए जायँ तो पौधोंके फूलने फलनेकी अवधि बहुत घट जाती है। आमके पौधेको पाँचवें वर्ष फल आजाते हैं। सोनचम्पा और गुलाब क्रमशः एक साल और चार माह बाद फूलने लगते हैं। यह एक अनुभव सिद्ध बात है कि कलम—पेबंद द्वारा तैयार किए गए पौधे बहुत जल्द फूलने फलने लगते हैं।

तगर, केला, जामफल आदि कई ऐसे पौधे हैं। जिनको भारतके कई प्रान्तोंमें बीज नहीं आते हैं। ऐसे पौधोंके वंश विस्तारका एक मात्र साधन कलम-पेबंद ही है।

बड़, पीपल, बिगोनिया, आदि कई पौधे ऐसे हैं, जिनके बीजोंसे रोपे तैयार करनेके लिये विशेष कुशलताकी आवश्यकता होती है। हर आदमी बीजोंसे इन पौधोंके रोपे तैयार नहीं कर सकता है। कलम-पेबंद द्वारा इन पौधोंके रोपे आसानीसे तैयार किए जा सकते हैं।

भारतमें जंगली बेर और देशी आमके पौधे बहुतायतसे पाए जाते हैं। यदि इन पर उत्तम जातिके चश्मे या पेबंद चढ़ा दिए जायँ, तो उत्तम और सुमधुर फल मिल सकते हैं।

कई पौधे ऐसे हैं, जो बहुत ही नाजुक होते हैं। इन नाजुक पौधोंको, मजबूत जड़वाले पौधों पर पेबंदसे चढ़ा दिया जाय, तो बहुत लाभ हो सकता है। कलम-पेबंद द्वारा तैयार की हुई सन्ततिमें नीचे लिखी हुई विशेषताएं पाई जाती हैं।

१—सन्ततिमें विशेष गुणोंका परिपोष किया जा सकता है।

२—पौधेकी जातिके गुण-धर्म और स्वभावमें,—काष्ठ, पत्ते, फूल, फल, आदि में, परिवर्तन किया जा सकता है।

३—पौधोंकी फूलने-फलनेकी शक्ति बढ़ाई जा सकती है।

४—बगीचे बारहो महीने फूल-फलसे भरे रखे जा सकते हैं।

५—एक ही पौधे पर भिन्न भिन्न प्रकारके फूल-फल लगाए जा सकते हैं।

इस धंधे और कला में सफलता प्राप्त करना, बुद्धि, श्रम, अनुभव और सतत उद्योग पर अवलम्बित है। इसके लिए तरु जीवनकी पूरी पूरी जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है। हमारी सम्मतिमें, एक सफल मालीके लिए वनस्पति-विज्ञानका समुचित ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य्य है।

२—कुछ आवश्यक बातें

जब तक टहनी पौधेपर लगी रहती है, उसमें रसाभिसरण जारी रहता है। पौधेपरसे टहनीको काटकर अलग कर लेनेके बाद भी दस-पन्द्रह मिनिट तक और कुछ पौधोंमें आधे घंटे तक रसाभिसरण जारी रहता है। इसके बाद बंद हो जाता है। यदि काटी हुई टहनी खुले स्थानपर पड़ी रहने दी जाएगी तो वाष्पी भवनकी क्रिया जारी रहनेके कारण वह शीघ्र ही सूख जाएगी। इसलिए कलम लगाने या पेबंद बाँधनेके लिए काटी हुई टहनीको, पौधेसे अलग करते ही ठंडे और छायादार स्थानमें रख देना चाहिए। वाष्पी भवनकी क्रियाको जितना रोका जा सके, रोकनेकी कोशिशकी जानी चाहिये। मतलब यह कि, टहनीको, तनेपर वह जिस हालतमें रहती है उसी हालतमें बनाए रखनेका प्रयत्न किया जाना चाहिए।

गुलाब, कनेर, आदिकी टहनीको जड़ें छूटकर स्वतंत्र पौधा बननेमें करीब डेढ़ माह लगता है। सोनचम्पा, अनन्त आदिकी टहनी करीब पाँच माह में जड़ें छोड़ती हैं। गुलाब पर बाँधा हुआ चश्मा, सन्तरेपर बांधे हुए चश्मेसे कुछ अधिक समयमें लगता है। साधारणतः मृदुकाष्ठवाली वनस्पतिके कलमें, पेबन्द आदि जल्दी लगते और कठिन काष्ठवाली वनस्पतिके देरीसे लगते हैं।

बरसातके मौसममें करीब सवा महीनेतक कलम लगाने लायक ऋतु रहती है। इस समय आकाश बादलोंसे ढका रहता है। अतएव हवा कुछ स्थिर रहती है। वातावरणमें जल-वाष्प अत्यधिक परिमाणमें वर्तमान रहता है जिससे वाष्पीभवनकी क्रिया भी रुकीसी रहती है। इस अनुकूल समयमें कलमें लगानेसे, उनकी वृद्धिमें किसी प्रकारकी रुकावट नहीं पड़ती है। जिन वनस्पतियोंकी कलमें नहीं लगती हैं, उनके पौधे, दाब-कलम, गुट्टी आदि अन्य रीतियोंसे, सरलता पूर्वक तैयार किए जा सकते हैं।

शीतकाल और गरमीके मौसममें छायादार स्थान पर ही कलमें लगाई जानी चाहिएँ। किन्तु बरसातमें तो खुली जगहपर ही कलमें लगानी चाहिएँ। कारण कि, बरसातमें पौधोंको सूर्य प्रकाश की अत्यन्त आवश्यकता रहती है। बेहतर तरीका तो यह है कि कलमें खुली जगह पर ही लगाई जानी चाहिएँ और वक्त जरूरत उनपर छाया कर दी जानी चाहिए।

सुकुमार पौधोंकी रक्षाके लिए, हवाका स्थिर रहना जरूरी है। पाश्चात्य देशोंमें, काँचके घर बनाकर, हवाको स्थिर रखनेका प्रयत्न किया जाता है। भारत-जैसे गरीब देशके लिए काँचके घर बनाना कठिन है। कारण कि इसके लिए बहुत अधिक रुपया खर्च करना पड़ता है। सघन माली और बड़ी बड़ी नरसरीके मालिक ही अपनी आवश्यकतानुसार काँचके घर बनवा सकते हैं।

नरसरी जमीनकी सतह पर न बनाकर पाँच फूट गहरी बनाई जाय, तो एक हद तक काँचके घरकी गरज़ पूरी हो सकती है। और काँचके घरसे होनेवाले सभी लाभ कम खर्चमें प्राप्त किये जा सकते हैं। नरसरी इस ढंगसे बनाना चाहिए कि बरसातका पानी उसमें भरा न रहे। सरलता पूर्वक निकाला जा सके। नरसरीका गढ़ा आठ फूटसे अधिक चौड़ा न बनवाया जाना चाहिए। लम्बाई जरूरतके मुताबिक रखी जा सकती है। नरसरी दक्षिणोत्तर बनाई जाय। नरसरीके चारों तरफ एक फुट चौड़ा रास्ता रखा जाना चाहिए। रास्ता इतना गहरा होना चाहिए कि बरसातमें, पानी उसमेंसे होकर सरलता पूर्वक बह जाय।

काँचकी पेटी या घर बनाकर उनमें कलमें लगाना सर्वसाधारणकी शक्तिसे बाहर है। और इसके लिए काफी अनुभव और कुशलताकी की जरूरत होती है। अतएव इस विषयको हमने अनावश्यक समझ कर छोड़दिया है।

परिपक्व टहनीके टुकड़े काटकर जमीनमें लगाए जाते हैं। इन कलमोंकी आँखमेंसे पहले कोमल पत्ते निकलते हैं और तब जड़ें फूटती हैं। इस प्रकार कलमकी शक्ति दो कामोंमें व्यय होती है। यही कारण है कि कलम अधिक समयमें तैयार होती है।

जिन पौधोंकी कलमें जल्दी जड़ें छोड़ती हैं, उन पौधोंकी कोमल और पत्तेवाली टहनी ही लगाई जाती है। जिन पौधोंकी टहनी देरीसे जड़ें छोड़ती हैं, उनकी परिपक्व टहनी ही बोई जाती है और कलमपर पत्ते भी नहीं रखे जाते हैं।

गमले, बकस आदि भरने या नरसरीके लिए पसंदकी जानेवाली मट्टीमें खादका अंश न हो तो अच्छा है। खेतकी मट्टीमें जितने भी खाद्य-पदार्थ मौजूद होंगे, वे ही पौधेकी प्रारंभिक बाढ़के लिए काफी हैं। चिकनी मट्टी कदापि पसंद न की जानी चाहिए। खेतकी मट्टीमें महीन रेती और कोयलेका चूरा मिलाकर काममें लाना चाहिए।

कलमें लगाकर, धूप, ठंड और गरमीसे उनकी रक्षा करना चाहिए, कलमोंके तखते या क्यारीपर, खजूर, ताड़, आदिके पत्तों या घासकी टट्टियोंसे छाया करदेना चाहिए। नरसरी गढ़ेमें बनाई गई हो, तो हवाको शीतल बनाए रखनेके लिए दीवारोंपर, दोपहरमें, दो तीन बार खूब पानी छिड़क देना चाहिए। नरसरीकी मट्टी और टट्टियोंपर पानी छिड़कते रहनेसे नरसरीकी हवा ठंढी बनी रहेगी।

सवेरे और शामकी कोमल धूप और प्रकाश कलमोंके लिये हितकर है। कलम लगानेके कुछ दिनबाद आँखमेंसे कोमल पत्ते निकल आते हैं। इन पत्तोंके गहरे हरे हो जाने और अंकुरका बढ़ना शुरू होनेपर यह निश्चित है कि कलमने जड़ें छोड़दी हैं। जड़ें छोड़नेके कुछ दिनबाद सवेरे और शामको, जब धूप तेज़ न हो, छाया हटाली जानी चाहिए। ऐसा करते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें पौधा धूप सहनेकी शक्ति प्राप्त करलेता है।

वनस्पति-संवर्धन-शास्त्रके विशेषज्ञों और उद्यान-विद्या-विशारदोंका कहना है कि कलमें, गमलों और बकसोंमें ही लगाई जानी चाहिए। ऐसा करनेसे कलमोंको, आवश्य-

-कतानुसार, प्रकाश, धूप, और शीतलता आदि पहुँचानेका प्रबंध सरलता पूर्वक, किया जा सकता है।

गमले या बकसकी तलीमें छेद अवश्य होना चाहिए। इस छेदको मट्टीके बरतन, खपरैल आदिके टुकड़े ढककर उसपर करीब चार इंच मोटी तह घासकी डाल देना चाहिए और तब मट्टी भरना चाहिए। पानी भरनेके लिए गमलेको एक इंच खाली रखना चाहिए। गमलोंको मट्टीमें गाड़ देनेसे ठंढके कारण उनमेंकी मट्टी ठंढी नहीं होगी, और न गरमीमें गरमही हो पाएगी। बरसातमें गमले जमीनमें हरगिज नहीं गाड़े जाने चाहिए। नहीं तो बरसातका पानी भर जानेसे पौधे मर जायंगे।

कई कारणोंसे गमलेकी तलीमें का छेद बंद हो जाता है। जिससे उनमें जरूरतसे ज्यादा पानी भरा रहता है, फल यह होता है कि टहनियाँ सड़ जाती हैं या जड़ें मर जाती हैं। बरसातके दिनोंमें इस छेदमें से होकर कैंचुए गमलेमें घुस जाते हैं। ये कीड़े भी पौधोंको हानि पहुँचाते हैं। इसलिए बरसातमें गमलोंको ईंटें बिछाकर उन पर रखना चाहिए।

कुछ लोग एक बड़े गमलेमें छोटा गमला रखकर बीचकी खाली जगहमें मट्टी भर देते और इस मट्टीमें कलमें लगाते हैं। कहा जाता है कि इस प्रकार बोई हुई कलमें बहुत जल्द जड़ें छोड़ती हैं। छोटे गमलेमें पानी भर देनेसे बड़े गमलेकी मट्टी तर बनी रहती है।

पेबंद बाँधना (Grafting) एक प्रकारकी चीर-फाड़ (Operation) है। पौधेके किसी हिस्सेको, मूल-तरुसे जुदा करके उसी जातिके दूसरे पौधेके अवयवपर चढ़ानेकी क्रियाको ही पेबंद चढ़ाना कहते हैं। दो भिन्न पौधोंके दो भागोंके जुड़ जानेसे बना हुआ पौधा शीघ्र ही एक स्वतंत्र पौधा बन जाता है।

जिस पौधेपर दूसरे किसी सजातीय पौधेका कोई भाग चढ़ाया जाता है, उसे पोषक या मादा (Stock) कहते हैं। मादा पौधा बीज बोकर या कलम गाड़कर (Cutting) या कलम दबाकर (Layering) तैयार किया जाता है। ज़मीनमें या गमलेमें बोनेके एक वर्ष बाद तक मादा पौधेकी खूब हिफाज़त की जानी चाहिए। दूसरे वर्ष इस पौधेकी एक नीरोग और पुष्ट टहनीको कायम रख-

कर शेष सब टहनियाँ काट डाली जानी चाहिए। कायम रखी हुई टहनीको सीधी ऊपरको बढ़ाना जरूरी है। कई पौधे ऐसे भी हैं, जिन पर, तनेको काटे बगैर, अच्छी टहनी निकलती ही नहीं है। ऐसे पौधोंका तना जमीनसे अधिकसे अधिक नौ इंचकी ऊंचाई परसे काट डाला जाना चाहिए। नई निकली हुई टहनीको सीधी ऊपरको बढ़ानेकी कोशिश की जानी चाहिए। सीधी टहनीपर चश्मा बाँधने या पेबंद चढ़ानेमें सरलता होती है। मादा पौधेका सिरा पैबंद बाँधनेके बाद काटा जाना चाहिए या पहले, यह बात पौधेकी जातिपर निर्भर करती है। क्राउन-ग्राफ्टिंग (Crown-grafting) या खूँटी चढ़ानेमें मादा पौधेके तनेका सिरा, खूँटी चढ़ानेसे कमसे कम तीन सप्ताह पहले काटा जाना चाहिए। पौधेकी बगलपर (Side-grafting) खूँटी चढ़ाना हो तो सिरा काटनेकी उतनी जरूरत नहीं है। खूँटी चढ़ानेके बाद भी काटा जा सकता है।

मादा पौधा गमले या बकसमें ही लगाया जाय, तो अच्छा है। पेबंद चढ़ानेका काम खूब सावधानीसे किया जाना चाहिए। जो भाग काटा या छीला जाय, उसे, मिलाकर बाँधनेसे पहले, साफ कपड़ेसे अच्छी तरहसे पोंछ डालना चाहिए। जिन हिस्सोंपर पेबंद बाँधा जाता, या आँख बिठाई जाती है, उनके आस पास काँटे, टहनियाँ, अंकुर आदि बिलकुल ही नहीं रहने देना चाहिए। जहाँ तक मुमकिन हो, पेबंद बाँधने या चश्मा चढ़ानेके बाद, मादा पौधेमें प्रति आठवें दिन खादका घोल सींचा जाना चाहिए। जिस पौधेकी बहुत ज्यादा जड़ें फूटती हों, उसे मादाके लिए हरगिज़ पसंद नहीं करना चाहिए। कारण कि पेबंद—चश्मा चढ़ानेके बाद ज्यादा जड़ें फूटनेसे पौधा कमजोर हो जाता है।

जो टहनी या चश्मा दूसरे पौधेपर चढ़ाया जाता है, उसे पोष्य या नर (Scion) कहते हैं और जिस पौधेकी टहनी या चश्मा दूसरे पौधेपर चढ़ाया जानेको पसंद किया जाता है, उसे 'मातृ-तरु' या मूल-तरु (Mother-plant) नाम दिया गया है। नर टहनी भी पुष्ट नीरोग और उत्तम गुणयुक्त होनी चाहिए। स्मरण रखना चाहिए कि नर-टहनीमें जितने भी गुण या अवगुण अल्पांशमें भी होते हैं, वे पेबंद चश्मा चढ़ानेपर अधिक विकसित होते हैं।

अतएव नर टहनीका रोग-रहित, अवगुण-हीन, और पुष्ट होना अत्यन्त आवश्यक है। उसी पौधेकी टहनी पसंद की जानी चाहिए, जिसके सम्बंधमें पूर्ण जानकारी हो। जिस पौधेके सम्बंधमें अधूरी जानकारी हो, उसकी टहनी हरगिज़ पसंद न की जानी चाहिए। पेवंद-चश्मा चढ़ाकर पौधे बेंचनेका धंधा करनेवालोंको तो इस बातपर अवश्य ही खूब ध्यान देना चाहिए। इन लोगोंकी बेपरवाही और स्वार्थांधताके कारण देशमें निकृष्ट पौधोंकी अत्यधिक वृद्धि हो जायगी, जिससे देशको करोड़ों रुपयोंकी हानि उठानी पड़ेगी।

जिन पौधोंकी टहनियोंसे कलमें, चश्मे-पेवंद आदि लगाए जाते हैं उनकी भी खूब हिफ़ाज़त की जानी चाहिए। उनको कमजोर और रोगी कदापि न होने देना चाहिए। समय समयपर नीरोग और पुष्ट टहनियोंको रखकर, रोगी और नीरोग टहनियाँ काट डाली जानी चाहिए। दो वर्ष तककी ऊपरकी टहनियाँ ही काममें लाई जानी चाहिए। कारण कि, ये जल्दी जुड़ जाती हैं। दो वर्षसे अधिक उम्रकी टहनियाँ जल्दी नहीं जुड़तीं।

मादा पौधे और मूल-तरुके जिस भागका संयोग किया जानेको हो, उनके बढ़ने और नए पत्ते फूटनेका कार्य साथ साथ चलता हो तो अच्छा है। यदि नरको मादासे बादमें पत्ते आवें और वह मादासे अधिक पुष्ट और जोरदार हों, तो और भी अच्छा है। साधारण नियम तो यह है कि नर और मादा टहनियोंकी मुटाई एक-सी हो, तो सभी बातोंमें समानता आ जाती है। अतएव नर और मादा टहनियोंकी मुटाई नापकर ही पेवंद बाँधा जाना चाहिए।

मोटे और पुराने तनेपर दो-तीन तक खूँटियाँ चढ़ाई जा सकती हैं। इतना अवश्य ही स्मरण रखना चाहिए कि नर और मादाकी अन्तर्छाल करीब करीब मिला दी जाय। परिश्रम सफल होना, पेवंद-चश्मा बाँधने वालेके अनुभव, उसके हाथोंकी सफाई और कार्य-कुशलता तथा आब-हवापर अवलम्बित है।

जिस मौसममें रसाभिसरण पूरी तौरसे जारी हो, उसी मौसममें चश्मा-पेवंद बाँधा जाना चाहिए। रसाभिसरण खूब जोरोंसे चालू हो, तब ही यह क्रिया की जानी चाहिए। मादा पौधे और मूल-तरुके रसाभिसरणकी गति जिस हद तक समान होगी, चश्मा-पेवंद उसी हद तक सफल होगा।

पेवंद-चश्मा बाँधनेका काम छायामें किया जाना चाहिए और जब तक नर और मादा भली भाँतिसे जुड़ न जायँ, उनको छायामें ही रखना चाहिए। यदि ऐसा करना संभव न हो तो उन पर छाया कर दी जानी चाहिए। टहनियोंके बाँधे हुए भागों और चश्मा बिठाए हुए भागको धूप, हवा और बरसातसे बचाना चाहिए। पौधेकी छालके अंदर, छाल और काष्ठके बीचमें, अन्तरछाल रहती है जिसमेंसे होकर रस ऊपरको चढ़ता है। इसलिए नर और मादा टहनियोंको इस तरहसे छीलना चाहिए कि अन्तरछालको किसी तरहकी क्षति न पहुँचे और दोनों टहनियोंकी अन्तर्छाल सरलतापूर्वक मिलाई जा सके।

चश्मा-पेवंद बाँधनेके बाद सन या केलेके रेशेसे उन्हें कसकर बाँध देना चाहिए। बंद इतने मज़बूत हों कि जोड़े हुए भागके फूलने पर वे टूट न जायँ और उनकी वजहसे जुड़े हुए भागकी बाढ़में भी रुकावट न पहुँचे। ज्यों ज्यों जुड़ा हुआ भाग मोटा होता जाता है। अधिकाधिक मोटे बंदकी दरकार होती है। यदि बंद छालमें गड़ जाय, तो उसे खोल कर फिरसे बाँध देना चाहिए। दुबारा बाँधते वक्त बंदको गड़े हुए स्थानसे हटाकर लगाया जाना चाहिए। रस्सीके गड़ जानेसे छालमें निशान हो जाते हैं। बरसातमें फंजस रोगके कीटाणु इनमें अपना अड्डा जमा लेते हैं। अतएव इस स्थानको फंगस रोगसे बचाये रखनेकी तरफ ध्यान दिया जाना चाहिए।

पौधेको जिंदा रखनेके लिए पानीकी अत्यन्त आवश्यकता है। पानी पर ही वनस्पति-संसारका जीवन निर्भर करता है। बिना पानीके वनस्पति एक क्षणके लिए भी जिन्दा नहीं रह सकती है। बगीचोंमें बोये जानेवाले अधिकाँश पौधोंका जीवन तो सिंचाई पर ही अवलम्बित है। अतएव सिंचाईकी ओर काफी ध्यान देना प्रत्येक मालीके लिए अनिवार्य्य है। उसके परिश्रम और कौशलकी सफलताका सब दारोमदार सिंचाई पर ही है।

वनस्पतिको पानीसे ओषजन (आक्सीजन) और उज्जन (हायड्रोजन) प्राप्त होते हैं। जमीनमें स्थित भोज्य-पदार्थ भी पानी द्वाराही ग्रहण किए जाते हैं।

वर्षाका जल, जमीनसे कई हजार फुट ऊपरसे गिरता है। अपने इस कई हजार फुटके प्रवासमें वर्षाका जल वातावरणमेंसे ओषजन, उज्जन, और कार्बन-द्वि-ओषिद (कारबन डाय-अक्साइड) गैसें ग्रहण कर लेता है। जलके साथ ये पदार्थ भी पौधोंकी जड़ों द्वारा सोख लिये जाते हैं।

खारा, कड़ुवा और धातुकी खानोंसे बह कर आनेवाला पानी वनस्पति-संसारके लिए हानिकारक है। विशेषतः लोहेके अंशवालापानी तो पौधेके लिए एकदम घातक है। कुओंका पानी, खासकर उन कुओंका पानी, जिसे भारी पानी कहते हैं, वनस्पति-संसारके लिए हितकर है। कारण कि उसमें सलफेट-ऑफ लाइम, मेगनेशिया आदि वनस्पतिके भोज्य-पदार्थ रहते हैं। शहरकी गटरोंका पानी और रंगके कारखानेका पानी भी वनस्पतिके लिए हितकर है।

नहरोंका पानी मीलों प्रवास करनेके बाद खेतोंमें सींचा जाता है। अपने इस प्रवासमें वह वातावरणमेंसे ओषजन, उज्जन और कार्बन-द्वि-ओषिद ग्रहण कर लेता है। यह पानी भी फसलके लिए फ़ायदेमंद है। किन्तु यह पानी ठंडा होता है। अतएव जिन पौधोंको नहरका पानी सींचा जाता है, उनको अधिक खाद दी जानी चाहिए। कुएंका पानी गरम होता है। अतएव नहरके पानीकी अपेक्षा वह ज्यादा पसंद किया जाता है।

थोड़ा पानी देनेसे जमीनकी ऊपर ऊपरकी मट्टी ही गीली होती है, जिससे गहरी बैठी हुई जड़ोंको पानी नहीं मिलता, फलतः पौधा सूख जाता है, अतएव पौधोंको काफी पानी सींचते रहना चाहिए। दोपहरको सींचा हुआ पानी सूरजकी गरमीसे भाप बनकर उड़ जाता है और पौधोंको उससे कोई लाभ नहीं पहुँचता है।

शिशु-पौधोंको दिनमें दो बार पानी सींचना अच्छा है। बड़े पौधोंको ऋतुके अनुसार प्रति तीसरे चौथे दिन सींचते रहना चाहिए। पौधेकी जड़ों परकी मट्टीको गीली बनाए रखना अत्यन्त आवश्यक है।

अदरकसे सौंठ बनाना

[श्रीमती सुशीला देवी गुप्त]

बाज़ार में जो सब्ज़ अदरक बिकती है, वह एक सस्ती चीज़ है। लेकिन जब इसीके द्वारा सौंठ बनाई जाती है तब महँगी पड़ती है। सस्ती सौंठ बनानेका तरीक़ा अकसर हमलोग नहीं जानते। इसलिये अदरकसे सौंठ बनानेका तरीक़ा नीचे लिखती हूँ।

सब्ज़ अदरकको महफूज़ रखनेका तरीका

अदरक ठंडे स्थानमें महफूज रह सकती है इसलिये पहिले वह स्थान तयार कर लेना चाहिये। अतः इस कामके उपयुक्त जगह पर एक दस बारह इञ्च गहरा गढ़ा खोद लेना चाहिये और उसकी मिट्टीमें पानी मिलाकर उसे वापस फिर उसी जगह भर देनी चाहिये। आठ दस दिनमें जब उसका पानी सूख जायेगा तब उसका फर्श खुश्क मालूम देने लगेगा। तब उसपर अदरकका ढेर लगा कर उसपर अदरकके सूखे पत्ते बिछा देने चाहिये। इन पत्तों पर कभी कभी पानी छिड़क देना चाहिये और हफ्तेमें एक बार अदरकको सम्हाल भी लेना चाहिये और उसमें जो गले सड़े टुकड़े हों उन्हें निकाल लेना चाहिये।

सौंठ तैयार करनेका तरीक़ा

सब्ज़ अदरकको पहिले पानीमें भिगो कर उसे हाथसे मलकर उसकी सारी मिट्टी दूर कर देनी चाहिये, इससे अदरक कुछ नरम भी हो जायगी और फिर इसे छीलकर धो लेना चाहिये और फिर उसे तीन चार दिन तक धूपमें सूखनेके लिये रख देना चाहिये। इस प्रकार अदरकका रंग सफेद हो जाता है और वह खुश्क भी हो जाती है फिर उसे हाथसे रगड़ना चाहिये। इस कामको ज़रा संभालके करना चाहिये जिससे अदरकके किनारे वग़ैरह न टूटें। रगड़नेके बाद

अदरकको फिर धूपमें रक्खो और फिर हाथसे रगड़ कर दो तीन घंटेके लिये पानीमें भिगो दो और फिर पानीसे निकाल कर खुश्क कर लो।

जब अच्छी तरह सूख जाय तब उसे खुरदरे कपड़ेसे रगड़ो इससे बाहरका छिलका जो पहिले रह जाता है वह साफ हो जावे।

घरेलू दवाइयाँ

[श्रीमती कुमारी शकुन्तला गुप्त, बी० ए०, हिन्दी प्रभाकर]

भूख बढ़ानेके लिये

१—भूख बढ़ानेके लिये बड़ी हरड़का छिलका, पीपल, और काला नमक तीनोंको बराबर लेकर बारीक पीस डाले। प्रति दिन ३ माशे लेकर गर्म पानीके साथ प्रातःकाल किसी समय खावे। बदहज़मी दूर होगी और भूख खूब बढ़ेगी।

२—एक छोटी गाँठ अदरककी सेंधा नमकके साथ भोजन खानेसे पहिले खानेसे भूख खूब लगती है।

सिरकी पीड़ा

१—बायबिडंग और काले तिल दोनोंको बराबर लेकर खूब बारीक पीसकर माथेपर लेप करनेसे पीड़ा दूर होगी।

२—आधे सिरमें पीड़ा हो तो गायके घीमें सेंधा नमक मिलाकर नसवार लेवे, पीड़ा अवश्य दूर होगी।

बच्चोंकी आँखें दुखनेपर

१—दूधकी मलाई तीन दिन तक रातको आँखोंपर बाँधनेसे दुखना बन्द होकर ललाई जाती रहती है।

२—बकरीके दूधका फाया रखनेसे भी नेत्र दुखने दूर होते हैं।

३—अनारके पत्तोंको पीसकर, उसकी टिकिया बनाकर पानीके घड़ोंपर लगादे जिससे वे ठंडी हो जावें और फिर आँखोंपर बाँधे। शीघ्र ही आराम होता है।

४—घीकार (घृत कुमारी अथवा ग्वारपाठा) का भीतरका गूदा आँखोंपर बाँधे या घीकारके रसकी दो तीन बूँद आँखके भीतर डाले, शीघ्र ही आराम होगा। यदि दाँत निकलनेसे आँखें दुखने लगें तो कोई औषधि न लगावे क्योंकि जब तक दाँत नहीं निकल आते कोई औषधि ग नहीं करती।

५—कानमें कड़ुवा तेल (सरसोंका तेल) डालने तथा तलुए पर मालिश करनेसे आँखोंको आराम होता है।

६—बड़े आदमियोंकी आँख दुखनेपर हरका छिलका, फिटकरी, अफीम, गोलमिर्च और हल्दी जलमें घिसकर आँखोंपर लेप करे।

आँखकी ललाईमें

१—समुद्रफेन और मिश्री बराबर लेकर खूब बारीक पीसकर अंजनकी भांति लगावे।

२—बबूलका फूल और लाल चन्दन पानीमें पीस कर अंजनकी भांति लगावे।

आँखकी फूलीमें

१—यदि आँखमें फूली पड़ गई हो तो नागरमोथा स्त्रीके दूधमें घिसकर अंजन करे। बहेड़ीकी मींगको शहदमें घिसकर अंजन करे, फूली दूर होगी।

२—कपूरको शहदमें घिसकर अंजन करे।

३—किसीकी आँखोंमें परवार हो तो बबूलके फूलका रस घोड़ीके मूत्रमें मिलाकर अंजन करे।

सूजन, चोट और घाव आदि

१—हर प्रकारके सूजनमें हल्दीका लेप गोमूत्रमें घिसकर करना चाहिये।

२—चोटके ऊपर हल्दीको घीमें गर्म करके रुईपर रख कर बाँधे।

३—प्याज और हल्दीको बारीक पीसकर घीमें भूनकर चोटपर लगावे।

४—खारिस में या झांईमें हल्दीको बकरीके दूधमें पीसकर मले। हल्दीका मलना चर्म रोगोंको दूर करता है।

५—**पुराने जखमों** या कीड़े वाले घावोंमें हल्दीका सूखा चूर्ण लगावे।

६—**बवासीर**—हल्दीको आकके दूधमें रगड़ कर बवासीरके मस्सोंपर लगावे। एक सप्ताहमें आराम होगा।

७—**मच्छर और खटमल** को दूर करनेके लिये आकके पत्तोंको सुखा डाले फिर उसकी धूनी मकानमें देवे। चूहे तक भी भाग जायेंगे और मच्छर भी न रहेंगे। चारपाइयोंके जोड़ोंमें धूनी देनेसे खटमल भाग जाते हैं।

ज्वरके लिये

सोंठ ३ माशा, नीमकी गिलोय ६ माशा कूटकर पाव भर पानीमें डालकर मट्टीकी हँड़ियामें चूल्हेपर चढ़ावे जब चौथाई रह जावे तब ठंडा कर प्रति दिन प्रातःकाल पीवे शीघ्र ही ज्वर दूर होगा। हारसिंगारके पत्तोंका रस ६ माशा, शहदमें मिलाकर पीते रहनेसे भी ज्वर दूर होता है। बबूलकी पत्ती सूँघनेसे चौथे दिनका ज्वर दूर होता है।

खाँसीके लिये

१—केलेके सूखे पत्तोंको जलाकर उसकी राखमें यदि गर्मीकी मौसम हो तो थोड़ा नमक मिलाकर दिनमें ४ बार चाटे, और यदि सर्दी हो तो शहद मिलाकर। इससे कुत्ता-खाँसी भी दूर होगी।

२—पाव भर आटेमें छटांक नमक डाल कर उसे खूब गूँधले फिर उसे चूल्हेमें जला ले, जब खूब जल जाय तो उसे खूब बारीक पीस कर चूर्ण बनाले। एक बारमें ३ मासा चाटे इस प्रकार दिनमें ३-४ बार करे खाँसी शीघ्र ही दूर होगी।

अनुभूत योग

[संग्रहकर्त्ता—स्वामी श्री हरिशरणानंदजी वैद्य]

अखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलनका २५ वाँ अधिवेशन अहमदाबादमें हुआ। वहाँ पर कुछ योग्य वैद्योंने अपने २ अनुभूत योग पढ़े। यह योग लाभदायी हैं। वैद्यगण और साधारण जनता भी इनसे लाभ उठा सकते हैं इसलिये यहाँ प्रकाशित किये जाते हैं।

श्वासकास

वैद्यभूषण भिषक्केसरी श्रीगोवर्द्धन शर्मा छैंगानी, सभापति सम्मेलन—आपने कहा कि यह योग मैं श्वास या दमाके रोगियोंपर सात वर्षसे बर्त्त रहा हूँ। अनेक श्वासके व खांसीके रोगी बिलकुल चंगे हो चुके हैं।

योग—नया बहेड़ा फलका छिलका २० तोला नौसादर देस अग्निपर भूना हुआ १ तोला; सोना गेरू ६ माशा।

सब चीजें अलहदा २ पीसकर मिला लो। मात्रा-३ माशे शहद १ तोलामें मिलाकर सुबह शाम चाटा करें। इसका सेवन एक दो मास तक करना चाहिये।

अर्द्धाङ्ग

रसायनाचार्य कविराज प्रतापसिंह भिषक्मणि मन्त्री वैद्य सम्मेलन बनारस—आप यह योग दो वर्षसे हिन्दू यूनीवर्सिटीके दातव्य औषधालयमें बराबर बर्त्त रहे हैं। आपका कहना है कि अर्द्धांग या लकवा पर यह योग अच्छा लाभ करता है।

योग—पीला संखिया २ तोला; सिंगरफ शुद्ध २ तोला; गन्धक शुद्ध २ तो०; पारा शुद्ध २ तो०; गोदन्ती हरताल भस्म २ तो०; नीला थोथा शुद्ध २ तो०; मैनसिल शुद्ध २ तो०; खर्प्परभस्म २ तोला।

सब चीजोंको एकत्र करके करेलेके पत्तोंके रसमें ३ दिन घोटकर सुखाले और सबको एक प्यालेमें बिछाकर दूसरे प्यालेसे उसका मुँह बन्दकर सम्पुट करके बालुका यन्त्रमें मन्द २ अग्निपर चार प्रहर पकावे इसके जौहरको जो ऊपर उड़कर लगेगा उसको निकाल कर एक खरलमें डालकर करेलेके रसकी एक भावना देकर सुखा ले।

मात्रा १ चावलसे ४ चावल तक मक्खन मलाई दूधसे सेवन करावें। खटाईका सख्त परहेज है।

टूटी हुई हड्डी जोड़नेवाली वनस्पति

राज्यवैद्य पं० किशोरी दत्तजी शास्त्री सम्पादक वैद्य सम्मेलन पत्रिका—आपने बतलाया कि यह योग हमको नट जातिके एक वयोवृद्ध पुरुषसे मिला है। नट अपने कर्तब दिखाते हुए कई बार चूक जाते हैं और गिर पड़ते हैं उससे उनके हाथ पैरकी हड्डियाँ पसलियाँ टूट जाती हैं। वह इस योगकी कृपासे जल्दी ही अच्छे हो जाते हैं। टूटी हुई हड्डी जुड़ जाया करती हैं, दर्द तो बहुत जल्दी जाता रहता है।

योग—विजयसार वृक्षकी लकड़ीका चूर्ण बनालें। इसकी मात्रा ३ माशेसे ६ माशेतक है। इस चूर्णका सेवन दूध अथवा जलसे नित्य प्रति कराते रहने पर कैसी ही हड्डी टूटकर न जुड़नेवाली हो जुड़ जाती हैं।

प्रसूता पर योग

प्रायः स्त्रियां जब प्रसूता होती हैं तो कइयोंको शुद्ध स्थान और शुद्ध वातावरणमें न रखनेके कारण या गन्दी दायाके गन्दे हाथोंकी छूतसे सूतककी बीमारी लग जाती है जिससे प्रसूतिका स्त्रियोंको भयंकर ज्वर हो जाता है। कईयोंको प्रलाप मूर्छा आदि उपद्रव उठ खड़े होते हैं। ऐसी दशामें रुग्णाओंका जीवन बचना कठिन हो जाता है। ऐसी दशा जब रोगीकी हो तो पं० जी कहते हैं कि यह योग चमत्कृत लाभ करता है।

योग—कायफलका छिलका बाजारमें मिल जाता है, इसका चूर्ण बना लें। इस चूर्णकी मात्रा ३—४ माशेकी है। भयंकर ज्वरमें इसकी एक मात्रा खांडके शर्बतसे रोगीको दे दें। एक ही मात्रा जादूका काम करती है। इस दवाके खानेपर तृषा प्रलाप आदि सब हट जाते हैं। ज्वर शान्त होने लगता है। इसकी दो तीन मात्रासे अधिक नहीं देना चाहिये।

नोट—इस वनस्पतिको चम्पारनमें एक दाया अनेक प्रसूता ज्वरके रोगियोंको देती थी। उसके आरोग्य किये मैंने स्वयम् कई रोगी देखे थे, इस औषधकी कृपासे उस प्रान्तमें दायाकी धूम मची हुई थी। पर मुझे कभी भी ऐसा रोगी नहीं मिला जिसे इस योगको देकर इसका अनुभव लेता।

सेफ्टीरेज़रकी ब्लेडोंके निर्माणकी योजना

[लाला श्रीरामजी अग्रवालके संग्रहसे पंडित ओंकारनाथजी शर्माद्वारा अनूदित]

प्रस्तावना—सेफ्टीरेजरके ब्लेड नित्यके उपयोगकी वस्तु है, शहरोंमें इसकी बहुत खपत है। जापान और जरमनीमें तो इनका निर्माण एक घरेलू उद्योग समझा जाता है। इनके बनानेके यंत्रोंका चलाना बहुत सरल है और उनकी कीमत भी इतनी थोड़ी है कि जिसके कारण एक साधारण हैसियतका आदमी भी ब्लेडोंके निर्माणका कारखाना खोलनेकी हिम्मत कर सकता है। अमृतसरमें इस प्रकारकी एक छोटी सी फैक्टरी खुल भी गई है लेकिन फिर भी हमारे देशमें ऐसी अनेक फैक्टरीयोंके और खुलनेकी गुँजाइश है।

निर्माणकी संक्षिप्त विधि—जो लोग घरेलू उद्योगके रूपमें इस कामको करते हैं वे ईस्पातकी चद्दरकी बनी बनायी लम्बी पत्ती ईस्पातके बड़े कारखानोंसे मँगवा लेते हैं। इस पत्तीके फीतेपर पहिले ब्लेडोंके नापके छेद सब जगह पंच मशीनद्वारा बना दिये जाते हैं और फिर उन्हें जुदा करनेके निमित्त खाँचे भी काट दिये जाते हैं जिनपर आगे चलकर पत्तीके फीतेको तोड़ तोड़कर ब्लेड जुदा जुदा कर दिये जावें। यह काम हो जानेके बाद उस पत्तीको बेलन मशीनमेंसे निकाला जाता है जिससे उसकी सलें निकल जावें। इसके पश्चात् वह पत्ती आबदारी लगानेकी भट्टीमेंसे निकाली जाती है और ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ती जाती है उसमें आबदारी लगती जाती है और आगे चलकर उस पत्तीमेंसे सब ब्लेडोंको तोड़कर जैसा ऊपर कहा है जुदा कर दिया जाता है।

इन ब्लेडोंसे तयार ब्लेड बनानेके लिये पहिले तो उन ब्लेडों पर मोहर लगनेकी मशीनसे उनपर उन्हें बनानेवालेका

नाम अथवा ट्रेड मार्क छाप दिया जाता है। फिर उन ब्लेडों पर धार लगाई जाती है। धार लगानेकी मशीन पर ब्लेडोंको चार चार दफे लौट पोट कर धार लगाई जाती है। इसके बाद वे ब्लेड अपने आपही दूसरी मशीनमें चले जाते हैं जहां उनपर पालिश हो जाती है। इतना काम हो चुकनेके बाद उन ब्लेडोंको स्ट्रॉपिंग मशीन पर लेजाया जाता है जिसमें उनकी धारको चमड़ेकी पट्टीपर रगड़कर सही कर लिया जाता है क्योंकि धार लगते समय उनपर बावरी पड़ जाती है। इसके बाद ब्लेडोंको फिर माँजा जाता है और फिर उन्हें धोकर, सुखाकर और उनपर ग्रीज़ लगाकर वेचनेके लिये पैक कर दिया जाता है।

आवश्यक यंत्र आदिका विवरणः—प्रतिदिन ५००० ब्लेड तयार करनेके लिये निम्नलिखित मशीनों और औजारोंकी आवश्यकता पड़ेगी।

१—१ दोहरा दाबवाला स्पिंडल प्रेस-पत्तीमें ब्लेडोंके छेद काटनेके लिये	...	३६४ रु०
२—१ पत्तीको चलानेकी मशीन तीन गाइडों सहित ...	...	६५२ रु०
३—१ ब्लेडोंको सख्त करने और आवदारी लगानेकी भट्टी जिसमें दोनों सख्त करनेके कोठे हों और २ ही ठंडा करनेके लोहेके प्लेट हों और एक का पंखा हो ...	...	८६८ रु०
४—१ ब्लेडोंको मलनेका ढोल	...	२२१ रु०
५—१ "रनर थ्रू", ब्लेडोंको जुदा करते समय जो बावरी पड़ जाती है उसे साफ करनेके लिये		१८७ रु०
६—१ ब्लेडोंको माँजनेका छः पहलका ढोल		३१३ रु०
७—१ ब्लेडों पर मोहर लगानेकी मशीन		३९६ रु०
८—१ धार लगानेकी मशीन	...	३४४ रु०
९—२ सलें निकालने और पालिश करनेकी मशीनें ...	...	६३० रु०
१०—१ स्ट्रोपिंग मशीन	...	३०५ रु०
११—१ ब्लेडोंको सुखाने और ग्रीज़ लगानेकी मशीन		१९६ रु०
	कुल योग =	४०७६ रु०

नोटः—उपरोक्त खर्चेमें बम्बई अथवा कराँची तकका किराया बीमा और सामानकी कीमत शामिल है

वहाँसे लाहौर जैसे शहरमें मँगवानेमें चुंगी और किराये आदिका खर्चा यदि २५% और मानलें तो वह १०१९ रु० के लगभग बैठेगा।

उपरोक्त यंत्रोंको फिट करनेका खर्चा २०० रु० के लगभग होगा और उन्हें चलानेके लिये एक ७ अश्वबलकी बिजलीकी मोटर लगेगी जिसका मूल्य ७०० रु० होगा। इस प्रकार कुल खर्चा ५९९५ रु० होता है।

कारखानेका मकानः—कारखानेके लिये मकान कमसेकम ३६ फुट लम्बा और २५ फुट चौड़ा होना चाहिये जिसकी लागत लगभग ४००० रु० होगी।

कार्यकर्त्ताओंका मासिक व्ययः—

१ मिस्त्री—६० रु० मासिक	...	६० रु०
१२ कारीगर—२० रु० मासिक	...	२४० रु०
५ मजूर—१५ रु० मासिक	...	७५ रु०
१ बाबू—४० रु० मासिक	...	४० रु०
योग	...	४१५ रु०

एक मासका खर्चाः—

१—कच्चे मालका खर्चा—१६०००० ब्लेडोंके लिये पत्ती—१००० ब्लेडोंकी पत्ती ३ रु० प्रति पत्तीके भावसे	...	४५० रु०
२—कार्यकर्त्ताओंका वेतन	...	४१५ रु०
३—बिजलीका खर्चा	...	२४० रु०
४—किराया, व्याज और कर आदि २०% के हिसाबसे	...	४० रु०
५—मशीनोंकी मरम्मत आदि	...	५० रु०
६—कारखानेकी इमारतकी छीजन २०%के हिसाबसे		७ रु०
७—यंत्रोंकी छीजन १०%के हिसाबसे	...	४५ रु०
८—विविध खर्चे	...	८०० रु०
	कुल योग	२०४७ रु०

एक मासकी आमदनीः—

यह मानते हुए कि ५% ब्लेडें विगड़ जाती हैं एक मासमें १४२५०० ब्लेडें अर्थात् ११८७५ दरजन तयार होंगे। यदि एक दरजन की कीमत कमीशन आदि देकर

तीन आने भी लगाये जावें तो एक मासकी आमदनी २२२६ रु० होगी।

अतः एक मासका लाभ १७१ रु० हुआ।
एक वर्षका खर्चा २४५६४ रु०
एक वर्षकी आमदनी २६७१२ रु०
अतः एक वर्षका लाभ २१४८ रु०

इसका आशय यह है कि चालू खर्चे पर ८·७% का ब्याज मिल जाता है।

सुन्दर खिलौने

[डा० गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी० प्रयाग]

इस लेखमें जिस रंगीन खिलौनेके बनानेकी बेवरेवार रीति दी गई है उन्हें केवल नमूने ही समझना चाहिये। उसी तरहके सैकड़ों दूसरी तरहके खिलौने भी बनाये जा सकते हैं। इन खिलौनोंको खूब चटक रंगमें रंगना चाहिये। खिलौनेको पहले पतली लकड़ीसे काटना चाहिये इसमें फिर खिलौने बनाने लायक मिल जायगें, ६ या ७ इंचके खिलौने हों तो अच्छा है—मामूली लकड़ीके फट जानेका डर रहता है इसलिये ¼ इंच मोटा प्लाईउडका प्रयोग करना अच्छा होगा। इसके बाद फ्रेटसे खिलौनेको काट लेना चाहिए तब बारीक सरेस कागज़से कोरको चिकना कर लेना चाहिए।

खिलौनोंको रँगनेके लिये तेलसे बने रंग बहुत अच्छे
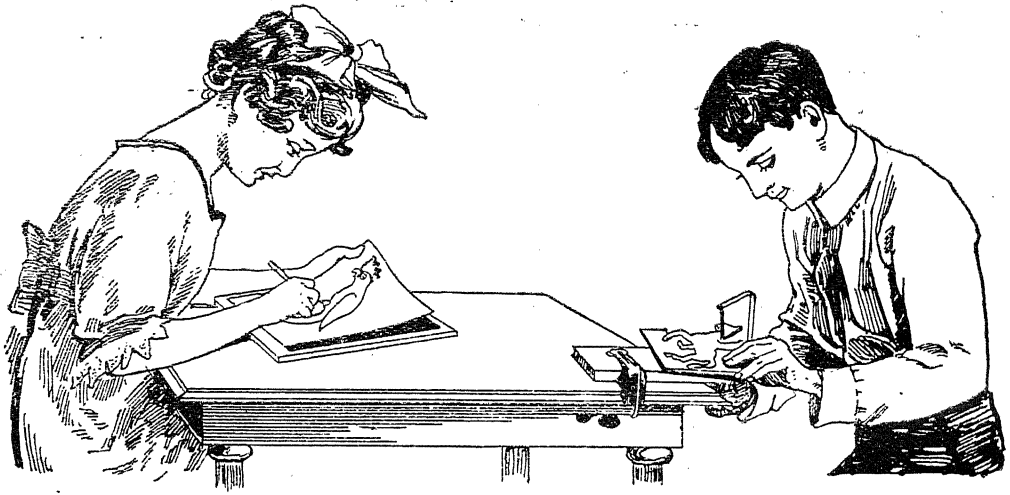
चित्र नं० १

वक्राकार तार लगा देना चाहिये। और तारके एक सिरेपर कोई भारी चीज़ लगा देनी चाहिए इन खिलौनोंको किसी टाड़े या कोनियोंपर खड़ा करके हिला देनेसे वे कई मिनट तक झूमते रहते हैं और बड़े सुहावने जान पड़ते हैं।

लकड़ी पर पहले चित्र उतार लेना चाहिए, बच्चोंकी मासिक पत्रिकायें और पुस्तकोंमें खोजनेसे बहुतसे चित्र होते हैं परन्तु इसमें समय बहुत लगता है क्योंकि बिना एक रंग सूखे उसपर दूसरे रंगसे कोई काम नहीं किया जा सकता और प्रत्येक रंगके सूखनेमें एक दिन या दो दिन लग जाता है इसलिये जल्दी हो तो खिलौनेको पानीके रंगोंसे रंगकर उसपर चपड़े (लाह) की बार्निस कर देनी चाहिए।

लकड़ीपर चित्र उतारनेकी रीति चित्र नं० १ में बाईं ओर दिखलाई गई है। चित्र और लकड़ीके बीचमें कारबन पेपर रखकर चित्रपर किसी नुकीली चीज़से हाथ फेरना चाहिए। दाहिनी ओर फ्रेटसा से लकड़ी काटनेकी रीति दिखलाई गई है।
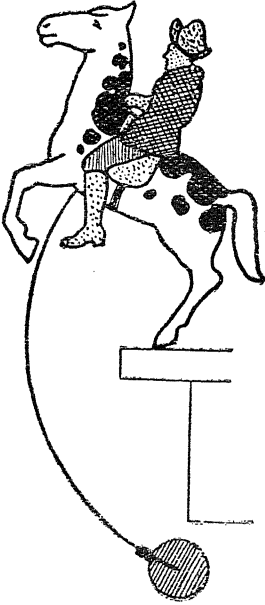
चित्र नं० २

झूमता हुआ घोड़ा—चित्र नं० २ में झूमता हुआ घोड़ा दिखाया गया है। इसके पेटके पाससे तार लगाकर उसके दूसरे सिरे पर बोझा लगा दिया गया है।

झूमता हुआ तोता—चित्र नं० ३ में झूमता हुआ तोता दिखाया है इसकी पूँछको खोखला करके सीसा पिला दिया गया है और इसीसे यह झूम सकता है। इसी प्रकारसे कई दूसरे खिलौने भी बन सकते हैं।

विचित्र डिब्बा—किसी गोलाकार टीनके डिब्बेके भीतर रबरकी डोर बाँधकर और उसमें चित्र नं० ४ में दिखलाई हुई रीतिके अनुसार कोई बाट बाँध देनेसे एक मनोरञ्जक खिलौना बनाया जा सकता है। इसमें विशेषता यह है कि फर्शपर रख कर डिब्बेको लुड़कानेके बाद वह आपसे आप अपने पुराने स्थानपर वापस चला आता है। इसका कारण यह है कि डिब्बेको लुड़कानेसे बाटके लटके रहनेके कारण रबरमें ऐंठन पड़ जाती है और डिब्बेको छोड़नेपर जब रबरकी ऐंठन खुलने लगती है तो डिब्बा पीछे लुड़कने लगता है। चित्रमें दिखलाई हुई रीतिसे डिब्बेके पेंदे और ढक्कनमें दो दो छेद करके
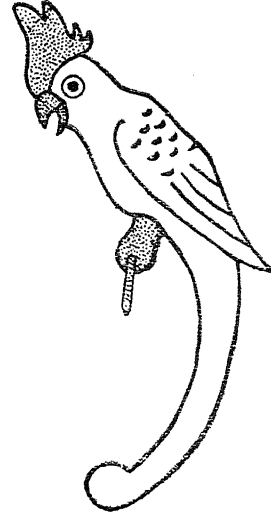
चित्र नं० ३

रबरकी डोर या पट्टी पहनानी चाहिए किसी बाईसिकिलके इनर ट्यूबसे पतली धज्जी काटकर इस खिलौनेमें लगाई जा सकती है परन्तु रबर कड़ा होकर खराब न हो गया हो।
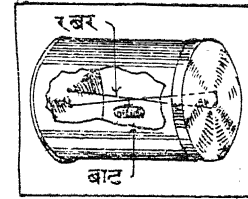
चित्र नं० ४

कभी न रुकने वाली पनचक्की—यह चक्की कपूरके जोरसे चलती है और जब तक कपूर सब उड़ नहीं जायगा तब तक यह बराबर (कई दिनों तक चलती रहेगी।

चक्कीको बनानेके लिये $\frac{1}{2}$ इंच × $\frac{1}{2}$ इंचका एक चौखुटा काग (कार्क) लेना चाहिए और इसके प्रत्येक पार्श्वमें एक सूई खोस देनी चाहिए। इन सुइयोंके दूसरे सिरोंपर कागके छोटे-छोटे टुकड़े खोस देने चाहिए। इन कागके टुकड़ोंमेंसे प्रत्येकके एक सिरेपर कपूरका छोटासा टुकड़ा मोहर करनेकी लाहसे चिपका देना चाहिए। सुइयोंके सिरोंपर इन कपूर लगे कागोंके खोसते समय ख्याल रखना चाहिए कि कपूर सब कागमें एक ही ओर पड़े (अर्थात् सब कागोंके आगे या पीछे जैसा कि चित्र नं० ५ में दिखलाया

गया है) इस बातपर विशेष ध्यान देना चाहिए कि इस चक्की या पानीमें जरा भी तेल या घी न पड़ने पावे नहीं तो चक्की न चलेगी। इस चक्कीको पानीसे भर थालमें रखनेसे ही चक्की आपसे आप चलेगी और कई दिन तक चलती रहेगी। इच्छा हो तो बीचवाले कागपर छोटीसी झन्डी या सेलोड़ाइटका कोई नन्हासा खिलौने खड़ा किया जा सकता है।
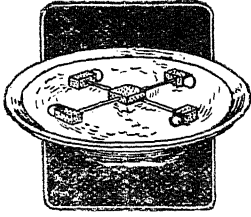
चित्र नं० ५

बच्चोंकी गाड़ीके लिये भोंपू—यह भोंपू टीनके डब्बेसे बनता है, हैन्डिलके घुमानेसे दाँतीदार पहिया घूमता है और दाँतिया डिब्बेके भीतर लगी चार पत्तियोंसे लड़ती हैं जिससे खूब आवाज़ होती है।

चित्र नं० ६ क में दिखाये अनुसार पहले डिब्बेके भीतर करीब बीचमें एक लकड़ी जड़ दी जाती है और इसके बीचमें दाँतीदार पहियेकी धुरीके लिए एक छेदकर दिया जाता है। धुरीका दूसरा सिरा टीनके पेंदी या डिब्बेके पेंदीमें किये गये छेदसे बाहर निकलता है। धुरीके इस सिरेपर चित्रमें दिखलाये गये आकारका हैन्डिल लगा दिया जाता है। अब ½ इञ्च मोटी लकड़ीसे एक दाँतीदार पहिया काट लिया जाता है जिसकी शकल चित्र ६ ख में दिखलाई गई है। इसके बीचका छेद इतना छोटा हो कि धुरी इसमें खूब कसी रहे। इस दाँतीदार पहियेको शीशम या इसी प्रकारकी कोई कड़ी लकड़ीसे बनाना चाहिए इसी चित्र पर दिखलाई गई रीतिसे चार पत्तियोंको डिब्बेमें जड़ी गई बीचवाली लकड़ीपर जड़ देना चाहिये इन पत्तियोंको चित्र ६ ग की शकलकी काटनी चाहिये और फिर मोड़कर उन्हें चित्र ६ घ की तरहकर देना चाहिए और फिर लकड़ीपर इन्हें पेंच या काटेंसे जड़ना चाहिए इसके बाद डिब्बेका ढक्कन भी डिब्बे पर लगा देना चाहिए चित्र ६ च में भोंपूको गाड़ीमें जड़नेकी रीति दिखलाई गई है।
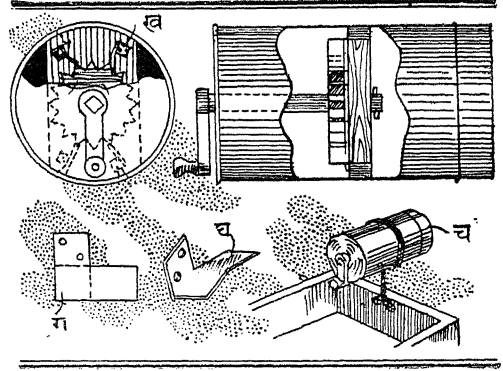
चित्र नं० ६

["व्यायमेक्यानिक" के आधारपर]

अलमुनियमका आविष्कार और उपयोग

[कृपाशंकर जायसवाल, बी० ए०]

यदि कोई ऐसी तरकीब निकल जाय जिसके द्वारा सोना भी इतना ही सस्ता और अधिक मात्रामें तयार होने लगे जैसे कि लोहा और सीसा तयार होता है तो संसारमें आज दिन बड़े-बड़े परिवर्तन उपस्थित हो जावें।

इसी प्रकारकी कुछ बात अलुमुनियमकी कहानीमें भी पायी जाती है। अलमुनियम धातुका इतिहास उपन्यासकी तरह मनोरंजक है, इसका आविष्कार अभी अभी हुआ है। एक शताब्दि भी अभी नहीं हुई कि यह धातु सोनेके ही समान महँगी और अप्राप्यसी थी। सन् १८५२ ई० में इसका मूल्य ४० रुपया प्रति तोला था। सन् १८७९ की बात है कि एक अमेरिकनने पेरिसमें एक जोड़ा ऑपेराग्लास

अर्थात् तमाशा देखनेकी दूरबीनें खरीदे। जौहरीने अलमुनियम और प्लैटिनमके एक ही दाम बतलाये किन्तु उसने अल-मुनियमके ही खरीदे। फलतः उसे अपनी इस अदूरदर्शिता-पर पश्चाताप करना पड़ा। देखते देखते यह कहीं साधारण और सस्ता हो गया।

इस नवीन धातुका आविष्कारक हाल (Hall) ओवर्लिंक, ओहियोका एक २२ वर्षीय युवक था, इस युवकने जो अभी कालेजसे नया ही निकला था, ऐसी तरकीबें निकाली जिससे अलमुनियम बहुत सस्तेमें बनने लगा। उस समय, अलमुनियम तयार करनेके फेरमें पचासों वर्षसे बड़े-बड़े विश्वविख्यात रसायन शास्त्रके पंडित पड़े हुए थे। इस युवकके आविष्कारने औद्योगिक जगतमें एक बड़ी हल-चल मचा दी और अलमुनियमका उपयोग हज़ारों वस्तुओंमें होने लगा।

कदाचित वर्तमान समयमें अलमुनियमको छोड़कर कोई भी धातु इतने विभिन्न रूपोंमें न मिलेगी। इसके उप-योगोंकी कोई सीमा नहीं है। कलाईकी घड़ियों और मालाओं (Beeds) से विशाल रेलके डिब्बों (Trucks) और क्रेनों (Cranes) तक; बोतलके ढक्कनों और सिमटनेवाली नलियों (Collapsible tubcs) और दन्त-मंजन (Tooth paste) से रेलकी लाइनों और वायुयानों तकमें यह इस्तेमाल किया जाता है। उपज और खपतके लिहाज़से इसका स्थान पाँचवा है। गत फरवरीमें अल-मुनियमकी स्वर्ण-जयंती अथवा युवक हॉलके महत्वपूर्ण खोजकी पचासवीं वर्ष गाँठ मनाई गई थी।

इस स्थानपर अलमुनियमका थोड़ासा पूर्व इतिहास दे देना असंगत न होगा। सन् १८२५ में आरस्टेड (Oersted) डेन नामक एक रसायन-वेत्ताने अलमुनियम क्लोराइड और पोटेशियम अमलगम दोनोंको मिलाकर गर्म किया। फलतः उसे थोड़ा सा अलमुनियम प्राप्त हुआ जो कि टिन (Tin) की तरह दिखलाई पड़ता था। उसने इसका नाम मिट्टीकी धातु (Metal of clay) रक्खा। यही मनुष्यके हाथसे बनाया हुआ सबसे पहला अलमुनियम था। दो वर्ष पश्चात् जर्मन वैज्ञानिक फ्रेडरिक ऊलर (Friedrich wochler) ने उपर्युक्त डेन वैज्ञानिक की क्रियाको दुहराया किन्तु उसे कुछ भी सफलता न मिली। परन्तु अलमुनियम अमलगम (?) के स्थानपर धात्विक पोटेशियम (Metallic potassium) का प्रयोग करनेपर इसका पुनर्आविष्कार किया। तत्पश्चात् डिवाइल (Henri Sainte-claire Deville) नामक एक फ्रेंच वैज्ञानिक नेपोटैशियमके स्थानपर सोडियम मिलाकर कुछ आशा-जनक सफलता प्राप्तकी। उसने अलमुनियमके कुछ छड़ बनाये और पेरिसकी सन् १८५५ वाली प्रदर्शिनीमें प्रदर्शनके लिये रक्खा। नैपोलियन इन्हें देखकर बड़ा खुश हुआ और उसके विषयमें नाना कल्पनाएँ करने लगा। उसका विचार था कि इस हलकी धातुसे सारी सेना सुसज्जितकी जाय। इसके लिये उसने डिवाइलको प्रोत्साहित किया और उसने उससे कुछ और भी अलमुनियम बनवाया। इस अलमुनियम-की तयारीमें एक विशेष कठिनता यह थी कि उसकी तयारीमें बहुत खर्चा बैठता था इसलिये अंतमें नेपोलियनको अपने यूनिफार्मके लिये एक सेट बटन और कुछ काँटे और चम्मच बनवाकर ही संतोष करना पड़ा। राज्य-भोजमें (Royal dinner) जिन्हें नेपोलियन बहुत आदरकी दृष्टिसे देखता था उनसे अलमुनियमके चम्मच और काँटोंसे खानेके लिये बड़े गर्वसे आग्रह किया करता था। और जो कम सम्मानके योग्य थे उन्हें साधारण चाँदी और सोनेके चम्मच और काँटोंसे खानेके लिये दिया करता था। इससे मालूम होता है कि अलमुनियमकी कितनी कदर होती थी।

सन् १८८३ ई० का ज़िक्र है, जब कि हाल (Hall) विद्यार्थी ही था तब एक दिन उसके रसायन-शास्त्र-के प्रोफेसरने कहा कि—"जो कोई अलमुनियम बनानेकी ऐसी क्रियाका आविष्कार करेगा जिससे वह व्यापारके लिये अधिक परिमाणमें उत्पन्न किया जा सके, तो वह केवल मानव जातिका उपकारक ही नहीं बल्कि स्वयं कुबेर बन जायगा"। इस इक्कीस वर्षीय बालकने क्लासमें चुपकेसे अपने एक साथीका पैर दबाकर धीरेसे कहा,—"इस कार्य्यको पूरा करनेके लिये आज मैं बीड़ा उठाता हूँ", और अंतमें उसे पूर्ण ही करके छोड़ा। बड़े-बड़े वैज्ञानिक धन-राशि खर्च करके भी बहुत थोड़ा अलमुनियम ही बना सकते हैं। इस बातसे वह तनिक भी विचलित न हुआ। रसा-यनका विद्यार्थी होनेके कारण उसे यह बात भी ज्ञात थी कि अभी तक जो अलमुनियम उत्पन्न किया गया है वह केवल रसायन द्वारा ही किया गया है।

हाल (Hall) उपरोक्त सब घटनाएँ पढ़ चुका था, और यह भी जानता था कि पृथ्वीके पपड़े (Crust) में अन्य धातुओंकी अपेक्षा अलमुनियम अधिक है। प्रत्येक मिट्टीके ढेरोंको वह अलमुनियमका सशक्त उद्‌दम समझता था। उसने अपने प्रयोग कालेजकी प्रयोगशालामें ही शुरू कर दिये और सन् १८८५ में जब वे ग्रेजुएट हो गये तब उन्होंने अपने पिताके बाग़के एक हिस्सेमें अपनी निज प्रयोगशाला बनाली।

पहले अलमुनियम बननेके लिये अलुमिना (Alumina) यानी अलमुनियम आक्साइडका कोयले (Carbon) तथा अन्य रसायनिक वस्तुओंके साथ प्रयोग किया किन्तु कुछ सफलता न मिली। तब उसने सोचा कि यदि कोइ ऐसी वस्तु मिल जाय जिसमें अलुमिना घुल जाय तो बिजलीके द्वारा वह घोल (Solvent) को बिना क्षति पहुँचाये ही सोल्युशनसे अलमुनियम अलगकर सकेगा। वह लगातार इसी धुनमें लगा रहा और अंतमें ग्रेजुएट होनेके नौ महीने बाद विजय-श्रीने अपनी वर माला उसके गलेमें डाल ही दी। क्राइओलाइट (Cryolite) नामक एक खनिज पदार्थको उसने अपने कार्य्यके लिये उचित समझा। इसे पिघलानेपर उसे मालुम हुआ कि अलमुनियम आक्साइड या अलुमिना उसमें अच्छी तरह घुल सकता है और इस प्रकारसे काफ़ी तायदादमें अलुमुनियम निकाला जा सकता है। इस सफलता पर वह नाच उठा और उस सोल्युशन पर फिर उसने बिजलीका प्रयोग किया पर अभाग्य वश वह असफल रहा। किन्तु वह घबराया नहीं और अपने पथ पर दृढ़ रहा और जब फरवरी २३ सन् १८८६ को जब उसने कारबन (कोयले) से युक्त घरिये (Crucible) में उस सोल्यूशनको भरकर दुबारा भरकर चेष्टाकी तब उसे, पूरी सफलता मिल गई।

हाल, संभवतः इस खोजमें और भी परिश्रम करता यदि उसे यह बात ज्ञात होती कि सुदूर फ्रान्समें उसकी ही समान एक बाइस वर्षीय युवक वैज्ञाकिक इसी धुनमें मस्त है, क्योंकि दो महीने बाद हेरोल्टने (P. L. T. Heroult) ठीक उसी क्रियासे अलमुनियम पैदा किया। इसी वर्ष न्यूयार्कके कास्टनर (H. Y. Castner) ने सोडियम पैदा करनेका एक बहुत सस्ता उपाय खोज निकाला, किन्तु हालकी विद्युत-क्रिया उससे भी सस्ती थी, लेकिन उसे प्रोत्साहन और सहयोग दो वर्ष बाद मिला फिर भी उसके सहायकोंने मिलकर पिट्सबर्ग रिडकशन नामकी एक कम्पनी जो अब अमेरिकन अलमुनियम कम्पनीके नामसे प्रसिद्ध है, खोली। वे लोग पहले ही सोच चुके थे कि यह अलमुनियम पहलेकी अपेक्षा तिगुना वज़नी और लोहे और इस्पातसे श्रेष्ठतर गर्मीका संवाहक (Conductor) होनेके कारण कई वस्तुओंमें प्रयुक्त हो सकता है। किन्तु जस्ते (Zinc) लोहे, ताँबे और शीशे का सैकड़ों वर्षसे प्रयोग होनेके कारण व्यवसायी लोग इस नये धातुके उपयोगमें कुछ हिचकते थे और यही कारण है कि आरंभमें अलमुनियमकी उन्नति धीरे धीरे हुई।

साधारणतः उस समय रसायन विधिसे तय्यार किया हुआ अलमुनियम आठ डालर प्रति पौंड बिकता था। हालकी कम्पनी पाँच डालर प्रति पौंड देनेपर तैयार हुई किन्तु कोई भी ख़रीदार न निकला। इसी तरह क्रमशः चार और दो डालर प्रति पौंड भाव कर दिया गया। इसपर भी कोई खरीदार न निकला। फलतः कम्पनीको यह बात महसूस हुई कि अलमुनियम बनानेके पहिले आवश्यकता यह है कि बाज़ारमें इसकी माँग पैदा की जाय, खरीदार बनाये जायँ और इसके लिये अन्वेषण (Research) संवर्द्धन (Development) और उन्नतिकी ओर ध्यान देना आवश्यक है। इस वक्त यह आवश्यकता थी कि कुछ ऐसे उपधातुओं (Alloys) का पता लगाया जाय जिनके सहयोग और समिश्रणसे अलमुनियम विशेष-विशेष कार्य्यों और वस्तुओंके लिये उपयुक्त सिद्ध हो।

इस क्षेत्रमें उन्नति करनेके लिये पहले-पहल ढलाईका आश्रय लिया गया। आरंभमें कई चीजें ढालकर बनाई गईं इनमेंसे एक चायदानी (Teakettle) भी थी। यदि सच-सच पूछा जाय तो इस चाहदानी ही ने संसारमें अलमुनियमके व्यवसाय की नींव डाली। यही इस व्यवसायकी जननी थी। करछुल, डेकची, चम्मच और भी खाना बनानेकी वस्तुओंकी माँग दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गई। जनताने इन्हें बहुत पसन्द किया और दिनके साथ-साथ इनकी माँग बढ़ती ही चली गई। फलतः

आज अमेरिकामें जितना अलमुनियम पैदा किया जाता है उसका १४ प्रति सैकड़ा इन्हीं चीज़ोंके बनानेमें खर्च होता है। ३५०,०००,००० से भी अधिक खाना बनानेके बर्तन अमेरिकावाले केवल अपने इस्तेमालके लिये अभी तक बना चुके हैं।

यद्यपि यह अन्दाज़ा लगाया गया है कि ज़मीनके पपड़ेमें ८% अलमुनियम होता है किन्तु शुद्ध रूपमें इसका मिलना यदि असम्भव नहीं तो बड़ा कठिन है। अतः बाक्साइड (Bauxite) नामक एक खनिज पदार्थका आश्रय लेना पड़ता है। यह अलमुनियमका श्रेष्ठ उद्गम है, विशेष कर व्यवसायिक अलमुनियम (Commercial almunium) का। अमेरिकामें जो बाक्साइड (Bauxite) का उपयोग किया जाता है, वह अधिकांश आरकेन्साज (Arkansas) और-और डचगैना (Dutch Guina) से आता है। बाक्साइड (Bauxite) में अलमुनियमके सिवा और भी अशुद्ध वस्तुएँ मिली रहती हैं जो रसायनिक क्रियाओं द्वारा निकाल दी जाती हैं। शेष अलुमिना (Alumina) ठीक खानेवाले नमक (table salt) के समान सफेद होता है और इससे ही हाल द्वारा आविष्कृत—अब उन्नत और परिष्कृत—क्रियासे अलमुनियम तैयार किया जाता है। अलुमिना पिघले और गर्म क्राइ ओलाइट (Cryolite) के साथ मिलाकर कोयलेसे युक्त खानों (Cells) में रख दिया जाता है और इसमें विद्युत्-धारा प्रवाहित की जाती है। इसके फल स्वरूप ओषजन अलग हो जाता है और नीचे शुद्ध अलमुनियम तहमें बैठ जाता है। इस तरह दो पौंड अलुमिनासे एक पौंड अलमुनियम तैयार किया जाता है। वह खानों (Cells) से निकाल कर और गर्म कर कर धातु पिंडोंमें ढाल लिया जाता है। इसे अधिक उपयोगी बनानेके लिये कुछ मात्रामें और भी धातुएँ जैसे ताँबा, मैगनिशियम, मैगनीज़ सिलिकन इत्यादि, मिला ली जाती हैं।

इस प्रकारके अलमुनियमका उपयोग केवल करछुल, चम्मच, चाहदानी तक ही में परिमित नहीं है बल्कि जैसा कहा जा चुका है। इसका विस्तार निरसीम है, यह गर्मीका उत्कृष्ट संवाहक और हलका होनेके कारण बिजलीके तारोंके लिये बहुत ही उपयुक्त है। बीचमें ईस्पातका जिगर देकर करीब ४३०,००० मील तक इसके तार बनाये गये हैं। जिनसे बराबर काम लिया जाता है। दो और तीन हज़ार फीटके तार तो असंख्य हैं। इसका उपयोग वास्तुकलामें भी होता है। हालके आविष्कारके पहिले सन् १८८४ में वाशिंगटन स्मारकके लिये सौ औंसका एक कैपस्टोन (Capstone) बनाया गया था, और इसे लोग एक बहुत ही बहुमूल्य वस्तु समझते थे। हालमें एक ७५०० पौंडका बनाया गया है। उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तमें अनाज रखे जानेवालों घरों के लिये ढक्कन बनानेमें, और रेलिंग इत्यादि चीज़ोंमें उपयोग किया जाता था। गगन-चुम्बी अट्टालिकाओंमें जहाँ वज़नका प्रश्न साधारण है इसका उपयोग बहुतायतसे होता है। यह सौंदर्य्य बढ़ानेका भी कार्य्य करता है। फ्रेम, रेलिंग, खिड़कियों, टेबुलों इत्यादिमें इससे यही काम लिया जाता है, अमेरिकाके राज्य-भवनमें उपर्युक्त कार्य्योंमें डेढ़ लाख पौंडसे भी अधिक अलमुनियम खर्च किया गया है। सवारी सम्बन्धी चीजोंमें अलमुनियमका प्रयोग सबसे अधिक होता है। अमेरिकामें पैदा किये जानेवाले अलमुनियमका ३८% हवाई जहाज़ों, स्वयंचल मशीनों (Automobiles) रेल गाड़ियों, नौकाओं, जहाजोंमें खर्च होता है। रेलके डिब्बोंके लिये तो यह बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसका कारण यह है कि डिब्बे हलके भी हो जाते हैं और उनमें अधिक बोझ भी लादा जा सकता है।

जब रेलगाड़ियोंकी चाल बढ़ानेका प्रश्न उपस्थित हुआ तो पहिली समस्या यह थी कि गाड़ियोंका वज़न घटाया जाय। इस कार्य्यके लिये अलमुनियम ही क्षेत्र में उपयुक्त प्रतीत हुआ। आरंभमें इसका उपयोग थोड़ा-थोड़ा किया गया किन्तु बादमें विशुद्ध अलमुनियमकी गाड़ियाँ बनाई गईं और आज हम कितनी ही ऐसी गाड़ियों को कार्य्य करते देख रहे हैं।

साधारणतः हम देखा करते हैं कि एक विशेष धातु एक विशेष कार्य्यके लिये पेटेन्ट मान ली गई है। प्रत्येकका एक क्षेत्रमें अपना विशेष स्थान है। इस लिहाजसे वायु सम्बन्धी सवारियों (Aviation) में अलमुनियमका स्थान सर्वोच्च है, बिना इसके इनकी उन्नति कितनी रुक गई होती। फौजी और साधारण सवारीके लिये वायुयानें ज्ञात

प्रतिशत अलमुनियमकी ही बनाई जाती हैं। और इधर कुछ दिनोंसे जलयानोंमें भी इसका प्रयोग बढ़ता ही जा रहा है। छोटे-छोटे जहाज इसे रेलिंग और मस्तूलोंमें इस्तेमाल करते हैं और बड़े २ जैसे नारमेन्डी (Normandie) कलाकारीके लिये भी।

कहाँतक कहा जाय इसकी सीमा, इसका विस्तार, इसकी उपादेयताको देखकर यही कहना पड़ता है कि किंग कांगको छोड़कर यह संसारका आठवाँ आश्चर्य है। बिजली, इमारत, रेल जहाजोंके सिवा जिनमें ७०% खर्च होता है कितनी ही अगणित वस्तुओंमें, एक या दूसरे रूपमें यह इस्तेमाल किया जाता है जिनका गिनना कठिन है। घरेलू वस्तुयें जैसे डेकची, तस्तरी, प्याला इत्यादि आँखोंके सामने रात दिन रहनेसे हम इसको भूलसे जाते हैं। फर्नीचर, रेडियो, तार, टेलीफोन, क्रेन, ढक्कना तो कहना ही क्या फर्शतकमें इसका प्रयोग होता है। अमेरिकाके पिट्सबर्गके पुलका फर्श इसका ही बना हुआ है।

इतना सब होते हुये भी इसमें एक और विशेषता है :- सफेद, भूरे रंगमें जैसा हम नित्य देखते हैं इसका रंग एक विशेष क्रियाद्वारा, जिसे आलम्यूलाइट क्रिया (almulit process) कहते हैं, इन्द्र धनुषके रंगोंमें परिवर्तित किया जा सकता है और किया जाता है।

हालने जब इसे बनाना आरंभ किया था तो प्रतिदिन ५० पौंडके हिसाबसे बनाता था किन्तु सन् १९३४ में इसकी उत्पत्तिका परिमाण तमाम दुनियाका मिलाकर ३७५,०००,००० पौंड था।

वह मनुष्य जिसने संसारको अलमुनियम जैसा उपयोगी धातु दिया, और अपने रसायन-शास्त्रके प्रोफेसर की घोषणा को स्वयं पूरीकी और पूर्ण होती देखनेको जीवित रहा और अंतमें अनंत धन राशि प्राप्त करके उसने सन् १९१४ में इस संसारको छोड़ दिया। अपने आविष्कारका फल मनुष्य जातिको भोगते देखकर उसे कितना आनंद हुआ होगा, यह कौन कह सकता है?

कला, उद्योग और व्यवसायके सब विभागों तथा अन्य क्षेत्रोंमें अलमुनियमका उपयोग अनिवार्य्य हो गया है। इसका उपयोग गत पचास वर्षोंमें इतना बढ़ा है कि जितना किसी अन्य धातुका पाँच हजार वर्षोंमें।

(पापुलर मेकनिक्ससे)

विज्ञानके पिछले पचीस बरस

३—आहारकी रक्षा और प्रेषण

[श्रीबापू वाकणकर, बी० एस्-सी०, काशी]

हारकी रक्षाके उपाय तो लोग प्राचीन कालसे करते आये हैं। घुनोंसे गेहूँ आदिकी रक्षा करनेको हमारे देशमें मिट्टीकी कोठियोंमें भूसेके साथ रखनेकी प्रथा है। अचार खटाई, तेल और नमक आदिके सहारे वा सुखाकर बरसों रखे जाते हैं। दक्षिणवाले पके हुए भातको चार अंगुल पानीके नीचे रखकर बासी दो-दो दिनतक रखते और खाते हैं। रोटियाँ तो देरतक रखी नहीं जा सकतीं परन्तु मोअन देकर पूरी पकवान बहुत कालतक रखे जाते हैं। परन्तु यह सभी विधियाँ प्राचीन हैं। विज्ञानने पिछले काटे जो जो उपाय निकाले हैं, वे विलक्षण हैं। हरी मटरकी घुंघनी बिना मौसिमकी आप जब चाहें टिनोंमें बाजारसे खरीद लावें। हमारे देशमें भी अब ताजे हरे फलोंको उबलते जलमें टिनोंमें रखकर बन्द करके झल देते हैं। वे फल बरसों ज्योंके त्यों बने रहते हैं। इन विधियोंसे हमारे देशमें लोग परीचित हो चुके हैं। फिर भी संसारमें पिछले पचीसबरसोंमें इस दिशामें क्या क्या वैज्ञानिक उन्नति हुई है, यह जाननेमें विज्ञानके पाठकोंको कुछ रस मिलेगा।

हमारे पाठक जानते हैं कि भारतके बाहरके लोगोंके खाने पीनेकी सामग्री हमारी सामग्रीसे थोड़ा बहुत भिन्न है। इतना कहनेमें हम भारी भूल न करेंगे, कि भारतमें जिस तरह ताजे और गरम खाने खानेका रवाज है उसी तरह और देशोंमें प्रायः बासी ही खानेकी प्रथा है और बासीको गरम करके खानेका भी किसी-किसी दशामें दस्तूर है। ऐसी दशामें आहारको सड़ने गलने दुर्गन्ध आदिसे बचाना भी एक भारी वैज्ञानिक कला है।

भारतके बाहर विशेषकर पच्छाँहके देशोंमें सदासे आहारके पदार्थोंका यातायात बड़ी राशियोंमें होता रहा है। परन्तु पिछले पचीस बरसोंमें ऐसे मालकी राशि या मात्रा बहुत ज्यादा बढ़ गयी है। उसका कारण क्या है? भारी राशिमेंसे बहुत सा अंश नष्ट हो ही जाया करता था, बहुतसे खानेके लायक नहीं रह जाता था। परन्तु पिछले पचीस बरसोंमें रक्षाकी विधियोंमें ऐसे सुधार हो गये हैं कि सावधानीसे काम लेनेमें रत्ती भर नष्ट नहीं होने पाता। वस्तुएँ हरी ताजी और ठीक ज्योंकी त्यों बनी रहती हैं।

लोगोंने अत्यन्त ठंढे देशोंमें यह अनुभव किया है कि बरफके नीचे मुरदा पड़ा रह जाता है। उसकी लाश मुद्दततक नहीं बिगड़ती, नहीं सड़ती। वस्तुएँ बरफमें दबी पड़ी रह जाती हैं खराब नहीं होतीं। इसपर परीक्षाएँकी गयीं और पता लगा कि यदि वस्तु अत्यन्त ठंढी रखी जाय तो खराब न होगी। इस विधिको रिफ्रिजरेशन अर्थात् शीतन कहते हैं। बात यह है कि ताजा फल, ताजी तरकारी, मछली, मांस सभी पदार्थ बड़े विकट रासायनिक संघटनवाले पदार्थ हैं। इनकी बाढ़ और विकास सूक्ष्म है और परस्पर भिन्न है। इनकी जीवित और मरणान्तर अवस्थाओंमें किन-किन कारणोंसे कैसी-कैसी दशाओंमें क्या-क्या विकार पैदा होता है, गत पचीस बरसोंमें इन विषयों-पर बड़े विस्तारसे परिशीलन हुआ है। जब यह बात मालूम हुई कि कब किस दशामें रंग बदलता है, गंध बदलती है, दशा बदलती है, और कैसे उस दशाके आनेमें रुकावट डाली जा सकती है तो रक्षणका काम सहज हो गया। यह शीतनकी पद्धति रक्षणकी एक उत्तम विधि सिद्ध हुई है। यह विधि न केवल भण्डारमें सुरक्षित रखनेमें काम आ रही है, बल्कि कई हजार मील दूर देशमें भिन्न ताप और चापकी परिस्थिति पहुँचानेमें भी सफल हुई है और खूबी यह कि ताजी दशामें जैसा स्वाद चाहिये ठीक वही स्वाद, जैसा रूप रंग आकार चाहिये वैसा ही रूप रंग आकार, जैसी सुपाच्यता चाहिये वैसी ही सुपाच्यता और शरीर विज्ञानके अनुसार जैसी आहार योग्यता चाहिये वैसी ही आहार योग्यता उसमें पायी जाती है।

आहार पदार्थोंके अंदर और ऊपर पैदा होकर बढ़ने वाले रेणू [स्पोर्स], जीवाणु [मायक्रो ऑर्ग्यानिज़्म्], उनका जीवन, वर्धन तथा मरण इत्यादिके परिणामस्वरूप जो रासायनिक या जीवनविषयक प्रश्न उठते हैं, उनपर पिछले २५ बर्षोंमें बहुत खोज हो चुकी है। विशिष्ट ताप क्रमपर शीतरक्षण [कोल्ड स्टोरेज] पद्धतिके प्रत्येक अंग-उपांगका सूक्ष्म अभ्यास, आगमन-निर्गमनकी व्यवस्था, इन पदार्थोंके रूप-रुचि-गंध पर रक्षक-रसायनोंका परिणाम, पाचनशक्ति तथा पौष्टिकतामें उनका प्रभाव इत्यादि छोटी बड़ी सब एतद्विषयक बातोंकी ओर ध्यान दिया गया है।

उदाहरणके लिये विलियमपिअर नामक बहुत स्वादिष्ट विलायती नासपाती ही लीजिये। यह इतना नाजुक होता है कि अपने बगीचेमें लगे हुये पेडपरसे घर लाने तकमें वह खराब हो जाता है। लेकिन आज टनों परिमाणमें इस फलसे भरे हुये जहाज दक्षिण अफ्रिका, कॅलिफोर्निआ तथा ऑस्ट्रेलिया आदि सुदूर देशोंसे इंग्लैंड तक मजेमें आते हैं! इस सफलताके मिलनेके लिये कोशिश भी भारी की गयी है। सर्वप्रथम सर्वदोषरहित फल उपजानेके लिये अनेक शास्त्रीय प्रयत्नोंद्वारा फलोत्पादन शास्त्रमें नैपुण्य मिलाना पड़ा, योग्यसमयपर योग्य व्यवस्थासे उन्हें बीनना तथा छोटे बड़े आकारके अनुसार वर्गीकरण करना इत्यादि बातें करनी पड़ीं। प्रयोग और उसकी निष्पत्तिका अनुभव करते करते सालोंके बाद पदार्थबंधन [कॅनिंग अँड ॅकिंग] की जो शास्त्रीय रीति प्राप्त हुई उसे रीतिसे फल बांधना, शीतकयंत्रोंमें उन्हें संस्कार देना, आगे समुद्रपर्यटनमें तापमानमें १ अंशसे (फा०) अंतर अधिक बदलने न पावे इसलिये योग्य शीतन [रेफ्रिजिरेशन] तथा वायुके लगनेका प्रबंध करना यह विधियां फलोंके साथ बरती जाती हैं। अंतमें इङ्गलैंड पहुँचनेपर उस शीतदेशमें विशिष्ट तापमानकी योजना करनेपर ही फल पक सकते हैं। इतना बखेड़ा करने

पर कहीं फलका रक्षण होता है और इसमें किसी एक विधिमें भी गलती हुई कि सारा काम चौपट हुआ !!

शैत गोमांस (Chilled Beef) भी इसी रीतिसे भेजा जाता है; परंतु उसमें तो पर्यटनकालमें तापक्रममें ½ अंश (फा०) से अधिक अंतर भी हानिकारक है। इसके अतिरिक्त ढोरोंका सुजनन, पोषण, विश्राम, जलपान इत्यादि मृत्युपूर्व विधिके ओर भी ध्यान देना पड़ता है। मांसके बंधन [पॅकिंग] के समय तो निर्जंतुत्वके लिये विशेष ध्यान देना पड़ता है। मांसशीतनके पहिले सूक्ष्मदर्शकसे जीवाणुओंकी गणना करते हैं और उसपरसे प्रवासके अंतमें मांसकी क्या स्थिति होगी इसका अनुमान पहलेसे ही कर लिया जाता है।

सर्वोत्तम फल, मछली, मांस आदिकी रक्षामें [ऑप्टिमम] तापमानका बहुत महत्व माना जाता है। हरेक फल या वनस्पतिकी एक विशेष शीतसहनसीमा [लो टॅंपरेचर टॉलरन्स लिमिट] होती है, जिसमें कम तापमानमें अधिक समय रखनेसे कुछ वस्तुकी अंतर्घटना में गड़बड़ हो जाती है। इसलिये प्रत्येक पदार्थकी शीत-सहन सीमा निश्चित की गयी है।

शैत मांस और मछलीके प्रयोगसे यह सिद्ध हुआ है कि उनमें जो स्नायुपोषक पदार्थ (प्रौटीन्स) हैं, उनकी घुलनशीलता पर सबसे अधिक प्रभाव डालनेवाले परिवर्तन -२० से० और-३० से० के बीचमें अधिक वेगसे होते हैं। शैत मांस स्वादहीन लगता था परंतु यदि शीतन तथा मरणके समय तापमान चरम (क्रिटिकल) तापक्रमसे नीचे लाकर उसका रक्षण-२० से-३० अंश (से०) के लगभगपर किया जाय तो वह दोष दूर हो जाता है।

इन आविष्कारोंके फलस्वरूप आजकल शिकारी-जहाज बनाये गये हैं, जिनमें त्वरित् शीतन और रक्षणका प्रबंध होता है। यह जहाज हॅलिबॉट तथा कॉड मत्स्योंकी खोजमें ग्रीनलंडके किनारेके पास कई दिन तक घूमते फिरते हैं। आजकल त्वरित् शीतन और लघुतापरक्षणके प्रयोग हेरिंग मछलीपर किये जा रहे हैं।

अभी तक हमने लघुताप क्रम या शीतन रक्षणविधिके बारेमें ही चर्चा की है परंतु इस पच्चीसीका दूसरा क्रांतिकारक आविष्कार है [बायालॉजिकल चेंज] जैव-परिवर्तन में हवाके घटकोंके नियंत्रणका परिणाम। निष्क्रिय वायु [इनर्ट गैस] के उपयोगकी कल्पना अब पुरानी हो चुकी है। इंगलैंडके रायलसोसायटीके १९१४–१५ के विवरण पत्रमें ओषजन [ऑक्सिजन] तथा कर्बनद्वयौषिक [कारबन डाय ऑक्साइड] के प्रमाणका "बीजोंके श्वसनपर परिणाम" शीर्षक व्याख्यान मालाका सार दिया है। उस समयसे नये कार्यका प्रारंभ हुआ। १९१७ में एक अन्न-संशोधन मंडल स्थापित हुआ, जिसने वायु परिणामके नियंत्रणका प्रश्न हाथमें लिया और संशोधन शुरू किया। सर्व प्रथम जंतुनाशक कृमियों [फंगी] का प्रश्न हाथमें लिया गया। केंट नामक स्थानमें इस तत्वके अनुभवके लिये एक भांडार खोला गया, उस समयसे इंगलैंडमें यह व्यवसाय उन्नतिपर है।

अंग्रेजी नासपातीकी शीत सहनसीमाका तापमान थोड़ा ऊँचा होनेसे शीतरक्षण विधिसे संस्कारित नासपाती जनवरी के बाद होने लगती है। फलोंका पकना उनके श्वसनवेगपर अवलम्बित होता है और यह वेग हवाके ओषजनकी प्रधानताअधिक तथा कर्बन द्वयौषिदकी प्रधानतामें कम रहता है। एक विशिष्ट सीमामें फलकी हानि न पहुँचाते हुए भी इन वायुओंके प्रमाण घटा बढ़ाकर अपनी सहुलियतके अनुसार हम उनमें फेरफार कर सकते हैं। फलके पकनेके पहले अर्थात् उसमें विशिष्ट मृदुत्व, रुचि और गन्ध उत्पन्न होनेके पहले जो 'अपक्वता' [क्लायमेक्टेरिक] नामक स्थिति आती है उसे कर्बनद्वयौषिदकी अधिकतासे हम निश्चितरूपेण आगे ढकेल सकते हैं। उसी प्रकार कर्बनद्वयौषिद वायुके विशिष्ट प्रमाणसे मांसमें जो जीवाणु और सूक्ष्म कृमि बढ़नेका डर रहता है। उसमें रुकावट डाल सकते हैं। केवल वायुकी अपेक्षा दस सैकड़ा कर्बनद्वयौषिद वायु-मिश्रित हवासे पदार्थ दुगने समय तक अच्छा रहता है। इस वायुसे दूसरा फायदा यह है कि, कुछ समय पीछे मांसमें रुचिगंधका नाश [रेन्सिडिटी] और उसका रंग लालसे भूरा हो जाता है, वह दोष नहीं आने पाते। इस रीतिसे वायु रक्षित [गॅस स्टोअर्ड] मांसका भरा पहिला जहाज न्यूझीलैंडसे इङ्गलैण्डमें सन् १९३३ में आया। अब इसने बड़े भारी व्यापारका रूप धारण किया है।

ओषजन वायुसे फल, तरकारियाँ तथा मृदु पुष्पादियोंमें

गंधरुविनाश तथा अतृप्त मेदाम्लोंका विनाश [फंक्शनल ब्रेकडाउन ऑफ अनसेच्युरेटेड फॅटि ऍसिड्स] होता है। इस ओषजनीयनाशनका विशेष परिणाम सूवरके पुट्ठेका जो मसालेदार मास [बेकन] होता है उसपर प्रतीत होता है। इसी कारणसे आज कल ऐसे पदार्थ केवल कर्बन-द्वयौषिदके उपस्थितिमें ही डिब्बोंमें भरे जाते हैं।

कहीं-कहीं ओषोण एथिलीन तथा अमोनियाका आंशिक उपयोग किया गया है। कभी-कभी फलके पकनेपर उसमें एक बाष्पशील पदार्थ तैयार होता है, जिसका वैसे ही रहने देना अन्य फलोंको सड़ाता है। इसके रोकनेके लिये ओषोणका उपयोग होता है तथा यह वायु जन्तुनाशक भी है। एथलीन वायुसे "उपपक्वता" जल्दी प्राप्त होती है और इसका इंगलैंड जैसे शीत देशमें तो पकानेके लिये विशेष उपयोग होता है। अमोनियासे [जर्मिनेशन ऑफ स्पोर्स] रेणुओंके प्रजननमें रुकावट पड़ती है। ये नाशक रेणु प्रत्येक फलमें रहते ही हैं।

यहाँ तक गत पचीसीमें आहार-रक्षण शास्त्रमें बहुत कुछ प्रगति हुई है और उससे हजारों फलोंका वार्षिक संहार अब बच गया है। भविष्यमें क्या-क्या होगा वह अब देखना है। (नेचरके विशेषांकके आधारपर)

साहित्य विश्लेषण

हमारे कुछ सहयोगी

[स्वामी श्रीहरिशरणानंदजी वैद्य]

वैद्य सम्मेलन पत्रिका—यह आयुर्वेद सम्बन्धी पत्रिका अखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डलकी मुख पत्रिका है। यह निकलती तो १९२८ से है किन्तु, मण्डलके स्थानान्तरित होनेके कारण तथा सम्पादकीय विभागकी व्यवस्था सुचारु रूपसे न हो सकनेके कारण समय पर कठिनतासे ही निकलती रही है। आरम्भमें यह पत्रिका उच्च उद्देश्यको लेकर प्रकाशित की गई थी, और जबतक पं० जगन्नाथ प्रसादजी शुक्ल आयुर्वेद पञ्चानके सम्पादकत्वमें निकलती रही वैद्य समाजकी अच्छी सेवा करती रही। पश्चात् आयुर्वेद महामण्डलके मद्रास व मद्राससे पूना कार्यालय बदल जानेके समय इसकी व्यवस्था अच्छी नहीं रही, फिर तो यह पत्रिका केवल विद्यापीठकी परिक्षाओंके परीक्षाफल व मण्डल सम्बन्धी कार्यवाहियोंको प्रकाशित करनेका ही कार्य करती रही। इस-वर्ष फिर महामण्डलका कार्यालयकाल जब समाप्त हुआ, वह पूनासे उठकर बनारस आ गयी है और पत्रिकाका कार्यभार पं० किशोरीदत्तजी शास्त्रीके कन्धोंपर रखा गया है। इसीलिये इस वर्षसे वैद्य सम्मेलन-पत्रिका पं० किशोरीदत्तजी शास्त्री तथा पं० केदारनाथ शर्माके सम्पादकत्वमें कानपुरसे प्रकाशित होने लगी है।

पं० किशोरीदत्तजी शास्त्री योग्य लेखकोंमेंसे हैं। आपके सम्पादकत्वमें चिकित्सक कितने ही वर्षोंसे निकलता आ रहा है। १९३६ जनवरीसे इसका सम्पादन भी आप कर रहे हैं किन्तु, पत्रिका प्रतिमास न निकल कर दो २ मासके पश्चात् निकल रही है। मालूम होता है। लेखोंके अभाव रोगसे चिकित्सक भी स्वयं पीड़ित है। चार मासके दोनों ही अंक केवल सम्मेलन सभापतियोंके अभिभाषण व सम्मेलन समाचारसे ही पूर्ण हैं। आगेके लिये आशा है यह पत्रिका अच्छे लेखों द्वारा वैद्य समाजकी सेवा करेगी।

आरोग्य दर्पण—यह पत्र आज छः वर्षसे ऊँझा आयुर्वेदिक फार्मेसी अहमदाबादकी ओरसे प्रकाशित होता है। इसका वार्षिक मूल्य १) है। इस पत्रके प्रकाशनका उद्देश्य तो फार्मेसीकी ओर व्यवसायिक है तथापि इसका सम्पादन वैद्यराज गोपीनाथजी गुप्तके द्वारा होनेसे लेखोंका चयन अच्छा होता है। श्रीगोपीनाथजी गुप्त एक उत्साही नवयुवक हैं। आपके हृदयमें आयुर्वेदके प्रति अटूट श्रद्धा है। आप आयुर्वेदोन्नतिके लिये बहुत कुछ प्रयत्न करते रहते हैं। इसी उद्देश्यसे आपने अभी थोड़े दिन हुए आयुर्वेद विज्ञान समतिकी स्थापनाके लिये प्रयत्न भी किया था। अहमदाबाद सम्मेलनपर आपके प्रयत्नसे सेण्ट्रलइंस्टिट्यूट

ऑफ आयुर्वेदिक रिसर्च नामकी स्थापना हुई। जिसके प्रधान श्रीयादवजी त्रिकमजी आचार्य बम्बई तथा मन्त्री आपको बनाया गया है। उत्साही जीव तो आप बड़े हैं, देखें कैसा कार्य होता है।

आयुर्वेद-संदेश—यह डी० ए० वी० आयुर्वैदिक कालेज लाहौरका मुख्य पत्र है। इसका वार्षिक मूल्य २) है। यह पत्र कोई आठ वर्षसे निकल रहा है। इसका सम्पादन आयुर्वेदाचार्य पं० सुरेन्द्र मोहन, बी० ए०, प्रिन्सिपल उक्त कालेज कर रहे हैं। यह पत्र आयुर्वेदके विद्यार्थियोंके लाभार्थ निकाला गया था, और इससे विद्यार्थियोंको लाभ भी होता था, किन्तु इसकी कुछ समयसे नीति कुछ और हो रही है। आर्य समाजके द्वारा संचालित आयुर्वेद विद्यालयको देखकर कुछ सनातन-धर्मी विद्वानोंने मिलकर श्रीसनातन-धर्म-प्रेमगिरि आयुर्वेद महाविद्यालयकी स्थापना कर डाली, और उस विद्यालयकी ओरसे अश्विनीकुमार नामक एक मुकाबलेका पत्र निकाल दिया। अश्विनीकुमारके पहिले ही अंकमें कहीं हरदत्त शास्त्रीने "अनर्थ-पाठ-ध्यान्तध्वन्सः" नामक शीर्षकसे एक लेख लिखकर चरकमें दिये एक श्लोकके पाठ परिवर्तनके सम्बन्धमें विचार किया। और **'न वीज्यैश्चलोमहर्षःस्यात्'** इस चतुर्थ पादको संदिग्ध बतलाकर इसके संशोधनकी आवश्यकता बतलाई और इस पाठको 'वोज्यैश्चालोमहर्षास्यात्' ऐसा होना चाहिये—यह लिख दिया। तबसे आज दो वर्ष होने आ रहे हैं आयुर्वेद संदेशमें सम्पादकजीने विद्यार्थियोंकी भलाईकी तिलांजलि देकर चरक रक्षाकी ही आपको महान् फ़िकर पड़ गयी। आपने इस जरासी बात को लेकर तिलका ताड़ बना आयुर्वेद संदेशके एक नहीं दो-दो बृहत्काय विशेषांक चरकरक्षांकके नामसे निकाले। और पता नहीं अभी और कितने निकलें। यही विद्यार्थियोंके लाभको दृष्टिमें रखकर निकाला जाने वाला, गरीब विद्यार्थियोंके पैसोंसे चलनेवाला पत्र व्यर्थके वितण्डोंमें क्यों फँसा? केवल पाठ परिवर्तनसे चरकजीकी महत्तामें कोई बट्टा लग सकेगा ऐसा कोई व्यक्ति मान सकता है? हजारों व्यक्ति आयुर्वेदपर आक्षेप कर रहे हैं, कई हम जैसे विचारके संशोधक समस्त आयुर्वेद ग्रन्थोंमें संशोधनकी आवश्यकता बतलाते हैं तो क्या इस प्रकार आयुर्वेद व ऋषिप्रदत्त ज्ञान मिट सकता है? उसके तो आश्रयसे ही हम आगे बढ़ रहे हैं। वह पूर्वजोंका ज्ञान हमें पथ-प्रदर्शक का ही काम दे रहा है पर आँख खोलकर चलनेका समय है। समयके प्रवाहमें अनेक बातें पड़कर बदल जाती हैं कई बातें पूर्वकालमें उपयुक्त थीं। अब अनुपयुक्त दिखाई देती हैं। उन्हें समयके अनुसार बनाना हमारा काम है; न कि पूर्व पुरुषोंका।

अश्विनीकुमार—यह सनातनधर्म प्रेमगिरि महाविद्यालयका मुख्यपत्र है। इसका वार्षिक मूल्य ३) है। यह पत्र भी कालेजकी उन्नतिमें सहयोग देनेके लिये निकाला गया है। पत्र अच्छा होनहार है। लेख योग्यतापूर्वक लिखे होते हैं। चयन भी क्रमसे युक्त होता है। किन्तु, जबसे निकला है अपने पतिस्पर्द्धी आयुर्वेद संदेशसे लोहा ले रहा है। आज कुछ माससे तो दर्शन भी नहीं हुए।

आचार्य-धन्वन्तरि—यह पत्र आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी तिब्बिया कालेज देहलीके आयुर्वैदिक विभागकी ओरसे निकला है। पत्र दो वर्षसे निकल रहा है। इसका उद्देश्य भी कालेजके विद्यार्थियोंको लाभ पहुँचाना है तथापि इसके सुयोग्य सम्पादक श्रीउपेन्द्रनाथदासजी कविराज प्रिन्सिपल उक्त कालेजके लाभसे भिन्न इसको सार्वभौमिक वैद्योपयोगी पत्र बनानेकी इच्छासे अच्छे २ लेखोंका चयन करते हैं। आप प्राचीन रूढ़ियोंके परमभक्त हैं। आप आधुनिक विज्ञान परिमार्जित बातोंपर कोई आस्था नहीं रखते। इसीलिये आप प्राचीन रूढ़ीको बनाये रखनेकी प्राणपणसे चेष्टा करते हैं किन्तु दुःख है कि आपको कोई योग्य सहायक नहीं मिलता। पञ्चभूत त्रिदोष या उठे विवादोंके कारण आपने इसे प्राचीन रूढ़ीको दृढ़ करनेकी इच्छासे अभी उक्त पत्रका एक विशेषांक निकाला है परन्तु आपने जिन-जिन विद्वानोंसे अनुनय विनय करके लेख प्राप्त करनेकी इच्छा प्रकट की एकने भी आपकी इच्छाको पूर्ण नहीं किया। विरोधियोंका मुँह तोड़नेके लिये एक भी वाक्शस्त्र आपको न प्राप्त हो सका। इसीलिये आपको अत्यन्त निराशा हुई। इतनेपर भी आपका उत्साह भंग नहीं हुआ। आप अपनी धुनके पक्के मालूम देते हैं। आपसे आशा है कि आप पुरानी लकीरको जो समय अपने पैरोंसे घिसकर मिटाना चाहता है उसे कुरेदकर सजीव रखना चाहते हैं, ऐसा होना ही चाहिये।

अनुभूत-योगमाला—यह पत्रिका आज ६-७ वर्षसे पं० विश्वेश्वरदयालुजी वैद्यराजके सम्पादकत्वमें बरालोकपुर इटावासे निकल रही है। पहिले यह मासिक थी फिर पाक्षिक हो गई। मूल्य ३) वार्षिक है।

पत्रिकाका मुख्य उद्देश्य तो वैद्योंको अनुभूत योग बतलाना है जो उसके नामसे ही स्पष्ट है। दूसरे रोगियोंको परामर्श भी देना था। आजकल छोटेसे छोटे और बड़ेसे बड़े वैद्यके भीतर यह धारणा दृढ़ हो रही है कि भारतमें अनेक व्यक्तियोंके पास ऐसे योग हैं जो किसी निश्चित लक्षणवाली व्याधिको दूर करनेमें रामबाणके तुल्य हैं। ऐसे एक दो अनुभूत योग भी जिनके पास हैं—देखा जाता है कि—वह निरक्षर भट्टाचार्य होते हैं पर वह एक योगकी कृपासे अपनी उदरपूर्ति अच्छी तरह कर लेते हैं। वैद्य भी यही चाहते हैं कि एक अनुभूत योग मिल जाय—चिकित्सा शास्त्रके सभीको जाननेकी जरूरत नहीं, बिना हल्दी फिटकरी योगके ही चोखा रंग आ सकता है। चिकित्सा शास्त्रके अनुशीलनमें तथा अनेक परीक्षाओंमें कौन मगजपच्ची करे यदि सुलभतासे जीवन निर्वाहका साधन मिल जाय। अनुभूत योगमालाने अपने नामकी कृपासे वैद्योंका ध्यान बड़ी तेजीसे अपनी ओर आकृष्ट किया। पं० विश्वेश्वर दयालुजी वैद्यराज एक छोटेसे कसबेमें श्रीहरिहर औषधालय नामका एक औषधालय खोलकर उसको उन्नति देना चाहते थे। इस पत्रिकाने उनके इस कार्यमें महान् सहयोग दिया। आरम्भमें पत्रिकाकी ग्राहक संख्या इतने वेगसे बढ़ी कि शायद कोई वैद्यक पत्रिकाके इतने वेगसे ग्राहक बढ़े होंगे—पत्रिकाकी ग्राहक वृद्धिने अनेक रोगियोंका ध्यान भी श्रीहरिहर औषधालयकी ओर खींचा। अनेक लोगोंने समझा कि उक्त औषधालयमें अनुभूत योग ही बनते होंगे। औषध ग्राहकोंकी संख्या भी बड़े वेगसे बढ़ने लगी। देखते २ थोड़े ही दिनमें उक्त औषधालयने एक छोटेसे स्थानमें रहकर अच्छी उन्नति की। किन्तु, आरम्भमें पत्रिकाके ग्राहक जिस वेगसे बढ़े थे योग्य व अनुभवी वैद्योंके योगोंके अभावके कारण धीरे २ पत्रके ग्राहक-संख्यामें शिथिलता आने लग पड़ी। क्योंकि पत्रमें अनुभूत योग देनेवाले वही पाँच सात लेखक थे जो प्रतिमास अपने योग भेजा करते थे। वह बिचारे भी इधर-उधर किताबोंसे संग्रह करके उसके कलेवरकी पूर्त्ति करते रहे। इसीलिये इसकी ओरसे वैद्यवर्गकी वह रुचि नहीं रही। यदि योग्य सम्पादक नये २ अनुभवी व्यक्तियोंके पाससे योग प्राप्त कर देनेमें समर्थ हों तो पत्रिका पुनः अपने पूर्व स्थितिमें आ सकती है। और उन वैद्योंको लाभ भी हो सकता है जो योगरूपी स्वाती बूँदोंको चातकवत् निहारा करते हैं।

सम्पादकीय-टिप्पणियाँ

श्रीशंकर दाजी पदे स्मारक-कोष

आजसे २५ वर्ष पूर्व न तो वैद्योंका कोई संगठन था न वैद्य-समुदायके लिये कोई कुछ काम करनेवाला था। विदेशमें डाक्टरोंकी संख्या बड़े वेगसे बढ़ रही थी विदेशी चिकित्साका प्रभाव दिन प्रतिदिन बढ़ रहा था। दिन प्रतिदिन आयुर्वेदका ह्रास हो रहा था। ऐसे समय आयुर्वेदकी सार्वभौम उन्नतिके लिये जिस व्यक्तिके हृदयमें भाव जाग्रत हुए, और जिसने आयुर्वेदोद्धारार्थ क्रियात्मक पथको बतानेका क्रम रक्खा, वह थे श्रीयुक्त शंकर दाजी पदे। उन्होंने ही अखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डलकी स्थापना करके वैद्योंमें जागृति उत्पन्न की। उनका ही लगाया यह आयुर्वेदका महा कल्पवृक्ष आज हजारोंको आजीविका प्रदान कर रहा है।

श्रीयुक्त शंकरदाजी पदेने आयुर्वेद और समाजके लिये इतना कार्य किया है और हम उनकी कीर्तिको अचल रखनेके लिये कुछ भी न करें? यह कितनी लज्जाकी बात है!

इस पर विचार करके इस वर्ष अखिल भारतवर्षीय आ. वे. महामण्डलने अपने अहमदाबादके वार्षिक महोत्सवके समय निम्नलिखित आशयका एक प्रस्ताव पास किया है—

"यह सम्मेलन निश्चित करता है कि आयुर्वेद महामण्डलके संस्थापक श्रीयुत् शंकर दाजी शास्त्री पदेका कोई

स्थायी स्मारक बनाया जाय। इस कार्यकी व्यवस्थाके लिये निम्नलिखित सज्जनोंकी एक समिति बनायी गयी—

(१) श्री स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य (संयोजक), (२) वैद्य श्री पं० कृष्णशास्त्री कवडे बी० ए०; (३) श्री पं० वासुदेव महता शास्त्री उज्जैन, (४) श्रीवैद्य सुशीलालजी बड़ौदा, (५) श्री त्र्यम्बक शास्त्रीजी आपटे नासिक।

इस कार्यके लिये अहमदाबादमें सम्मेलनावसरपर धनकी अपील भी की गई थी जिसमें निम्नलिखित सज्जनोंने धन प्रदान करनेका बचन दिया था—

५००) श्री हरिशरणानन्दजी वैद्य, पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी अमृतसर, १००) रु० श्री पं० किशोरीदत्तजी शास्त्री कानपुर, १००) श्रीकविराज प्रतापसिंहजी बनारस। १००) श्री पं० गोबर्द्धनजी शर्मा छांगाणी, १००) राजवैद्य श्री एस० एम० शर्मा अहमदाबाद, १००) श्री पं० नारायणशंकर देवशंकर अहमदाबाद, १००) ऊँझा फार्मेसी, १००), श्री शेठ रमनलालजी, १००) दवे फार्मेसी बम्बई।

इसके अतिरिक्त श्री पं० ठाकुरदत्तजी शर्मा, मालिक अमृतधारा लाहौरने प्रतिवर्ष १ स्वर्णपदक उस विद्यार्थीको अपनी ओरसे देनेकी घोषणा की थी जो आचार्य परीक्षामें सर्व-प्रथम उत्तीर्ण हो।

इस समय आवश्यकता किस बातकी है

श्री शंकर दाजी पदे यह चाहते थे कि भारतके वैद्य वैसे ही सर्वगुण सम्पन्न हों जैसे पूर्वकालमें हुआ करते थे। उनको संगठित कर आधुनिक विचार पद्धतिके अनुकूल बनाया जाय, तथा उनके लिये ऐसा कोई विद्यापीठ बने जिसमें प्राच्य और पाश्चात्य सर्वांगीण विषयोंसे पूर्ण उच्च शिक्षण-क्रम हो। यद्यपि वह अपने जीवनमें इस कार्यको आरम्भ कर गये थे तथापि उसकी वह अपने जीवनमें पूर्ति न कर पाये थे। उनकी महत्वाकांक्षा उनके हृदयमें ही रह गई। महामण्डलने उनकी अभिलाषाओंको पूर्ण करनेके अर्थ निश्चय किया कि अब उनके विचारोंको कार्यरूपमें लानेका प्रयत्न किया जाय।

वह योजना यह है

(१) योग्य छात्रोंको छात्रवृत्ति दी जाय।

(२) अनुसन्धान-कर्ताओंको अनुसन्धानार्थ सहायता पहुँचाई जाय।

(३) स्थायी आदर्श आयुर्वेद विद्यालय स्थापन किया जाय।

आयुर्वेद विद्यालयकी योजनाका आरम्भ १९१७ के नवम्बर मासमें हुआ था। देहलीमें जब भारतभरके नरेशोंकी प्रथम कान्फ्रेन्स १९१७ को नवम्बरके महीनेमें होनेवाली थी, उस समय भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंसे प्रमुख वैद्य देहली पहुँचे और एक डेपुटेशनके रूपमें नरेशोंसे मिले थे, उससमय निम्नलिखित नरेशोंने चन्दा या वचन दिया था—

३०००) रु० तो अलवर नरेशने उसी समय दिया था। १६०००) रु० श्रीमान् रीवां नरेशने देनेका बचन दिया था। ५०००) रु० का श्रीमान जयपुर नरेशने वचन दिया था। और श्रीमान् डूँगरपुर नरेशने व श्रीमान् दतिया नरेशने इस विद्यालयका संरक्षक बनना भी स्वीकार किया था। निम्नलिखित नरेशोंने सहायार्थ बचन दिये थे— श्रीमान् पन्तसचिव भोर, श्री महाराजासाहेब डूँगरपुर, श्रीमान् नबाबजादा पालनपुर, श्रीमान् महाराजा दतिया, श्रीमान् महाराजा साहेब सारंगगढ़, श्रीमान् राजासाहेब खैरागढ़, श्रीमान् राजराना साहेब झालावाड़, श्रीमान् महाराजा साहेब पटियाला, श्रीमान् महाराजा नाभा, श्रीमान् जामसाहेब नवानगर, श्रीमान् महाराजा धार, श्रीमान् राजासाहेब बिलासपुर, श्रीमान् राजासाहब सैलाना, दीवानसाहब कूचबिहार, दीवानसाहब सीतामऊ, श्रीमान् राजासाहब ध्रांगध्रा।

किन्तु शोक, उस समय वैद्योंकी शिथिलताके कारण वह सारा उद्योग मिट्टीमें मिल गया। न तो इसके लिये किसीने समय दिया न वह कार्य आरम्भ हो सका।

हमने इस योजना को पुनः स्मारक रूपमें लाकर सजीव बनानेकी चेष्टा की है। यदि भारतके उद्योगी वैद्य सहयोग देकर इस कार्यमें हाथ बटावेंगे तो यह कार्य कठिन नहीं है। उक्त नरेशोंसे तथा अन्य राजा महाराजाओं, धनपतियोंसे इसमें काफी सहायता प्राप्त हो सकती है। क्या वैद्य समुदाय इस योग्य भी नहीं कि एक आयुर्वेद विद्यालयकी स्थापना कर सके?

हरिशरणानन्द

"आचार्यका" शासनादेश

मैंने विज्ञानके भाग ४२ की संख्या ५ में सम्पादकीय टिप्पणियोंमें "आचार्योंकी घुड़कियाँ" एक शीर्षक दिया था

जिसपर उसके विद्वान् सम्पादकको आक्षेप है। वह इन शब्दोंको मेरे नाम और पदके अनुरूप नहीं समझते, परन्तु मैं तो समझता हूँ। मैं तो आचार्य्य धन्वन्तरीके चरण-रजकी बराबरी करनेकी भी योग्यता नहीं रखता। अतः मैं तो घुड़कियोंकी पात्रताका अभिलाषी हूँ। स्वामी हरीशरणानन्दजी "स्वामी" हैं, और मैं हूँ "दास"। स्वामी कुछ भी कर सकता है, समर्थ है। मैं तो दास हूँ। विद्वज्जनोंके चरणरेणुका आकांक्षी। मैं तो आपकी घुड़कियाँ सुनने और शासनादेश पानेमें अपनेको गौरवान्वित मानता हूँ।

योग्य सम्पादकने मेरे सहसम्पादक स्वामी हरि शरणानन्दजीके लेखमें और मेरे लेखमें अन्तर पाया। परन्तु इतना अन्तर होते हुए भी मैं उनके लेखको योग्यतापूर्ण लिखता हूँ। इस बातका भी उन्हें आश्चर्य है। उन्होंने विज्ञानके सम्पादकोंकी स्थिति नहीं समझी है। मैं निवेदन किये देता हूँ।

"विज्ञान" मासिक पत्रका उद्देश्य है हिन्दीमें वैज्ञानिक सुबोध साहित्य उत्पन्न करना। यही सेवा वह बीस बरसोंसे करता आ रहा है। सेवामें अल्पज्ञ सेवकोंसे त्रुटियाँ हो जानी स्वाभाविक हैं, होती ही रहती हैं, उसके आवरण-पत्र पर मेरे सिवा छः विशेष सम्पादकोंके नाम हैं। प्रत्येक विद्वान् अपने अपने विषयका विशेषज्ञ है। मैं तो किसी विषयका विशेषज्ञ नहीं हूँ। हर एक अपने विषयपर योग्यता पूर्ण लेख दे सकता है, टीका टिप्पणी कर सकता है। विद्वान् लेखकोंकी रचनाएँ पाठकोंके सामने रखनेकी सेवाही मैं करता हूँ। यह बहुत संभव है कि एक लेखका कोई एक अंश दूसरेके विरुद्ध भी पड़ जाय। हम लोगोंमें यह समझौता है कि हम मतभेद प्रकट करेंगे तब भी सहेंगे और पारस्परिक सहकारिता जारी रखेंगे। स्वामी हरिशरणानन्दजीने बड़ी योग्यतासे ईथरको ईश्वर सिद्ध करनेका प्रयत्न किया। वह लेख और साथ ही मेरा मतभेद भी विज्ञानमें निकल चुका है। वह पंचमहाभूतको खंडन करते हैं, मैं समन्वय करता हूँ। इसी तरह आचार्य्य धन्वन्तरिके विद्वान् सम्पादक मेरे पक्षको न समझकर बड़ी योग्यता पूर्वक मेरी टिप्पणियोंका खंडन करनेकी चेष्टा करते हैं। जब कभी मेरे समन्वयको वह हृदयंगम कर लेंगे उनका भेदभाव अवश्य शान्त हो जायगा। अभी अनेक विरोधी विषयोंको पढ़कर दिमागमें अनेक विषयोंकी अद्भुत खिचड़ी हो जाती है, जिससे पढ़नेवाला पागल हो जाय। परन्तु इस उन्मादका इलाज भी तो आचार्य्यके ही हाथोंमें है। आचार्य्यका धन्वन्तरित्व किस दिन काम आवेगा?

मैं विद्वद्वर कविराजके लेखोंको भी योग्यता पूर्ण ही पाता हूँ। जिन बातोंको हजारों माने हुए वैज्ञानिक विद्वान् ठीक समझते हैं उनकी धज्जियाँ उड़ा देनेका सामर्थ्य जिसमें हो उसकी योग्यता साधारण कैसे हो सकती है! "विज्ञान" बच्चोंको समझानेको निकलता है, विद्वानोंको नहीं। यह मेरी भूल और ढिठाई थी कि मैंने लिख दिया कि चार पाँच बरसके अंक पढ़नेसे आपको बोध हो जायगा। 'विज्ञानके' ढाई सौ अंक भी समर्थ नहीं हो सकते, क्योंकि विद्वानोंके योग्य उसमें सामग्री कहां है? रा० गौ०

वर्तमान शिक्षा

विज्ञानके कालमोंमें हम अनेक बार वर्त्तमान शिक्षाकी बुराइयोंपर पाठकोंका ध्यान आकृष्ट कर चुके हैं। कल्याण-सम्पादक श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दारने यही शीर्षक देकर ३३ पृष्ठोंकी एक बड़ी उपयोगी पुस्तिका लिखी है। आपने वर्त्तमान शिक्षामें नीचे लिखे दोष दिखलाये हैं—

१—ईश्वर और धर्म्ममें अविश्वास

२—संयमका अभाव।

३—ब्रह्मचर्य्यका अभाव।

४—माता पिता आदि गुरुजनोंमें अश्रद्धा।

५—प्राचीनताके प्रति विद्वेष।

६—विलासिता और फजूल खर्ची।

७—खेती दूकानदारी और घरेलू कला कौशलके कार्य्योंके करनेमें लज्जा। और

८—सरलताका अभाव।

इन आठ दोषों पर कुछ विस्तारसे विचार करके आपने **स्त्री शिक्षा, तलाक और सन्तति विरोध, सामानाधिकार, समान शिक्षा और सह-शिक्षा, सिनेमा,** इन पांच विषयों पर आपने अपने समीचीन विचार रखे हैं। इनमेंसे एक बात भी ऐसी नहीं है जिसके अक्षर अक्षरसे कोई समझदार हिन्दू सहमत न हो। आपने केवल रोग ही नहीं बतलाया। उसके इलाजका नुसखा भी आपने बड़ा ही उपयोगी तजवीज किया है। इस नुसखेको हम

अगले अंकमें उस पुस्तिकासे उद्धृत करके पाठकोंकी भेंट करेंगे। पोद्दारजीके इन विचारोंसे मैं पूर्णतया सहमत हूँ।

रा० गौ०

क्या यह हिन्दी है ?

लखनऊ और दिल्ली दोनों शहर उर्दूके केन्द्र अथवा कैपिटल माने जाते हैं। कांग्रेसके गत अधिवेशनमें जो लखनऊमें हुआ था काशीके श्री श्रीप्रकाशजी बड़ी जल्दीमें स्वागताध्यक्ष चुने गये। इस पदसे जो उन्होंने स्वागत-वक्तता दी उसकी शैली प्रायः उर्दू थी और लिपि नागरी। वह भाषण मुझे श्रीप्रकाशजीके लेखोंमें सब तरहसे सर्वोत्तम लगा। मैं उसे हिन्दीसे भिन्न नहीं समझता, यद्यपि स्वयं श्री श्रीप्रकाशजी उसे उर्दू कहते हैं।

वैज्ञानिक दृष्टिसे मैं उर्दू-हिन्दी दोनों शौलियों को एक ही भाषा मानता हूं। संसार की सभी भाषाएं संज्ञा-प्रातिपादिकोंकी सहज ही अदला बदली करती हैं। प्रत्येक भाषाके प्रत्यय, क्रियापद और अव्यय अपने होते हैं और इन्हींसे उनकी इयत्ता है। इस कसौटीसे उर्दू भी हमारी उस प्राकृतकी एक शैलीमात्र है जिसे हम आज अपनी **खड़ी-बोली (स्टैंडर्ड-लैंग्वेज)** बना चुके हैं। यह सच है कि इस शैलीके अपनानेवाले बहुत ही थोड़े हैं और समझ सकनेवालोंकी संख्या भी उनसे कुछ ही अधिक है। उपहिन्दी–भाषी भारतीय प्रान्तोंके लोगोंके लिये तो वह तो फारसी भाषाके बराबर नहीं, तो उससे कुछ कमही विदेशी है। दूसरी ओर पण्डिताऊ शैलीको लीजिये जो तत्समोंसे भरी होती है। उसे उप-हिन्दी-भाषी भारतीय विद्वान् तो शायद आसानीसे समझ जायेंगे परन्तु अपनेही हिन्दी भाषी बेपढ़े देहाती न समझ सकेंगे? विहारके प्रसिद्ध विद्वान् कवि और लेखक श्री मोहनलालजी महतो साप्ताहिक विश्वमित्रमें पूछते हैं कि "क्या यह हिन्दी है?" उनका प्रश्न असलमें यह मालूम होता है कि "क्या इस तरहकी शैली प्रोत्साहनीय है ?" मैं कहूँगा "कदापि नहीं। यह शैली विशेष प्रकारके लोगोंके लिये है, और कांग्रेसके प्रतिनिधियोंमें बहुत लोगोंने न समझा होगा। मैं तो उसी भाषाका प्रचार चाहूँगा जिसे भारतके अधिकसे अधिक लोग समझें।"

परन्तु लखनऊके स्वागताध्यक्षके मुखसे स्वागत भाषणकी शोभा मैं इसी शैलीमें मानता हूँ, क्योंकि वह "लखनऊ" के पुराने दिनोंकी याद दिलाती है। इसीलिये मैं श्री श्रीप्रकाशजीके उस भाषणको बहुत उपयुक्त समझता हूँ।

रा० गौ०

मानव जातिभेद।

मानव जाति-शास्त्रियोंने संसारके मनुष्योंकी तीन या चार ही जातियाँ स्थिरकी हैं। परन्तु किसी विभागके लिये ठीक वैज्ञानिक निश्चय नहीं हुआ है। इस शास्त्रके पाश्चात्य विज्ञानी पहले मूसाके पाँचों पुराणोंसे प्रभावित होनेके कारण नूहके तीनों बेटों, साम, हाम और जाफतसे सारी मनुष्य जातिको मानते थे। परन्तु उन्होंने जब संसारके सब तरहके मनुष्योंका अनुभव किया तो आर्य्य, मंगोल, हबशी और लाल यह चार जातियाँ मानीं। शास्त्रियोंने खोपड़ी और नाककी हड्डियाँ नाप-नापकर विभेदकी परिभाषाएँ दीं। परन्तु ये विभाग अनेक देशोंके निवासियोंमें मिलते जुलते देख पड़े। इनपर भी वैज्ञानिकोंका मत स्थिर नहीं हुआ। १८ अप्रैल, १९३६के **नेचर**के सम्पादकीय अग्रलेखमें जाति विभागकी परिभाषापर विचार करते हुए, यह कहा गया है कि सभी जातियाँ ऐसी मिश्रित हो गयी हैं कि विभागका रूप अत्यन्त स्थूल हो गया है।

हिन्दू स्मृतियोंमें भी वर्णविभाग मनुष्य मात्रका किया गया है। "वर्ण" रंगको ही कहते हैं। कर्म्म विभागके पहले वर्णका स्पष्ट वर्णन हुआ है। ब्राह्मणका श्वेत, क्षत्रियका रक्त, वैश्यका पीला और शूद्रका काला रंग बतलाया गया। इस हिसाबसे युरोपके गौर ब्राह्मण हैं, अमेरिकाके आदि निवासी रक्तवर्णवाले क्षत्रिय, चीनी जापानी पीले वर्णवाले वैश्य और काले हबशी शूद्र हैं। भारतके प्राचीन विज्ञानियोंने रंगको ही प्रधान माना। फिर भी प्रत्येक देशमें चारों रंगके लोग पाये जाते हैं। इस तरह वर्ण विभाग भी ठीक-ठीक नहीं मिलता। मिश्रणवाली बात यहाँ भी देखी जाती है। एक बात और है। हमारा वर्ण विभाग अधिक व्यापक है। हमारे साहित्यमें चारों वर्णोंका विभाग मनुष्योतर चराचर सृष्टिमें माना जाता है।

रा० गौ०

सौर ब्रह्माण्ड कैसे बना ?

नेचरके १८ अप्रैल १९३६के अंकमें प्रिंसटन युनिवर्सिटीके यन्त्र मन्दिरसे श्रीरेमण्ड ए० लिटूलटन महोदय

लिखते हैं कि प्रोफेसर रसेलने अपनी हालकी छपी "दि सोलरसिस्टम ऐण्ड इट्स् ओरिजिन" नामक पुस्तकमें यह दिखाया है कि दो सितारोंके लड़ जानेवाली धारणा से कई कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं। परन्तु दोनों पिंडोंमेंसे सूर्य्यके अतिरिक्त दूसरेका तिरोभाव करनेके लिये एक तीसरे सितारेसे केन्द्रीय भिड़न्त करानेकी आवश्यकता पड़ती है। परन्तु श्रीलिट्लटनने दिखाया है कि सूर्य्यके साथीसे दूसरेसे भिड़ानेमें सारे ब्रह्माण्डके तखड़-पखड़का अन्देशा है, क्योंकि दोनों सूरजसे ही निकलते हैं।

यदि हम मान लें कि पहले भिड़न्तमें ही दोनों पिण्डोंके बीचसे कुछ थोड़ी थोड़ी मात्रा निकल पड़ती है, तो यह सहज ही माना जा सकता है कि इस मात्राके विविध अंशोंके सूर्य्य सापेक्ष वेग प्रायः समान भावसे दोनों भगोड़े तारोंमें बँट जायगा। भिड़न्तकी अनेक और विविध दशाओंमें उस मात्राका उचित अंश इस तरहका बच सकता है जिसमें सूर्य्यसे छूटनेकी अपेक्षा कम वेग हो और इस प्रकार आदिम ग्रहोंका निर्म्माण हो जाय। इस तरह अनेक आदिम ग्रहोंका बनना सम्भव है। साथ ही इन ग्रहोंके परस्पर भिड़न्तसे उपग्रहोंका बनना भी संभव है। जैसे पृथ्वी और शुक्रके भिड़न्तसे पृथ्वीके चन्द्रमाका बनना संभव है।

हिन्दू पुराणोंमें विष्णुके कानोंके मैलसे मधुकैटभ दो दैत्योंकी उत्पत्ति और फिर उन्हींसे दोनोंकी भिड़न्त और उनके भेदसे मेदिनीका बनना, फिर मेदिनीसे मंगल ग्रहका बनना, फिर मेदिनीके मन्थनसे चन्द्रमाका बनना, फिर चन्द्रमा और बृहस्पति पत्नी ताराके संयोग या भिड़न्तसे बुधका होना, इन बातोंपर विचार करके क्या हमारे गणिताचार्य्य ज्योतिर्विद यह अनुमान नहीं कर सकते कि गणितकी दृष्टिसे सृष्टिकी यह कथाएँ वस्तुतः ब्रह्माणु निर्म्माणका वास्तविक पता देती हैं? रा० गौ०

ओषजनकी कमीपर कर्बनद्वयोषिदका इष्ट प्रभाव

शिकागोसे श्रीगेलहार्न २५ अप्रैलके नेचरमें लिखते हैं कि प्रयोग करके देखा गया है कि सांस लेनेको जब ओषजनकी कमी होती है तब शरीरमें शिथिलता आ जाती है किन्तु यदि वायुमें कर्बनद्वयोषिदकी मात्रा साधारणसे कुछ अधिक हो तो वह शिथिलता नहीं आने पाती। यह बात भी प्रकृतिमें बड़ी लाभदायक है। यही बात है कि साधारण भीड़ोंमें लोग रहते और काम करते हैं। शिथिलता नहीं आती। रा० गौ०

धरतीके सबसे पासका पिण्ड

अब तक जो पिंड धरतीके सबसे पास है, वह उसका उपग्रह चन्द्रमा है जो मध्यमानसे स्थूलरूपसे ढाई लाख मीलके लगभग है। लेक्सेलने सन् १७७० में एक धूमकेतुका पता लगाया था जो हमारी धरतीसे चौदह लाख मील आ गया था। हालके खोजे हुए कई ग्रह और भी पासके पिंड जान पड़ते हैं। चार ही बरस हुए अपमोर नामका ग्रह एक करोड़ मीलके भीतर आ गया था। 1932 HA कुल ६० लाख मीलोंके भीतर पाया गया। अब इसी साल ७ फरवरीको डेलपोर्टने उक्कलमें 1936 CA को लख लिया जो केवल पौने चौदहलाख मीलकी दूरी पर है। इसके चक्करका पता नहीं लग सका है। यह संभव है कि कभी भविष्यमें यह हमारी धरतीसे टकरा जाय। यह भी संभव है कि यह ग्रह टकरानेके बदले हमारी धरतीसे उत्तरोत्तर दूर होता जाय। यदि टकराया तो संभव है कि सौ मीलके व्यासमें यह प्रचंड भिड़न्त हो जाय। रा० गौ०

सर जार्ज ग्रियर्सनका सम्मान

विगत ७ जनवरीको सरजार्ज ग्रियर्सनकी पचासीवीं वर्ष गाँठ थी। उस अवसरपर उनके मित्रोंने उनके सम्मानमें "इंडियन एँड ईरानियन स्टडीज़" नामका एक ग्रंथ भेंट किया है। सरजार्ज ग्रियर्सनकी भारतीय भाषाओंकी सेवासे सभी परिचित हैं। यह ग्रंथ लंदन विश्वविद्यालयके प्राच्यानुशीलन विभागकी ओरसे विशेषांककी तरह प्रकाशित हुआ है। [Bull. 8, 2-3; 504. 25s.] संसारके अनेक देशोंसे जिसमें अमेरिका और भारतवर्ष शामिल है, तिरपन विद्वानोंने इसमें अपने लेख दिये हैं और इन लेखोंके लिये उन्होंने ग्रियर्सनकोही मूलस्रोत स्वीकार किया है। इनमें अनेक खोजके लेख हैं। नेचर [२५-४-३६] की रायमें ऐसे भारी विद्वानूके लिये भी यह भेंट साधारण नहीं है।

अपने भारतीय विद्वानोंका भी इसी प्रकार सम्मान करना हमने सीखा है। परन्तु ऐसे प्रकाशन विश्वविद्यालयों द्वारा होने चाहिये और विश्वविद्यालयोंके विद्वानोंको हमारे देशमेंभी ऐसे सम्मानदानमें काफी रस लेना चाहिये।

रा० गौ०

वैज्ञानिकोंको चक्करमें डालनेवाला चमत्कार

लंडनके पटनम कम्पनीने इसी साल एक पुस्तक छापी है। इसका नाम है Confessions of a Ghost-Hunter. इसके लेखक हैं श्री हरी प्राइस। [Pp. 396 + 16 plates. 10s. 6d. net] इसकी समालोचना करते हुऐ नेचरने [May 9, 1936] लिखा है कि इस पुस्तकमें प्रसिद्ध आगपर चलनेवाले खुदाबख्शके एक और चमत्कारकी चर्चा है। वह आंखोंपर पूरी पट्टी बाँधकर मजेसे पढ़ लेता है। इसे श्री प्राइसने "अत्यन्त दिलचस्प, मनोरंजक और चक्करमें डालनेवाला चमत्कार" लिखा है। निष्कर्ष यह कि प्राइस जैसी तीक्ष्ण दृष्टिवाला निरीक्षक भी रहस्यका भेदन न कर सका। बाहरे खुदाबखश!!

असंगत अपमानजनक चर्चा

पं० देवराजजी शास्त्री जो पहले कभी पंजाब आयुर्वेदिक फारमेसीमें भी काम कर चुके हैं, आजकल श्रीकृष्ण फारमेसीके मैनेजर हैं। शास्त्रीजीके एक पूर्व साझीदार श्री हरिश्चन्द्रजी कविराजने प्रतापमें एक नोटिस निकाला जिसमें पं० देवराजजीकी कुछ शिकायत थी। उसके उत्तरमें शास्त्रीजीने अपनी फार्मेसीके १९३५ फरवरीके सूचीपत्रमें भूमिकाकी तरह उस फारमेसीका इतिहास देते हुए श्री हरिश्चन्द्रजीके सम्बन्धमें ऐसी अनुचित चर्चाकी कि जिस पर श्री हरिश्चन्द्रजीने मानहानिका दावा कर दिया। शास्त्रीजीपर अदालतने ५०) जुर्माना अथवा बदलेमें एक मासकी कैदकी सजा दी। शास्त्रीजीने अपीलकी उस पर सजा घटकर १०) जुर्माना कायम रहा। दोनों ओरका खर्चा और परेशानी अलग, व्यापार करनेमें एक दूसरेपर दोष लगाकर अपना भला चाहना भारी भूल है। अपनी चीज़को निर्दोष बनाइये। उत्तमता स्वयं उत्तम परिणाम लायेगी। व्यापारी सूची पत्रों और नोटिसोंमें व्यक्तियोंकी चर्चा असंगत और अनुचित है। परन्तु व्यापारियोंको नीतिका उपदेश व्यर्थ है।

—हरिशरणानन्द

अखिल भारतीय साहित्य परिषत्

गत अप्रैलकी २५ तारीखको समस्त भारतीय भाषाओंके साहित्यके पारस्परिक विनिमय एवं हिन्दीको साहित्यिक दृष्टिसे भी पूर्ण राष्ट्रिय बनानेके लिये महात्मा गांधीके सभापतित्वमें अखिल भारतीय साहित्य परिषत्‌की स्थापना हो गयी। उसका मुखपत्र "हंस" तो पहलेसे ही निकल रहा है और उसमें अन्य प्रान्तीय साहित्योंका प्रतिनिधित्व भी अच्छा ही है। देशके लिये यह सौभाग्योदय है।

जैसे यह अत्यन्त आवश्यक काम साहित्यके लिये हुआ है, वैसे ही क्या विज्ञानके लिये भी कभी होगा?

उसके मार्गमें अनेक बाधाएँ हैं। जहां अंग्रेजी विश्वविद्यालयोंके अच्छेसे अच्छे साहित्यिक देशी भाषाओंमें वाङ्मयकलाका अभ्यास करते हैं, वहाँ वैज्ञानिक विद्वान् अंग्रेजी भाषामें ही लिखनेमें अपना गौरव मानते हैं। और देशी भाषाओंको फूटी आँखों भी नहीं देखते। देशी भाषाओंमें साहित्यिक पत्र पत्रिकाओंका प्राचुर्य्य है परन्तु वैज्ञानिक पत्रोंकी संख्या इतनी कम है, कि वे एक हाथकी उँगलियोंपर भी गिनतीमें नहीं आते।

फिर कहा जायगा कि "इंडियन इंस्टिट्यूटफर सायंसेज" तो बन गया है। परन्तु वह तो "नैशनल" व्यर्थ ही कहा गया क्योंकि उसकी भाषा राष्ट्रीय नहीं है। देशकी भाषामें जबतक राष्ट्रकी शिक्षा, राष्ट्रीयवाङ्मय, और राष्ट्रीय वैज्ञानिक साहित्य अपने पूर्ण रूपमें प्रकट नहीं होते, तबतक हमारी राष्ट्रियता इन क्षेत्रोंमें कहाँ है?

रा० गौ०

अन्तरिक्षकी वैज्ञानिक सैर

पूर्णसंख्या—*Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and*
२५७ *Central Provinces, for use in Schools and Libraries.* Reg. No. A. 708

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का मुखपत्र, जिसमें अमृतसरका आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

भाग ४३ सिंहार्क, संवत् १९९३ संख्या ५

Vol. 43 अगस्त, १९३६ No. 5

प्रधान सम्पादक—रामदास गौड़ एम्० ए०

विशेष सम्पादक—

गोरखप्रसाद, डी० एस-सी, (गणित और भौतिक-विज्ञान) स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य (आयुर्वेद-विज्ञान)
रामशरणदास, डी० एस्-सी, (जीवन-विज्ञान) श्रीचरण वर्मा, एम्० एस्-सी०, (जंतु-विज्ञान)
श्रीरंजन, डी० एस्-सी, (उद्भिज्ज-विज्ञान) सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी, (रसायन-विज्ञान)

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [इस प्रतिका मूल्य ।)

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्‌के अधिकारी

पत्र-व्यवहार करनेवाले नोट कर लें

१—बदलेके सामयिक पत्र, समालोचनार्थ साहित्य, आयुर्वेदको छोड़ और सभी विषयोंके लेख एवं सम्पादन-सम्बन्धी पत्रादि "सम्पादक, विज्ञान, बनारस शहर" इस पतेसे भेजना चाहिए।

२—विज्ञान एवं विज्ञान-परिषत्, विज्ञापन, वैज्ञानिक साहित्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्ध समस्त पत्र, मनीआर्डर आदि "मंत्री, विज्ञान परिषत्, इलाहाबाद" इस पतेसे भेजना चाहिए।

३—आयुर्वेद-सम्बन्धी सभी लेख उस विषयके विशेष सम्पादक स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य, पञ्जाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसरके पतेसे भेजे जाने चाहिए।

विषय-सूची

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,

विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ०।३।५॥

भाग ४३ } प्रयाग, सिंहार्क, सं० १९९३ वि० । अगस्त, सन् १९३६ ई० { संख्या ५

मंगलाचरण

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत् तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ।

(यजु० ४०।२)

यह अचल है, एक है, मनसे अधिक वेगवान् है, देवोंकी इस तक गति नहीं है, वह पहलेसे ही पहुँचा हुआ है, वह बैठा-ही-बैठा दौड़में सबसे आगे रहता है, उसीमें (सूक्ष्म) वायु (स्थूल) जलको धारण किये रहती है ।

कारखानेके लिए योग्य स्थानका निर्णय ※

[ओङ्कारनाथ शर्मा, ए० एम० आई० लोको० ई०, जे० एस० एम० ई० इत्यादि]

"कारखाना कहाँ स्थापित करना चाहिये ?"—किसी उद्योग धन्धेको आरम्भ करनेवालेके सामने सबसे पहिले, यह मुख्य प्रश्न उपस्थित होता है। कारखानेके स्थानका, उसके सारे प्रबन्ध और लाभ-हानिके ऊपर बड़ा असर पड़ता है। वास्तवमें देखा जाय तो कारखानेके व्यापारकी उन्नति और अवनति इसीके ऊपर, बहुत कुछ, निर्भर रहती है।

यहाँपर यह मान लिया गया है कि जिस वस्तुके निर्माणके लिये कारखाना खोलनेका विचार किया गया है, उस वस्तुकी खपतके लिये बहुत मैदान है, वह व्यापार चल भी निकलेगा और कारखानेको चलानेके लिये यथेष्ट पूँजी भी तैयार है। अतः अब स्थानका निर्णय करनेके लिये हमें निम्नलिखित प्रश्नोंपर विचार करना चाहिये—

१—निर्दिष्ट स्थानकी प्राकृतिक अवस्था हमारे उद्योगके अनुकूल है या नहीं ?

२—वहाँपर हमें काम करनेवाले मज़दूर मिलेंगे, या नहीं ? नये कार्यकर्त्ताओंके रहनेके लिये उचित प्रकारके मकान भी मिलेंगे या नहीं ? यदि नहीं मिल सकते तो कारख़ानेके मालिकको मकान बनवाने पड़ेंगे, उसके लिये ज़मीनका प्रबन्ध हो सकता है या नहीं ?

३—उस स्थानके पास कोई शहर या बड़ा क़स्बा है या नहीं, जहाँ हमारी प्रति दिनकी आवश्यकताकी वस्तुएँ मिल सकें।

४—कच्चा माल लेने और तयार माल भेजनेके लिये, रेल और सड़कोंका उस स्थानसे उचित लगाव है या नहीं ?

५—यदि कारख़ानेकी भविष्यमें वृद्धि करनेकी आवश्यकता पड़े तो वह हो सकती है या नहीं ?

६—कारख़ानेका काम चलानेके लिये, वहाँ आस पाससे, थोड़ेसे व्ययमें शक्ति प्राप्त हो सकती है या हमें स्वयं अपने लिये अलहदा पावर-हाउस बनाना पड़ेगा ?

७—वहाँ रोशनीका क्या प्रबन्ध होगा ?

८—क्या हमें अपने कामके लिये अच्छा जल उचित मात्रामें मिल जायगा ?

९—वहाँका जलवायु कार्यकर्त्ताओं और उद्योगके लिये किसी प्रकारसे हानिकारक तो नहीं है ?

१०—उस स्थानपर ज़मीनका मूल्य, सरकारी कर और भविष्यमें होनेवाले ख़र्च हमारे अनुकूल हैं या नहीं ?

११—कारख़ानेसे उत्पन्न होनेवाला शोरगुल, धूँआं, मैला वग़ैरा और गाड़ियोंका आना-जाना वहाँके नियमके अनुसार किसीको बुरा तो नहीं मालूम होगा ? और क्या वहाँकी सरकार इसके लिये आज्ञा दे देगी ?

प्राकृतिक अवस्था

प्राकृतिक अवस्थाका प्रश्न छोटे कारख़ानोंके स्थापित करते समय इतना सामने नहीं आता जितना कि बहुत बड़े कारख़ानोंके लिये। बड़े कारख़ानोंके सम्बन्धमें ज़मीनकी ऊँचाई, नीचाई और मकानोंकी बुनियादके विषयमें अधिक ध्यान देना आवश्यक होता है। बड़े कारख़ानोंमें अक्सर बड़े-बड़े इञ्जन लगाये जाते हैं। अतः उनके लिये जलकी समीपता और बाहुल्य आवश्यक है।

नदीका किनारा

यदि किसी नदीके किनारे कारख़ाना बनाना आवश्यक हो, तो वहाँ ख़याल रखना चाहिये कि वहाँकी ज़मीन बहुत मुलायम और रेतीली होती है अतः उस ज़मीनमें गहरा बरमा चलाकर देखना चाहिये कि नीचेकी ज़मीन किस प्रकारकी है और वह कितना बोझा सम्हाल सकती है। उस ज़मीनमें प्रतिफुट, कम-से-कम, १५ टन बोझा सम्हालनेकी क्षमता होनी चाहिये; क्योंकि उसके ऊपर बड़े-बड़े लोहेके और पत्थरके स्तम्भ होंगे जिनके ऊपर बड़ी भारी-भारी लोहेकी छतें होंगी, कई जगह

※ लेखक द्वारा लिखी हुई "औद्योगिक प्रबन्ध" नामक एक अप्रकाशित पुस्तकका प्रथम अध्याय।

विशाल टंकियाँ रखी जावेंगी, कहींपर बड़े-बड़े क्रेन चलेंगे। इसलिए बुनियाद लगाते समय यह देख लेना चाहिये कि या तो वह पक्की चिकनी मिट्टीपर जमायी जा रही है या कङ्करीली ज़मीनपर, और उसके नीचे अब और कोई मुलायम मिट्टीकी तह नहीं रह गयी है। कई बेर बुनियाद रखनेके लिये खूब खोदनेपर भी सख़्त ज़मीन नहीं मिलती, बल्कि जितना नीचे खोदते हैं उतनी ही मुलायम मिट्टी निकलती है और कीचड़ भी निकलने लगता है। यदि वहींपर कारख़ाना बनानेमें अधिक लाभ हो तो, कङ्करीट और सीमेन्टके लट्ठे बनाकर गहरे ठोकने होते हैं और फिर उनपर बुनियाद उठानी पड़ती है। इसमें ख़रचा तो बहुत होता है, यदि लाभ बहुत अधिक हो तो ऐसा करनेमें भी कोई हानि नहीं।

डेटम लाइन (Datum line)—जहाँ बड़े-बड़े वाष्प इञ्जन लगाने होते हैं और बहुत अधिक शक्ति उत्पादन करनी होती है, वहाँ एक निर्दिष्ट रेखा स्थापित करनी होती है और उसीसे सब स्थानोंकी ऊँचाई और नीचाई नापी जाती है, यह रेखा खूब सोच-विचारके बाद स्थापित करनी चाहिये। नदीके मुहानोंपर अथवा नदीमें जहाँ ज्वारभाटा आया करता है वहाँके पानीकी सतहसे वाष्प घनीकरण (Condensing water level) जलकी सतह, उसके नलोंकी सतह और इञ्जनगृह आदिकी सतह निर्धारित करनी चाहिये। पहिलेसे यह निश्चय कर लेनेसे पता चल जाता है कि कहाँसे कितनी ज़मीन खोदी जावेगी अथवा उसमें कितना भरत भरा जावेगा। साथ हीमें यह भी देखना चाहिये कि बरसाती और मैले पानी और कचड़े आदिको निकालकर कहाँ डाला जायगा। इसमें किसी प्रकारकी बाधा तो नहीं उपस्थित होती और उससे जनताको किसी प्रकारकी हानि तो नहीं पहुँचती।

पहाड़ी प्रदेश—यदि कारख़ाना किसी पहाड़ी प्रदेशमें किसी झरने वग़ैराके पास बनाना है तो वहाँपर इमारत तैयार करनेके लिए मसाला पहुँचाने, कच्चा माल पहुँचाने आदिमें क्या व्यय होगा यह भी सोचना चाहिये।

मज़दूरी और कारीगर

जहाँ किसी विशेष प्रकारका सामान तयार करनेके लिये कारख़ाना खोलना होता है, वहाँ मज़दूरीका प्रश्न भी एक बड़ा विकट प्रश्न होता है। उद्योग-धन्धोंको केन्द्रीभूत करनेसे इस विषयकी उलझनें बहुत कुछ सुलझ जाती हैं क्योंकि वहाँ अच्छे कारीगरोंकी सदैव माँग बनी ही रहती है। बेकार कारीगर और मज़दूर लोग भी वहींपर काम ढूँढ़नेको चले आया करते हैं, इसलिये औद्योगिक केन्द्रोंमें कारीगरोंका अभाव नहीं रहता। लेकिन किसी विशेष प्रकारका काम करनेके लिये उसी विषयमें चतुर कारीगरोंकी आवश्यकता पड़ा करती है और ऐसे विशेषज्ञ कारीगर वहीं मिल सकते हैं जहाँ उस प्रकारका काम हुआ करता है या हो सकता है। इसलिये जहाँ जिस विषयके जाननेवाले कारीगर बहुतायतसे मिलें वहींपर कारख़ाना बनाना अधिक लाभप्रद होता है। इसके लिये यह आवश्यक नहीं है कि कारख़ाना किसी शहरमें ही बनाया जाय, वह शहरके आस-पासके प्रान्तमें, जहाँ सामानकी (Transport) ढुलाईके लिये सड़कों और रेलकी अच्छी सुविधा हो, बनाया जा सकता है। हाँ, इसमें एक बात और ध्यान रखनेकी है कि उस प्रान्तमें काफ़ी ज़मीन और रहनेके लिये मकान खाली होने चाहिये, जिससे भविष्यमें उस उद्योगके बढ़नेकी गुँजाइश हो। किसी जगहपर किसी उद्योग धन्धेके बढ़नेसे वहाँकी आबादी भी बढ़ती है और जब किसी स्थानकी आबादी उसके बूतेसे अधिक बढ़ती हुई देखी जाती है तब वहाँके ज़मीन वाले ज़मीनके दाम बहुत बढ़ा देते हैं। उस समय यदि कारख़ानेको बढ़ानेकी आवश्यकता पड़े तो और ज़मीनका मिलना कठिन हो जाता है। ऐसे मौक़ोंपर कारख़ानेके मालिकोंके सामने एक बड़ी विकट समस्या उपस्थित हो जाती है और कई बेर तो बढ़ता हुआ व्यापार रुक जाता है।

कारीगरोंके लिये सुविधायें:—यदि कारख़ाना शहरसे काफ़ी दूरपर बनाया जावे और उसके आस-पास रहने वालोंके लिये अच्छे मकान भी बना दिये जावें और रोज़की आवश्यकताकी वस्तुएँ बेचनेवाले कुछ ईमानदार दुकानदार भी वहीं बसा लिये जावें और शहर भी वहाँसे दो चार मीलकी दूरीपर ही हो तो वहाँ भी अच्छे कारीगरोंके आकर्षित होनेकी बहुत

सम्भावना हो जाती है। यदि वहाँपर रेल अथवा ट्रामवेका भी लगाव हो तो शहरसे काम करनेवाले लोग भी आ सकते हैं।

कारीगरोंके घर स्वास्थ्य और रक्षा—यहाँ पर साथ हीमें एक और बात याद दिलानेकी है, वह यह कि कारख़ानेके लिये स्थान चुनते समय और आस-पासमें मज़दूरोंको बसाते समय ध्यान रखना चाहिये कि वहाँ-पर केवल उनकी रोज़की आवश्यकतायें ही पूरी करनेका प्रबन्ध न हो बल्कि वहाँका जल और वायु भी आरोग्य-प्रद होना चाहिये और साथ हीमें मज़दूरोंका उत्तम चिकित्सा और दवाका भी सुभीता होना चाहिये। उनके घर भी खुले हुए, सब ऋतुओंमें सुखद और सुहावने होने चाहियें। उनके घरोंकी चोरी और डाके आदिसे रक्षा करने को चौकीदारोंका प्रबन्ध भी होना चाहिये। घरोंकी सफेदी, टूट-फूट आदि ठीक करने और मेहतर आदिका प्रबन्ध भी कारख़ानेके मालिकोंकी ही ओरसे होना चाहिये।

कारीगरों और मालिकोंका सम्बन्ध—यह बात, लेखक किसी पक्षपातके कारण नहीं कहता, बल्कि यह सर्वमान्य सिद्धान्त है जिसकी अधिकतर भारतवर्षमें उपेक्षा की जाती है, वह यह कि यदि मज़दूरोंके साथ उनके अफ़सरोंका सदैव सहानुभूतिपूर्ण बर्त्ताव रहे और घरपर उन्हें और उनके बच्चोंको किसी प्रकारका कष्ट न हो, जिससे दिनमें काम करते समय वे अपने घरकी चिंताओंसे मुक्त रहें तो इसका उनके कामपर बड़ा अच्छा असर पड़ता है और वे अपना काम बड़ी दिल-चस्पी, बुद्धिमत्ता और मेहनतसे करते हैं और यहाँ तक कि वे कभी भी अपने अच्छे मालिकोंको छोड़ना नहीं चाहते। इस प्रकारसे दोनों दलोंका लाभ होता है और हमेशा नये कर्मचारी बदलनेके कारण जो कारखानेके मालिकोंकी अकथनीय हानि होती है वह नहीं होगी। कारखानेके मालिकोंको चाहिये कि वे अपने मज़दूरोंके साथ इतना उत्तम व्यवहार करें कि जिससे मज़दूर लोग अपनेको कारखानेका साझी समझने लगें और कारखानेके लाभ और हानिमें अपनी ही लाभ और हानि समझें।

यदि कारखानेके मालिकोंका व्यवहार अपने मज़-दूरोंके साथ उत्तम न हुआ तो इसका बहुत बुरा असर होगा और यहाँतक कि मज़दूर लोग अपने अफ़सरोंको धोखा देंगे, काम कम करेंगे, समय खूब नष्ट करेंगे और सम्भव है साथहीं चोरी भी करें।

ढुलाई (Transport)—छोटे कारख़ाने यदि किसी आम रास्तेके पास बनाये जावें तो उत्तम है। कई बेर रास्तेसे थोड़ीदूरवाली ज़मीन सस्ती मिल जाया करती है और रास्तेसे लगी हुई ज़मीन महँगी मिलती है। यदि सस्तेपनके ख़यालसे रास्तेसे दूरवाली ज़मीन ख़रीदी जावे तो इमारतसे रास्तेतक सड़क बनवाना आवश्यक हो जाता है, लेकिन रास्ते और कारखानेके बीचमें यदि दो, तीन अथवा अधिक आदमियोंकी ज़मीन आगयी हो और उनकी ही ज़मीनमेंसे यदि सड़क बनवाना आवश्यक हुआ तो सम्भव है, ज़मीनकी लागतसे भी अधिक सड़क बनवानेमें लागत बैठ जावे। ऐसी हालतमें ज़मीनके थोड़ेसे सस्तेपनेका लोभ छोड़कर मुख्य रास्तेके पास वाली ज़मीन ही लेनी चाहिये।

कारख़ानेकी इमारत बनाते समय ठेकेदारको क्या ख़र्चा पड़ेगा इसपर भी ध्यान देना आवश्यक है, क्योंकि यदि कारख़ाना रास्तेसे दूर हुआ तो सस्ती ज़मीन ख़रीदनेमें इतनी बचत नहीं होगी जितना कि इमारतके लिये मसाला इकट्ठा करनेमें लग जायगा।

बड़े कारख़ानोंमें अथवा उन कारख़ानोंमें जहाँ कच्चे माल अथवा ईंधनकी बहुत खपत होती है, वहाँ भी सामानकी ढुलाईके प्रश्नपर ध्यान देना आवश्यक होता है। बड़े कारख़ानोंतक, जो रेलके स्टेशनसे कुछ भी दूर हैं रेलकी लैनका होना बहुत आवश्यक है जिससे कोयला और कच्चा सामान पहुँचानेकी सुविधा रहे, और वहाँका तैयार माल गाड़ियाँ भर-भरकर बाहर भेजा जा सके। जिन कारख़ानोंके लिये कच्चा माल समुद्र पार देशोंसे आता है वे यदि किसी बन्दरगाहके पास बनायें जावें तो बड़ा लाभ हो, जबतक कि कोई विशेष कारण उनके विरुद्ध न खड़ा हो जाय।

छोटे कारख़ाने सड़क और बाज़ारके पास होनेसे उनके कच्चे माल और ईंधनकी बारबरदारी और मजूरीमें

ही बचत नहीं होती बल्कि वहाँके तैयार मालको बाजारमें पहुँचानेमें भी बड़ा सुभीता होता है। एक मील अधिक बोझा ले जानेका किराया देखनेमें तो बहुत कम मालूम होता है लेकिन हर एक वस्तुको कारखानेमें ले जाते और बाहर लाते समय सदैव थोड़ा-थोड़ा सा अधिक किराया देनेसे कुछ वर्षोंमें यह खर्च इतना जुड़ जाता है कि उसे कोई भी संस्था नहीं सम्हाल सकती।

इस सम्बन्धमें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि, अधिकतर, कारखानोंका कच्चा माल और ईंधन ही भारी होता है और अधिक मात्रामें मँगाया जाता है और तयार सामान कच्चे मालकी अपेक्षा हल्का होता है और थोड़ी मात्रामें भेजा जाता है, इसलिये कच्चे मालके ठिकानेके जितना ही अधिक समीप कारखाना होगा उतनी ही अधिक बचत होगी।

जलकी समीपता

आजकलकी व्यापारिक प्रगतिके देखते हुए बड़े कारखानोंके पास जल मार्गका होना भविष्यके लिये बहुत उपयोगी है। वैसे तो जल-मार्गसे सामान बहुत धीरे लेजाया जाता है लेकिन उसमें किरायेकी बहुत बचत हो जाती है। विशेष कर जब रेलवेमें कोई हड़ताल वग़ैरा हो जावे तब तो बाहरसे कच्चा माल मँगवाने और तयार माल भेजनेको उसके सिवा कोई उपाय ही नहीं होता। कई देशोंमें बरसातके मौसिममें खुश्कीके रास्ते बेकार हो जाते हैं, रेलें टूट जाती हैं तब वहाँ जल-मार्गके अतिरिक्त और कोई रास्ता ही नहीं हो सकता। यदि कारख़ाना किसी बड़ी नदीसे कुछ दूरपर हो तो नदीसे कारख़ाने तक यदि उपयोगी समझा जाय तो, नहर भी बना दी जा सकती है। इसके अलावा किसी नदी, नहर अथवा जलाशयके पास होनेसे और भी बहुत लाभ हैं। एक तो यह कि वाष्प गाढ़ीकरणके लिये जलका बहुत सुभीता हो जाता है और इस कार्यके लिये बहुमूल्य यन्त्र नहीं ख़रीदने पड़ते और दूसरे यदि वहाँका जल स्वच्छ और हलका हो तो कई रासायनिक क्रियाओंमें पदार्थोंको धोनेके काममें आसकता है और यदि वह लोहेके लिये घातक और भारी न हो तो बैलटके लिये भी उपयोगी हो सकता है।

शक्ति और प्रकाश

स्थानीय शक्ति और प्रकाशका जहाँ सुभीता प्राप्त हो सके वहाँ छोटे कारख़ानोंका खोलना बहुत लाभ-प्रद हो सकता है। छोटे कारख़ानोंमें केवल यन्त्रोंको चलानेके लिये ही यदि थोड़ी सी शक्तिकी आवश्यकता हो तो, उसे स्वयं उत्पन्न करनेकी अपेक्षा, किसी स्थानीय बिजली घरसे लेना बहुत सस्ता पड़ेगा। यदि शक्तिके अलावा गरमी और वाष्पका कारख़ानेके काममें कुछ और भी उपयोग होता हो तो क्रमशः गैस अथवा वाष्पका अथवा केवल वाष्पका इञ्जन लगाना ठीक है जिससे दोनों काम हो सकें। स्थानीय बिजली घरसे शक्ति ख़रीदनेमें इञ्जनकी क़ीमत, उसके ईंधन आदिका खर्च, उसकी मरम्मतका खर्च और चलानेवालोंका वेतन बच जाता है। और साथहीमें किसी प्रकारका इञ्जनघर भी नहीं बनाना पड़ता यह भी काफ़ी बचत है। हाँ, बड़े कारख़ानोंमें, और जो कारखाने किसी कारणवश एकान्तमें बनाये गये हैं, वहाँ, शक्ति उत्पन्न करनेके लिये इञ्जन वग़ैरा लगाना तो बेशक उचित है।

वातावरणकी दशा

किसी विशेष प्रकारका काम चलानेके लिये, कभी-कभी किसी विशेष प्रकारके वातावरणकी आवश्यकता पड़ती है। उदाहरणके लिये रुईकी मिलको लीजिये, वहाँके वातावरणमें तरावटकी आवश्यकता है। यदि वह मिल ऐसी जगह बनवायी जावे कि जहाँका वातावरण सूखा हो तो वहाँ अप्राकृत तरीक़ोंसे अर्थात् नालियों द्वारा थोड़ी-थोड़ी वाष्प छोड़कर वहाँके वातावरणको तरगरम करनेका प्रयत्न किया जावेगा, लेकिन उसमें खर्चा इतना बैठ जावेगा कि उसके प्रभावसे हमारी बनायी वस्तु काफ़ी महँगी पड़ेगी। इसलिये ऐसे मौक़ोंपर हमें कोई ऐसा प्रान्त ढूँढ़ना चाहिये जहाँ वर्ष भरमें जितना अधिक हो सके हमारे कार्यके अनुकूल ही वातावरण प्रकृतिद्वारा बना रहे।

भविष्यमें कारख़ानेकी वृद्धि

मज़दूरीके प्रश्नपर विचार करते समय यह बताया गया था कि कहींपर कोई नया कारख़ाना बनाया जाता है

तब उसके आसपासकी आबादी भी बढ़ती है, और इससे वहाँकी ज़मीनकी क़ीमत भी बढ़ती है, इसलिये पहिलेसे ही भावी वृद्धिका ध्यान रखते हुए कुछ अधिक ज़मीन ख़रीद लेना लाभदायक होगा। लेकिन यहाँपर यह भी बता देना आवश्यक है कि जिन प्रान्तोंमें पहिलेसे ही आबादी घनी है वहाँ आवश्यकतासे अधिक ज़मीन ख़रीदने से लाभ की जगह हानि होना भी सम्भव है, क्योंकि शायद फालतू ख़रीदी हुई ज़मीन अपनी क़ीमतके अनुसार व्याज भी न पैदा कर सके। घनी आबादीके प्रान्तोंमें तो जितनी आवश्यकता हो उतनी ही ज़मीन लेनी चाहिये और फिर उसका उपयोग खूब सोच-विचार कर अच्छी तरहसे करना चाहिये। इस विषयपर आगे चलकर किसी स्वतंत्र अध्यायमें विचार किया जायगा।

छोटे कारख़ानोंके लिये सहायक कारख़ाने

छोटे कारख़ानोंको स्थापित करते समय यह भी विचार कर लेना चाहिये कि उस स्थानके आसपास कुछ ऐसे भी कारख़ाने हैं या नहीं जहाँपर वक्त ज़रूरत भारी मरम्मतका काम करवाया जा सके। बड़े कारख़ानोंके साथ तो मरम्मत करनेवालोंका एक विभाग अलहदा ही होता है।

इस सबका सारांश यह है कि कारख़ाना बनानेके लिये जगह ढूँढ़ते समय बड़े सोच-विचारकी आवश्यकता है। जिस जगहपर ईंधन और कच्चे मालकी क़ीमत उसे कारख़ानेतक पहुँचानेकी मजूरी, सस्ते कारीगर, तैयार मालको बाज़ारमें बेचनेका ख़र्च, शक्तिका ख़र्च और ज़मीन और इमारतकी क़ीमत आदि सब मिलाकर कम ख़र्च पड़े वहींपर कारख़ाना खोलना चाहिये।

इन्दौर पंचांग शोधन कमेटीकी रिपोर्ट भाग १ और २

[ज्यो० श्री पं० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य, बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद]

यह बृहत् रिपोर्ट पं० दीनानाथ शास्त्री चुलैटने जो इन्दौर पंचांग शोधन कमेटीके सभापति थे ५ वर्षके लगातार परिश्रम-से तैयार की है। इसमें कुल मिलाकर बड़े आकारके ४ + १४ + ३२ + १६० + २३४ + ४ पृष्ठ हैं। इस कमेटीके निर्माण करने और बृहत् रिपोर्टके छपाने तथा इन्दौरमें ज्योतिष सम्मेलनका आयोजन करानेमें इन्दौर सरकारने जो रुपया ख़र्च किया है उसके लिए हिन्दू संसार उनका सदाके लिए ऋणी रहेगा। इसी सरकारकी कृपाका फल है कि उत्तर भारतके ज्योतिषियोंको भी यह जाननेका अवसर मिला कि पंचांगोंमें किस प्रकारके शोधन करनेकी आवश्यकता है।

भूमिकामें शास्त्री जीने यह दिखाया है कि इस समय कहाँ-कहाँ किस प्रकारके पंचांग बनाये जाते हैं और उनमें क्या मतभेद है तथा इस मतभेदको दूर करनेका क्या उपाय है। अनुक्रमणिकामें पूरी रिपोर्टका सूचीपत्र पूरे विवरणके साथ दिया हुआ है।

पंचांग शुद्ध करनेकी पद्धतिमें सभापति पं० दीनानाथ शास्त्री चुलैटजीने कमेटीके सदस्योंको यह बतलाया है कि इसका काम किस सिद्धान्तपर चलाया जाय। आपने बड़ी विद्वत्ताके साथ श्रुति और स्मृति ग्रन्थोंके आधार-पर यह दिखलाया है कि पंचांग वेधसिद्ध गणितसे बनाया जाना चाहिए। आप कहते हैं।

यस्मिन् देशे यत्र काले येन दृग्गणितैक्यकम्।
दृश्यते तेन पक्षेण कुर्यात्तिथ्यादि निर्णयः॥

(ग्रहकौतुकमें वसिष्ठसंहिताका वचन)

इससे मैं पूरा सहमत हूँ। आपका मत है कि पाश्चात्योंने अर्वाचीन आविष्कारोंसे ज्योतिषसिद्धान्तमें जितनी सूक्ष्मता प्राप्त करली है वैसी ही सूक्ष्मता हमको भी स्वतन्त्र रूपसे प्राप्त करनी चाहिए और हमें परावलम्बी नहीं बनना चाहिए, यह बिलकुल ठीक है।

आपके मतके विरोधमें ज्योतिषाचार्य पं० रामसुचित

त्रिपाठीके कई पत्र छपे हैं जिससे ६-१२-२६वाले पत्र **पृष्ठ २८—३२का** सारांश यह है—

"पंच तारामें चार फल संस्कार होनेसे और सूर्यमें मंदफल, चरफल संस्कार देनेसे और चंद्रमें मंदफल, चरफल, भुजफल और देशान्तर चार संस्कारसे ही भौमादि तथा सूर्य चंद्र स्पष्ट कहे जाते हैं। इन ग्रहोंका उदयास्त यदि देखना हो तो इन ग्रहोंमें दृक् संस्कार करनेसे स्पष्ट दृक् ग्रह होते हैं" (पृष्ठ २८)।

"रविमन्दोच्च भगणमें भेद होनेसे मालूम हुआ कि इन लोगोंने वेध करके निश्चय किया है ......इतने दिनोंमें भी कोई संस्कार नवीन मंदफलातिरिक्त नहीं देकर ही पंचांग साधन किया। सिद्धान्त बनानेवाला साक्षात् ब्रह्मा और वृद्ध वसिष्ठ ऐसे त्रिकालदर्शी थे। पौरुषेय भी नहीं जिससे अप्रमाण माना जाय। ....विवाह यात्रादि शुभाशुभ फलादेशके लिए यह स्पष्टग्रह दृक्संस्कार करनेसे दृक्तुल्यताको जिस तरह प्राप्त होता है ऐसी स्फुट क्रिया करता हूं किंतु दृक्ग्रह साधन नहीं और भौमादिके लिए कर्मचतुष्टयसे ही स्पष्ट किया, सूर्यसिद्धान्तका ही आधार लेकर गणेश दैवज्ञने भी फल संस्कार किया।...... मेरे तरफसे उत्तर यही है कि सूर्य सिद्धान्तीय सूर्यको चरफल, मंदफल, सूक्ष्म रीति से बनाकर स्पष्ट सूर्य और चन्द्रमें चारोंफलको सूक्ष्म बनाकर जो स्पष्ट चन्द्र, इन दोनों ग्रहोंसे ही पंचांग साधन करना योग्य है" (पृ०२६-३०)।

"ग्रहलाघव बहुत स्थूल होनेसे उसपरसे पंचांग योग्य नहीं है। इसलिए पंचांग साधन सूर्यसिद्धान्तसे होना योग्य है और उक्त पंचांगस्थ ग्रहोंमें उच्च, क्रान्ति, मंदफल, शीघ्रफल सूक्ष्म लाकर देकर स्पष्ट ग्रह पंचांगमें रखना योग्य है। इसके अतिरिक्त संस्कार जो देनेसे आकाशमें ग्रह देख पड़ेगा उसको दृक्संस्कार कहते हैं" (पृष्ठ ३६)।

इन अवतरणोंसे प्रकट हो जाता है कि त्रिपाठीजी, महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदीजीके मतके अनुगामी हैं। अंतिम अवतरणसे प्रकट होता है कि अब ग्रहलाघवको छोड़कर सूर्यसिद्धान्तसे ही पंचांग बनाना उचित है क्योंकि ग्रहलाघव स्थूल हो गया है। वहाँ यह बात आप भूल जाते हैं कि ग्रहलाघवकारने सूर्यसिद्धान्तको उसकी स्थूलताके कारण ही छोड़कर ग्रहलाघवका प्रचार किया था। फिर आप उलटी गंगा क्यों बहाना चाहते हैं। यदि ४०० वर्ष पहले ग्रहलाघवकारने सूर्यसिद्धान्तको छोड़ना अधर्म नहीं समझा तो अब क्यों अधर्म समझा जाता है ? उचित तो यह है कि जैसे ग्रहलाघवकारने वेधके बलपर प्राचीन आर्ष ग्रन्थोंमें प्राचीन संस्कार किया वैसे ही हम लोग ग्रहलाघव तथा अन्य ग्रन्थों जैसे सूर्यसिद्धान्त आदिमें संस्कार कर सकते हैं। ऐसा करनेमें कोई अधर्म नहीं है।

आप एक जगह कहते हैं कि 'सिद्धान्त बनानेवाले साक्षात् ब्रह्मा और वृद्ध वसिष्ठ ऐसे त्रिकालदर्शी थे। पौरुषेय भी नहीं जिससे अप्रमाण माना जाय'। यदि ऐसा ही समझा जाता तो अनेक प्रकारके सिद्धान्तग्रंथ बनते ही क्यों ? त्रिपाठीजीके गुरु स्वयम् आचार्य सुधाकर द्विवेदी जी इस विषयमें पंचांगविचारमें क्या कहते हैं, "इसमें संशय नहीं कि आज कल जो प्रचलित सूर्यसिद्धान्त है वह सच्चा सूर्यसिद्धान्त नहीं" पृ० ४८)। दूसरी जगह लिखते हैं, 'भारतवर्षमें आजतक सिद्धान्तग्रन्थोंमें हियार्कसकी रीतिसे ग्रहगणना चली आती है' (पृ० ११)।

वेधसिद्ध पंचांगके विरुद्ध पं० रामकृष्णजी साठे कहते हैं कि नवीन पद्धतिसे बने हुए पंचांगमें तिथिकी १० घड़ीकी वृद्धियाक्षय होनेसे श्राद्धादि कार्यमें तथा प्रदोषादि व्रतोंमें बाधा आती है, इसके लिये आप निर्णयसिंधु आदिका प्रमाण देते हैं। इसके उत्तरमें शास्त्री दीनानाथ जी चुलैट अनेक ग्रन्थोंके प्रमाण देकर बतलाते हैं कि १० घड़ीका क्षय या वृद्धि होनेसे कोई बाधा नहीं पड़ सकती। मैं इस विषयमें केवल यह कहना चाहता हूँ कि धर्मशास्त्रको ज्योतिषशास्त्रके अनुसार चलना चाहिए, न कि उलटा ज्योतिषशास्त्र ही धर्मशास्त्रका अनुगमन करे। व्रतोत्सव आदिकी तिथि निर्णय करनेमें अनेक ऋषियोंके वचन कालमाधव इत्यादि ग्रन्थोंमें मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि उन्होंने ज्योतिषशास्त्रको मुख्य मानकर अपने व्रत और उत्सवोंकार निश्चय किया है। यदि धर्मशास्त्र ही प्रमाण होता औ

सभी धर्मव्यवस्थापक त्रिकालदर्शी होते तो इतने मत क्यों होते। इसलिए जिस प्रकार प्राचीनकालमें ऋषियोंने मत स्थिर किये थे उसी प्रकार आजकलके भी विद्वानोंको ज्योतिषशास्त्रके नवीन सिद्धांतोंके प्रकाशमें इनका निश्चय करना चाहिए।

इन सब बातोंका उत्तर शास्त्री दीनानाथजीने अपने संस्कृत पत्रमें (पृष्ठ ६३--६३) बड़ी खोजके साथ दिया है। इससे सिद्ध होता है कि पंडितजीका शास्त्रीय ज्ञान कितना ऊँचा है। मैं आपकी बातोंसे पूर्ण सहमत हूँ। इतना मैं और बढ़ा देना चाहता हूँ कि पं० रामसुचित त्रिपाठीजी तथा विश्वपंचांगके संपादक महोदय का जो यह कहना है कि दृक्कर्म संस्कार तो केवल ग्रहोंके उदय अस्त नक्षत्रों और ग्रहोंके योग और चंद्रमाकी शृङ्गोन्नति आदि जाननेके ही काममें आता था वह बिल्कुल ठीक है, परंतु इस संस्कारको आप स्फुटीकरणके संस्कारसे क्यों मिला देते हैं। स्फुटीकरणका संस्कार इससे भिन्न है। इन दोनोंका उद्देश्य भी भिन्न है। देखिए भास्कराचार्यजी क्या कहते हैं। (सिद्धांत शिरोमणि स्पष्टाधिकार श्लोक १)

यात्राविवाहोत्सव जातकादौ,
खेटै स्फुटैरेव फलस्फुटत्वम्।
स्यात् प्रोच्यते तेन नभश्चराणां,
स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यकृद् या ॥

इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि ग्रहस्पष्ट करनेसे फल भी स्पष्ट होता है और ग्रहोंकी स्फुटक्रिया इसीलिए की जाती है कि दृक् और गणित दोनोंमें एकता आ जाय अर्थात् गणितसे ग्रहका जो स्थान सिद्ध होता है वही वेधसे भी हो इसी कामके लिये स्पष्ट क्रिया की जाती है। इसके संबंधमें फिर लिखते हैं कि "ग्रहफलोपपत्त्यर्थं मन्दोच्च नीच वृत्तानि पूर्वैः कल्पितानि।" और "ग्रहस्य यन्त्रवेध विधिना यत् परमं फलमुत्पद्यते तस्य ज्या परम फल ज्यान्ताफल ज्या चोच्यते"॥ जिससे सिद्ध होता है ग्रहो स्पष्ट साधन इसी लिये किया जाता है जिससे वेध और गणितमें एकता आजाय।

दृक्कर्मका संस्कार इससे बिल्कुल भिन्न होता है। इस विषयमें आप कहते हैं,

कान्तिवृत्तग्रहस्थान चिह्नं यदां
स्यात् कुजे वा तदा खेचरोऽयं यतः।
स्वेषुणोत् क्षिप्यते नाम्यते वा कुजात्,
तेन दृक्कर्म खेटोदयास्ते कृतम् ॥१॥
नैव बाणः कुजेऽसौ कदम्बोन्मुख स्तत्,
समुत्क्षेपणं नामनं च द्विधा।
आयनं चाक्षजं तेन कर्मद्वयं तत्,
प्रपंचः पुनः संविविच्योच्यते ॥२॥

भूगोलाध्याय दृक्कर्म प्रकरणम्

इससे स्पष्ट हो जाता है कि दृक्कर्म संस्कार तो केवल आयन और अक्ष दृक्कर्म है। यह संस्कार ग्रहोंका उदय अस्त, नक्षत्र-ग्रह-योगके ज्ञानके लिये किया जाता है और स्फुटीकर्म इसलिये किया जाता है कि ग्रहका वास्तविक स्थान अपनी कक्षामें जो होता है वह आ जाय। इन दोनों संस्कारोंको एक समझना ज़बरदस्ती है।

इसके बाद रिपोर्टमें पंचांगशोधनके मूल तत्वपर विचार किया गया है। शास्त्रीजीका यह मत है कि वर्षमान शुद्ध नाक्षत्रिक सौर वर्षमान होना चाहिये, सांपातिक नहीं। आपका यह कहना बिल्कुल ठीक है 'यदि हम नक्षत्रमान छोड़कर केंद्रीय या साम्पातिक वर्षमानको लेवें और उच्चस्थानसे या संपातसे राशिचन्द्रका आरंभ मानकर तदनुसार नक्षत्रोंको मानलें तो इनके अन्वर्थक नामक ही व्यत्यय नहीं तो आजतकका सब भारतीय शोध व इतिहासका पता जो नाक्षत्रमानसे लगता है प्रायः नष्ट हो जायगा। और सब धर्मशास्त्रीय ग्रंथ निरुपयोगी हो जाँयगे" (पृष्ठ ६७) साधारण भाषामें इसका अर्थ यह हुआ चैत्र-बैशाख आदि महीनोंके नाम चित्रा बिशाखा आदि नक्षत्रोंके नामपर पड़े हैं। क्योंकि जब पूर्णमासी चित्रा नक्षत्र अथवा उसके एक नक्षत्र इधर-उधर होती है तब चैत्र मास होता है और जब पूर्णमासी बिशाखा नक्षत्र या उसके इधर-उधरके नक्षत्रमें होती है तब बैशाख मास होता है इत्यादि। यह संबंध तभी ठीक रह सकता है जब वर्षमान शुद्ध नाक्षत्रिक वर्षके समान रक्खा जाय अर्थात् जब एक सौर वर्षमें ३६५ दिन १५ घड़ी २३ पलके लगभग माना जाय। परंतु यदि सूर्यसिद्धांतके

सौर वर्षके अनुसार जो इससे कोई ८।। पल अधिक है अथवा साम्पातिक वर्षमानके अनुसार जो इससे कोई एक घड़ी कम है वर्ष माना जाय तो नक्षत्रों और मासोंका संबंध वैसा नहीं रह सकता।

यहाँ एक बात और बतला देनेकी आवश्यकता थी। आपने यह कहीं नहीं बतलाया कि अयन-चलनके कारण जब ऋतुओंका क्रम बदल जायगा तब हमारे पर्वों और उत्सवोंका विचार किस प्रकार किया जायगा। अभी तो सायन मेष संक्रांति उत्तराभाद्रपदमें होती है इसलिये वसन्तका आरम्भ माघ वा फागुनमें होता है परंतु जब यह पीछे हटते-हटते कई नक्षत्र पीछे हट जायगी तब बसन्त ऋतु पौषमें होने लगेगी और फिर बहुत दिनोंके बाद मार्गशीर्षमें होने लगेगी। उस समय पर्वोंका निश्चय कैसे किया जायगा। मान लिया कि ऐसी घटना होनेमें अभी कई हजार वर्ष लगेंगे परन्तु उसपर विचार करना तो आवश्यक है।

इसके बाद शास्त्रीजीने यह दिखलानेके लिए पृष्ठ ६८ से १४१ तक कई सारणियाँ दी हैं कि यदि शुद्ध नक्षत्र सौर वर्ष माना जाय तो ग्रहोंका भगणकाल किस प्रकार बदलना पड़ेगा और ग्रहलाघवमें क्या-क्या संस्कार करनेसे ग्रहोंका गणित वेधसे मिल जायगा। इन सारणियोंके बनानेमें शास्त्रीजीने बड़ा परिश्रम किया है इसमें कोई सन्देह नहीं। इसके लिए आपने केतकरजीके ज्योतिर्गणितसे बहुत सहायता ली है। आपका अप्रकाशित प्रभाकरसिद्धान्त ऐसा ग्रन्थ जान पड़ता है जिसमें अर्वाचीन ज्योतिष सिद्धान्तके सभी उपयोगी संस्कार ज्योतिर्गणितके द्वारा हमारे प्राचीन सिद्धान्तोंके रूपमें बदल दिये गये हैं। यह काम कम परिश्रमका नहीं है। जबतक हमारे यहां वेधशालायें नहीं होतीं और उनसे हमारे ज्योतिषी उपयुक्त काम लेना नहीं जानते तबतक तो हमें पाश्चात्य ज्योतिषियोंके आविष्कारोंसे काम लेना ही पड़ेगा। इसमें कोई दोष भी नहीं है। सत्य जहाँसे मिले ग्रहण करनेमें कोई अधर्म नहीं है। एक कवि कहता है,

उत्तम विद्या लीजिए यद्यपि नीच पै होय।
पर्यो अपावन ठौरमें कंचन तजत न कोय॥

इसके बाद पंचांग-प्रवर्तक कमेटीके सभाओंकी संक्षिप्त रिपोर्ट है। इस प्रकार रिपोर्टका प्रथम भाग समाप्त होता है।

रिपोर्टके दूसरे भागमें राशिचक्रके आरंभ स्थानका निश्चय करनेके लिए 'अयनांशवाद निर्णय' नामक अध्याय २२० पृष्ठोंमें लिखा गया है। इस लम्बे अध्यायमें मुख्य करके श्रीमान् रावसाहब गोविन्द सदाशिव आपटे एम्० ए० बी० एस्-सी० और शास्त्रीजीका शास्त्रार्थ है। आपटेजीका यह मत है कि राशिचक्रका आरंभविन्दु वह विन्दु है जो १९९२ वि०में वसंतसंपात-विन्दुसे १८ अंश ४८ कला पूर्व है। अर्थात् आपके मतसे वर्तमान संवतमें अयनांश १८ अंश ४९ कला मानना चाहिए। आपके मतसे आरंभविन्दुके पास 'ज़ीटापिसियम'का तारा है। इसीलिए आपके मतको 'ज़ीटापक्ष' भी कहते हैं। आप कहते हैं कि ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य आदिने तारोंके जो भोगांश दिये हैं उनसे यही सिद्ध होता है कि आरंभविन्दु 'ज़ीटापीसियम' हीके पास है। इस प्रकार आप सिद्ध करते हैं कि शक ४९६में वसंतसंपात इसी तारेके पास था। यदि यह मान लिया जाय तो मेषसक्रान्ति १३ अप्रैलकी जगह ९ अप्रैलको और मकरसंक्रान्ति १४ जनवरीकी जगह १० जनवरीको माननी पड़ेगी। इस मतके अनुसार चित्रा तारेका भोगांश १८३ अंश ४९ कलाके लगभग आता है।

इसके प्रतिकूल शास्त्रीजी सिद्ध करते हैं कि राशिचक्रका आरंभ ज़ीटापीसियम नहीं है वरन् इस तारेसे ३ अंश ४९ कला पूर्वका विन्दु है जहांसे चित्रा तारेका भोगांश ठीक १८० अंश होता है। इसीलिए इस पक्षको चित्रापक्ष भी कहते हैं। शास्त्रीजीने अपने पक्षके समर्थनमें जो प्रमाण दिये हैं उनसे प्रकट होता है कि शास्त्रीजी कितने परिश्रमी और खोजके प्रेमी हैं। यदि आप आपटे महोदयके प्रति कटु शब्दोंका प्रयोग न करते तो बड़ाही अच्छा होता।

वराहमिहिरने तीन श्लोकोंमें कृत्तिका, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा और चित्रा तारोंके भोग और शर दिये हैं परन्तु उनका ठीक-ठीक अर्थ नहीं लगता। शास्त्रीजीने इनका अर्थ अपूर्व ढंगसे किया है (पृष्ठ ३१)। शास्त्रीजीने इन तारोंके भोगांशोंसे गत नक्षत्रोंके घटा

दिया है। जो शेष बचा है उसकी कला करके १०० से भाग दे दिया है। इससे जो लब्धि आयी है उसीको अपने वराहमिहिरका अर्थ सिद्ध किया है। परन्तु इतनी कष्टकल्पना करनेपर भी पुष्य और मघाके तारोंके भोगांश वह नहीं आते जो वराहमिहिर बतलाते हैं।

परन्तु जहां शास्त्रीजी यह सिद्ध करते हैं कि सूर्य सिद्धान्तमें दिये हुए नक्षत्रोंके ध्रुवा ध्रुवसूत्रीय नहीं है जैसा कि रंगनाथ या दीक्षित या आपटे महोदयका मत है, वरन् कदंबसूत्रीय है, वहां शास्त्रीजीका पक्ष अधिक सबल देख पड़ता है। यहां एक प्रश्न शास्त्रीजीसे करना चाहता हूँ। आजकल मेष-संक्रान्ति-कालमें सूर्य जिस विन्दुपर पहुँचता है उस विन्दुसे चित्राका तारा प्रायः १८० अंश पर है। परन्तु हमारे सिद्धान्तकारोंने नाक्षत्र सौर वर्षका मान ३६५ दिन १५ घड़ी ३१ पल ३० विपलका माना है जो शुद्ध नक्षत्र सौर वर्षसे कोई ८॥ पल अधिक है। इसलिए यदि इतनी भूल प्रतिवर्ष बढ़ती रही तो वराह-मिहिरके समयमें अर्थात शक ४२१ में आदि विन्दु कहाँ रहा होगा? इस समय शककाल १८५७ है, इसलिए ४२१ से १८५७ तक १४३६ वर्ष हुए। इतने समयमें कुल भूल १४३६ × ८॥ पल = १२२०६ पल = २०३ घड़ी २६ पल = ३ दिन २३ घड़ी २६ पल अथवा सूक्ष्म गणना से ३ दिन २५ घड़ीकी हुई जिसका अर्थ यह हुआ कि आजकल मेष संक्रान्ति जिस समय होती है उससे ३ दिन २५ घड़ी पहलेही हो जाती, यदि सौरवर्ष शुद्ध नक्षत्र वर्ष रखा जाता। सूर्यकी गति यदि १ दिनमें १ अंश मान ली जाय तो ३ दिन २५ घड़ीमें सूर्य अंश २५ कलाके लगभग चलता है। इसलिए यदि शुद्ध नक्षत्र सौरवर्ष लिया जाता तो आजकल जिस विन्दुपर मेष संक्रान्ति समझी जाती है उससे ३ अंश २५ कला पहलेही मेष संक्रान्ति हो जाती। ऐसी दशामें राशिचक्रका आरम्भविन्दु ज़ीटापी-सियमके पासही होता जैसाकि आपटे महोदयका मत है।

परन्तु यहाँ एक दूसरा प्रश्न भी खड़ा होता है जो आपटे साहबके प्रतिकूल है। वह यह है कि शक ४२१ या ४९६ में जिस विन्दुपर मेष संक्रान्ति होती थी अर्थात् ज़ीटापीसियम, वही राशिचक्रका आरम्भ विन्दु क्यों माना जाय। इसके समर्थनमें आपने जो तर्क अपनी अंग्रेज़ी पुस्तिका 'The Initial Point of Our Fixed Zodiac and Ayana Manjari' में उपस्थित किये हैं वे सन्तोषजनक नहीं हैं। इससे अधिक और तर्कयुक्त प्रमाण शास्त्रीजीके हैं।

पृष्ठ १५२में शास्त्रीजी कहते हैं, "वैदिक ग्रन्थोंमें जितने रूपक कहे गये हैं वह सब ज्योतिषशास्त्रसे संबंध रखनेवाले हैं अतएव उनमें प्रायः ज्योतिषके मूल तत्वोंको निश्चित करनेके लिए अनेक प्रकारके यज्ञ प्रयोगोंका सांगो-पांग वर्णन मिलता है।' फिर पृष्ठ १५५पर लिखते हैं, "वैदिक बातें सब आकाशस्थ दिव्य ज्योति तारोंके संबंधमें हैं। उनमें जो तारे चितिचयन एवं यज्ञकर्मोंके प्राचीन मंत्रोंसे एकवाक्यता रखनेवाले निश्चित व अविकृत प्रतीत हुए वे तारेको देव, देवी, देवता और उनके दर्शकोंको ऋषि, गंधर्वादि तथा स्थानभ्रष्ट, भ्रांतिकारी, अधिक विकृत तारोंको असुर, दानव, देवबांधव यज्ञ शत्रु याने वेध लेने वालेके ज्ञानमें व्यत्यय लानेवाले शत्रु ऐसा वेदमें कहा है। प्रस्तुत चितिचयनमें चित्रा तारेको इन्द्र देवता बताकर मुख्यत्व बताया है।"

इन दो अवतरणोंसे प्रकट होता है कि शास्त्रीजीके मतमें देवयानी, ययाति, त्रिशंकु, कृत्तिकाओं आदिकी कथाओंमें आकाशके किन नक्षत्रोंका बोध होता है और उन कथाओंका ज्योतिष संबंधी अर्थ क्या है। शास्त्रीजीने ज्योतिष संबंधी बहुतसे अन्य मंत्रोंका अर्थ नवीन ढंगसे किया है जिनपर विद्वानोंको विचार करनेकी आवश्यकता है।

रिपोर्टकी भाषा शुद्ध नहीं है, इसलिए कहीं-कहीं शास्त्रीजीका अर्थ समझनेमें बड़ी कठिनाई पड़ती है। यदि कहीं भाषा भी अच्छी होती तो इस रिपोर्टका मूल्य बहुत बढ़ जाता।

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

भूकम्पके उपद्रवसे कम-से-कम हानिके उपाय

[श्री० प्रेम बहादुरजी, एम० एस-सी०]

क्वेटा-भूकम्प

बिलोचिस्तान प्रान्तके क्वेटा शहरमें गत् वर्ष ३१ मई सन् १९३५को एक बहुत ही भयानक भूकम्प आया था जिसमें लगभग ४० लाख जानें भू-गर्भमें समा गयीं और करोड़ोंकी सम्पत्ति नष्ट होगयी। अबतक भारतवर्षमें जितने भूकम्प आये हैं उनमेंसे यह सबसे अधिक भयानक था। इसका प्रभाव क्वेटा और उसके आस-पासके स्थानों तक ही परिमित रहा। यह शहर बहुत ही घना बसा हुआ था। यद्यपि बिलोचिस्तानकी आबादी भारतवर्षके अन्य प्रान्तोंको देखते हुए किसी प्रकार घनी नहीं कही जा सकती। इससे एक वर्ष पूर्व बिहारमें भी ऐसा ही भूकम्प आया था जिसमें १९ लाख मनुष्य इस संसारसे बिदा हो गए।

इस भूकम्पके बारेमें किसी भी प्रकारका वर्णन करनेसे पहले यह आवश्यक है कि वे पारिभाषिक शब्द जोकि भू-गर्भ शास्त्रियों द्वारा प्रयोग किये जाते हैं स्पष्ट कर दिये जायँ। भूकम्पका सम्बन्ध भू-गर्भसे (पृथिवीके अन्तरीय भागों) है। भू-गर्भमें जिस स्थानसे भूकम्पकी उत्पत्ति होती है उसे केन्द्र (Focus) कहते हैं। यह केन्द्र (Focus) बिन्दु नहीं होता प्रत्युत साधारणतया पृथ्वीके भीतर एक धरातल ही होता है। इसके ठीक ऊपर पृथ्वीका जो बाहिरी धरातल है वह बहिःकेन्द्र अथवा बहिःकेन्द्रीय धरातल (Epicenter or Epicentral zone) कहलाता है। यह भी "केन्द्र" (Focus) की तरह धरातल ही होता है और भूकम्पका सबसे अधिक असर इसी क्षेत्रमें होता है। क्वेटा-भूकम्पका भूकम्प-क्षेत्र १००००० वर्ग मील बतलाया जाता है। एक और शब्द जोकि आगे कामका है वह आवेगान्तर (acceleration) है। यह गतिके परिवर्तनको बतलाता है, अर्थात् गति कितनी तेज़ीसे हो रही है।

बहुधा किसी भूकम्पके आनेसे पहले हलके-हलके भूकम्पके कई धक्के आया करते हैं, परन्तु क्वेटाके इस भारी भूकम्पके पहले कोई भी धक्का नहीं आया और न ऐसा कोई धक्का सिसमोग्राफ़ यन्त्रसे ही मालूम हुआ। ऐसा केवल इसी भूकम्पके साथ नहीं हुआ प्रत्युत दूसरे और भी ऐसे ही भूकम्प हैं जिनके पहले कोई धक्का नहीं जाना गया। ऐसे भी भूकम्प मालूम हैं जिनमें कि ऐसे हलके पूर्व-धक्के आये हैं और उन पूर्व-धक्कोंका सम्बन्ध बादके बड़े धक्केसे निकला है। इस सम्बन्धका ठीक-ठीक ज्ञान फिर भी अभी तक नहीं प्राप्त हुआ है।

यह भूकम्प ३१ मईको प्रातःकाल ३ बजकर ३ मिनट पर आया था। यह समय क्वेटाके टेलीग्राफ़ कार्यालयकी विद्युत-घड़ीसे जाना गया है। विद्युत-घड़ी एक लटकनदार घड़ी होती है, इसका लटकन उत्तर-दक्षिण ही घूमता है। इस घड़ीकी चाल बिलकुल ठीक बतलायी जाती थी। जिस समय रातको भूकम्प आया तो धक्केके कारण घड़ीकी चाल रुक गई और सुइयाँ ३-३ पर ही रह गईं। यद्यपि इस भूकम्पका यह सबसे अधिक ठीक समय ज्ञात होता परन्तु इसपर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि यह पता नहीं कि बड़ी सुई तीसरे मिनट पर आ रही थी या तीसरे मिनटपर आकर वहींसे आगे बढ़नेको थी। अथवा जब कि धक्का शुरू हुआ तो इस मिनट पर आ चुकी थी। अतः हो सकता है कि ठीक समय में २-४ सेकेंडका इधर-उधर अन्तर हो। बम्बई, कलकत्ता आदि स्थानोंके सिसमोग्राफ़से इस भूकम्पका समय जो कि गणना द्वारा निकाले गये हैं वे सब इसी समयके आसपास हैं उनमें केवल २-४ सेकेंडोंका ही

* (यह लेख "रैकर्ड्स औव ज्योलौजिकल सर्वे औव इण्डिया," सन् १९३५ में प्रकाशित श्रीयुत डब्लू० डी० वैस्ट, एम० ए०, असिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट, ज्योलौजिकल सर्वे औव इण्डियाकी रिपोर्टके आधारपर लिखा गया है।

अन्तर है। भूकम्पके आनेका ठीक समय ज्ञात होना भी एक बहुत ज़रूरी बात है।

भूकम्पके समय पृथ्वीमें गति होती है। इस गतिका ढङ्ग स्थान-स्थानपर भिन्न होता है क्योंकि यह वहाँकी प्राकृतिक दशा पर निर्भर है। पहले एक प्रकारकी बड़ी लहरें पैदा होती हैं जिनसे भूकम्पका असर (Impulse) पृथ्वीपर फैलता चला जाता है। ये बड़ी लहरें जब नरम मिट्टी (Alluvium)के मैदानोंमेंसे गुज़रती हैं तो छोटी-छोटी लहरें भी उत्पन्न कर देती हैं। इन लहरोंकी चाल दो मील प्रति सेकेंडके हिसाब मालूम की गयी है। कभी-कभी तो लहरें भूकम्पके समय दिखती हैं और कभी-कभी नहीं।

यह भूकम्प रात्रिके समय आया था। अतः यह ठीक-ठीक नहीं जाना जा सकता कि यह कैसे आरम्भ हुआ क्योंकि उस समय सब लोग सोये हुए थे। क्वेटासे कुछ मील दूर पर जहाँ कि रात्रिमें कुछ सरकारी कार्य हो रहा था और इसलिये बहुतसे आदमी जगे थे वहाँसे इसके विषयमें कुछ बातें जानी गई हैं। भूकम्पके असली बड़े धक्केसे ५-१० सेकंड पहले एक हलका सा धक्का आया। यह हलका होते हुये भी भूकम्पका धक्का कहलानेको काफ़ी था। क्वेटामें भी शस्त्रागारके पहरेदारका कहना है कि उसे भी असली धक्केसे आधे मिनट पहले ऐसा ही धक्का मालूम हुआ। कहीं भी कोई ध्वनि सुनाई नहीं दी और असली बड़ा धक्का दक्षिणसे आया मालूम हुआ। शायद साथ-ही-साथ घरघराहटकी आवाज़ भी हुई थी। जो आदमी खड़े थे वे या तो ज़मीनपर गिर पड़े या लड़खड़ाने लगे। ज़मीन तूफ़ानी समुद्रकी तरहसे हिलने लगी। यह गति अधिकतर दक्षिणसे उत्तरको थी पर कभी-कभी पूर्वसे पश्चिमको भी होती थी। पृथ्वीके हिलनेके साथ-साथ ही चट्टानोंके गिरनेकी आवाज़ आती थी। उत्तर-पश्चिम दिशामें यह गति कम ही थी। क्वेटा शहरमें भी लगभग यही गति रही जैसा कि वहाँके निवासियों द्वारा मालूम हुआ है; उनमेंसे कुछ का कहना है कि गति बड़ी तेजीके साथ थी और पृथ्वी धरातलके समानान्तर (Parathl) थी; कुछ का कहना है कि वह उत्तरसे दक्षिण थी। यह भी बतलाया गया है कि वह अधिकतर पूर्वसे पश्चिम थी। इन सबसे यह सिद्ध होता है कि वहाँपर क्वेटामें दो गतियाँ थीं परन्तु एक स्थान-पर कोई अधिक और कोई कम।

इस भूकम्पने क्वेटा शहरके एक आध मकानको छोड़कर सब ही मकान गिरा दिये हैं। मकानोंके गिरने की दिशा जानना भी भूगर्भ-शास्त्रियोंके लिये बहुत ज़रूरी है। यह क्वेटामें बने येटस्मारक घण्टाघर (Yate Memoial clocktowers) के गिरनेसे जानी गई है। यह षट् भुजाकार था। ऐसे आकारके कारण यह किसी भी दिशामें गिर सकता था। यह उत्तरकी ओर गिरा था। बहुतसे मकान जो कि पूर्व-पश्चिम दिशामें खड़े (aligned) थे तिरछे गिरे और जोकि उत्तर-दक्षिण दिशा-में थे वे वैसे ही रहे, केवल उनकी इधर-उधरकी दीवारें गिरीं। कबरिस्तानमें बहुतसे (cross) क्रॉस गिर गये और कई स्मारक घड़ीकी विपरीत दिशा (Anticlo ckwise) में घूम गये। इससे यह न समझना चाहिये कि गति चक्कर वाली थी क्योंकि स्मारकोंकी बनावट ऐसी थी कि सरल गति भी उन्हें घुमा सकती थी। उसी कबरिस्तानमें कुछ स्मारक घड़ीकी दिशामें (clockwise) भी घूमे हुए पाये गये।

क्वेटाके आस-पास कई पहाड़ियाँ हैं। इनकी चट्टानें चूने पत्थरकी हैं। ये पहाड़ियाँ भी भूकम्पके कारण हिल गईं और बहुत सी और बड़ी-बड़ी चट्टानें इनसे गिर कर अलग हो गयीं। अतः दिन निकलनेपर ये पहाड़ियाँ अजीब सी दशामें पायी गईं। ऐसे ही क्वेटाके पास ज़मीन भी फटी हुई मिली। यह ज़मीनका फटाव चिल्हान से लेकर कलाततक ६५ मील लम्बा था। अधिकतर यह दरारके बतौर और कहीं-कहींपर ऐसा था कि मानों ज़मीन चटक गयी हो। मास्तंगके पास फटावके पश्चिममें ज़मीन लगभग २-२½ फीट नीचे बैठ गयी थी, कहीं-कहीं ज़मीनका यह बैठान फटावके पूर्वमें था। कहीं-कहींपर ज़मीन बैठनेके बजाय एक-एक फुट ऊँची उठ गयी थी। इससे ऐसा प्रगट होता है कि पृथ्वीपर कहींपर दबाव पड़ा और कहीं खिचाव। जहाँकहीं इस फटावने रेलवे लाइनको पार किया वहाँ रेलवे लाइन भी नष्ट-भ्रष्ट हो गयी थी। परन्तु यह फटाव पहाड़ियोंके पास जाकर रुक गया और ऐसा मालूम

पड़ता है फटावके बदले पहाड़ियोंसे चट्टानें टूटकर गिर पड़ीं। कुछ स्थानोंपर सड़कें भी फटी हुई दिखाई दीं। अधिक परीक्षा करनेपर मालूम हुआ कि यह फटाव बहुत गहराईतक नहीं पहुँचा और उपरी नरम मिट्टीतक परिमित रहा। इस फटावकी चौड़ाई कहीं भी ८ इंच से अधिक न थी।

यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि इस भूकम्पका क्षेत्र लगभग १००,००० वर्ग मील है परन्तु बहिःकेन्द्रीय धरातल लगभग ६८ मील लम्बा और १६ मील चौड़ा है, इस क्षेत्रमें गतिकी तेज़ी (Intensity on the Rossi-Forel scale) १० अंशतक पहुँच चुकी थी। बहिःकेन्द्रीय धरातलमें वही क्षेत्र आता है जहाँपर हानिकी मात्रा सबसे अधिक होती है। इसी क्षेत्रमें "वेस्ट-गुर"की सहायतासे जो आवेगान्तर निकाला गया है वह १३·८ फीट प्रति सेकेंड प्रति सेकेंड है। अकसर इतना आवेगान्तर कहीं देखा नहीं गया। भूकम्पका कारण ज्वालामुखी पहाड़ोंकी क्रियाएं बतलायी जातीं हैं। जब कभी जल भूगर्भस्थित प्रचंड अग्नि-कोषमें पहुँच जाता है तो तुरन्तही वाष्पमें परिणत हो जाता है। यह वाष्प भारी शक्तिके साथ पृथ्वीसे बाहर निकलनेकी कोशिश करती है, परन्तु जब निकलनेमें रुकावट होती है तो पृथ्वीका ऊपरी छिलका हिल जाया करता है। इटली, और सिसली आदिके भूकम्पों का कारण यही बतलाया जाता है। परन्तु सारे विलोचिस्तान प्रदेश और भारतभरमें ज्वालामुखी नहीं है अतः क्वेटा भूकम्पका कारण पृथ्वीकी भूगर्भीय (Geological) बनावट होनी चाहिये जैसा कि परीक्षा करनेपर ज्ञात हुआ है। क्वेटाके पासकी भूमि चट्टानमय है। यह किसी-न-किसी क्रियासे ऐसी जम गयी है कि नयी चट्टान तो नीचे होगयी हैं और उनके ऊपर पुरानी चट्टानें आकर जम गयी हैं। ऐसा होनेसे इनके बीचमें तनाव आगया है। इस तनावका मिटना आवश्यक है, यह केवल उन चट्टानोंके चटकनेसे ही हो सकता है। अतः समय-समयपर चटका करती हैं। इसी तरह क्वेटाके आस-पासमें चट्टान कई बार चटक चुकी हैं। जब ये चटकतीं हैं तो बहुतसे बल (Energy) का निकास होता है। यही बल पृथ्वीके ऊपरके छिलकेमें लहरें पैदा कर देता है। बस यही क्वेटा भूकम्पका कारण है।

बिलोचिस्तान प्रान्तमें प्रायः भूकम्प आया करते हैं और यह अनुमान किया जाता है कि भविष्यमें भी ऐसा ही भूकम्प आयेगा। इस अनुमानका कारण एक और है। यह विश्वास किया जाता है कि भारतमें आजकल भूकम्प युग विद्यमान है क्योंकि सन् १८२० से अब तक दस भारी भूकम्प आ चुके हैं। क्वेटाके आसपासकी चट्टानोंका तनाव इस भूकम्पमें कम हो चुका है अतः यह सम्भव है कि अगर भविष्य कोई भूकम्प बिलोचिस्तानमें आये तो उसका बहिःकेन्द्र क्वेटामें न होगा परन्तु शायद यह उसके असरसे बचा न रहे। इन बातोंसे यह सिद्ध होता है कि क्वेटामें भावी भूकम्पकी तेज़ी इस भूकम्पसे कम ही रहेगी।

इस भूकम्पमें जान और मालका जो भारी नुक़सान हुआ है उसमें वहाँके रद्दी ढंगसे बने हुए बड़े बड़े मकानोंका बहुत भाग है। यह बात रेलवे कम्पनीके भूकम्प-परीक्षित (Earthquake-proof) बंगलोंके देखनेसे भली भांति समझमें आजाती है। ये बंगले इस भूकम्पमें क्षतिरहित रहे यद्यपि धक्केके कारण बहुत ही हिले। इनके पासके दूसरे बंगले जोकि भूकम्प-परीक्षित ढंग पर नहीं बनाये गये थे सब गिर गये। भूकम्प-परीक्षित इमारतमें यह सबसे बड़ा गुण होना चाहिये कि धक्केके समय सारी-की-सारी इमारत एक साथ ही हिले और वह एक हदतकके आवेगान्तरको झेल सके। रेलवे कपनीके बँगले ऐसे ही बने हुए हैं और ३·२ फीट प्रति सैकिंड प्रति सैकिंडका आवेगान्तर झेल सकते हैं। ये सन् १९३१के भूकम्पके बाद बनाये गये थे।

क्वेटा भारत-सरकारकी फ़ौजी छावनीका स्थान है अतः उसका दुबारा बसाया जाना स्वाभाविक ही है। कुछेककी राय है कि भावी भूकम्पसे बचनेके लिये यह अच्छा है कि कोई शहर इस जगहपर फिर न बसाया जाय। परन्तु ऐसा सम्भव नहीं जान पड़ता क्योंकि छावनीके साथ-साथ कुछ शहर ज़रूर ही बस जायगा। इसके लिये यह आवश्यक है कि भविष्यमें मकान बनाते समय कुछ बातोंका ध्यान रक्खा जाय जिससे कि भूकम्पके धक्कोंसे क्षति न हो। श्रीयुत डब्लू० डी० वेस्टने इस

विषयपर अपनी सम्मति दी है जोकि ध्यान देने योग्य है। यह निम्नलिखित है—

(१) क्वेटाकी सब भावी इमारतें भूकम्प-परीचित ढङ्ग-पर बनायी जानी चाहिये।

(२) इनमें विशेष प्रकारका चूना या सीमेंट प्रयोग होना चाहिये।

(३) कोई भी इमारत एक मञ्जिलसे ज़्यादाकी न होनी चाहिये। अगर कोई इमारत दुमञ्जिली है तो वह दूसरी इमारतोंसे काफ़ी दूरपर होनी चाहिये।

(४) इमारतें एक हद तकके आवेगान्तरके झेलनेके योग्य होनी चाहिये। यह आवेगान्तर श्री डब्लू० डी० वैस्टके अनुसार ४·२ फीट प्रति सेकेन्ड प्रति सेकेन्ड पर्याप्त है। परन्तु आवश्यकतानुसार क्वेटाके भिन्न-भिन्न स्थानोंपर बदला जा सकता है।

(५) सड़कों और रास्तोंकी चौड़ाई दोनों तरफ़के मकानोंकी इकट्ठा ऊँचाई जितनी हो उससे अधिक ही होनी चाहिये।

(६) सब मकानोंके नक्शे एक अफ़सर द्वारा स्वीकृत होने चाहिये। वह इस बातकी परीक्षा करेगा कि भूकम्प-परीचित ढङ्गको पूर्णतया काममें लिया गया है कि नहीं।

अगर इन सिद्धान्तोंके अनुकूल कोई क़ानून बना दिया जाय और उचित कड़ेपनसे उसका पालन किया जाय तो यह बहुत सम्भव है कि क्वेटा भावी भूकम्पके असरसे सुरक्षित रहे। अच्छा तो यह होगा कि समस्त मकानोंकी बनते समय पूरी तौर देखभाल रक्खी जाय ताकि उपरोक्त सिद्धान्तोंका किसी भी अंशमें उल्लंघन न हो। श्री वेस्टकी तो यहाँ तक सम्मति है कि बिलोचिस्तानकी समस्त नयी इमारतें इसी उपरोक्त ढङ्गपर बननी चाहियें।

मनचाही सन्तान कैसे पैदा हो ?

[पं० व्रजेन्द्रप्रसाद पालीवाल, एम० एस-सी०, विशारद]

आदिकालसे ही मनुष्यकी अनेक इच्छाओं-मेंसे सन्तानकी जिन्सीयतको अपने अधीन करनेकी एक प्रबल आकांक्षा रही है। इस समस्यापर विशेषज्ञोंद्वारा आज तक अनेकों प्रकारके विचार प्रकट किये गये हैं। इस वर्तमान वैज्ञानिक युगमें भी इस विषयपर गवेषणा कार्य बड़े ज़ोरसे हो रहा है। पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ अब तकके मुख्य-मुख्य निर्णयोंको यहाँ एकत्र किया जाता है।

"पुरुषके वीर्य और स्त्रीके रजके संयोगसे सन्तान-की स्थापना होती है," यह सत्य विश्वास आर्योंकी सभ्यतामें आरम्भसे ही पाया जाता है। परन्तु इन दोनोंके संयोगसे इच्छानुसार पुत्र अथवा पुत्री प्राप्त करनेका नुसख़ा अभीतक किसीको भी नहीं मिला है। हमारे लेख-में भी इस अनुभूत योगके खोजी माता-पिताओंको निराश ही होना पड़ेगा, परन्तु इन पंक्तियोंके पढ़नेपर उनके हृदयोंमें आशाका सञ्चार अवश्य होगा, इसका हम विश्वास दिलाते हैं।

मनुस्मृतिमें भी वैद्यक, कोक और रतिशास्त्रोंके समान इस आवश्यक विषयपर प्रकाश डाला गया है। नवें अध्यायके कुछ श्लोक इस भाँति हैं—

> क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान्।
> क्षेत्रबीजसमायोगात्संभवः सर्वदेहिनाम् ॥३३॥

अर्थ—महर्षियोंने स्त्रीको क्षेत्रके समान और पुरुषको बीजके समान माना है। क्षेत्र और बीजके संयोगसे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है।

> विशिष्टं कुत्रचिद्बीजं स्त्रीयोनिस्त्वेव कुत्रचित्।
> उभयं तु समं यत्र सा प्रसूतिः प्रशस्यते ॥३४॥

अर्थ—कहीं बीज प्रधान होता है (जैसे व्यास, ऋषि शृङ्ग आदि) और कहीं क्षेत्रकी प्रधानता होती है (जैसे धृतराष्ट्र, पांडु आदि)। जहाँ बीज और क्षेत्र दोनों समान

होते हैं वहाँ सन्तान पति बीजसे उत्पन्न होनेके कारण श्रेष्ठ मानी जाती है।

अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नोपपद्यते ।
उप्यते यद्धि यद्बीजं तत्तदेव प्ररोहति ॥४०॥

अर्थ—बोया कुछ और उपजा कुछ ऐसा कभी नहीं होता, जो बीज बोये जाते हैं वही उपजते हैं।

बीसवीं शताब्दीके विज्ञानके निर्णयोंके प्रकाशमें मनुष्यके बीजको इतनी प्रधानता देना और स्त्रीरूपी क्षेत्रके रजको अपेक्षाकृत कम महत्वका क़रार देना एक भारी भूल है। दोनों सन्तानोत्पत्तिके लिए समान ही आवश्यक हैं। परन्तु आजसे सहस्रों वर्ष पहिले भी हमारे पूर्वजोंके विचार अनुवीक्षणयन्त्र (Microscope) द्वारा दृष्टव्य विषयोंपर भी सत्यके कितने निकट थे जानकर हमें सन्तोष ही होना चाहिए।

मनु जी तीसरे अध्यायमें फिर कहते हैं—

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियम् ॥४०॥

अर्थ—समरात्रि में (अर्थात् छठी, आठवीं, दसवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं रातको) स्त्रीके साथ सहवास करनेसे पुत्र उत्पन्न होता है। विषम रात्रिमें अर्थात् पाँचवीं, सातवीं आदि-आदि रात्रिमें स्त्री गमनसे कन्या जन्म लेती है। इसलिए जो पुत्रार्थी हो, वह युग्म रात्रिमें ऋतुमती स्त्रीके साथ शयन करे।

यदि मनुजीका बताया हुआ यह रास्ता ठीक-ठीक काम देता तो माता-पिता कितने सुखी होते परन्तु आगे वह स्वयं ही कहते हैं।

पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः ।
समेऽपमान्पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः ॥४१॥

अर्थ—पुरुषका वीर्य अधिक होनेसे विषम रात्रिमें भी पुत्र और स्त्रीका रज अधिक होनेसे समरात्रिमें भी कन्या होती है। स्त्री पुरुषका रज वीर्य तुल्य होनेसे नपुंसकका जन्म होता है, या यमल सन्तान होती है। दूषित या अल्पवीर्य होनेसे गर्भका धारण नहीं होता।

वीर्य और रजमें असंख्य कीटाणु होते हैं जिनमेंसे दोके सम्मिलनसे बालकका अस्तित्व स्थिर होता है। यह बात अनुवीक्षणयन्त्र द्वारा कभीकी सिद्ध हो चुकी है। वीर्य और रजके आधिक्य अथवा न्यूनतासे लिङ्गमें कोई भेद नहीं हो सकता। वर्तमान वैज्ञानिक अन्वेषणोंसे अनभिज्ञ वैद्य और हकीम भी अभीतक यही विचार धारण किये हुए हैं, इनमें उचित संशोधनकी शीघ्र आवश्यकता है।

ज्योतिषके आचार्योंके भी इस विषयपर अपने विचार हैं। उनके कथनानुसार रविवार, मङ्गलवार, गुरुवार और शुक्रवारको सहवास करनेसे पुत्र उत्पन्न होगा और सप्ताहके शेष दिवसोंको कन्या। उक्त वारोंको भी प्रातःकालके समय सम्भोगसे पुत्र होनेकी अत्यधिक सम्भावना है। परंतु यदि ये मुहूर्त कार्यरूपमें ठीक-ठीक फलित होते तो संसारका कितना महान उपकार होता।

विदेशोंमें भी वैज्ञानिक युगसे पूर्व इस विषयपर भाँति-भाँतिके मनोरंजक विचार थे। बुक़रातकी (Hippocrates) नीत्यनुसार बच्चेका लिंग, माता-पिताके अपेक्षाकृत अधिक बलिष्ठ होनेपर निर्भर था। यदि माता अधिक बलवान हुई तो पुत्री होगी और पिताके ज़ोरदार होनेसे पुत्रका जन्म होगा। ऐसे कुछ विचार भारतवर्षमें अब भी प्रचलित हैं परंतु इनमें अधिक सत्यता नहीं प्रतीत होती। माताके पुष्टिकारक भोजन करनेसे कन्या उत्पन्न होगी और अपेक्षाकृत रूखे आहारसे पुत्रकी प्राप्ति होगी। ऐसा विचार योरोपमें भी प्रचलित था। (Prof. Schenk) प्रोफेसर शैंक ने तो इस पक्षकी पुष्टि करके कुछ दिनोंके लिये बड़ा नाम कमाया था। उन्होंने रोम राज्यकी रानियोंकी भोजन-व्यवस्थापर अपनी देख-रेख रक्खी थी और कुछ अंशोमें उन्हें इच्छानुकूल बच्चे प्राप्त करनेमें सफलताभी मिली थी जो केवल संयोगकी बात थी क्योंकि अन्तमें उन्हें भी कोरी असफलता और अपमानका कटु अनुभव करना पड़ा था।

पुष्टिकारक भोजनके समर्थक एक सच्चीसी दलील यह भी पेश करते हैं कि धनी व्यक्तियोंके प्रायः कन्याएँ उत्पन्न होती हैं और भूखे रहनेवाले मज़दूरोंके ढेर-के-ढेर पुत्र (जिनका वे उचित रूपसे पेट भरनेमें भी समर्थ नहीं होते)। सरकारी आंकड़ोंसे और प्रत्यक्षरूपमें भी

यह बात सत्य प्रतीत होती है—कारण इसका कोई भी हो, परंतु हम पुत्रोत्पत्तिके इच्छुक पुरुषोंसे आशा करेंगे कि वे इस कथनके ऊपर ही अपनी पत्नियोंको भूखा मारकर रोगी न बना देंगे। संभव है कि गर्भकालके प्रथम ६--७ मासमें रूखा-सूखा (किंतु भरपेट) भोजन लाभकारी सिद्धहो परंतु अंतिम २--३ मासमें तो गर्भिणीके लिये अत्यन्त पुष्टिकारक भोजन नितान्त आवश्यकीय है।

थूरी (Thury) नामक एक प्राणिशास्त्र विशारद्-का विश्वास था कि गर्भाधानके समय रज और वीर्यकी परिपक्व अवस्थाका शिशुकी जिन्सियतपर बड़ा प्रभाव पड़ता है। अन्य विद्वानोंका मत है कि दाहिने गर्भाशयसे बालकका जन्म होता है और बाएँसे कन्याका परंतु इन दोनों ही मतोंकी पुष्टिके लिये प्रमाणोंकी कमी है !

गत योरुपीय महायुद्धके पश्चात् उन देशोंमें कुछ वर्षोंके लिये बालकोंकी पैदाइश ही अधिक रही थी ताकि युद्धमें मारे गये सैनिकोंकी क्षतिपूर्ति हो सके। अतः जान पड़ता है कि विधानमें समय-समयपर प्रकृतिका हस्तक्षेप भी हुआ करता है वैसे तो साधारणतः संसारमें पशुओंतकमें भी नर और मादा प्रायः समान संख्यामें ही जन्मते हैं जैसा कि निम्नतालिकासे विदित होगा।

पशु	नर	मादा	आंकडे इकट्ठे करनेवाला वैज्ञानिक
घोड़े	९८३	१००	डीसिङ्ग (Dusing)
गाय बैल	१०७·३	१००	विल्किन्स (Wilkins)
भेड़	९७·७	१००	डारविन (Darwin)
चूहे	१०५·०	१००	क्यूनौट (Cuenot)
मुर्गे	९४·७	१००	डारविन (Darwin)

वर्तमान शताब्दीमें भी स्वेच्छानुकूल बालक उत्पन्न करनेके लिये असंख्य प्रयोग हो रहे हैं परंतु समाजके कठोर नियमोंके कारण वैज्ञानिक लोग स्त्री पुरुषोंपर गवेषणा करनेमें असमर्थ हैं। अतः वे प्रयोग पशुओं, पक्षियों और कीट अथवा पतङ्गोंतक ही परिमित हैं। सफलता प्राप्त होनेपर वे नियम स्वाभावतः मनुष्योंपर भी लागू हो सकेंगे।

रिडिल (Riddle) नामक प्राणिवेत्ताने कबूतरों-के विषयमें एक अनुपम खोज की है। मादा पक्षी एक 'लान' में दो अंडे देती है जिनमें पहले अंडेसे कबूतर और दूसरेसे कबूतरी। परीक्षा करनेसे पता चला था कि पहिले अंडेका जर्दा और अन्य पोषक पदार्थ दूसरेसे थोड़े थे, उसमें चर्बी और फौसफोरस (Phosphorus) के मिश्रित पदार्थोंकी विशेष कमी थी और जलका अंश अधिक था। रिडिल महोदय अपने अपूर्व वैज्ञानिक प्रयोगों-के बूतेपर प्रकृतिके विपरीत पहिले अँडेसे कबूतरी और दूसरेसे कबूतर बनानेमें भी समर्थ हुए थे।

इस समयके प्राणिशास्त्र विशारदोंने इस समस्याको बहुत अंशों तक सुलझा दिया है। वर्तमान खोजका पूरा किन्तु अत्यंत ही संक्षिप्त वर्णन यहाँ दिया जाता है।

हमारा शरीर असंख्य छोटी-छोटी कोठरियों (cells) का बना हुआ है। प्रत्येक कोठरीमें एक अत्यन्त शक्तिशाली न्यूक्लियस (Nucleus) नामक पदार्थ रहता है जोकि कोठरीके राजाके समान है। यह न्यूक्लियस भी कई छोटे-छोटे भागोंका बना होता है जिनको क्रोमोसोम (chromo-some) कहते हैं। लिङ्गभेदका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व इन्हीं क्रोमोसोमोंके ऊपर है।
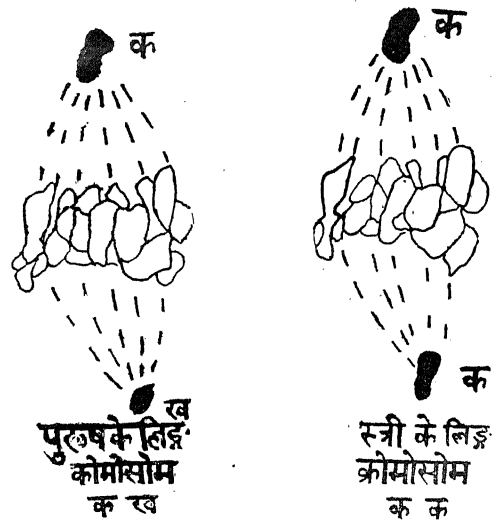
इन क्रोमोसोमोंकी संख्या प्रत्येक जीवमें भिन्न-भिन्न होती है। (Painter) पेन्टर के हिसाबसे स्त्री पुरुषोंमें

केवल ४८ अथवा २४ जोड़े होते हैं। स्त्री पुरुषोंमें २३ जोड़े तो समान ही होते हैं परन्तु पुरुषोंमें २४ वें जोड़ेका एक भाग स्त्रियोंके समान न होकर थोड़ा छोटा होता है। उसीके सामानान्तर स्त्रियोंके दोनों भाग बराबर होते हैं। अथवा यों कहिए कि स्त्री पुरुषके दोनों क्रोमोसोम जोड़ोंमें तीन तो एक से होते हैं किन्तु पुरुषके क्रोमोसोमका एक भाग छोटा होता है। दोनों प्राणियोंके २४ वें जोड़ेको लिङ्गवाला क्रोमोसोम कहते हैं। लिङ्गसम्बन्धी विषयोंमें और क्रोमोसोम अनावश्यक हैं।

पुरुष और स्त्रीके वीर्य अथवा रजमें क्रोमोसोम जोड़े अलग-अलग हो जाते हैं और प्रत्येक किटाणुमें क्रोमोसोमों-की संख्या केवल आधी अथवा २४ ही रह जाती है परन्तु पाठकोंको याद होगा कि स्त्रीके रजके तो सब कीटाणुओं में लिङ्ग क्रोमोसोम एक प्रकारके ही होंगे परन्तु पुरुषके वीर्यके काटाणु दो भाँतिके होंगे। आधे तो स्त्रीके रजके समान ही होंगे और आधेमें एक लिङ्गवाला क्रोमोसोम

छोटा होगा। सुविधाके लिए यदि स्त्रीके दोनों लिङ्ग क्रोमोसोमोंको क क मान लिया जाय तो पुरुषके लिङ्ग-मेंसे भी एक क मानना होगा जो कि उन सबके समान ही होता है। छोटे वाले लिङ्ग क्रोमोसोमको ख ख मानना होगा। अतः स्त्रीके लिङ्ग क्रोमोसोम हुए क क और पुरुषके क ख। स्त्रीके रजमें सब क्रोमोसोम क होंगे परन्तु पुरुषके वीर्यमें आधे क होंगे और आधे ख।

गर्भाधानके समय स्त्री और पुरुषके रज और वीर्यके कीटाणुओंके सम्मिलनसे शिशुका अस्तित्व स्थिर होता है। फलतः यदि रजके कीटाणु से (जो सदैव क होंगे) पुरुषके वीर्यके क कीटाणुसे सम्बन्ध होता है तो शिशु-का परिणाम क क होता है, अथवा गर्भमें कन्या प्रविष्ट होती है और यदि उसी रजसे (ध्यान रखिए वे सब एक प्रकारके हैं) ख क्रोमोसोम वाले वीर्य कीटाणुका मिलन होता है तो बच्चेका परिमाण क ख हुआ जिससे गर्भमें पुत्रका बोध होता है।

उपरोक्त विवरणसे गर्भमें बच्चेका लिङ्ग कैसे निर्दिष्ट होता है? यह समस्या तो हल हो गयी और यह भी पूर्णतः विदित हो गया कि गर्भमें पुत्र और पुत्री होनेके योग बराबर ही होते हैं और यही कारण है कि संसारमें स्त्री पुरुषोंकी संख्या प्रायः बराबर ही रहती है।

अब स्वेच्छानुकूल पुत्र अथवा पुत्री प्राप्त करनेमें केवल एक ही कठिनाई रह गयी है जिसको दूर करनेमें आधुनिक वैज्ञानिक अकथ परिश्रम कर रहे हैं।

पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं कि यदि गर्भाधानके

समय पुत्रोत्पत्तिके लिए यदि वीर्यके क्र क्रोमोसोम वाले कीटाणुओंको किसी प्रकार नष्टकर सकें तो फिर कन्या होनेका खटका न रहेगा और यदि कन्या होनेका खटका न रहेगा और यदि कन्या प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो खवाले वीर्य कीटाणुओंसे छुटकारा पानेके उपाय खोजनेकी अवश्यकता होगी। वर्तमान वैज्ञानिक इसीमें व्यस्त हैं परन्तु अबतक कोई ऐसा उपाय नहीं मिल सका है। कई वैज्ञानिक भिन्न-भिन्न रसायनोंका प्रयोग कर रहे हैं, और कोई बिजलीकी किसी विशेष धाराका। सन्तानमें लिङ्ग भेदको स्वाधीन करनेके इच्छुक माताओंको इन उपयोगी प्रयोगोंके सफल होनेकी प्रतीक्षा करनी उचित है।

अन्तरिक्षकी वैज्ञानिक सैर

पृथ्वीसे दस मील ऊपर कस्मिकांशुओंके अनुसन्धानमें

[श्री विद्याभास्करजी, काशी]

१—यात्री प्रो० पिकर्ड

कौन सा ऐसा व्यक्ति है जो आकाशमें उड़कर बहुत दूरकी ऊंचाईसे पृथ्वीपर एक नज़र डाल लेनेकी इच्छा न रखता हो? यह कार्य कल्पनाके लिये जितना सरल और आनन्ददायक है, व्यावहारिक रूप देनेके लिये उतना ही कठिन और आपद्‌मय भी है। यद्यपि आधुनिक विज्ञानने आकाश-यात्राका मार्ग सुगम कर दिया है, फिर भी यह खतरेसे खाली नहीं है। और अबतक जो कुछ सफलता प्राप्त हुई है वह क्या योंही हो गयी है? कितने वैज्ञानिकों और अन्वेषकोंने बड़े-बड़े खतरोंका सामना करके और अपने जीवनकी बलि देकर ही मानव-समाजके कल्याणके लिये यह सिद्धि पायी है। संसारका कोई महान् कार्य खतरेसे खाली नहीं है, और जो साहसी वीर अपने जीवनकी कुछ भी परवाह न करके किसी महान् कार्यमें लग जाते हैं, वे कुछ कर ही डालते हैं और संसारका उपकार करके महापुरुषका पद पाते हैं।

ऐसे ही महापुरुषोंमेंसे एक हैं—प्रोफ़ेसर ए० पिकैर्ड। अबतक मनुष्य आकाशमें जहाँतक पहुँच सका है, उसमें सबसे ऊपर पहुँचनेवाले यही महाशय हैं। भारतवासियोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि प्रो० पिकैर्ड पाँच बच्चोंके पिता हैं। यहाँ तो परिवारका इतना कठिन मोह होता है कि कोई व्यक्ति अपनेको खतरेमें डालनेकी कल्पनातक करनेमें डरता है।

यहाँ यह जान लेना आवश्यक है, कि प्रो० पिकैर्डकी यह यात्रा मनोरञ्जनार्थ या आकाश-यात्राका रिकार्ड मात करनेके लिये नहीं हुई। आपने एक महान् उद्देश्यको लेकर उस ख़तरेमें पैर रखा था। आपका उद्देश्य था Cosmic Rays (ब्रह्माण्डीय) किरणों या कस्मिकांशुओंका निरीक्षण। इस सम्बन्धमें प्रोफ़ेसर साहबने जो कुछ लिखा है उसीका परिचय कराना हमारा अभीष्ट है।

प्रो० पिकैर्ड पृथ्वीसे ५३१५२·८ फीट (१०·७ मील) ऊंचाईतक आकाशमें उड़े और कुशलसे लौट आये। यहाँ यह बात याद रखनेकी है कि हिमालय पर्वतकी सिकदार या गौरीशङ्कर चोटी समुद्रतलसे २९, १४१ फ़ीट ऊँची है और यह दुनियाँमें सबसे ऊँची है।

२—ऊपरसे नीचेका तमाशा कैसा लगता है?

प्रोफ़ेसर पिकैर्ड ब्रसेल्स विश्वविद्यालयमें भौतिक विज्ञानके अध्यापक हैं। आपका जन्मस्थान स्विट्ज़रलैण्ड है। आप अपनी इस यात्राके विवरणमें लिखते हैं—

"शायद आप जानना चाहेंगे कि दस मीलकी दूरीपरसे पृथ्वी कैसी देख पड़ती है। वहाँका आकाश सुन्दर

है—अधिकतर काला। वहाँका आकाश पृथ्वी परसे जितना काला दिखलाई देता है उससे दस गुना अधिक काला है। पर यह अन्धकार तारोंको देखनेके लिये काफ़ी नहीं है। हाँ सूर्य्य उससे अधिक चमकीला दिखाई देता है, जितना वह पृथ्वीपर दिखलाई पड़ता है। जब कुहरा नहीं होता तब खेत, पहाड़ और नदियाँ बहुत सुन्दर पर अस्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। हिसाब लगानेसे मालूम होता है कि यदि कुहरा न हो तो पृथ्वीपरका ५६० मीलका वृत्त दिखाई दे सकेगा।"

३—यात्राकी तैयारी

वे आगे लिखते हैं—'मैं चाहता था कि जिस चीज़पर मैं आकाश-यात्राके लिये रवाना होऊँ उसमें कमसे कम एक सहायक, थोड़ेसे औज़ार या यन्त्र और ओषजन (Oxygen) आ सके। ओषजन, जो मनुष्यको जीवित रखनेके लिये परमावश्यक वस्तु है, १० मीलकी ऊंचाईपर नहीं मिलता। इसके बाद स्वभावतः यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि यात्रा किस चीज़में की जाय। तीन चीज़ें थीं जो आकाशमें उड़ सकती थीं—(१) राकेट (२) हवाई जहाज, और (३) बेलून। इन तीनोंमेंसे अबतक कोई चीज़ दस मीलतक नहीं पहुँच सकी है। राकेट कुछ ही दिनोंमें बहुत ऊपर जा सकेगा। किन्तु उसे व्यवहारमें लाने योग्य बनानेमें अभी कई वर्ष लगेंगे। हाँ, हवाई जहाज़ कुछ ही वर्षोंमें दस मील ऊपर जाने योग्य हो जायेगा किन्तु अभी वह उतनी ऊंचाईके अनुकूल नहीं है।

"यदि मैं (हवाई जहाज़का) उड़ाका होता तो अपने अनुसन्धानोंके लिये उनका प्रयोग करनेकी चेष्टा करता! उस अवस्थामें भी हमें कोई लाभ नहीं होता क्योंकि हम पहिलेसे हिसाब लगाकर कुछ भी निश्चय नहीं कर सकते थे। इसलिये मैंने बेलूनमें परिवर्तन करके अपने कार्यके लिये उपयोगी बनानेका निश्चय किया।

"हवाई जहाजकी अपेक्षा बेलून अधिक सुविधापूर्ण है। यह गणना और मापन कार्यके अनुकूल है, क्योंकि इसमें मोटरके, हवाई जहाज़में लगे हुए मोटरके, चुम्बकीय प्रभाव अथवा कम्पनकी बाधा नहीं रहती। बेलूनमें वे सूक्ष्म यन्त्र लगाये जा सकते हैं, जो हवाई जहाज़में विकृत हो जाते हैं।

"अब हमें एक ऐसी कोठरी बनानी थी, जिसमेंसे हवा छनकर बाहर न जा सके। इसके लिये, अलुमुनियम सबसे अच्छा समझा गया। '१३८ इञ्च मोटी चादरकी ७ फ़ीट व्यासकी गोलाकार कोठरी (Gondola) तैयार की गयी। इसमें आदमीके आने-जाने लायक दो छेद ऊपरकी ओर बनाये गये और इधर-उधर और नीचे आठ छेद ३ इञ्च व्यासके। यह इतनी बड़ी थी कि इसमें दो अन्वेषक और हमारा यन्त्रोंका (वृत्ताकार) तख़्ता जा सकता था।

"अब हमें इस कोठरीमें स्वच्छ वायु, और साँस लेनेकी समस्याको सुलझाना था। इस सम्बन्धमें (Sub-Marine) पनडुब्बी नाव सम्बन्धी ज्ञानसे हमने लाभ उठाया। हमने एक मेजके नीचे ड्रेजर यन्त्र लगाया जो कि प्रति मिनट दो क्वार्ट शुद्ध ओषजन हमको दे सकता था, और कोठरीके अन्दरको २० गेलन वायुको (अलकली) क्षारसे स्पर्श कराकर शुद्ध कर सकता था।

"अब बेलूनकी कल्पना कीजिये। यदि उसका कपड़ा ज़मीनपर बिछाया जाता तो $\frac{3}{4}$ एकड़ ज़मीनको ढक लेता। उड़नेसे पहिले उज्जन (हाइड्रोजन) भर देनेपर उसकी चोटी ६० गज़ ऊपर थी। यदि उसमें उज्जन पूरा-पूरा भर दिया जाता तो एक पूरी रेलगाड़ीको उठा लेता। इतनी बड़ी शक्तिको रोकनेके लिये हमें बेलून ऐसी चीज़का बनाना पड़ता और उसमें इतनी मज़बूत और भारी रस्सियाँ लगानी पड़तीं कि बोझा इतना अधिक हो जाता कि बेलून उठ ही न पाता। इसलिये हमने पहिलेसे ही समझ रखा था कि उड़नेसे पहिले बेलूनको उज्जनसे पूरा न भरेंगे। ज्यों-ज्यों बेलून ऊपरको उठता है। गैस फैलती जाती है। हम लोगोंने यह गणना कर रखी थी कि इतनी ऊंचाईपर उसको ले जानेके लिये कि वह गोलाकार हो जाय उसको केवल पञ्चमांश भरनेकी आवश्यकता होगी। उसके बाद इसलिये कि उसमेंसे आवश्यकतासे अधिक बढ़ी हुई गैस निकल जाय और वह स्थिर हो जाय, उसमें यन्त्र लगा दिये गये थे।

"नीचेसे ऊपरकी ओर उसकी चौथाई भागकी दूरीपर एक बेल्ट लगायी गयी थी, इसीमें वे रस्सियाँ लगायी गयी थीं जिनसे (गण्डोला) कोठरी लटकायी गयी थी। उज्जन भर जानेपर उसे रोक रखनेके लिये एक बेल्ट ऊपर चौथाई भागकी दूरीपर लगायी गयी थी, और उसमें ३२ रस्सियाँ लगी थीं जिनके दोनों सिरे लटकते थे।"

इतने बड़े काममें कितने रुपयेकी आवश्यकता हुई होगी? साधारणतः एक व्यक्तिकी शक्तिके बाहरकी बात है। यूरोपीय देशोंमें विज्ञानको जितना महत्व और प्रोत्साहन दिया जाता है वह अवश्य सराहनीय और अनुकरणीय है। महत्व तो हमारे देशमें भी दिया जाता है, पर वैज्ञानिक आविष्कारकोंको आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहित करनेवाले व्यक्ति और संस्था कहाँ हैं? यूरोपीय देशोंमें ऐसी अनेक संस्थाओंका सङ्गठन किया गया है, जो नये-नये अनुसन्धानकर्ताओंको धनकी सहायता देकर प्रोत्साहित करती हैं। बेलजियममें (Fords National de Recherche Scientifique) नामकी एक संस्था है जिसकी स्थापना वहाँके शासक अलबर्ट प्रथमकी इच्छानुसार हुई है। इस संस्थाके नाम प्रोफ़ेसर पिकैर्डने प्रार्थनापत्र भेजा। आपने अपना उद्देश्य बतलाया, और कहनेकी आवश्यकता नहीं कि उनको फौरन १४,००० डालर दे दिये गये। आपने इसी धनसे बेलून बनवाया था; उस बेलूनका नाम उस संस्थाकेही नाम पर रखा गया।

आपने उड़नेके लिये बेवरियाके आक्सवर्ग नामक स्थानको चुना। इस कार्यके लिये बेवरियाको चुननेका कारण यह था कि वह स्थान समुद्र तटसे यूरोपके दूसरे स्थानोंकी अपेक्षा अधिक दूर है। यह इसलिये कि बेलूनके लिये समुद्रमें उतरना ख़तरनाक है।

४—यात्रा कैसे शुरू हुई

आगे प्रोफेसर पिकैर्ड लिखते हैं "१९३० के सितम्बर मासके आरम्भतक सब तैय्यारी हो गयी। बेलून इतना बड़ा था कि थोड़ीसी हवासे भी उसको हानि पहुँचनेकी संभावना थी, इसलिये हम लोग अनुकूल मौसमकी राह देखने लगे। हम लोगोंने सुबह तड़केही उड़नेका निश्चय किया था, क्योंकि उस समय प्रायः वायुमें शान्ति रहती है। १३ वीं सितम्बरको मौसम अच्छा था। १४ को प्रातःकाल ही उड़नेका निश्चय किया गया। सब तय्यारियां होने लगीं कुछ रात रहते बेलूनमें उज्जन भरी जाने लगीं। उस समय मौसम शान्ति था किन्तु उज्जन भरनेका काम समाप्त होते ही वायुका दबाव एकाएकी घट गया। किन्तु उस समय भी शान्ति थी। लेकिन अभी बहुतसा काम बाकी था। इतनेमें हवाका हलका सा झोंका चल पड़ा और बेलून एक ओरको झुक गया। हमें तुरन्त उज्जन निकाल देनी पड़ी क्योंकि भय था कि कोठरी घसिट जाती, और उसको भारी क्षति पहुँचती।

"इस प्रकार हम लोग इस बार असफल रहे। लोगोंने बड़ा मज़ाक उड़ाया। बड़ी-बड़ी मनगढ़न्तें अखबारोंमें छप गयीं। बहुतोंने कहाकि ख़ब्ती प्रोफेसरने हिसाब लगानेमें भूलकी और बेलून १० मीलकी बजाय १० फीट ही उड़कर रह गया।

"हम लोगोंने जाड़ेके बीत जानेका इन्तजार किया। और २७ मई सन् १९३१ के सुबहके लिये सब तय्यारी हो गई। इस बार भी हवाने हमें बाधा पहुँचायी। कोठरी गाड़ी परसे गिर गयी और क्षतिके फलको हमें बादमें भोगना पड़ा। किन्तु फिर भी हम लोग इस बार अपने निश्चयसे विचलित न हुए।

मेरे सहायक श्रीपाल-किफर और मैंने कोठरीमें प्रवेश किया। द्वार बन्द कर दिये गये, और हम लोग अपने यंत्रोंको संभालकर रखने लगे। लोग बाहर हमारी अन्तिम आज्ञाकी प्रतीक्षा करने लगे।

५—गुबारा उड़ चला!

"रस्सियां छोड़ दी गयीं। बेलून उड़ चला। हम लोग अपने काममें लगे। गण्डोलाका एक छेद अभी खुला हुआ था। यह एक इंच व्यासका था। इसमें एक यन्त्र लगाना था जिसे पृथ्वीपर रहते लगाना संभव न था, क्योंकि छेद कोठरीकी तलीमें था। मैं जब यन्त्र लगाने लगा, तो देखाकि छेद टेढ़ा होगया है।

हम आकाशमें जितने ही ऊपर जाते हैं हवा पतली होती जाती है और अधिक ऊंचाईपर जाकर मनुष्यके लिये साँस लेना कठिन हो जाता है। इस समस्याको हल करनेके लिये हमने यह सोचा था कि कोठरीमें पृथ्वीके वायुमण्डलका भाग लेते जाँयगे।

"मैं उस छेदमें यन्त्र न लगा सका। उस समय हम लोग १५,००० फ़ीट उँचाई पर पहुँच चुके थे। बाहरकी हवाका दबाव कम हो गया और हमारी कोठरीमेंकी हवा बाहर निकली जा रही थी। निराशा सामने थी। इतनेमें किफ़रने सहायता पहुँचाई, और जोर लगाकर उस यंत्रको फ़िट कर दिया किंतु दुर्दैव! एक दूसरी नली फट गयी थी और हवा सर-सर बाहर निकलने लगी, किसी-प्रकार ओक्सिजनकी सहायतासे भीतरके दबावको हमने क़ायम रक्खा और उस दरारको बन्द करनेके प्रयत्नमें लगे। मैंने समझ रक्खा था कि यदि दरार बन्द न हो सकी तो रस्सी खींचकर बेलूनका द्वार खोल देंगे, और गैस निकल जायगी, बेलून नीचे उतर आएगा। बड़े प्रयत्नके बाद वैसलीन और ओकमकी सहायतासे दरारको बन्द करनेमें सफलता मिली।

"अब हम लोग शान्तिके एक विचित्र साम्राज्यमें थे, इतने आनंदका कभी अनुभव न किया था। हम तीन बजकर ४७ मिनटपर चले थे, इस समय चार बजकर २५ मिनट हुए। केवल २८ मिनटमें इतनी ऊंचाईपर! ऊंचाई नापनेके यत्नमें देखा ९.६५ मीलकी ऊंचाई पर हम लोग पहुँच चुके थे।

"दुर्भाग्यसे ऊपर जाते समय हम लोग किसी प्रकारका मापन न कर सके। हमारा समय इधर-उधरकी चीज़ें ही ठीक करनेमें बीता।

"इस बार उतरनेमें भी बड़ी कठिनाई हुई। जब बेलूनके द्वारको खोलनेके लिये रस्सीको खींचा तो वह टूट गयी। उड़नेसे पहिले उन्हें ठीक तरहसे न देखा गया था। किसी प्रकार रातको ८ बजकर ५० मिनटपर इन्सब्रुक प्रदेशमें ओवरगर्ल्ग गांवके पास एक ग्लेसियरके समतल भागपर बेलून उतरा। सौभाग्यसे बेलून समुद्र या पहाड़ी खन्दकोंसे बच गया। रात किसी तरहसे काटी और सुबहको उसी गाँवमें हम लोग गये।

६—दूसरी यात्रा

"दूसरी यात्राकी तैयारी अगले वर्षकी गयी। बेलून वही रक्खा गया, किन्तु कोठरी दूसरी बनानी पड़ी। १८ अगस्त सन् १९३२को इस बार हम फिर उड़े। इस बार-की यात्रामें हमें पूरी सफलता प्राप्त हुई। इस बार हम गणना और मापन ठीक-ठीक कर सके।

इस एक यात्रासे—जिसमें प्रोफेसर पिकैर्डको केवल संकट और बाधाओंका ही सामना करना पड़ा था जिसमें उन्हें अपने उद्देश्यतक पहुँचनेमें ज़रा भी सहायता नहीं मिली और जिसमें निरर्थक परिश्रमके सिवाय कुछ भी हाथ न लगा—आप सन्तुष्ट नहीं हुए। यह बात उनके अंतिम वाक्य-समूहमें स्पष्ट रूपसे देखते हैं।

× × × × ×

यहाँपर प्रसंगवश उन दूसरे व्यक्तियोंकी चर्चा कर देना अनुचित न होगा जिन्होंने समय-समयपर आकाशमें अधिक-से-अधिक ऊपर जानेका प्रयत्न किया है।

७—और यात्री

९ मार्च सन् १९२७को कप्तान एच० ग्रे नामक सज्जन बेलूनसे आकाशकी ओर उड़े और कुल २८,५१० फीट (५.४० मील) तक पहुँच पाये।

४ जून सन् १९३०को श्री अपोलो सौसेक नामक महाशय हवाई जहाजसे ४३,९७६ फीट (८.१७ मील) उड़े थे।

१६ सितम्बर १९३२को कप्तान सैरि एफ० डविन्स नामक सज्जनने भी ४३,९७६ फीट अर्थात् ८.३३ मील तककी यात्रा की थी। आपकी यात्रा भी हवाई जहाजसे हुई थी।

इन सज्जनोंके उद्देश्यका ठीक-ठीक पता नहीं है। उद्देश्य एक रहा हो अथवा भिन्न रहे हों हमें यह कहनेमें तनिक भी भय नहीं है कि श्रीपिकैर्डके प्रयासका वैज्ञानिक संसारमें असाधारण महत्व है। आप वायुमंडलमें (Stratosphere) बाह्य वायुमंडलतक पहुँच सके थे।

× × × × × ×

८—अन्तरिक्षके विभाग

वायुमंडल-विज्ञानवेत्ता वायुमंडलके दो भाग करते हैं। एकको अँग्रेजीमें Troposphere (अभ्यन्तर वायु-मंडल) कहते हैं। ट्रापासफियर समुद्रतलसे लगभग साढ़े सात मील ऊपरतक माना जाता है। पृथ्वीका ताप घटता-बढ़ता रहता है जिसके कारणसे पृथ्वीसे ताप कम या अधिक मात्रामें निकलता है। यह ताप हवाको ऊपर उठाता है।

हवा जैसे-जैसे ऊपर उठती जाती है, ठण्डी होती जाती है। यही सब बादल, वर्षा, तूफ़ान, बरफ़ इत्यादिका कारण है। हवा ऊपर उठते-उठते ठण्डी होनेके साथ-साथ अपनी शक्ति भी खोती जाती है। जब वह ऐसे स्थानपर पहुँचती है, जहाँका तापमान शून्यके नीचे ५८ से ७६ फारेनहाइट तक (From 58 to 76 degrees below zero Fahrenheit) रहता है, तब उसकी शक्ति बिलकुल ही निकल जाती है और फिर वह अधिक ऊपर नहीं उठ सकती। यहाँपर वायुमण्डलका पहला भाग समाप्त होता है। इसके परे दूसरा भाग है, जिसे Stratosphere (बाह्य वायुमण्डल) कहते हैं। तापके कारणसे हवामें जो आन्दोलन पैदा होता है, उसका असर इस भागमें नहीं होता। यहाँ, बादल, बरफ़, तूफ़ान जैसी कोई चीज़ नहीं होती, यहाँका तापमान शून्यसे नीचे—५८° से—७६° फारेनहाइटतक बहुत कुछ एकसा रहता है। यहाँपर सदा शान्ति बनी रहती है, मौसम एकसा रहता है, पर ठण्डक काफ़ी रहती है।

आजकल वायुयान (Troposphere) अभ्यन्तर वायुमण्डलमें ही चला करते हैं, और उसमें भी अधिक ऊंचाईपर नहीं। इसलिये उनकी गतिमें हवा वर्षा बरफ़ तूफ़ान इत्यादिसे बड़ी बाधा पड़ती है, और खतरा भी रहता है। समस्या यह है कि किसी प्रकारसे वायुयानका Stratosphere में चलना सम्भव हो सके तो बहुत कुछ सुविधाएँ हो जायँ और सबसे बड़ी बात तो यह हो कि गति आजकलकी दूनी ५०० मीलसे भी अधिक बढ़ जाय। तब तो भारतसे इंगलैण्ड एक दिनमें यात्रा हो सकेगी।

९—कस्मिकांशु क्या हैं ?

अब यह बताना आवश्यक है कि (Cosmic Rays) ब्रह्माण्डीय किरणें या कस्मिकांशु क्या हैं जिनके अनुसन्धान-में संसारके बड़ेसे-बड़े वैज्ञानिक अनवरत परिश्रम करते हैं, और जिसके लिये ही प्रोफ़ेसर साहबने यह ख़तरनाक यात्रा की थी।

अबतक वैज्ञानिक इसका पता नहीं लगा सके हैं कि इन किरणोंका (Cosmic Rays) उत्पत्तिस्थान क्या है, अथवा उनकी प्रकृति क्या है। इतना तो अवश्य है कि उनके बहुतसे गुणोंका पता लग गया है, और इस सम्बन्धमें ज्ञान बढ़ता ही जा रहा है। अभीतक यह नहीं कहा जा सकता कि वे असंख्यों मील दूरवर्त्ती नीहारिका या तारोंसे अथवा अवकाशके किस अनन्त अमेय स्थानसे, या कि वायुमण्डलके बाह्य स्तरोंसे आती हैं। हम यह भी नहीं जानते कि सूर्य्य ही उनको किसी अप्रत्यक्ष प्रकारसे उत्पन्न करता है, या कि अकाशमें उड़नेवाले अणुओंसे वे निकलती हैं। और यहभी पता नहीं चलता कि वे बेतारकी तारकी किरणों, प्रकाशकी किरणों, या एक्सरेकी तरह विद्युत-चुम्बक-किरणों (Electro-Magnetic Rays) की श्रेणीमें आती हैं अथवा नहीं। किन्तु धीरे-धीरे यह विश्वास होता जा रहा है कि यह किरणें पृथ्वीके बाहर कहींसे आती हैं, क्योंकि हम पृथ्वी-के ऊपर ज्यों-ज्यों जाते हैं, इन किरणोंको अत्यधिक शक्ति-शाली पाते हैं।

इन किरणोंमें शक्तिका अतुल भण्डार भरा हुआ है। दूसरे प्रकारके किसीभी किरणकी शक्तिसे कहीं अधिक शक्ति एक कस्मिक किरणमें है। अणु परमाणुओंकी प्रबलसे प्रबल रासायिनिक प्रतिक्रियासे भी कई लाख गुनी शक्ति एक किरणमें होती है।

यद्यपि हम उनकी उत्पत्तिका मूल नहीं जानते, फिर भी उनकी शक्तिको नाप सकते हैं। और कुछ प्रति-क्रियाएँ भी जानते हैं जिनसे कि वे पैदा की जा सकती हैं।

यद्यपि इस प्रकारकी प्रतिक्रियाएँ नहीं देखी गयी हैं फिर भी भौतिक विज्ञान यह निश्चयपूर्वक जानता है कि इन प्रतिक्रियाओंसे कितनी शक्ति निकलती है, और यह

भी जानता है कि ये प्रतिक्रियाएँ इन किरणोंको पैदा कर सकती हैं। विज्ञान बतलाता है कि पानीकी छः बूँदके अणुओंकी उस प्रकारकी प्रतिक्रियासे इतनी शक्ति प्राप्त हो सकती है कि उससे संसारके बड़ेसे बड़े शहरको घण्टों प्रकाश दिया जा सकता है। सभ्यता-के विकासकी भिन्न-भिन्न स्थितियोंमें मनुष्यने भिन्न-भिन्न प्राकृतिक साधनोंका सहारा लिया है। एक साधनके समाप्त होनेपर दूसरे साधनकी खोज होने लगी है। कोई समय था जब कि लकड़ी चालक-शक्तिका काम देती थी। जब लकड़ी कम होने लगी तब मनुष्यने कोयले और मिट्टीके तेलको खोज निकाला। आजकलके वैज्ञा-निक इस चिन्तामें पड़े हैं कि जब कोयले और तेलका प्राकृतिक भाण्डार समाप्त हो जायगा तब आधुनिक सभ्यताकी रक्षाके लिये किस प्राकृतिक साधनका आश्रय लेना होगा। उनका कहना यह है कि उस समय इन्हीं किरणोंका सहारा लिया जा सकेगा। यद्यपि वह युग अभी बहुत दूर है; फिर भी कोयला और तेल घट ही रहा है, और समस्या इतनी दुर्भेद्य है कि उसमें जितनी ही जल्दी लगा जाय थोड़ा है। इसलिये वैज्ञानिक इस उलझनमें पड़े हैं कि यह किरणें (Cosmic Rays) कृत्रिम ढङ्गसे कैसे बनायी जा सकती हैं। हमारे पास वायु, जल, जैसे सुलभ साधन हैं ही। इनके अणुओंमें यदि इन किरणों-को उत्पन्न करनेवाली प्रतिक्रियायें पैदा की जा सकें तो चालक शक्तिके अथाह भाण्डारका द्वार खुल जाय।

इन किरणोंके सम्बन्धमें यद्यपि बहुत सी दूसरी समस्याएँ भी हैं, तो भी सबसे महत्वपूर्ण उनके उत्पत्ति-रहस्यकी है, जिसे हल करनेमें संसारके बड़े-से-बड़े वैज्ञानिक लगे हैं।

अबतक इन किरणोंका निरीक्षण पृथ्वीपर, झीलों-पर पहाड़ोंकी चोटियोंपर और बेलूनोंद्वारा ४॥ मीलकी ऊँचाईतक किया गया था। किन्तु ये किरणें हमारे वायु-मण्डलमें आकर अपनी शक्ति खो देती हैं, और उनकी रचना प्रकृति भी बहुत कुछ बदल जाती है।

इनमेंसे जो कम तीक्ष्ण होती हैं उन्हें हमारा वायु-मण्डल सोख लेता है। और दूसरी तीक्ष्ण किरणेंभी शुद्ध नहीं रहतीं बल्कि वे दूसरी किरणोंकी मिलावट हो जानेके कारण दूसरे प्रकारकी किरणोंको अर्थात् गौण किरणोंको उत्पन्न करती हैं। इसलिये जितना ही अधिक ऊँचाईपर जाकर इन किरणोंका निरीक्षण किया जाय उतनाही यह शुद्ध रूपमें मिलेंगी। और उस शुद्ध रूपसे इनके उत्पत्तिके रहस्यका उद्घाटन हो सकेगा।

यही विचार था जिसको लेकर प्रोफ़ेसर पिकैर्डने इतने साहस और खतरेका काम किया। और अभ्यन्तर वायुमण्डलके परे बाह्य-वायुमण्डलकी यात्रा की। उन्हें क्या पता लगा, यह विषय ऐसी अनेक यात्राओंसे ही पक्की तौरपर कहा जा सकेगा। *

महाभारतकी लड़ाई अबसे पाँच हज़ार बरस पहले

[प० देवसहाय त्रिवेदी, बी० ए०, रिसर्च स्कालर (गोल्डमेडलिस्ट) सरस्वतीभवन, काशी]

"Truth crushed to earth shall rise again." Bryant.

गत पचास वर्षोंमें महाभारत युद्धकी तिथिके विषयमें विद्वानोंमें बहुत संघर्ष रहा। कितने ही धुरन्धर विद्वानोंने तो युद्धका नाम निशानही मिटा देनेकी कोशिश की। दिल्लीके श्री एन० वी० थडानी ऐसे विद्वानोंमें-से एक हैं। इन लोगोंके अनुसार युद्ध हुआ ही नहीं। किन्तु जो बात जनताके हृदयपर बज्रके समान बैठी हुई है, और वह केवल आज या कलसे नहीं किन्तु हज़ारों वर्षोंसे, वह आसानीसे गप कहकर नहीं टाली जा सकती। हिन्दुओंकी सनातनी परम्परा केवल परम्परा ही

---

* इस लेखको तैयार करनेमें लेखकको जो अमूल्य सहायता पण्डित जीवनराम जी शास्त्री (काशी विद्यापीठ) से मिली है, उसके लिये लेखक हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता है।

नहीं किन्तु वह शिलालेख तथा साहित्यिक प्रमाणोंद्वारा निर्धारित ऐतिहासिक दृष्टिसे भी बहुतही महत्वपूर्ण है। यूरोपीय विद्वानोंको भी हार दाव देकर भारतीय परम्परा-से मात खानी पड़ी है और अन्तमें उनको लाचार होकर कहना पड़ा है। यथा

The Hindu statements have almost universally been regarded as very different from the fictions of an improved and credulous people and entitled to a very serious and profound investigation."1

भारतीय परम्पराके अनुसार युद्ध कलियुगके पहले हुआ था और आजतक कलिके ५०३७ वर्ष बीत गये। इस परम्पराको उसी हालतमें शूलीपर चढ़ा सकते हैं जब यह समझ लिया जाय कि भारतवासी पहलेहीसे अपनी प्राचीनताके विषयमें ऊटपटांग विचार रखते थे। हम लोगोंके पाठशालीय बच्चोंका दिमाग तो लड़कपनहीमें ऐसी बातोंको पढ़ाकर दूषित कर दिया जाता है जिससे वे राष्ट्रीयता[२]के मार्गमें कण्टक बन जावें और अपने पुरातनोंको मन्दबुद्धि[३] समझें।

ह्वीलर महोदयने ज्योतिगणनाके आधारपर युद्धको ६००० वर्ष खृष्टपूर्व माना किन्तु उन्हीं आधारोंपर बेन्टले महोदयने ५७५ वर्ष ई० पू० युद्धकी तिथि माना। सीतानाथ प्रधानजी मगध वंशावलिके आधारपर युद्धका होना १२५० वर्ष ई० पू० मानते हैं। पार्जिटर महाशय वंशावलियोंके आधारपर १८१० खृष्टपूर्व तथा स्वर्गीय महामहोपाध्याय सतीशचन्द्र विद्याभूषण महोदय युद्ध तिथि १६२२ खृष्टपूर्व मानते हैं। स्वर्गीय बालकृष्ण दीक्षित तथा सर्वमान्य धुरन्धर रायबहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य महोदयने भी ज्योतिगणनाके आधारपर युद्धका होना ३००० वर्ष ई० पू० माना है। पाश्चात्य विद्वान् ज्योतिगणनाओंकी ओर कान भी नहीं देते फिर उनका काटना तो अलग रहा। डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी तथा बाबू काशीप्रसाद जयसवाल इत्यादि सभी आधुनिक इतिहासज्ञ युद्धका होना १४५० खृ०पू०के लगभग मानते हैं। इससे आगे बढ़ना वे पाप समझते हैं। श्रीयुत् वेलान्दी ऐयरजीने एक पुस्तिकामें युद्धका होना १४ अक्टूबर ११६४ खृष्टपूर्व माना है।

अतः यह देखा जा सकता है कि किस प्रकार विद्वद्गण इस महत्वपूर्ण घटनाकी तिथिके सम्बन्धमें भिन्न मत हैं और यह किसी प्रकार भी केवल परम्परा कहकर टाला नहीं जा सकता।

'बातोंकी पुष्टि बिना परम्परा नहीं होती'।[४] 'बिना कुछ अग्निके धूम नहीं होता' इस बातकी उपेक्षा इतिहासकार-को कदापि नहीं करनी चाहिये।[५] माइकल टेम्पुल साहब भी कहते हैं 'अब हम लोग समझने लगे हैं कि जब कभी कोई प्राचीन किंवदन्ती हम लोगोंके सामने प्रकट होती है तो इसके पीछे किसी प्रकारकी सचाई अवश्य रहती है। किंवदन्ती शून्यसे प्रकट नहीं होती, क्योंकि कुछहीसे कुछ उत्पन्न हो सकता है।[६] बीजका होना आवश्यक है।

१ हिस्टोरियन्स हिस्ट्री आफ़ दी वर्ल्ड, जिल्द २, पृष्ठ ४६५।

२ मेरा लेख भारतीय इतिहास और राष्ट्रीयता। पण्डितपत्र, काशी १३ अप्रैल १६३६।

३ मेरा लेख भारतीय इतिहासके प्रति लोगोंका दृक्कोण। आज, काशी, २४ जून १६३६।

४ इतिहासकारोंका विश्वइतिहास (हिस्टोरियनस् हिष्ट्री आफ दी वर्ल्ड) जिल्द २ पृ० ३६८।

५ वही

६ मिलान करो। नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। गीता

†"His paper on the date of the Kurukshetra war impressed me as an interesting contribution in the field of Indian chronology and though his views are not likely to be accepted by historians in the immediate present they evince in a remarkable way a great originality and tactfulness on the part of the young writer."

महा० पं० गोपीनाथ कविराज, एम्० ए०

सम्भव है कि पौधेने जो इसी बीजसे उत्पन्न हुआ है, एक विचित्र और अपरिमेय रूप धारण कर लिया हो'।[१]

किन्तु क्या हम लोग केवल परम्परापर ही निर्भर रहेंगे ? नहीं। हम लोगोंके लिये पुष्ट प्रमाण[२] उपस्थित हैं कि युद्ध ३०८० वर्ष विक्रमपूर्व या ३१३७ वर्ष ई० पू० हुआ। पुलिकेशिन् द्वितीयके ऐहोल शिलालेखसे[३] ज्ञात होता है कि यह शिलालेख जिस समय स्थापित किया गया था उस समयतक भारतयुद्धके समयसे कलियुगके ३७३५ वर्ष और शकराजके ५५६ वर्ष बीत चुके थे। इसी पुलिकेशिन्ने समस्त उत्तरापथके महाराजाधिराज कान्यकुब्जराज श्री हर्षवर्द्धनके पराक्रमको रेवा (नर्मदा) नदीके तीरपर मिट्टीमें मिला दिया। ह्वेनसंगने महाराजाधिराज हर्षवर्द्धनकी राजधानीमें ६८६ वि० स० या ५५१ शक संवतमें पदार्पण किया। इसके बाद हर्षवर्द्धन विजययात्राको गया था। किन्तु दक्षिणापथके विजयमें पुलिकेशिन्ने उसके दांत खट्टे कर दिये।[४] इसमें कोई सन्देह नहीं कि विजयके बाद अतिशीघ्र ही पुलिकेशिन्ने यह विजयस्तम्भ स्थापित करवाया होगा।

अतः हमलोग सरलतया गणना कर सकते हैं कि (३७३५-५५६) =३१७६ वर्ष शकपूर्व कलियुग आरम्भ हुआ। इस बातकी पुष्टि सिद्धान्त[५] शिरोमणि तथा ब्रह्मगुप्तके ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त[६] से भी होती है। अतः यह सिद्ध होता है कि आजतक कलियुगके बीते (३१७६ + १८५८) = ५०३७ वर्ष हो गये। उपर्युक्त शिलालेखसे यह भी ज्ञात होता है कि महाभारतयुद्ध (भारतादहव) और कलियुग (कलौ काले) करीब २ समकालीन ही थे। और इस बातकी पुष्टि अन्य आधारों द्वारा भी होती है। किन्तु डाक्टर जान केथफुल फ्लीट साहब अपना पचरा अलग हीं गाते हैं और वह कलिसंवत्को निरा कपोलकल्पित समझते हैं। उनका कहना है।[७]

"The Kaliyuga era is not of historical origin......It is nothing but an artificial reckoning......devised by the Hindu astronomers some 35 centuries after the initial point which they assigned to it; that is, roughly, at some time about A. D. 350-400 A. D.'

किन्तु स्वयं फ्लीट साहबको स्वीकार करना पड़ता है कि युगादि तथा कल्पसिद्धान्त ज्योतिर्गणनाके पूर्वही निर्धारित हो चुके थे। वे कहते हैं।[८]

"The general idea of the ages, with their names, and with a graduated deterioration of religion and morality

१ इङ्गलिशमॅन् कलकत्ता ७ फरवरी १६२७।

२ मेरा लेख दी डेट आफ महाभारतवार ३१३७ वर्ष ई० पू०, ट्रिब्यून लाहौर, १४ जनवरी १६३६।

३ त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः। सप्ताब्दशतयुक्तेषु गतेष्वब्देषु पञ्चसु ॥

(३००० + ३० + ७०० + ५) = ३७३५

पञ्चाशत्सु कलौकाले षट्सुपञ्चशतासुच। समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम् ॥

(५० + ६ + ५००) = ५५६

इन्डियन ऐन्टिक्युएरी, जिल्द ८, पृ० २४१

४ वही भयविगलितहर्षो येन चाकारि हर्षः।

५ नन्दाद्रीन्दु गुणास्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सराः। सिद्धान्तशिरोमणि, काशी, १६१७, पृ० ८६।

६ गोऽगैकगुणाः शकान्ते ऽब्दाः। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त मध्यमाधिकारः।

'अङ्कानां वामतो गतिः' इस कारण ३१७६ वर्ष शक संवत् आरम्भके समय बीत चुके थे।

७ इपिग्राफिया इन्डिका जिल्द ८ पृ० ३२०

८ जरनल रायल एशियाटिक सोसाइटी १६११ पृ० ४७६।

and shortening of human life with also some conception of a great period known as the कल्प, or aeon, which is mentioned in the inscriptions of Asoka, seems to have been well established in India before the astronomical period.

इन सभी बातोंके होते हुए भी फ़्लीट महोदयने कलियुग संवत्‌के कल्पित होनेका कोई विशेष कारण नहीं बतलाया। उन्होंने यह भी नहीं बतलाया कि किस लाभके लिये भारतीय ज्योतिर्विदोंने ३५०—४०० ई० सन्‌के लगभग इस कल्पित संवत्को आरम्भ किया और पुनः उन्होंने ३५०० वर्ष पूर्वसे इसकी गणना क्यों की। सत्य तो यह है कि पाश्चात्य विद्वान् भारतीय घटनाओंको पीछे ले जानेमें हिचकते हैं क्योंकि उस दशामें सारा श्रेय भारतको प्राप्त हो जाता है और ग्रीसकी सभ्यता छिछालेदर मालूम होती है।

दक्षिण भारतके ६ शिलालेखों तथा उत्तर भारतके ५ शिलालेखोंमें कलिसंवत् अङ्कित है। निःसन्देह ये शिलालेख छठीं शताब्दीके बादके हैं। साथही नाटकत्रयीके रचयिता उज्जयिनी विक्रमादित्यके सभासद् महाकवि कालिदासने भी अपने ज्योतिर्विदाभरणमें कलिसंवत्‌का प्रयोग किया है। वह कहते हैं।[1] "जब कलिके ३०६८ वर्ष बीत चुके थे तब यह ग्रन्थ माधव (वैशाख) के महीनेमें समाप्त हुआ।" भारतीय पण्डितोंके अनुसार कालिदास और वराहमिहिर समकालीन थे। एक बार वराहमिहिरने कालिदासकी हँसी उड़ायी कि वे केवल मनगढ़न्त काव्योंमें ही आनन्द लेते रहते हैं कुछ सत्य सिद्धान्तका भी पाण्डित्य दिखावें। इसपर कालिदासने रातोंरात ज्योतिर्विदाभरणकी रचना की। निःसन्देह इस पुस्तकमें भी शृंगार रस यथेष्ट है।

शतपथ ब्राह्मण भाष्यके अन्तमें हरिस्वामी कहते हैं।[2] 'जब कलिके ३७४० वर्ष बीत गये तब यह भाष्य किया गया'। आर्यभट्ट अपने कालक्रियापादमें[3] कहते हैं। 'मेरे जन्मके समय ३६२३ वर्ष कलियुगके बीत चुके थे'। तथा देवीशतककी पुष्पिकामें लिखा है।[4] 'कलिके ४०७८ तथा राजा भीमगुप्तके ५२वें वर्षमें इसकी रचना हुई। अतः फ्लीट साहबका सिद्धान्त अवश्यही भ्रमपूर्ण ज्ञात होता है।

कलियुगारम्भ और महाभारतयुद्ध करीब-करीब समकालीन हैं। उपर्युक्त 'भारताहव' और 'कलौकाले' प्रकट ही हैं। अन्तरंग तथा बहिरंग प्रमाणोंसे भी इसकी पुष्टि होती है। 'कलि और द्वापरके पास होनेपर कुरु और पाण्डवोंकी सेनाका युद्ध कुरुक्षेत्रमें हुआ'।[5] 'कलियुग पहुँच गया और पाण्डवोंकी प्रतिज्ञा निकट जानो'।[6] यह कलियुग अभी थोड़े दिनोंसे आरम्भ है।[7] काश्मीरके इतिहासकार कल्हणने पाण्डवोंका होना ६५३ वर्ष कलियुगके बाद एक महाभ्रमके कारण लिखा है, किन्तु उसे भी बाध्य होकर कहना पड़ता है।[8] "भारतका युद्ध द्वापरके अन्तमें हुआ इस बातके भ्रममें पड़कर लोग इस कालसंख्याको झूठा मानते हैं।' कल्हणके भूलका स्पष्ट कारण मैं अपने दूसरे

---

१ वर्षैः सिन्धुरदर्शनाम्बरगुणैर्याते कलौ सम्मिते मासे माधवसंज्ञितेऽत्र विहितो ग्रन्थक्रियोपक्रमः।
ज्योतिर्विदाभरण २२-२१।

२ यदाब्दानां कलेर्जग्मुः सप्तत्रिंशच्छतानि वै। चत्वारिंशत् समायातास्तदाभाष्यमिदं कृतम्॥

३ षष्ठ्यब्दानां षष्ठीर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः। त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह ममजन्मनोऽतीताः॥

४ वसुमुनिगगनोदधिसमकाले याते कलेस्तथा लोके। द्वा पञ्चाशे वर्षे रचितेयं भीमगुप्तनृपे॥

५ अन्तरे चैव सम्प्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्। समन्त पञ्चके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः॥ महाभारत १-५-१३

६ प्राप्तं कलियुगं विद्धि प्रतिज्ञा पांडवस्यच॥

७ एतत्कलियुगं नाम अचिराद् यत्प्रवर्तते॥

८ भारतं द्वापरान्तेऽभूद्वार्तयेति विमोहिताः। केचिदेतां मृषा तेषां कालसंख्यां प्रचक्रिरे॥ राजतरंगिणी १।४८

लेखमें करूँगा। किन्तु यह निश्चित है कल्हणके समयमें भी महाभारतयुद्धका होना द्वापरके अन्तहीमें माना जाता था।

अन्तरंग आधारोंसे यह भी ज्ञात होता है कि युद्ध कलियुग आरम्भ होनेके ३६ वर्ष पहले हुआ था। 'हे जनमेजय ३६ वर्ष बीत जानेपर युधिष्ठिरने बुरी दशाओंको देखा।'[१] 'हे मधुसूदन तुम भी ३६वें वर्षके आनेपर परिवार मन्त्री और पुत्रोंके नाश होनेपर जंगलमें घूमते हुए नीच उपायद्वारा मृत्युको प्राप्त होगे।'[२] श्रीमद्भागवतके अनुसार श्रीकृष्णजी जंगलमें घूम रहे थे और एक पेड़के नीचे योगसाधनके लिये बैठ गये। उनके चरणसे चक्रकी प्रतिभा चमकने लगी। एक व्याधाने उस पर तीर चला दिया और यही श्रीकृष्ण भगवानके मृत्युका कारण हुआ। अर्जुनद्वारा श्रीकृष्णकी मृत्युका समाचार सुनकर शीघ्र ही पाण्डवोंने राजपाट छोड़ दिया और तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान किया। और भी ज्ञात होता है "हे द्विज[३] वसुदेव कुलोत्पन्न भगवान् विष्णुका अंश जिसी समय स्वर्ग गया उसी समय कलि आगया। जबतक भगवान् विष्णु मुझ पृथ्वीको स्पर्श किये रहे तबतक कलि मुझ पृथ्वीपर पराक्रम नहीं दिखा सका।[४]" इसलिये हम लोग गणना कर सकते हैं कि श्रीकृष्ण[५] भगवान्का स्वर्गवास महाभारतयुद्धके ३६ वर्ष बाद हुआ। और पाण्डवोंने भी शीघ्र ही राज्य छोड़ दिया। सभी भारतीय एकमत हैं कि कलि ३१०१ वर्ष ईसा पूर्व हुआ। अतः हमलोग गणना कर सकते हैं, कि महाभारतका युद्ध (५०३७ + ३६) = ५०७३ वर्ष आजसे पूर्व, (३०४४ + ३६) = ३०८० वर्ष विक्रम पूर्व तथा (३१०१ + ३६) = ३१३७ वर्ष विक्रम पूर्व हुआ। किन्तु दाक्षिणात्यों और औदिच्योंमें युगकालगणनाके सम्बन्धमें थोड़ा मतभेद है। उसका वर्णन नीचे किया जाता है।

युग	परिमाण	आरम्भ तिथि	
		औदीच्य गणना	दाक्षिणात्य गणन
कृतयुग	४८००	वैशाख शुक्ल ३	कार्तिक शुक्ल ३
त्रेतायुग	३६००	कार्तिक शुक्ल ३	वैशाख शुक्ल ३
द्वापरयुग	२४००	भाद्र कृष्ण १३	माघ शुक्ल २
कलियुग	१२००	माघ शुक्ल १५	भाद्र कृष्ण १३

अंगरेजी गणनाके अनुसार कलिका आरम्भ १८ फरवरीको हुआ।

इसके सिवा भास्करवर्माका निधानपुर ताम्रपत्र[६] भी प्रामाण्य है। यह भास्करवर्मा कन्नौजके राजा हर्षवर्द्धनका समकालीन था। ह्वेनसंगने भी इसके राज्य-सभाका दर्शन किया था तथा बहुत दिनोंतक इसके दरबारमें भी ठहरा था। ताम्रपत्र कहता है "उस नरकसे, जिसने कभी भी नरक नहीं देखा था, राजा भगदत्त इन्द्रका

---

१ षट्त्रिंशेत्वथ सम्प्राप्ते वर्षे कौरवनन्दन। ददर्श विपरीतानि निमित्तानि युधिष्ठिरः। म०भा० मुसलपर्व १।२

२ त्वमप्युपस्थिते वर्षे षट्त्रिंशे मधुसूदन। हतज्ञातिर्हतामात्यो हतपुत्रो वनेचरः। कुत्सितोऽप्यम्युपायेन निधनं समवाप्स्यसि॥ म० भा० स्त्रीपर्व २५।१४

३ यदैव भगवद्विष्णोरंशो यातो दिवं द्विज। वसुदेव कुलोद्भूतस्तदैव कलिरागतः॥ विष्णुपुराण ४।२४।५५

४ यावत्स भगवान् विष्णुः पस्पर्शे मां वसुन्धराम्। तावत्पृथ्वीं पराक्रान्तुं समर्थो नामवत्कलिः॥ श्रीमद्भागवत।

५ मेरा लेख श्रीकृष्ण 'खरीबात' लाहौर, १३ जनवरी १९३६।

६ तस्माददृष्टनरकान्नरकादजनिष्ट नृपतिरिन्द्रसखः। भागदत्तः ख्यातजयं विजयं युधियः समावयत्॥५॥
तस्यात्मजः क्षत्रारेर्वज्रगतिर्वज्रनामाभूत्। शतमखमखण्डलवलगतिरतोषयद् यः सदा संख्ये॥६॥
वंश्येषु तस्य नृपतिसु वर्षसहस्रत्रयं पदमवाप्य। यातेषु देवभूयं क्षितीश्वरः पुष्यवर्माभूत्॥७॥
इपिग्राफिया इण्डिका जिल्द १२ पृष्ठ ६५

मित्र उत्पन्न हुआ जो प्रसिद्ध विजेता अर्जुनसे लड़ा। उस शत्रुनाशकका पुत्र इन्द्रके समान चालवाला वज्रदत्त हुआ। उस अखंड वीरने सर्वदा युद्धमें शतक्रतु इन्द्रको प्रसन्न किया। इसके वंशके राजाओंके तीन हज़ार वर्ष बीत जानेपर पुष्पवर्मा नामक राजा हुआ।" इसके पश्चात् समुद्रवर्मा, बलवर्मा, कल्याणवर्मा, गणपति, महेन्द्रवर्मा, नारायणवर्मा, महाभूतवर्मा, चन्द्रमुख, स्थितवर्मा, सुस्थितवर्मा और भास्करवर्माका, जो पुष्पवर्माके क्रमशः उत्तराधिकारी, हुए वर्णन है।

सुप्रतिष्ठितवर्मा और भास्करवर्मा दो भाई थे। यह ताम्रपत्र प्रथम ६४७ वि० संवत्में खुदा था और बादमें भास्करवर्माने इसका पुनरुल्लेख करवाया। अरब यात्री सुलेमान कहता है। हिन्दुस्तानके बहुत राजाओंने ५० वर्ष तक राज्य किया है। अतः हम लोग गणना कर सकते हैं कि उपर्युक्त १२ राजाओंने (१२ × ५० = ६०० वर्ष लगभग राज्य किया होगा और वज्रदत्त [३०००—(६४७ – ६००)] = २६५३ वि० पूर्वके लगभग वर्तमान था। भगदत्तके लड़ाईमें मर जानेसे वज्रदत्त अवश्य ही लड़कपनमें गद्दीपर बैठा होगा और बहुत दिनों तक राज्य किया होगा। अतः वज्रदत्तके राज्यकालके लिये यथेष्ट समय देना पड़ेगा और यह ३०८० वर्ष विक्रम पूर्व अवश्य ही वर्तमान था तभी तो भगदत्त महाभारतयुद्धमें लड़ सका। महाभारत[1] के अनुसार भी भगदत्त कौरवोंका सहायक था और वह रणखेत रहा। वह प्राग्ज्योतिष का राजा था। उसके कृतप्रज्ञ और वज्रदत्त नामक दो पुत्र थे। भगदत्त अर्जुनद्वारा तथा कृतप्रज्ञ नकुलद्वारा वध किये गये थे। अतः यह कहा जा सकता है कि महाभारतका युद्ध ३०८० वर्ष विक्रम पूर्व हुआ।

शिलालेखोंके अतिरिक्त मुगलसम्राट् सम्राट् अकबरके नवरत्नोंमेंसे प्रसिद्ध संस्कृत और फारसीके विद्वान् अब्दुल फज़ल आलामीका भी वचन कम विश्वसनीय नहीं है। उसके आईने-अकबरीको एक विश्वकोष ही समझना चाहिये। वह कहता है।[2] "इस युगके आदिमें राजा युधिष्ठिरने विश्वविजय किया और एक युगका अन्त समझकर अपने राज्यकालसे एक संवत् चलाया। उस समयसे आजतक जो कि दीन इलाही सन्का ४०वां है ४६६६ वर्ष बीत गये। उसके बाद विक्रमादित्यने अपने राजसिंहासनारोहके समयसे गणना आरम्भ की। और मनुष्य जातिको कुछ अंशतक शांति दी। उसने १३५वर्ष राज्य किया। इस वर्षमें उसके १६५२ वर्ष बीत गये"।

इस दीने इलाही सन्के विषयमें यह वर्णन है[3]। हिजरी सन् रद्द कर दिया गया और एक नया सन् जारी किया गया जिसका प्रथम वर्ष बादशाहका गद्दीपर बैठना था (६६३ हिजरी[4] सन्)...इस नये सनका नाम तारीख-ए-इलाही या इलाही संवत् पड़ा।"

अतः हम लोग गणना कर सकते हैं। (१५५६ + ४०) = १५६६ ई० स० में कलियुगके ४६६६ वर्ष बीत गये थे। मुसलमान लोग चान्द्रमास मानते हैं और मलमास लगा कर उसे सौरवर्षके समान नहीं बनाते। इस कारण ३६ वर्षमेंसे १ वर्ष की संख्या बढ़ जाती है। (१५६५—४६६६) = ३१०१ में कलियुगका आरम्भ हुआ। इसी प्रकार (३१०१—३०४४) = ५७ वर्ष ई० पू०से विक्रमादित्य

---

१ प्राग्ज्योतिषाधिपः शूरो म्लेच्छानामधिपो बली। यवनैः सहितो राजा भगदत्तो महारथः॥
म० भा० शान्तिपर्व ५१।१४

२ आईने-अकबरी कर्नल जारेट अनुवादित, कलकत्ता। १८६१, भाग ३, पृष्ठ १५।

३ वही जिल्द १ पृष्ठ १६५।

४ महम्मद साहब मक्केसे भगाये गये और वह मदीने शुक्र २ जुलाई ६२२ को पहुँचे। इसे हिजरत (वनवास) कहते हैं जिस कालसे मुसलमानी वर्षगणना आरम्भ होती है। १७ वर्ष बाद खलीफा द्वितीयद्वारा हिजरी संवत् जारी किया गया। तथापि इसका आरम्भ मक्का प्रस्थानके समयसे जो चौथी रबी उलौअलको हुआ था, नहीं किन्तु वर्षके प्रथम चान्द्रमासके प्रथम दिन मोहर्रमसे है। जिस साल यह संवत् आरम्भ हुआ यह दिन १५ जुलाईको पड़ा था। देखो "ए शार्ट हिस्ट्री आफ दी सारासेनस्' सैयद अमीर-अली-लिखित १६२४, पृष्ठ १०—

ने अपना संवत् आरंभ किया और (१५९५+५७)-=१६५२ वर्ष विक्रमादित्य संवत्के उस समयतक बीत चुके थे। इस प्रकार भी हम लोग गणना कर सकते हैं कि महाभातरका युद्ध (३०४४+३६)=३०८० वर्ष विक्रम पूर्व हुआ।

درسر آغاز ایں یک راجهٔ جدهشتهر (بضم جیم و کسر دال و های خفی و سکون شین منقوطه و کسرتائے فوقانی هندی و های خفي و فتح را-) همگي اجهاں برکشاد و بسراپاے تاریخ فرارسیدهٔ فرما نرواے خویش راسر آغاز گردانید- و دریں سال چهلم الهي چهار هزار و شش صد ونودوشش ازوگذشته- سه هزار و چهل و چهار سال روائي داشت- سپس بکرما جیت از اورنگ نشیني خویش برگرفت- کار لختے برمردم آساں ساخت- صدوسی و پنج سال فرمانروائي کرد-ودریں سال هزار و شش صدو پنجاه و دوسال سپري شد-

आजकलके नये विद्वान् कह दिया करते हैं कि इन शिलालेखोंसे तथा पुस्तकोंसे केवल इतना ही सिद्ध होता है कि उस कालके परम्परा अनुसार महाभारत युद्धको हुए आजतक करीब ५ हजार वर्ष बीत गये। किन्तु आजकल समालोचनात्मक अध्ययन करनेमें इस उक्त परम्पराको क्यों प्रामाणिक माना जाय? यह कहना असंगत न होगा कि आजकल सारा इतिहास केवल गपोड़ा है और वह व्यर्थ ही सिकन्दर–चन्द्रगुप्तमौर्यको निराधार आधार मान कर लिखा गया है। मैं इन निराधार सिद्धान्तोंकी धज्जियां दूसरे लेखमें उड़ानेकी आशा करता हूँ।

अतः सर्वप्रकार महाभारत युद्धका होना ३०८० वर्ष पूर्व विक्रम ही प्रमाणित होता है। समालोचनाओंका उत्तर सहर्ष दिया जायगा।

सहयोगी विज्ञान

[कल्याण सम्पादक श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार गोरखपुर]

१—शिक्षा कैसी हो?

तब क्या बालकोंको शिक्षा नहीं देनी चाहिये? यह कौन कहता है? शिक्षा तो जरूर देनी चाहिये; परन्तु बालकोंको वैसी शिक्षा देनी चाहिये जिससे उनमें ईश्वरभक्ति, धर्म, सदाचार, त्याग संयम आदिका विकास हो—वे ईश्वरसे डरनेवाले, आत्मामें विश्वास करनेवाले, वीर, धीर और परदुःखकातर यथार्थ मनुष्य बनें। और इसीके साथ-साथ वे अन्यान्य सभी आवश्यक बातोंको भी सीखें। खर्चीली शिक्षा कम हो जाय तो अच्छा है, परन्तु उसकी सम्भावना बहुत कम मालूम होती है। विचारशील विद्वानोंको इस ओर विशेष-रूपसे ध्यान देकर शिक्षाके सुधारका कोई क्रियात्मक उपाय शीघ्रसे-शीघ्र शोधना चाहिये।

कन्याओंके लिये तो जहाँतक हो सके मेरी तुच्छ सम्मतिमें पाश्चात्य शिक्षाका मोह छोड़ देना ही उत्तम मालूम होता है। कन्याओंको घरोंमें माता-पिता पढ़ावें और विवाह होनेपर उन्हें पति पढ़ावें। स्त्रियोंके लिये घर ही विश्वविद्यालय है। याद रखना चाहिये कि विदेशी भाषामें बी० ए०, एम० ए०, हो जाना कोई खास विद्या नहीं है। परायी भाषा सीखकर ही कोई स्त्री विदुषी नहीं हो जाती, इसीसे उसमें कोई गुण नहीं आ जाता। विदेशी भाषा सीखनेमें भी आपत्ति नहीं होती यदि उससे कोई हानि न होती। परन्तु अपनी शुद्ध संस्कृतिका बलिदान कर उसके बदले विदेशी भाषा सीखकर शिक्षिता कहलाना तो बहुत ही घाटेका सौदा है। जो शिक्षा हमारे युवकोंका कोई भला न कर सकी, उससे हमारी बहिन-बेटियोंका क्या कल्याण होगा? मेरी समझसे इस शिक्षाके फलस्वरूप स्त्रियोंमें जो नवीन सामाजिक प्रयोग शुरू हुए हैं, उनसे भी उनकी और समाजकी नैतिक और धार्मिक दोनों ही दृष्टियोंसे यथेष्ट हानि हुई है और हो रही है तथा यह हानि कदापि हमें वाञ्छनीय नहीं है और न होनी चाहिये। इससे मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि स्त्रियोंको

पढ़ना-पढ़ाना नहीं चाहिये । द्रौपदी बड़ी विदुषी थी, राज्यका सञ्चालन कर सकती थी और लड़ाईकी मन्त्रणा-सभामें भी वह रहती थी, परन्तु वह आदर्श सद्गृहिणी भी थी । अहल्याबाई विदुषी और धर्मशीला थी । अतएव सद्गृहिणी होकर ही स्त्रियाँ विदुषी बनें । ऐसी ही पढ़ाई-की आवश्यकता है । जबतक ऐसी पढ़ाईकी व्यवस्था न हो तबतक युनिवर्सिटियोंकी निरर्थक ही नहीं, वरं अत्यन्त हानिकर वर्तमान उच्च (?) स्त्री-शिक्षा-से स्त्रियोंका अलग रहना ही समाजके लिये हितकी बात है । जो शिक्षा स्त्रियोंके स्वाभाविक गुण मातृत्व, सतीत्व सद्गृहिणीपन, शिष्टाचार, स्त्रियोचित हार्दिक उपयोगी सौन्दर्य-माधुर्यको नष्ट कर देती है, उस शिक्षाकी अपेक्षा तो उनका अशिक्षिता रहना कहीं अच्छा है । जिस विद्या-से सद्गुण रह सकें और बढ़ सकें, उसी विद्याको पढ़ाकर नारियोंको विदुषी बनाना चाहिये, और इसकी आवश्य-कता भी है । क्योंकि सद्गुणोंका विकास और उनके उचित प्रयोगोंके द्वारा यथेष्ट लाभ सद्विद्यासे ही हो सकता है । परन्तु जिस विद्याके प्रभावसे सद्गुण नष्ट होते हों, वह विद्या तो हानिकर ही है । ऐसी हालतमें तो सद्गुणोंको बचानेके लिये विद्याका मोह छोड़ देना ही बुद्धिमानी है । आजकल जिस प्रकारकी स्त्रीशिक्षाका प्रचार हो रहा है, उससे तो समाजका अमङ्गल ही दिखाई देता है ।

नम्र निवेदन

उपर्युक्त विवेचनमें वर्तमान शिक्षाके कुफलका दिग्दर्शनमात्र कराया गया है । ऐसे और भी बहुत-से दोष इस शिक्षासे पैदा हुए हैं, जिनका उल्लेख नहीं हो सका है । उदाहरणार्थ उनसे एक दोष भेदभाव और परस्पर वैमनस्यकी वृद्धि है । इस शिक्षाके प्रतापसे खानपान और विवाह-शादी आदिमें उचित भेदको मिटानेवाली नामकी राष्ट्रीयता तो बढ़ी है, परन्तु पारस्परिक प्रेम और सौहार्द बुरी तरहसे घट गया है । जैसे यूरोपकी देशभक्ति (Patriotism) में विश्वहितकी तो बात ही क्या, पड़ोसी राष्ट्रके हितकी भी परवा नहीं है, वैसी ही विश्वहित-विरोधिनी संकुचित देशभक्तिका प्रचार यहाँ भी हो रहा है । आज जातिभेद मिटानेकी तो बातें हो रही हैं परन्तु प्रत्येक जाति-उपजातिका भेद मजबूतीसे कायम रखनेके लिये प्रतिद्वन्द्विताके भावोंसे पूर्ण जातीय कान्फरेंसोंकी बाढ़-सी आ गयी है और सभी अपना-अपना अलग स्वत्व कायम करना चाहते हैं । समस्त भारतवासियोंके एकस्वार्थ होनेकी बात तो दूर रही, आज हिन्दू-हिन्दूमें और मुसल्मान-मुसल्मानमें भी वस्तुतः एकस्वार्थकी भावना नहीं रही है । हिन्दुओंमें तो जैन, सिख आर्यसमाज, ब्राह्मसमाज आदि अनेक नये-नये भेद हो गये हैं और उनकी संख्या क्रमशः बढ़ती जा रही है । सैकड़ों जातियों उपजातियोंमेंसे एक-एक उपजातिके अलग-अलग अनेकों भेद हो गये हैं और सबकी स्वार्थदृष्टि अलग-अलग हो गयी है । अग्रवाल-पंचायत, अग्रवाल-युवक-मण्डल, माहेश्वरी-डीडूपंचायत, माहेश्वरी-महासभा आदि-जैसी सैकड़ों विभिन्न संस्थाएँ इसका प्रमाण हैं । पहले एक वैश्य-सभा थी, अब वैश्यवर्णके अन्तर्गत विभिन्न उपजा-तियोंकी न मालूम कितनी सभाएँ हैं । अधिक क्या, किसी दिन 'वसुधैव कुटुम्बकम्' या 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के आदर्शको माननेवाली जातिके महान् आदर्शको नष्ट करके आजकी इस शिक्षा-प्रणालीने स्त्री-पुरुष दम्पतिमें भी पृथक्-पृथक् स्वार्थकी भावना उत्पन्न करके उन्हें लड़ाईके मैदानमें लाकर खड़ा कर दिया है ! अभेदके नामपर ऐसा विनाशकारी भेद फैल गया है कि आज हम अपने अकेले व्यक्तित्वकी रक्षा और उसीके पोषणमें जीवन बिताना कर्तव्यकी चरम सीमा समझने लगे हैं !! सभी विचार-शील पुरुष इन दोषोंको जानते और अनुभव करते हैं, और यथासाध्य इन्हें दूर करनेका प्रयत्न भी कर रहे हैं, तथापि मैं एक बार पुनः सभी शिक्षाप्रचारक और शिक्षा-प्रेमी महानुभावोंसे विनयपूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि वे इस विषयपर और भी गम्भीरतासे विचार करें और शिक्षा प्रणालीमें यथासाध्य तुरन्त परिवर्तन करने-करानेका प्रयत्न करें । मेरी तुच्छ सम्मतिमें नीचे लिखी बातोंपर ध्यान देनेसे शिक्षाप्रणालीके बहुत-से दोष नष्ट हो सकते हैं और शिक्षा-के असली उद्देश्यकी किसी अंशमें पूर्ति हो सकती है ।

१—पाठ्य पुस्तकोंमें हमारी प्राचीन आर्यसंस्कृतिका सच्चा महत्त्व बतलाया जाय, पौराणिक और ऐतिहासिक

महापुरुषोंके जीवनकी प्रभावोत्पादक और शिक्षाप्रद घटनाओंका सच्चा वर्णन रहे और प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंके उपयोगी अंशोंका समावेश किया जाय।

[याद रखना चाहिये कि जिस जातिकी अपनी संस्कृति, अपने महापुरुष और अपने सत्-साहित्यपर अश्रद्धा हो जाती है, वह जाति प्रायः नष्ट हो जाती है। वर्तमान शिक्षाने ऐसे विलक्षण ढंगसे यह काम किया है कि हम उसे उन्नति समझ रहे हैं और हो रहा है हमारा सर्वनाश ? इस शिक्षाके प्रभावसे आज अपनी संस्कृतिमें, अपने पूर्व-पुरुषोंमें और अपने प्राचीन साहित्यमें हमारी श्रद्धा नहीं रही है। और इसके बदले पाश्चात्य सभ्यता, यूरोपके महापुरुष और उनके साहित्यपर हमारी श्रद्धा हो गयी है। मेरे कहनेका यह अभिप्राय नहीं कि कहींकी भी अच्छी चीज़का आदर न किया जाय। आदर तो अवश्य करना चाहिये, परन्तु इतनी आत्मिक गुलामी तो नहीं होनी चाहिये कि हमारे घरकी चीजकी ओर हम देखें ही नहीं, कभी देखें तो उपेक्षासे या घृणाकी दृष्टिसे। और वही चीज़ विदेशी विद्वानोंकी लेखनीसे प्रशंसित होकर उनके द्वारा विकृतरूपमें हमारे सामने आवे तब हम उसीको सिर चढ़ाने लगें।]

२—ईश्वर और धर्मके ठोस संस्कार बालकोंके हृदयोंमें जमें, ऐसी बातें पाठ्य पुस्तकोंमें अवश्य रहें। गीता-जैसे सर्वमान्य ग्रन्थको उच्च शिक्षामें रक्खा जाना चाहिये।

३—सदाचार और दैवी सम्पत्तिको बढ़ानेवाले उपदेश सदाचरी और दैवीसम्पत्तिसम्पन्न पुरुषोंके चरित्रसहित पाठ्य पुस्तकोंमें रहें और उनका विशेषरूपसे महत्त्व बतलाया जाय।

४—धार्मिक शिक्षाकी स्वतन्त्र व्यवस्था भी हो जिसमें १ ईश्वर भक्ति, २ माता-पिताकी भक्ति, ३ शास्त्रभक्ति और देशभक्ति ४ सत्य, ५ प्रेम, ६ ब्रह्मचर्य, ७ अहिंसा, ८ निर्भयता, ९ दानशीलता, १० निष्कपट व्यवहार, ११ परस्त्रीको माँ-बहिन समझना, १२ किसीकी निन्दा न करना, १३ किसी दूसरे धर्म या धर्माचार्यको नीची निगाहसे न देखना, १४ आजीविका आदिके कार्योंमें छल, कपट और चोरीका त्याग, १५ शारीरिक श्रम या मेहनतकी कमाईका महत्त्व, और १६ सबसे प्रीति करना—इन १६ गुणोंपर विशेष जोर दिया जाय। और बालकोंके हृदयमें इनके विकास और विस्तार करनेकी चेष्टा की जाय। प्रतिदिन पढ़ाई आरम्भ होनेके समय सब अध्यापक और विद्यार्थी मिलकर ऐसी ईश्वरप्रार्थना करें, जिसके करनेमें किसी भी धर्मके बालकको आपत्ति न हो।

५—अवतारों और महापुरुषोंकी जन्मतिथियोंपर उत्सव मनाये जायँ और उनके जीवनकी महत्त्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डाला जाय।

६—खान-पानकी शुद्धि और संयमके महान् लाभ बालकोंको समझाये जायँ।

७—किसी भी पाठ्य पुस्तकमें खुले शृंगारका वर्णन न हो। ऐसा कोई काव्य या नाटक पढ़ाना आवश्यक हो तो उसमेंसे उतना अंश पढ़ाईके क्रमसे निकाल दिया जाय। [मैंने सुना है कि कई पाठ्य पुस्तकोंके ऐसे पाठ अच्छे अध्यापक अपने विद्यार्थियोंको नहीं पढ़ा सकते। और बालिकाओंको तो, वैसा पाठ आ जानेपर विचारशील प्रोफेसर जितने दिनोंतक वहपाठ चलता है, उतने दिनोंके लिये उस पीरियडमें अनुपस्थित रहनेकी अनुमति देनेको बाध्य होते हैं।]

८—साम्प्रदायिक विद्वेष बढ़ानेवाली बातें किसी भी पाठ्य पुस्तकमें नहीं रहनी चाहिये।

९—विलासिता और फिजूलखर्चीके दोष पाठ्य पुस्तकोंमें बतलाये जायँ। जहाँतक हो विद्यार्थियोंका जीवन अधिक-से-अधिक सादा और निर्मल रहे, ऐसी चेष्टा हो।

१०—जहाँतक हो शिक्षा देशी भाषामें देनेकी व्यवस्था की जाय।

११—अध्यापक और छात्रावासके व्यवस्थापक ऐसे सज्जन हों जो स्वयं सदाचारी, धार्मिक, ईश्वरमें विश्वासी, विलासिताके विरोधी, और मितव्ययी हों। (याद रहे, अध्यापकों और व्यवस्थापकोंके चरित्रका प्रभाव बालकोंपर सबसे अधिक पड़ता है।)

१२—सभी शिक्षालयोंमें कुछ-न-कुछ हाथकी कारीगरीका काम ज़रूर सिखाया जाय, जिससे कालेजोंसे निकले

हुए विद्यार्थी शारीरिक परिश्रम तथा कारीगरीका काम हाथसे करनेमें सकुचावें नहीं, वरं सम्मानका अनुभव करें।

१३—छात्रावास बहुत सादे और संयमके नियमोंसे पूर्ण हो। हाँ विद्यार्थीगण यथासाध्य सभी काम हाथसे करें, जिससे घर आनेपर हाथसे काम करना बुरा न मालूम हो। तन-मनसे पवित्र रहनेकी आदत डाली जाय। शरीरकी सफ़ाई देशी तरीकेसे की जाय। अवकाशके समय कथा आदिकी व्यवस्था हो।

१४—जहाँतक हो, स्कूल-कालेज प्राकृतिक शोभायुक्त स्थानोंमें हों, खास करके पवित्र नदीके तटपर; उनमें यथा-साध्य खचीला सामान, विदेशी फैशनका फरनीचर आदि न रहे।

१५—माता-पिता-गुरुके प्रति आदर-बुद्धि हो, उनका सेवन और पोषण करना कर्तव्य समझा जाय, किसीका भी अनादर न हो, किसीका मखौल न उड़ाया जाय। ऐसी शिक्षा बालकोंको दी जाय।

१६—लड़के-लड़कियोंको एक साथ बिल्कुल न पढ़ाया जाय।

१७—लड़कियोंके पढ़ानेके लिये सदाचारिणी और सद्गृहस्था अध्यापिका ही रहें, और कन्यापाठशालाओंकी पढ़ाई स्वतन्त्र रहे तथा पढ़ाईका समय भी गृहस्थकी सुविधाके अनुकुल हो।

१८—लड़कियोंकी शिक्षामें इस बातका प्रधानरूपसे ध्यान रक्खा जाय कि बड़ी होनेपर उनके सतीत्व, मातृत्व और सद्गृहिणीपनका नाश न होकर पूर्ण विकास हो।

१९—आर्य संस्कृतिके अनुकूल सद्व्यवहार, सेवा-शुश्रूषा और आहार-व्यवहारकी शिक्षा पाठ्य पुस्तकोंमें रहे।

२०—सात्त्विक त्याग, तितिक्षा और सात्त्विक दानकी शिक्षा दी जाय।

२१—बलका संचय और सदुपयोग करना सिखाया।

---

(२) विश्वज्ञान-मन्दिर क्या है ?

[संस्थापक स्वामी कृपालुदेव, विश्वज्ञान-मन्दिर, कनखल, यू० पी०]

शिव-संकल्प

संकल्प मानवका स्वभाव है। रात दिन हमारे मनमें न जाने कितने संकल्प उठते रहते हैं। इन संकल्पोंकी धारा जब विश्वात्मा-की ओर अभिमुख होती है, जब उसका लक्ष्य व्यक्तिगत क्षुद्र स्वार्थोंको छोड़ पर-कल्याणमयी प्रवृत्तिसे प्रभावित होता है, तो क्षण-क्षण मनमें उठने और विलीन होनेवाला सामान्य विचार शिवसंकल्पका महान पद प्राप्त करता है।

शिव-संकल्प स्वयं एक शक्ति है और जब इसमें सात्विक सक्रियताका संयोग होता है, तो यह अजेय महाशक्तिका रूप धारण कर लेता है। विश्वात्मा विभु इसके संरक्षक हैं और परीक्षाके बाद सिद्धि उनकी कार्य-प्रणाली है। अपनी मानवीय निर्बलताओंके गहरे पर्य-वेक्षणके बाद अत्यन्त नम्रताके साथ हम कहते हैं—विश्वज्ञान मन्दिर एक शिव-संकल्प है और इसकी सिद्धिमें हमें न संशय है, न ख़तरा। हम अपना कार्य आरम्भ कर रहे हैं और हमारी आशा है कि दूसरे लोग भी समयपर अपना कार्य करेंगे ही!

रूप-रेखा

आरम्भमें ही कार्यको सम्पूर्ण रूपसे कल्पनाकी आँखोंसे देख लेना सिद्धिकी पहली सीढ़ी है गत ५ वर्षों से इस सम्बन्धमें हम विचार कर रहे हैं, इसलिये विश्वज्ञान-मन्दिरकी सम्पूर्ण स्थिति हमारी आँखोंमें है। संक्षेपमें उसकी रूप-रेखा यह है कि अनुसन्धानके उपयुक्त एक विराट् पुस्तकालय हो, जिसमें हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, अंग्रेजी आदि भाषाओंकी आवश्यक सभी पुस्तकोंका पूर्ण संग्रह

हो। पुस्तकालयके पासही स्वच्छ मकान बने हुए हों और भोजनादिका उपयुक्त प्रबन्ध हो।

भारतमें सरस्वती और लक्ष्मीके परस्पर 'सौत' होनेकी कहानी घर-घर प्रसिद्ध है, सौतियाडाह कितना भयंकर होता है, इसे थोड़ा बहुत सभी जानते हैं। यही कारण है कि हमारे देशमें सरस्वती और लक्ष्मीके उपासकोंकी बिरादरी अलग-अलग बन गयी है। जिसके पास पैसा है वह साहित्यको जैसे कुछ समझताही नहीं और जिसने सरस्वतीकी सेवाका व्रत लिया, उसने जैसे ग़रीबीका ठेका ले लिया। अकिंचनता और विद्वत्ता जैसे अभिन्न सम्बन्धी हों! हमारी वर्णव्यवस्थाके अनुसार भी 'ज्ञान' ब्राह्मणोंको सौंपा गया और धन वैश्योंको। वर्णव्यवस्थाकी संस्कृतिके अनुसार ये दोनों शक्तियाँ पृथक-पृथक दीखनेपर भी समन्वित हैं। वैश्य धनोपार्जन करता है, उत्सर्गके लिए, और ब्राह्मण ज्ञानकी साधना करता है, लोकके लिये। उपार्जनकी पूर्णता उत्सर्गमें है। यह वर्गीकरण, मनोविज्ञान और समाज शास्त्रके आधारपर श्रमका उपयुक्त बटवारा है पर आज यह श्रृङ्खला छिन्न-भिन्न हो रही है और स्थिति यह है कि जिसके पास धन है वह उसे हृदयके-रक्तकी तरह छुपाये रखना चाहता है और जिसके पास ज्ञान है, वह साधनोंके अभावमें उसका उपयोग नहीं कर पाता। फलतः विद्वानोंकी निर्धनता जो किसी दिन हमारी संस्कृतिका गौरव-प्राण थी, आज हमारी महाशक्तियोंके दुरुपयोगका कारण बन रही है।

यह स्थिति अवाञ्छनीय है और इसका हल होना ही चाहिये। अपनी शक्तिके अनुसार 'विश्वज्ञान-मन्दिर' इसका एक हल है।

हमारी योजना यह है - एक विद्वान् हैं और भारतीय इतिहास पर कुछ लिखना चाहते हैं पर उनके पास न तो आवश्यक पुस्तकें हैं और न खोजके लिये निश्चिन्ततापूर्वक खाने-पीनेके साधनही हैं, वे विश्वज्ञान-मन्दिरमें पधारें और अपना काम करें। मन्दिर सम्मानपूर्वक उनके स्थान, पुस्तकादि और सेवा-शुश्रूषाका प्रबन्ध करेगा। हम ऐसे कई विद्वानोंको जानते हैं, जो सुविधा मिलनेपर भारतीय साहित्यमें बहुत सुन्दर भेंट दे सकते हैं। आज भी कई विद्वानोंके पास उनके लिखे ग्रन्थ पड़े हैं, पर ऐसे साधनही नहीं कि वे उनका विमर्श कर सकें। फल यह होता है कि हमारे यहां आज जो प्रकाशन हो रहा है, वह अधूरा, ऊबड़खाबड़ और उथला ज्यादा है। उसमें गहराई आये भी कहांसे और कैसे? हमारे विद्वानोंके साधनही कितने हैं! विश्वज्ञान-मन्दिर ये साधन जुटाना चाहता है और इस तरह भारतीय साहित्यमें अनुसन्धानका पथ प्रशस्त करना उसका मुख्य उद्देश्य है। यह आयोजन ग़रीब अनुसन्धाताओंके ही लिये हो, यह बात नहीं है, जिन्हें भोजनादिकी सेवा अभीष्ट नहीं, वे मन्दिरके पुस्तकसंग्रह और वातावरणका ही उपयोग कर सकते हैं।

यही क्यों?

देशमें आज चारों तरफ़ जाग्रति हो रही है और सभी तरफ़ कुछ-न-कुछ हो रहा है, पर यह दिशा अभी शून्य है और जहांतक हम जानते हैं, विश्वज्ञान-मन्दिर इस दिशाका पहला प्रयत्न है।

हम जब यह देखते हैं कि राष्ट्र कितना महान है, पर जाग्रतिके इस युगमें भी उसका कोई सच्चा इतिहास नहीं, तो हमारा हृदय दुःखसे भर जाता है। यह कितनी लज्जाकी बात है कि हमारे इतिहासकी चिन्ता इंगलैंडवालोंको है और हमारी प्राचीन संस्कृतिकी खोजका केन्द्र जर्मनी है। हम कहां जा डूबें कि हमारे महान ग्रन्थ हमारे यहां अप्राप्य हैं और उनकी रक्षाका भंडार है लन्दनका ब्रिटिश म्यूज़ियम, पैरिसकी लाइब्रेरियां और जर्मनीके पुस्तकालय! हमारे गम्भीर ग्रन्थोंके लिये भारतमें प्रकाशक नहीं मिलते, उनका प्रकाशन होता है विदेशोंमें और हम इतने कलावादी होगये हैं कि फड़कते हुए उपन्यास, चुहचुहाती कविताएं और दिलचस्प कहानीके अतिरिक्त और कुछ हमारे गले उतरताही नहीं।

और हमारे साहित्यके संरक्षक! ये हैं वे, जो ५०-५० ६०-६० पन्नोंकी थर्ड क्लास किताबोंपर दोस्ती, सिफारिश और प्रोपैगैण्डेके नामपर न्यौछावर कर देते हैं, १२-१२ सौ और २-२ हज़ारके सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार! फिर अनुसन्धानकी भावना कहां पनपे, खोज पहाड़की किस कन्दरामें आश्रय ले!

खोज और प्रचार

विश्वज्ञान मन्दिर जहां खोजका केन्द्र रहेगा वहां खोजे हुए ज्ञानके प्रचारका भी प्रयत्न करेगा। हम नहीं चाहते कि ज्ञान केवल कुछ विद्वानोंके जीवनका ही विषय रहे और जन साधारणसे उसका कुछ सम्बन्ध ही न हो। हरद्वारमें गर्मियोंमें हज़ारों यात्री भारतके भिन्न भिन्न स्थानोंसे आते हैं, पर दुर्भाग्यवश उनकी यह यात्रा ज्ञानयात्रा न होकर सैर-सपाटा ही रह जाती है। हम प्रयत्न करेंगे, कि इस सीज़नपर भारतके विभिन्न विद्वानोंको निमन्त्रित कर जनताको लाभ पहुँचाएं। आरम्भिक कार्य समाप्त होनेपर ज़रूरत पड़े, तो हम प्रकाशनका कार्य भी आरम्भ करना चाहते हैं और इस प्रकार ज्ञानकी खोज और उसके प्रचार-का प्रयत्न मन्दिरके कार्यकी प्रणाली है।

स्थान

बहुत सोच विचारके बाद हमने 'विश्वज्ञान-मन्दिर' के लिये कनखल (हरद्वार) का चुनाव किया है। प्राकृतिक दृष्टिसे यह स्थान भारतके सर्वश्रेष्ठ स्थानोंमें एक है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी उपयुक्त है। गंगा हमारी संस्कृतिकी सरसता है और श्रद्धेय काशीप्रसाद जायसवालके शब्दोंमें गंगा हमारा मूर्तिमान तरल इतिहास है। यहांका वातावरण सरस्वतीकी आराधनाके उपयुक्त है—सांस्कृतिक दृष्टिसे, प्राकृतिक दृष्टिसे और भौगोलिक दृष्टिसे भी !

सर्वत्र समदर्शनः

विश्वज्ञान-मन्दिरकी स्थापनाका हमारा दृष्टिकोण राष्ट्रीय है और आध्यात्मिक भी। इसमें किसी प्रकारके भेदभाव और पक्षपातको स्थान नहीं दिया जा सकता ! वेदान्तके अनुसार प्राणीमात्रमें एकही आत्मा है और ऊपरी भेदके कारणही हम कहीं उसे घोड़ा कहते हैं और कहीं हाथी, कहीं सिंह और कहीं बाज ! इस ज्ञानकी अनुभूति—प्राणी मात्रके प्रति तादात्म्य—ही मानवताका चरम विकास है। यही बात धर्मोंकी है। धर्म एक है और वह है मानवताकी पूर्णताका साधन। बाहरी भेदोंसे हम उसे अनेक रूप देते हैं, पर इसका भीतरी तत्व सर्वत्र सत्य, शिव, सुन्दर है इसलिये किसी प्रकारकी धार्मिक या जातीय विशेषताके लिये इस 'मन्दिर'में प्रवेश नहीं हो सकता और न होना ही चाहिये।

'विश्वज्ञान'

मासिक 'विश्वज्ञान इसी संस्थाका मुखपत्र है। संस्थाके उद्देश्योंका विस्तार, जनतामें व्यापक ज्ञानका प्रचार और विद्वानोंमें खोजकी चाह उत्पन्न करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। मानवताका उबोधन इसका जीवन-सूत्र, समन्वय इसकी मनोवृत्तिका रेखाचित्र, सेवा इसका संवल और शिवसंकल्प इसका सहारा है। इसका एक लक्ष्य है और यह अत्यन्त धीर गतिसे उसकी ओर बढ़ना चाहता है !

साधन और तैयारी

हमारे पास जो कुछ है, वह विश्वात्मा विभुका है। हम विश्वात्माके ही एक नम्र सेवक हैं और उसीकी सेवामें उस 'कुछ' का उत्सर्ग करना चाहते हैं। विश्वज्ञान-मन्दिरके लिये ज़मीन ख़रीदी जा रही है और यथासम्भव शीघ्र भवन-निर्माणकी आधार-शिला भी रक्खी जायेगी। इसके बाद पुस्तकालयका संगठन और खोजका कार्य आरम्भ हो जायगा। ५ लाख रुपये हम समझते हैं इस कार्यमें व्यय होंगे और कामकी पूरी सफलतामें ३ साल लग जायेंगे। वैसे तो यह कार्य बराबर साधना चाहेगा ही। हम उसके लिए प्रभुके भरोसे तैयार हैं और आशा करते हैं कि हमें भारतके खोजी विद्वानों,जानकारों,धनपतियों और राष्ट्र एवं साहित्यके कर्णधारोंका सहयोग बराबर मिलेगा, क्योंकि हम इस कार्यको आरम्भ मात्र कर रहे हैं, कार्य यह उन्हींका है।

प्रबन्ध

वास्तवमें यह मन्दिर हमारा नहीं और किसी भी एकका नहीं। यह विश्वात्माका है। हम तो इसके आरम्भिक सेवक हैं और इस अनुष्ठानके संगठित होतेही हम इसे एक सार्वजनिक ट्रस्टके हाथोंमें सौंप देना चाहते हैं। आरम्भिक संगठन भी कोई एक नहीं कर सकता और इस कार्यमें विद्वानोंके परामर्श-सहयोगकी बराबर आवश्यकता है। प्रत्येक परामर्शका स्वागत किया जायेगा। यही नहीं, हम परामर्शके लिये प्रत्येक भारतीयको निमन्त्रित करते हैं। विश्वात्मा इस कार्य में साफल्य दे और यह सबके लिए कल्याणकर हो।

३—'कैलशियम'-युक्त आहार

['जीवन-संदेश' नामक मासिक पत्रके मईके अंकमें "कैलशियम-युक्त खाद्य" शीर्षक एक उपयोगी लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें यह दिखाया गया है कि मनुष्यके स्वास्थ्यके लिये अत्यावश्यक 'कैलशियम' तत्त्व ताजा शुद्ध दूध, हरी साग-सब्जी और संपूर्ण अन्नोंमें पाया जाता है। आहारविज्ञानकी दृष्टिसे यह लेख बड़े महत्त्वका है, हम उसे नीचे ज्यों-का-त्यों उद्धृत करते हैं। रा० गौड़]

मनुष्यके स्वास्थ्यके लिए शरीरको नियमित रूपसे कैलशियम मिलना बहुत जरूरी है। बच्चों, गर्भवती स्त्रियों, दूध पिलानेवाली माताओं और किसी भी कठिन रोगसे उठे हुये मनुष्यके लिए तो कैलशियमकी आवश्यकता बहुत ही बढ़ जाती है।

कैलशियम वह तत्त्व है, जो सामान्यतः चूने या वंशलोचनमें पाया जाता है और मनुष्यकी हड्डी और दाँतकी बनावटमें खास तौर पर लगता है। फेफड़ेको ताकतवर रखना भी इसका एक मुख्य प्रधान काम है। शरीरमें कैलशियमकी कमी होनेसे कई प्रकारके रोग हो सकते हैं, जैसे फेफड़ेके रोग, दाँतोंकी कमजोरी, बच्चोंकी बाढ़ खराब हो जाना, आदि।

प्रकृतिने इस आवश्यकताकी पूर्तिके लिये बड़ा सुंदर प्रबंध कर रखा है। अन्न, शाक, फल, दूध आदिसे हम कैलशियम काफी तौरपर पा सकते हैं, यदि हम उन्हें यथासंभव सम्पूर्ण और प्राकृतिक रूपमें खाया करें। पर आजकल चावलको छाँटने, आटेको चालने, तरकारी और फलोंके छिलके उतारने और उन्हें भाँति-भाँतिसे पकाकर और बारीक, नरम और साफ बनाकर खानेकी ऐसी चाल चली है कि अन्य कितने गुणोंके साथ यह कैलशियम भी हम लोगोंको दुर्लभ हो गया है। तब हमलोग दवाके रूपमें रासायनिक 'कैलशियम' खाते हैं जो प्रायः शरीरके काममें लगता ही नहीं है। उधर खाद्योंका प्रकृतिदत्त कैलशियम बड़ी आसानीसे शरीर ग्रहण कर लेता है। इसलिए यह जानना चाहिये कि चावल, गेहूँ आदि अन्न संपूर्ण खाने चाहिए, मीठे शाक-तरकारी बिना छिले और अपने रसके साथ खाये जायँ, दूध यथासम्भव कच्चा ही लें और ताजे फल काफी मात्रामें खायँ। यह कहना अनुचित न होगा कि शहरी लोगोंका भोजन इस दृष्टिसे देहातियोंके भोजनकी अपेक्षा कहीं निकृष्ट और बिगड़ा हुआ होता है। बाजारकी पूरी, मिठाई, चाय, चटपट, बिस्कुट, सफेदचीनी सफेदचावल, बेछिलकेकी दाल ये सभी विकृत खाद्य हैं।

इस संबंधमें यह जान लेना अच्छा होगा कि बिना छिले पदार्थोंमें कैलशियम अधिक होता है इसलिये उनकी एक संक्षिप्त तालिका नीचे दी जाती है—

सम्पूर्ण गौके दूधमें	प्रति	आउन्स	०.०४ ग्रेन
,, बकरीके दूध	,,	,,	०.७८ ,,
मक्खन-रहित गौके दूधमें	,,		०.७५ ,,
सम्पूर्ण दहीमें	,,	,,	०.७५ ,,
अंडेकी जर्दीमें	,,	,,	०.८३ ,,
एक समूचे अंडेमें	,,	,,	०.७१ ,,
छेनामें	,,	,,	०.७२ ,,
पात गोभीमें	,,	,,	०.६६ ,,
गेहूँके अंकुर भागमें	,,	,,	०.४४ ,,
फूल गोभीमें	,,	,,	०.७५ ,,
शलगमके पत्तेमें	,,	,,	२.१३ ,,
तीसीकी खलीमें	,,	,,	२.५३ ,,
गुड़में	,,	,,	१.३० ,,
पालकके सागमें	,,	,,	०.४१ ,,

नारंगीमें भी कैलशियम खूब पाया जाता है।

यह सूची बहुत छोटी और अपूर्व है। पर इसके देखनेसे यह स्पष्ट होजायगा कि कैलशियम पानेका सबसे अच्छा जरिया दूध, हरी साग-सब्जी और सम्पूर्ण अन्न हैं। सूखे मेवे और चोकरमें भी कैलशियम काफी होता है। मांस, मछली, चर्बी, घी, तेल, सफेद चीनीमें कैलशियम बहुत कम रहता है। प्राकृतिक खाद्यका यह एक बड़ा लाभ है कि उसमेंसे एकही नहीं मनुष्यकी प्रायः सभी आवश्यकताएँ अपने आप पूरी होती रहती हैं।

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

भारतीय राष्ट्रके महाकवि मैथिली-शरण गुप्तकी जयन्ती

हिन्दी संसारने राष्ट्रीय महाकवि मैथिलीशरण गुप्तकी स्वर्ण जयन्ती मनाकर यह सिद्ध किया है कि हिन्दी, और वह हिन्दी जिसमें गुप्तजी लिखते हैं, जीती-जागती भाषा है और जीते-जागते लोगोंकी भाषा है। आज भी ऐसे बुद्धिमानोंकी कमी नहीं है जो, गुप्तजी जैसी शैलीमें हिन्दी लिखते हैं, उसे, निरी बनावटी और अस्वाभाविक भाषा कहते हैं। उन बुद्धिमानोंके लिये यह जयन्ती आँखें खोलनेवाली चुनौती है। हम भगवान्से मनाते हैं कि गुप्तजी शतायु हों और हमको ऐसी जयन्तियां मनानेके ऐसे पचास अवसर और मिलें।

गुप्तजीको देन हिन्दीके लिये अमित है। परन्तु उनके अमित दानमें साकेत महाकाव्य हिन्दी संसारके लिये शाश्वत और पुण्यमय वरदान है। वह अमर काव्य है और तबतक रहेगा जबतक हिन्दी भाषा जीवित रहेगी और भविष्यमें कौन कह सकता है कि उसकी बदौलत कितनी शताब्दियाँ मनायी जायेंगी।

हरी तरकारियोंके रसमें तीसरा खाद्योज

नेचरके ६ जूनके अंकमें कलकत्तेके सर्वश्री पाल और गुहने अपनी खोजोंका जो फल प्रकाशित किया है उससे यह सिध्द् होता है कि गांठगोभी, फूलगोभी, गाजर मूली आदि अनेक हरी तरकारियोंको जब उबालते हैं तो कुछ खाद्योज ३ जो इन सबज़ियोंमें संयुक्त रहता है घोलके रूपमें उनसे अलग हो जाता है। इसी लिये शाकोंके रसोंको कभी नष्ट न करना चाहिये। हरे शाक कच्चे ही खायें तो सर्वोत्तम। पकाये जायँ तो अत्यधिक गलाए न जाँय और उनका रस तो कभी नष्ट न होने दिया जाय।

विज्ञानका आधुनिक चमत्कार और परमाणु

बीस बरस पहले रश्मि विकीरक धातुएं ही ऐसी मौलिक समझी जाती थीं जो निरन्तर एकसे दूसरे मौलिकमें परिणत होती रहती थीं! अन्य सभी मौलिक इस प्रकार अपरिवर्त्तनीय समझे जाते थे। राजनीतिक संसारमें जैसे आज अनेक अपरिवर्त्तनवादी बदल गये हैं, उसी तरह विज्ञान संसारमें भी अपरिवर्त्तनीयोंका परिवर्त्तन बड़े झपाटेसे हो रहा है। गंधक, स्फुर, हरिण, ओषजन, नोषजन आदि सभी अपनेको अमर समझे बैठे थे और वैज्ञानिक पितामह सर जे. जे. टामसन परमाणुओंको तोड़नेकी चिन्तामें उन दिनों घुले जाते थे। भारी भय था कि परमाणु-विस्फोट न होजाय नहीं तो शायद कोई महाभयानक प्रलय उपस्थित हो। परन्तु वह प्रलयंकर विस्फोट नहीं हुआ। वैज्ञानिकोंके हाथ वह नुसखा लगा कि उन्होंने सहज ही परमाणुओंकी तोड़-फोड़ शुरू कर दी और अब तो यह क्रिया उनके बायें हाथका खेल है।

आजका वैज्ञानिक चमत्कार यह है कि परमाणु जो पहले आत्माकी तरह अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेदय, अशोष्य था, आज वह सब कुछ हो गया। वह बना भी लिया गया।

फिर उसे परमाणु क्यों कहा जाय ?

यह प्रश्न बहुत समुचित है। परमाणु शब्द उन्हें न देकर हम विद्युत्कणोंको ही परमाणु क्यों न कहें ?

इसमें भी भय है। अभी हालकी बात है कि प्रोटोन या धनाणु बहुत भारी केन्द्रीय विद्युत्कण था जिसके चारों ओर ऋणाणु परिक्रमण करते थे। उस समय यदि हम धनाणुको परमाणु कहते तो आज हमें फिर उसको छेद्य मानना पड़ता और परमाणु शब्द उसके लिये अशुद्ध हो जाता।

परम अणु वही कहला सकता है जिससे छोटा और कुछ न हो।

अतः विद्युत्कणोंको ही हम "परमाणु" कहें तो उस समयतकके लिये यह शब्द उपयुक्त होगा जबतक विद्युत्कण सबसे छोटे हैं।

कौन कह सकता है कि कलको विद्युत्कणोंके भी घटक न निकल आवेंगे जो उनसे हज़ारों गुना छोटे होंगे ?

मारकोनीके पहले पेटेंटका चालीसवां वार्षिकोत्सव

चालीस बरस हुए मारकोनीने बेतारकी विद्युद्वाणीके पहले पेटेंटकी दरखास्त दी। तबसे आजतकमें मारकोनी या मारकोनी कम्पनीकी आठसौ दरखास्तें पेटेंटकी पड़ चुकीं। पहले अंग्रेजी जहाज सन् १६०१में विद्युद्वाणी यंत्रसे सजाया गया। आज तो ३००० अंग्रेजी जहाजोंमें यह वाणी लहरा रही है। सन् १६०२में कनाडा और लंडनके बीच इस वाणीसे पहले-पहल काम लिया गया। सार्वजनिक कार्यालय १६०७में खुला। लम्बी लहरोंद्वारा सीधे समाचार भेजनेमें हवाईमें उस समय १००० किलोवाटकी शक्ति अपेक्षित थी और उसके एक-एक स्टेशनका खर्च डेढ़-डेढ़ करोड़ रुपयोंके लगभग था और लहरें १८-१८ मील लम्बी होतीं और ८०० फ़ुटकी उंचाईपर चलती थीं। आज ये अंक अद्भुत लगते हैं। सन् १६२३-२४-में छोटी लहरोंके पुंजकी पद्धतिकी परीक्षा सफल हुई और कुल २० किलोवाटकी शक्तिसे और पहलेसे तिगुने वेगसे काम होने लगा। आकाशवाणी (वायरलेस टेलीफोनी) सन् १६०६में चली। आज तो ३२ देशोंमें १८० मारकोनी प्रसारक स्टेशन (Broadcasting Stations) हैं। अटकलसे महाब्रिटेनमें ही इस काममें पचास हज़ार आदमी काम कर रहे होंगे और वहाँ ही अकेले इस आकाशी उद्योगमें सालमें ४०–५० करोड़ रुपयोंका धंधा चल रहा है।

रा० गौ०

उड़नेके वेगमें उन्नति

उड़नेका वेग भी मनुष्य बड़े वेगसे बढ़ा रहा है। सन् १६३०में जहाँ १७० मील प्रति घंटेसे ज्यादा विमान नहीं चल सकता था, वहाँ आज सन् १६३६में ३०० मील प्रति घंटेका वेग हो गया है। उसके यंत्रोंमें बहुत कुछ उन्नति हो चुकी है। यंत्रके भयानक शब्द अबतक घंटे नहीं हैं। इस घोर निनादको घटाकर उसके उद्भावक बल-को वेग बढ़ानेके काममें लाया जा सके तो उसकी गति प्रतिघंटा अभी और बढ़ सकती है। आज कोई चाहे तो काशीसे हरद्वार दो घंटेमें पहुँच सकता है। तीस ही बरस पहले इस भारी सुभीतेकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था।

रा० गौ०

कारखानोंके शीरेका सदुपयोग

विज्ञान भाग ४२ के पृ० ४४ पर शीरेके सदुपयोगपर पाठक डा० धरकी खोजका वर्णन पढ़ चुके हैं। नेचरके १३ जूनके अंकमें डाक्टर साहबकी यह सूचना सम्पादकने प्रकाशित की है कि जिन खारी तालोंमें पहले चावलोंकी फसिल बिलकुल न हो सकी थी, मैसूर-सरकारने एकड़ पीछे २७। मन शीरा डालकर उन्हीं खारी तालोंमें १५ मन-से लेकर २२ मनतक चावल पैदा किये। साधारण तौरपर चावलोंकी पैदावार भारतमें एकड़ पीछे १५ मनके औसत से होती है। शीरेके प्रयोगके साथ ही खेतको धूप भी काफी मिलनी चाहिये, इससे नोषजनके चूसे जानेमें भारी सहायता मिलती है।

लंडन विश्वविद्यालयका शताब्दी उत्सव

गत २६ जूनसे एक सप्ताहभर लंडनमें उसके विश्वविद्यालयका शताब्दी उत्सव हुआ। सन् १८३६में यह विश्वविद्यालय केवल परीक्षा लेने और उपाधि देनेके लिये स्थापित हुआ। उस समय इससे विश्वविद्यालय और किंग्स येही दो कालिज केवल संबद्ध थे। पहला "ईश्वरहीन" महाविद्यालयके नामसे पहलेसे ही प्रसिद्ध था। ईश्वरके विरुद्ध कोई विशेष आन्दोलन तो उसका उद्देश्य न था, तथापि ईसाई-धर्म्मकी शिक्षाका वहां अभाव था और आधुनिक विज्ञानों और शास्त्रोंके अनुशीलन पर बहुत भारी जोर था। इस घटनाके लगभग चौथाई ही शताब्दी बीतते-बीतते भारतमें कलकत्ता, बम्बई और मद्रास विश्वविद्यालयोंमें भी लंडन युनिवर्सिटीके ही आदर्शपर "ईश्वर"को कोई स्थान नहीं मिला था। नेचरके अनुसार इस अवसरपर कई जगत्प्रसिद्ध विद्वानोंकी डाक्टरकी उपाधि दी जाने वाली थी, जैसे रायल सोसायटीके सभापति सर विलियम ब्रैगको, प्रो० आल्बर्ट ऐंस्टैनको, प्रो० प्लैंकको, सर जोज़फ़ लारमोरको, और एच० जी० वेल्सको, भी जिन्होंने जगत्में अपनी योग्यताका सिक्का जमा रखा है।

पं० ओंकारनाथ शर्म्माकी कृपापूर्ण सहायता

गत जून और जुलाईके महीनोंमें मैं कई अनिवार्य्य कामोंमें ऐसा फँसा था कि विज्ञानके सम्पादनका काम बहुत पिछड़ जाता। परमात्माकी महती कृपासे उन दिनों अजमेरके मेरे मित्र पं० ओंकारनाथ शर्म्माने समय निकाल कर मेरी बड़ी सहायता की जिसके लिये मैं उनका परम कृतज्ञ हूँ। सम्पादकीय टिप्पणियोंको छोड़ जुलाईका सम्पूर्ण अंक और अगस्तका लगभग आधा अंक उन्हींने सम्पादित किया।

डाक्टर बीरबल साहनी, एफ़्० आर०एस

लंडनमें "रायल सोसायटी" विज्ञानकी जगत्प्रसिद्ध संस्था है। इसका सदस्य (फ़ेलो) चुना जाना जगत्प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंके बीच सबसे बड़ा सम्मान है। भारतवर्षमें इस महासम्मानके भोक्ता अबतक चार विद्वान् हो चुके हैं—

१—स्व० श्री रामानुजम्—(गणित)

२—श्रीमान् सर जगदीश चन्द्र बोस (जैव भौतिक विज्ञान)

३—श्रीमान् सर चन्द्रशेखर व्यंकट रमण (ज्योति-भौतिक विज्ञान)

४—श्रीमान् डा० मेघनाथ साहा (ज्योतिर्भौतिक विज्ञान)

इन चारोंकी अमर कीर्त्तिसे भारतका मुख उज्ज्वल हो रहा है। अब हम उसके एक पांचवें सुपुत्रको उसी श्रेणी-में गिनानेमें समर्थ हुए हैं। ये हैं वनस्पति शास्त्रके आचार्य्य

५—श्रीमान् डा० बीरबल साहनी (वनस्पति शास्त्र)

पंजाब विश्वविद्यालयके प्रसिद्ध सेवानिवृत्त रसायनाचार्य्य प्रो० रुचिराम साहनीके ये सुपुत्र हैं। इनका जन्म १४ नवबंर सन् १८९१ ई०को पंजाबके भेरा गाँवमें हुआ। शिक्षा लाहौरमें हुई। स्व० प्रो० शिवराम कश्यपके ये उत्तम शिष्योंमें थे। सन् १९११में ये पढ़नेके लिये केम्ब्रिज गये। इमैनुएलकालिजमें इन्हें छात्रवृत्ति मिली। फिर ये उस कालिजके आजीवन सदस्य बना लिये गये। केम्ब्रिजके प्रो० स्टीवर्डकी स्फूर्त्तिदायिनी शिक्षा और सत्संग-से इन्होंने पूरा लाभ उठाया और केम्ब्रिज और लंडनकी कई उच्च पदवियाँ पायीं। वहांसे लौटते ही सन् १९१९में ये हिन्दू विश्वविद्यालयमें वनस्पति विभागके मुख्य आचार्य्य नियुक्त हुए। फिर एक ही बरस पीछे पंजाब विश्वविद्यालय-में लाहौरमें एक बरसतक काम किया। फिर १९२१में लखनऊ विश्वविद्यालयमें वनस्पतिशास्त्रके मुख्य आचार्य्य नियुक्त हुए और अबतक वहीं हैं।

अध्यापनके साथ-ही-साथ खोजका काम भी आपका बराबर चलता रहा। इसी सिल-सिलेमें केम्ब्रिजसे ही आपको १९२९ में डाक्टरकी पदवी मिली। आपने धरती-के भीतर गड़ी उन वनस्पतियोंके सम्बन्धमें खोज की है जिनकी जातियाँ अब नष्ट हो चुकी हैं। राजमहालकी सपुष्प वनस्पतियोंके अवशेषपर आपकी खोजोंने विद्वानों-के बीचमें आपको विशेष सम्मान दिलवाया। आप अनेक वैज्ञानिक परिषदोंके सदस्य हैं, और सायंस कांग्रेस-में कई बार भूगर्भविज्ञान और वनस्पतिशास्त्रके वर्गोंके अध्यक्ष रह चुके हैं।

नये सहयोगी "विश्वज्ञान"का स्वागत

हमारा नया सहयोगी "विश्वज्ञान" पं० कन्हैयालाल जी "प्रभाकर"के सम्पादकत्वमें और स्वामीकृपालुदेवजीकी संरक्षकतामें कनखलसे निकला है और उसका दूसरा ही अंक हमें मिला है। हम उसका सहर्ष स्वागत करते हैं। उसके उद्देश्योंका पत्रक हम "सहयोगी" विज्ञानके स्तंभमें देते हैं। उद्देश्य बड़े अच्छे हैं। परमात्मा उन्हें सफलता दे।

देशमें हज़ारों सरस्वती-भक्त निर्धनतासे ऐसे पीड़ित हैं कि नोन तैल लकड़ीकी चिन्ताके कारण वे प्रकृत साहित्य या विज्ञानकी सेवासे अगत्या विमुख हो रहे हैं। उनके लिए ऐसी संस्था एक वरदान होगी।

इन उच्चाशय उद्देश्योंका जैसा वर्णन है वैसीही यदि व्यवहारमें उनकी परिणति भी हो, तो भारतके भाग्य खुल जायँ। इस समय आधुनिक कुशिक्षामें देशका करोड़ों रुपया बरबाद होरहा है। ऐसी अभीष्ट संस्थाके लिए

रुपया भी यथेष्ट मिलने लग जाय तो समझना चाहिये कि देशके धनकुबेरोंका हृदय अनुकूल दिशामें बदल गया है और अर्थके व्यवहारवाली दिशामें भी इष्ट क्रान्ति आ गयी है। रा० गौ०

पिछली संख्याकी भूलें कृपया सुधार लें

पिछली संख्यामें सम्पादकीय टिप्पणियोंमें पृ० १७४ कालम १में पंक्ति २२में और २४में "अहिन्दी" की जगह भूलसे "उप-हिन्दी" छप गया है। पाठक कृपया सुधार लें।

ऐतिहासिक खोज

हमारे पाठक इसी अंकमें अन्यत्र महाभारतके समर-काल-संबंधी एक खोजपूर्ण लेख पढ़ेंगे। इसके लेखक हैं एक निर्भीक खोजी युवक पण्डित देवसहायजी त्रिवेद। आपको शिकायत है कि आप कई इतिहासके विद्वानोंके पास अपनी खोजोंको लेकर गये परंतु किसीने आपको प्रोत्साहित नहीं किया। मुझे यह सुनकर कोई आश्चर्य न हुआ। इसके कारण कई हैं।

पहला जबरदस्त कारण तो यह है कि आधुनिक शिक्षापद्धतिमें बचपनसे ही हमें यह पाठ पढ़ाया गया है कि हम आर्य लोग विदेशी हैं, बाहरसे आकर भारतमें बस गये। हमारी सभ्यता और परम्परा उतनीही पुरानी है जितनी यूनानियों और रूमियों की, हमारे पुराण गपोड़े हैं, और वेद? वेद तो चरवाहोंके गीत हैं और शायद तभीके हैं जब हम ताज़े डालके टूटे विलायती अर्थात् विदेशी थे और पंजाबमें नये-नये बसे थे। हम नहीं कह सकते कि ऐसी भ्रमपूर्ण शिक्षा फैलानेमें किसका स्वार्थ था, या है, परंतु विज्ञान और इतिहासके एक क्षुद्र विद्यार्थीके नाते यह जानते हैं कि यही शिक्षा हमारे बड़ों और शिक्षकोंने भी पायी थी। फल यह हुआ कि हम अपने साहित्यको और अपने पूर्वजोंको अश्रद्धाकी दृष्टिसे देखने लगे और अपनी परम्परासे और संस्कृतिसे हमारा विश्वास उठ गया। जिस जातिकी परम्परा गयी, संस्कृति गयी, उसके नष्ट होनेमें क्या बाकी रहा? इस समय हम खोखले हैं, हमारे ऊपर विदेशी खोल चढ़ा हुआ है। हमने विद्वत्ता भी पायी तो चश्मचके सहारे। हम पच्छाहीं रोशनी और रंगमें ही रंगी विद्या भी देखने लगे, हमारी विद्वत्ता भी तभी मान्य हुई जब उसपर पच्छिमकी मुहर लग गयी। आज हमारे विद्वान् तभी अपनी विद्वत्तापर संतुष्ट होते हैं, जब उन्हें पच्छाहीं विद्वान् सराहें।

परंतु देवसहायजी उन्हीं पच्छाहीं विद्वानोंकी भूलें दिखाते हैं, उनके ही भ्रमोंका निराकरण करते हैं, और तथोक्त गपोड़ोंको ऐतिहासिक दृष्टिसे प्रामाणिक ठहराते हैं, फिर एक ओरसे देवसहायजीकी सहायता और दूसरी ओरसे उन पच्छाहियोंको भी प्रसन्न रखना कैसे संभव है? विद्वज्जन नासमझ नहीं होते, वे भी हवा देखकर ही चलते हैं।

दूसरा जबरदस्त कारण है, रूढ़ि-प्रियता। एक मुद्दत से हम एक खास बात मानते आये हैं और जनताके सामने उसकी सत्यतापर अपने दृढ़ विश्वासकी खुले खजाने घोषणा करते आये हैं। फिर वह चाहे भ्रमपूर्ण ही क्यों न हो परंतु हमारी दृढ़ता ही क्या जो हम झटपट अपना मत बदलनेको तैयार हो जायँ। इस तरहकी रूढ़िके उपासक विद्वानोंकी गुटबन्दी भी प्रायः सभी विषयोंके क्षेत्रमें पायी जाती है और जब कोई उस रूढ़िको नष्ट करनेके लिए खड़ा होता है, तो गुटवाले उसे क्रान्तिकारी भ्रान्त, साहसिक आदि उपाधि देते नहीं सकुचाते और जबतक वह कुछ-न-कुछ सत्यको हानि करके गुटमें मिल न जाय तबतक उसे अपनोंमें गिनना स्वीकार भी नहीं करते। सभी देशों और कालोंमें रूढ़िके विरोधी सताये गये हैं, उन्हें अनेक यातनाएं दी गयी हैं, युरोपका इतिहास इन अत्याचारोंसे रंगा पड़ा है।

देवसहायजी रूढ़ियोंकी किलेबन्दीको तोड़नेको कमर कसकर खड़े हुए हैं। फिर इनका हम पुरानी पद्धतिके पढ़े लोग कैसे स्वागत कर सकते हैं और रूढ़िप्रिय विद्वज्जन उन्हें कैसे अपना सकते हैं?

तीसरा कारण ईर्षा द्वेष और उपेक्षा है। एक ही क्षेत्रमें काम करनेवाले विरोधी मार्गोंपर आरूढ़ हों, और उनमें पारस्परिक सद्भाव न हो, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। ऐसी दशामें ईर्षा द्वेषका होना अस्वाभाविक नहीं है। स्पर्धाका भाव तो ऐसे ही प्रसंगोंमें प्रायः उत्पन्न होता है। हमारे देशके दुर्भाग्यसे बूढ़ोंमें युवकोंको प्रोत्साहित करनेकी प्रवृत्ति भी कम है। उपेक्षा भाव तो साधारणतया पाया ही जाता है। युवकोंमें भी उच्छृंखलता बढ़ी हुई

है, और अपनी थोड़ी विद्याके सामने बड़े-बड़ोंको नहीं गिनते। विद्याके ओछेपनके लक्षण ये हैं ही, क्योंकि सच्ची विद्यासे विनय आती है न कि उच्छृंखलता। इस प्रकार प्रौढ़ विद्वानों और युवक हौसलेमंदोंमें गजग्राहकी सी स्थिति पैदा हो गयी है। ऐसी प्रवृत्तिके होते यदि विद्वानोंने श्रीदेवसहायजीको ठीक-ठीक न पहचानकर उपेक्षाकी तो हमें तो आश्चर्य्य नहीं होता।

मैं श्रीदेवसहायजीकी प्रतिभाको मानता हूं और आशा करता हूं कि आप अपने क्षेत्रमें पूरी सफलता पायेंगे।

रा० गौ०

साहित्य विश्लेषण

(१) Industrial India—इंडस्ट्रियल इंडिया

प्रकाशक असोसियेशन फारदी डेवलपमेंट आफ़ स्वदेशी इंडस्ट्रीज़, चाँदनी चौक, देहली। आकार—डिमाई चौपेजी के ३६ पृष्ठ। वार्षिक मूल्य ६) यह अंग्रेजीका पत्र प्रति मास प्रकाशित होता है। प्रथम वर्षकी तीसरी संख्या सामने है। इसके संपादक ए० आर० नैयर महोदय हैं। इस अंकके मुख्य लेख सोया अथवा सोजा, भारतीय स्वदेशी आंदोलनके नेता, भूतकालकी प्रति-ध्वनियाँ, स्त्रियोंकी औद्योगिक शिक्षा और भारतीय कंपनी कानून का संशोधन है। प्रकाशकोंका उद्देश्य भारतीय उद्योग धंधोंको प्रोत्साहित करना, नवीन उद्योगोंको चालू करना और हर प्रकारके उद्योग धंधोके विषयमें खोज करके निःशुल्क सलाह देना आदि है। इसी उद्देश्यसे यह संस्था दिल्लीमें प्रतिवर्ष औद्योगिक प्रदर्शिनी करती है। पहला सभापतित्व इस संस्थाके संरक्षक आचार्यप्रवर श्री प्रफुल्लचंद्र रायने ही किया था और द्वितीय वर्षका बड़ौदा नरेशने। इस संस्थाने कई नये-नये उद्योगोंको चालू करवाया है और अब भी इस ओर अथक परिश्रम कर रही है।

लाला श्रीराम जी अग्रवाल, जिनके बहुमूल्य और खोजपूर्ण संग्रह "विज्ञान" के पाठक समय-समयपर पढ़ते रहते हैं, इस संस्थाकी आत्मा हैं। इस पत्रको प्रकाशित करके यह संस्था भारतवासियोंमें नया जीवन फूंकना चाहती है और वह कई अंशोंमें अपने उद्देश्यमें सफल भी हुई है। इसके लिए हम उसके संचालकों-को बधाई देते हैं। इस पत्रके संबंधमें हमें यह कहना पड़ेगा कि अंगरेजी भाषामें प्रकाशित होनेके कारण इससे बहुत थोड़े भारतवासी फायदा उठा सकेंगे। यदि यह पत्र भारतकी राष्ट्रभाषामें प्रकाशित होता तो बहुत ही अच्छा होता। मैं अपने अँगरेजी जाननेवाले मित्रोंसे सिफारिश करूँगा कि वे इसे पढ़कर अपना व्यापारिक और औद्योगिक ज्ञान बढ़ावें।

ओंकारनाथ शर्मा

(१) 'फूल गूथणी' गुजराती गद्यकाव्य

लेखक तथा प्रकाशक श्री चुडगरसाँकलचंद्र भूला-भाई, नडियाद (गुजरात)। मुद्रक—रति-लाल बालकृष्ण त्रिवेदी; सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, उमरेठा। मूल्य ॥-) डबल क्रौन १६ पेजीके ११२ पृष्ठ।

यह एक छोटा सा हृदयाकर्षक गद्य काव्य है। विविध विषयोंपर, विविध विचारोंसे युक्त, छोटे-छोटे खांडके टुकड़े हैं। इनमें माधुर्य है, सौंदर्य है, सुभाषा है। सबका लक्ष्य अन्तर्जगत् है। इस संसारकी मायाका अद्भुत जाल बिछा हुआ है। बड़े-बड़े ज्ञानियोंका ज्ञान एक क्षणमें हवा हो जाता है। विद्वानोंकी विद्वत्ता धूलमें मिल जाती है। गर्वियोंका गर्व खंड खंड हो जाता है। मनुष्य एक विचित्र पीड़ासे कराह उठता है। उसे कोई मार्ग नहीं सूझता। उसकी बुद्धि बेकार हो जाती है। उस समय सबका सहारा छोड़कर उस परमपिताकी शरणमें जाता है। अपना दुख उसीके सामने रोता है। आशा और निराशा-के झोंकोंको सहन करते हुए अपने मार्गकी ओर अग्रसर होता है। जो भाषा जो भाव जो विषय उसे मिल गया उसीको लेकर वह परमात्माका गुणगान करता है। और अनिर्वचनीय आनंदको पाता है। उसकी सब प्रार्थनाओंका लक्ष्य उस परमभावसे मिलन ही होता है, जिसमें कि वह अंतमें मिल जाता है।

इस 'फूल गूथणी' में ऐसे ही भावोंका चित्रण है। इसको पढ़ जानेसे यह ज्ञात हो जाता है कि विभिन्न परिस्थितियोंमें किस प्रकार अपनी वृत्तिको सांसारिक वस्तुओंसे हटाकर परमात्मामें लगा देना चाहिए। पाठक-गण इसमें भाषा और भाव दोनोंका आनंद प्राप्त करेंगे। वेदांतप्रेमियोंको इसमें विशेष रस आयेगा।

किताब देखनेमें भी सुंदर है और छपाई अच्छी है।

राधारमण याज्ञिक

दूधकी मिलावटकी जाँच

पूर्ण संख्या—*Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and*
२५८ *Central Provinces for use in Schools and Libraries.* **REG. NO A. 708**
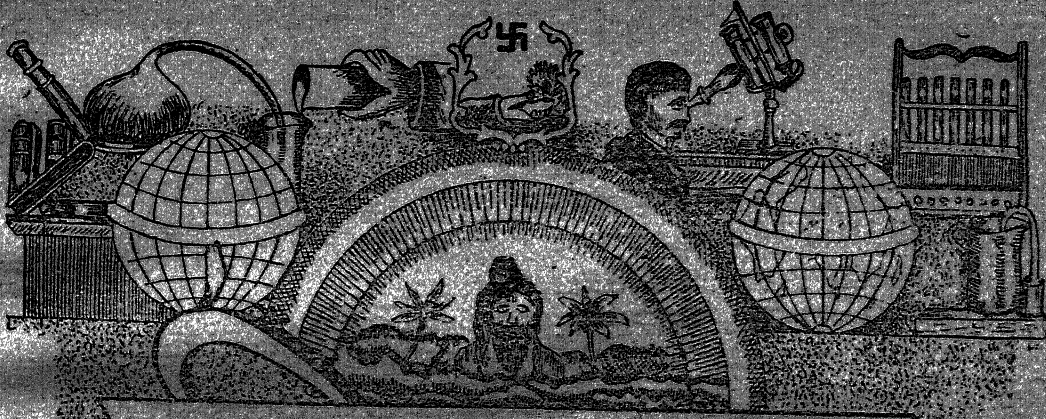
विज्ञान

प्रयागकी विज्ञान-परिषदका मुखपत्र, जिसमें अमृतसरका आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

भाग ४३ | कन्यार्क, संवत् १९९३, | संख्या ६

VOl. 43 | सितम्बर, १९३६ | **NO. 6**

प्रधान संपादक—रामदास गौड़, एम० ए०,

विशेष सम्पादक—

गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी, (गणित और भौतिक-विज्ञान)
स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य (आयुर्वेद-विज्ञान)
रामशरणदास, डी० एस्-सी०, (जीवन-विज्ञान)
श्रीचरण वर्मा, एम० एस्-सी०, (जंतु-विज्ञान)
श्रीरंजन, डी० एस्-सी०, (उद्भिज्ज-विज्ञान)
सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी०, (रसायन-विज्ञान)

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [इस प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्के अधिकारी

पत्र-व्यवहार करनेवाले नोट कर लें

१—बदलेके सामयिक पत्र, समालोचनार्थ साहित्य, आयुर्वेदको छोड़ और सभी विषयोंके लेख एवं सम्पादन-सम्बन्धी पत्रादि "सम्पादक, विज्ञान, बनारस शहर" इस पतेसे भेजना चाहिए।

२—विज्ञान एवं विज्ञान-परिषत्, विज्ञापन, वैज्ञानिक साहित्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी समस्त पत्र, मनी-आर्डर आदि "मंत्री, विज्ञान परिषत्, इलाहाबाद" इस पतेसे भेजना चाहिए।

३—आयुर्वेद-सम्बन्धी सभी लेख उस विषयके विशेष सम्पादक स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य, पञ्जाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट, अमृतसरके पतेसे भेजे जाने चाहिएं।

ब्रह्मचारी शङ्करचैतन्यने काशी-विश्वनाथ प्रेसमें मुद्रित किया
तथा मंत्री विज्ञानपरिषत् प्रयागके लिये वृन्दावनविहारीसिंहने विज्ञान-कार्य्यालय काशीसे प्रकाशित किया।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ०।३।५॥

भाग ४३ | प्रयाग । कन्यार्क, संवत् १९९३ वि० । सितम्बर, सन् १९३६ ई० | संख्या ६

मंगलाचरण

[परिडत श्रीश्यामनारायण पाण्डेय, साहित्यरत्न, साहित्यशास्त्री,
माधवसंस्कृतविद्यालय, सारंगतालाब, काशी ।]

नमस्कार

[१]

पावन विलासमय नमस्कार,
हे देव, दयामय नमस्कार ।
विधिमय, विकासमय, नमस्कार,
हे हे विहासमय नमस्कार ॥

[२]

जिस अलख ज्योतिसे रवि मयङ्क,
शोभित करते नभ-नील-अंक ।
उस दिव्य ज्योतिको बार बार,
करता नत-मस्तक नमस्कार ॥

[३]

विधिमय विभूतिमय, नमस्कार,
हे ब्रह्म अनामय, नमस्कार ।
अनुराग रागमय, नमस्कार,
हे हे विरागमय, नमस्कार ॥

[४]

जो अजर, अमर, अव्यक्त रूप,
अविकार, अनघ, अक्षर अनूप ।
जो नभ समान है निराकार,
उस विविध-वेशको नमस्कार ॥

[५]

हे देव, देव, हे दक्ष देव,
हे गुह्य देव, प्रत्यक्ष देव ।
आद्यन्त, मध्य, मतिमय, उदार,
हे जगन्नियन्ता, नमस्कार ॥

[६]

अज्ञात-रूप, अज्ञात-नाम,
अविराम-धाम, अज्ञात-काम ।
क्षण अस्ति, नास्ति, भ्रममय, अपार
घनश्याम राममय, नमस्कार ॥

दूधमें जलकी मिलावटकी सरल जाँच

नीर-क्षीर-विवेकके लिये सुलभ हंस-शीशी

[ठाकुर शिरोमणिसिंह चौहान, विद्यालंकार, एम० एस० सी०, विशारद, सब-रजिस्ट्रार, तहसील भौगांव, मैनपुरी]

आजकल बाज़ारोंमें बिकनेवाले प्रायः सभी खाद्य पदार्थ अशुद्ध अवस्थामें पाये जाते हैं। दूकानदार उनमें घटिया और कभी-कभी अखाद्य पदार्थोंकी मिलावट करके स्वयं तो खूब लाभ उठाते हैं परन्तु स्वास्थ्यकी दृष्टिसे उन पदार्थोंको हानिकारक बनाते हैं। कोई आटेमें मिट्टी अथवा घटिया अनाजका आटा मिलाता है, तो कोई घीमें अनेक प्रकारकी चर्बी या गरी, महुआ आदिका तेल मिला देता है। अब तो कोकोजम आदि पदार्थ घी के नामसे खुले बाजारमें बिकते हुए नित्य देखे जाते हैं। शुद्ध 'मधुर मधु'का प्राप्त होना कठिन हो रहा है। उसमें भी शीरा आदिकी मिलावट अवश्य होती है। कानपुरके दैनिक 'वर्तमान' के होलिकांकमें किसी महाशयने टूटी-फूटी कवितामें 'टेसू' नामक दूकानदार का खूब खाका खींचा है। लिखा है—

"टेसू' बन गये दुकानदार। करने लगे विविध व्यापार।
थोड़े मालमें ज्यादा दाम। कैसे मिलें सोच हर याम।
दिया शकरमें रेत मिलाय। घीमें घुइयां दिया घुटाय।
या फिर मूंगफलीका तेल। लाकर कीन्हा उसमें मेल।
दिया राबसे शहद बनाय। खड़िया आटेमें दिया मिलाय।
रांग दिया चांदीमें डाल। सोनेमें भी रद्दी माल।
रबड़ीमें भी आरारोट। दूधमें उलटा पानी लोट।
गेहूंमें जौं दीन्हें डार। इस पर भी दे डंडी मार॥

प्राणिमात्रके हेतु भोजन अत्यन्त आवश्यक पदार्थ है। शुद्ध भोजन रुचिकर और स्वास्थ्य एवं जीवनके हेतु हितकर होता है। मिलावटी अथवा अशुद्ध भोजन न तो खानेमें ही स्वादिष्ट प्रतीत होता है और न शरीर हीको लाभ पहुंचाता है, वरन् अनेक प्रकारकी हानियोंका कारण हो जाता है। किसी राष्ट्रके हेतु इससे अधिक और क्या आपत्ति हो सकती है कि उसे भोजन भी शुद्ध न मिले। हिन्दू सभ्यताका मूल मंत्रही शुद्धता है।

हमारे खाद्य पदार्थोंमें जितना महत्व दूधका है उतना किसी दूसरे पदार्थका नहीं। शहरोंसे लेकर देहाततकमें; राजप्रसादोंसे लेकर रंक-कुटीरोंतकमें—सभी जगह किसी न किसी रूपमें काम आता है। पर बाजारोंमें ऐसा निकृष्ट दूध मिलता है जिसका पीना-न-पीना बराबर है। भारतमें जल मिलाकर दूधको दूषित करनेका चलन बहुत पहलेसे चला आ रहा है। इसे रोकनेके हेतु सैकड़ों भोजन निरीक्षक, हेल्थअफसर एवं रासायनिक नियत किये गये, कड़े-कड़े विधान बनाये गये किन्तु अर्थ-लोलुप दुग्ध-विक्रेता अपनी चालसे बाज़ न आये। थोड़ी-बहुत कमी तो अवश्य हुई किन्तु चतुर ग्वाले, आज भी, किसी-न-किसी भांति भोली-भाली जनताकी आखोंमें धूल झोंककर जल मिला हुआ दूध बेंच ही लेते हैं। इसका कारण यह है कि, इस धोखेबाज़ीका पूर्णरूपेण उन्मूलन करनेमें कुछ बाधाएं हैं। एक तो यह कि, दूध-विक्रेता अपना दूध रोज़-का-रोज़ बेच डालते हैं। अतः उसकी पूरी जांच-पड़ताल करना दुस्तर काम हो जाता है। फिर अभीतक कोई ऐसी विधि भी नहीं मालूम हुई है जिससे यह ठीक-ठीक जांचा जा सके कि दूधके अमुक नमूनेमें इतना जल मिला हुआ है।

दूधके विश्लेषण करनेसे जो पदार्थ प्राप्त होते हैं उन्हें हम तीन भागोंमें विभाजित कर सकते हैं (१) मक्खन या चर्बी, (२) चर्बी या वसा रहित ठोस पदार्थ जिसमें लैक्टोज़ या दुग्ध-शर्करा (पयोज) प्रोटीन (प्रत्यमीन) और लवणमय पदार्थ होते हैं और (३) जल। इनमें मक्खनके अतिरिक्त सभी पदार्थ जलमें घुले रहते हैं। मक्खन के कण दूधमें तैरते रहते हैं। सब दूधोंमें इन पदार्थोंकी मात्रा एक-सी नहीं होती। परन्तु मिलावटके अभियोगोंकी जांच-पड़तालके लिये विश्लेषण-कर्त्ताओं और मजिस्ट्रेटोंके सन्तोष और सहायताके निमित्त विशुद्ध दूधका एक "स्टैंडर्ड" नियत कर लिया गया है। इस "स्टैंडर्ड" के अनुसार विशुद्ध दूधके किसी नमूनेमें कम-से-कम ३% मक्खन और ८.५% वसा रहित पदार्थ इस मात्रासे कम पाये गये तो जान लिया जाता है कि दूध विशुद्ध नहीं है।

दूध बेचनेवाले प्रायः दूधको दो तरहसे बिगाड़ते हैं। एक तो उसमेंसे मक्खन निकालकर और दूसरे जल मिलाकर। मक्खनकी कमी अथवा उसकी अनुपस्थितिका पता लगाना उतना कठिन नहीं है, जितना जलकी मिलावटका। अब हमें इसी बातका विचार करना है, कि किसी दूधको जांचकर हम यह कैसे बता सकेंगे, कि उसमें जलकी मिलावट है या नहीं।

संस्कृत साहित्यके कई ग्रन्थोंसे यह ज्ञात होता है कि हंस पक्षीमें यह शक्ति होती है कि वह मिले हुए दूध और जलको अलग-अलग कर देता है। "भामिनी विलासमें" एक श्लोक इस प्रकार है कि—

नीर-क्षीर-विवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुषेचेत्।
विश्वस्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः॥

अर्थात् हे हंस! यदि जलको दूधसे अलग कर देनेका विवेक तूही शिथिल कर देगा, तो फिर संसारमें अपने कुल-व्रतका पालन और कौन करेगा?

किन्तु बहुत कुछ परीक्षण-निरीक्षणके अनन्तर अब यह ध्रुव-सत्य-सा सिद्ध होगया है, कि हंस पक्षियोंमें इस प्रकार की शक्ति नहीं है, दूध और जलको अलग करनेमें वे नितान्त असमर्थ हैं और संस्कृत ग्रन्थोंकी यह बात कवियोंकी कोरी कल्पनाके सिवा और कुछ नहीं है।

यह तो पहलेकी बात रही। आजकल दूधमें पानीकी मिलावटकी जाँचके लिये थर्मामीटर सरीखा यन्त्र हाइड्रोमीटर (Lactometer हंस—शीशी) का उपयोग करते हैं। इस

यंत्रसे दूधकी जांच उसके घनत्व (Specific gravity) पर निर्भर होती है। समान घनत्वके सभी तरल पदार्थोंमें किसी वस्तु विशेषका समान भागही डूबता है। विशुद्ध दूधमें इस यंत्रको डालनेसे यह यंत्र एक स्थान विशेष तक ही डूबता है, यदि दूधमें जलकी मिलावट हुई तो यह यंत्र दूधमें और अधिक डूब जाता है। अगर दूधमें आधा जल मिला है तो यंत्र चिन्ह नं० २की सतहतक डूबेगा। यद्यपि हम दूधमें जलकी मिलावट जाँचनेके हेतु प्रायः इसी यंत्रका उपयोग होते हुए पाते हैं, किन्तु इस यंत्रके फलोंपर पूर्णरूपेण भरोसा नहीं किया जा सकता। इसके कारण ये हैं–
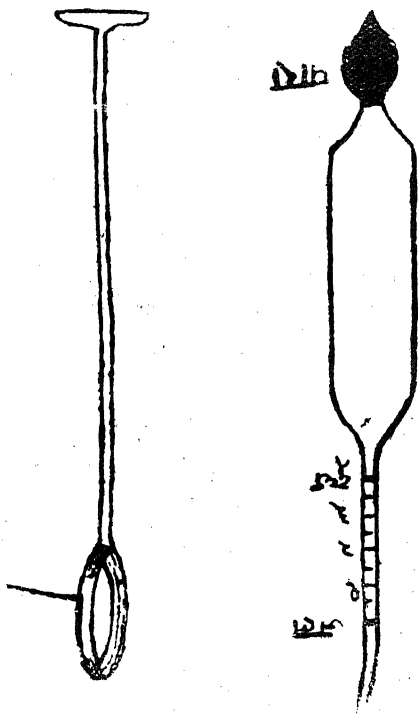
(१) मक्खन दूधसे हलका होता है। मक्खन निकालनेपर दूध और भी भारी होजाता है, उसका घनत्व बढ़ जाता है। मक्खन रहित दूधमें १०% (दस प्रतिशत) तक जल मिला दिया जाय तो उसका घनत्व (genuine) विशुद्ध दूधके घनत्वसे तनिक भी कम नहीं होता। अतएव ऐसे दूधकी वास्तविक अवस्था प्रगट करनेमें यह यंत्र नितान्त असमर्थ रहता है। वह तो मक्खन रहित और विशुद्ध दूध दोनोंको ही 'विशुद्ध' बतावेगा।

(२) चालाक दूधवाले अपने दूधमें जल मिलानेके उपरान्त आटा मिला देते हैं, जिससे वह फिर गाढ़ा होजाता है। इतनाही नहीं, उसे मीठा करनेके हेतु थोड़ी शकर भी मिला देते हैं। इस गाढ़े और मीठे दूधको अनारी गाहक बड़े चावसे मोल लेते हैं। गाढ़े होजानेके कारण ऐसे दूधकी विशुद्धता बतानेमें यह यंत्र निकम्मा ठहरता है।

(३) इस यंत्रसे इस बातकी भी ठीक-ठीक जाँच होना असंभव है कि किसी दूधविशेषमें बाहरसे जल मिलाया गया है अथवा वह विशुद्ध पतला दूध (genuine poor milk) है जैसा अनेकों गायोंसे प्राप्त होता है। अधिक गायोंका दूध तो नियत किये गये स्टैंडर्डसे स्वभावतः गाढ़ा ही होता है पर कुछ गायें सदा–सर्वदा और कुछ केवल विशेष ऋतुओंमें, स्टैंडर्डसे पतला दूध देती हैं। ऐसा दूध विशुद्ध होनेपर भी यंत्रद्वारा जाँचनेमें अशुद्ध ही ठहरता है।

जब इस यंत्रकी ऐसी डावाँडोल परिस्थिति है, तो इसके परिणामोंपर किस भांति विश्वास किया जा सकता है। कानूनकी दृष्टिसे किसी भी अपराधीको तबतक दण्डित नहीं किया जा सकता, जबतक उसका अपराध स्पष्ट रूपसे सिद्ध न होजाय। सन्देहात्मक मामलोंमें अपराधीको दण्ड नहीं दिया जाता। सुतरां, हाइड्रोमीटर, हंस–शीशीसे दूधमें जलके मिलावटकी जांचका प्रश्न सन्तोष-पूर्वक हल नहीं होता और इसी कारण इस यंत्रके सहारे दूधमें जल मिलानेवाली निकृष्ट प्रथाको तनिक भी न रोका जासका।

दूधमें जलकी मिलावटका पता लगानेमें, अन्य यंत्रोंकी अपेक्षा हार्टवेट क्रायस्कोप (Hartvet Cryoscope) अधिक उपयोगी और कारगर सिद्ध हुआ है। वैसे तो यह यंत्र भी सर्वथा अभ्रान्त एवं अचूक नहीं है तथापि विश्लेषण कर्त्ताओंको इस बातका ठीक-ठीक पता तो अवश्य लग जात

है, कि किसी दूध विशेषमें बाहरसे जल मिलाया गया है या नहीं।
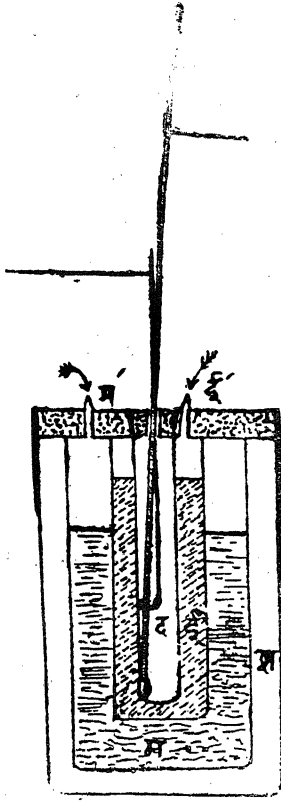
हार्टवेट-क्रायस्कोपका निर्माण (Minnesota) के डेरी फार्मके रसायनज्ञ श्री जूलियस हार्टवेटने किया। इसके द्वारा दूधकी जाँचकी क्रिया, दूधके दो प्रधान (characteristics) गुणों पर अवलम्बित होती है, अर्थात् (१) सभी पशुओंके विशुद्ध दूधका हिमाङ्क –०.५३° सेंटीग्रेड और – ०.५७° सेंटीग्रेडके बीच होता है और (२) दूधके विभिन्न वसारहित ठोस उपादानोंमें (non-fatty solids) एक नियत निष्पत्ति (Ratio) होती है। इस नियत निष्पत्तिको 'वीथ–निष्पत्ति' कहते हैं।

क्रायास्कोप यंत्रकी रचना और उसका प्रयोग करना अत्यन्त आसान है। मोटे तौरसे यह यंत्र एक बड़ी शीशी है जिसके भीतर कुछ भाग तो वायु–शून्य (Vacuum) रहता है और शेष भागमें दो खाने (Compartments) होते हैं जिनमेंसे एक खानेमें मद्य सार (Alcohol) और और दूसरेमें ईथर* रहता है। मद्य और ईथर डालनेके हेतु दोनों खानोंके ऊपरी भागमें एक-एक छेद भी होता है। मद्यवाले (Alcohol-bath) कुण्डमें एक नलिका रहती है। जिस दूधकी परीक्षा करनी होती है उसे इसी नलिका में डालते हैं। नलिकाके भीतर एक चालक या मथनी (stirrer) और विशेष तापमापक यंत्र रहते हैं। तापमापक यंत्रपर शतांशतकके चिन्ह बने होते हैं जिन्हें स्पष्टतः पढ़नेके हेतु एक बृहद्दर्शक ताल (magnifying lens) भी होता है। बस, क्रायस्कोप यंत्रकी यही रचना है।

ईथर (ज्वलक) के प्रभावके कारण मद्यका तापक्रम घटते–घटते ०° सेंटीग्रेडसे भी कम हो जाता है। साथ-ही-साथ मद्यमें डूबी हुई दूधकी नलिकाके तापक्रममें भी उसी अंशमें अपकर्ष होता जाता है। जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं। दूधका तापक्रम बृहद्दर्शक तालकी सहायतासे तापमापक यंत्रमें आसानीसे पढ़ा जा सकता है। नलिकाके भीतरका दूध, मथनीसे लगातार बिलोया करते हैं। घटते–घटते जब दूधका तापक्रम –१°३° सेंटीग्रेडतक पहुंच जाता है तो उसमें बर्फका एक रवा डाल देते हैं। बर्फके पड़ते ही तापमापक यंत्रका पारा गिरकर दूधके ठीक हिमांक पर रुक जाता है। अब जान लेना चाहिये कि दूध जम गया। अब, अगर दूध विशुद्ध है, और उसमें बाहरसे जल नहीं मिलाया गया है तो तापमापक यंत्रका पारा –०.५५° सेंटीग्रेड अथवा अधिक-से-अधिक – ०. ५७° सेंटीग्रेडपर रुका होगा। यदि पारा इससे अधिक अंशपर रुका हो अर्थात् यदि वह जलके हिमाङ्कके अधिक निकट हो तो जान लेना चाहिये कि दूधमें पानीकी मिलावट अवश्य है।

दूधको जमाकर उसमें पानीकी मिलावटका पता लगाने की क्रियाकी पुष्टि एक बड़े जटिल सिद्धान्तसे होती है। इसे 'औस्मोसिस' या प्रणोदका या अभिसर्पण सिद्धांत कहते हैं। 'औस्मोसिस' सिद्धांत क्या है? यह हम यहांपर संक्षेपमें

---

* यह ईथर आकाशवाची ईथरसे भिन्न है। यह एक द्रव पदार्थ है। जो मद्यसार और गन्धकाम्लकी संक्रियासे बनता है, और भाफ बनकर फौरन उड़ जाता है।

बता देना आवश्यक समझते हैं। यदि शकर अथवा नमकके (solution) घोलमें सादे जलसे भरी हुई झिल्लीकी कुप्पी थोड़े समयतक जलमें डूबी रहे, तो जलकी परीक्षा करनेपर ज्ञात होगा कि उसमें शकर अथवा नमक घुला हुआ है। बात यह है कि शकर अथवा नमकका घोल कुप्पी की झिल्लीको पारकर सादे जलमें प्रवेश करता है। इसी क्रियाको 'औस्मोसिस' प्रणोद कहते हैं, शकर अथवा नमकका घोलही झिल्लीको पारकर जलमें प्रवेश करता हो, सो बात नहीं। सादा जल भी झिल्लीको पारकर शकर अथवा नमकके घोलमें आ मिलता है। घोलके भीतर जानेको अन्तर्नोद (Endosmosis) और जलके बाहर आनेको (Exosmosis) बहिर्नोद कहते हैं।

इसी भांति यदि हम एक ब्लैडरमें सिरका (Vinegar) भरकर उसके मुँहको कसकर बाँध दें, और उसे एक निर्मल जलसे भरे हुए पात्रमें डुबो दें। तो कुछ दिवसके अनन्तर देखनेसे ज्ञात होगा कि जल-पात्र और ब्लैडरके पदार्थ अर्थात् जल और सिरका एकमेल होगये। दोनों पदार्थोंका सम्मिश्रण (even mixture) होगया। पहले उदाहरणके समान इसमें भी दोनों तरल पदार्थ अभिसर्पण अथवा प्रणोद क्रियासे ब्लैडरके नन्हें-नन्हें छिद्रोंको पार कर एक दूसरेमें आ मिलते हैं। कौन पदार्थ किस गतिसे ब्लैडरकी दीवारको पार करता है यह बात उस पदार्थके अभिसरण या (osmotic pressure) प्रणोदचाप पर निर्भर होती है। दोनों पदार्थोंके आदान-प्रदानकी मात्रा पृथक् पृथक् होती है।

इसी प्रकार स्तनधारी प्राणियोंमें दूध बनानेके हेतु रक्त दुग्ध ग्रन्थियोंकी केशिकाओंकी महीन दीवारोंको पार करता है। चूंकि दूध रक्तसे बनता है। अतएव उसका प्रणोदचाप सदैव रक्तके बराबर रहता है। किसी पदार्थके प्रणोदचापका नापना तो कठिन है। पर यह बात निश्चय रूपसे ज्ञात है कि किसी तरल पदार्थके प्रणोदचाप और हिमांकमें एक विशेष संबंध होता है।

दूधका प्रणोदचाप उसमें घुले हुए वसारहित (non-fatty solids) पदार्थोंपर निर्भर होता है। मक्खन दूधमें उतराता रहता है इस कारण उसका दूधके प्रणोदचापपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यदि हम सादे जलमें कुछ नमक घोलें तो प्रणोदचाप बढ़ जाता है, और हिमांक ०° सेंटीग्रेड से कुछ घट जाता है। अर्थात् प्रणोदचापमें वृद्धि होनेसे जलका हिमांक घट जाता है। इसके विपरीत जब दूधमें जल मिलाया जाता है तब दूधके घुले हुए पदार्थोंका घनत्व कम हो जाता है। घनत्व कम हो जानेसे उसका निस्सारण भार भी कम हो जाता है और निस्सारण-भारमें कमी होनेके कारण उसके हिमांकमें वृद्धि होती है और वह दूधके असली हिमांकसे बढ़कर ०° सेंटीग्रेडके निकट पहुंच जाता है।

ऊपरके विवरणसे अब पाठकोंकी समझमें आ गया होगा, कि शुद्ध दूधका हिमांक क्यों स्थिर (Constant) होता है। परन्तु एक बातका निरूपण इस बातसे नहीं हो सका। दूधके ऐसे दो नमूनेकी परीक्षा करके जो स्टैन्डर्डसे नीचे है, एक विश्लेषण-कर्त्ता यह कैसे बता सकता है, कि उनमेंसे एकमें तो जल मिलाया गया है और दूसरा विशुद्ध पतला दूध है !

इस बातको हल करनेके हेतु हमें (Veith's ratio) 'वीथ-निष्पति' का आश्रय लेना पड़ेगा। बहुत जांचपड़ताल के उपरांत *डाक्टर वीथ दो निष्कर्षोंपर पहुंचे (१) यदि दूधके वसारहित ठोस पदार्थ (Non-fatty solids) चौबीस बराबर भागोंमें बांटे जायँ तो १३ भाग पय-शर्करा, ९ भाग प्रोटीन और २ भाग खनिज पदार्थके होंगे, (२) पानीकी मिलावटसे इन पदार्थोंकी ऊपर लिखीत निष्पत्ति १३:९:२ में किसी प्रकारका हेर-फेर नहीं होता।

अब ऐसे विशुद्ध पतले दूधके नमूनोंमें जो स्टैंडर्डसे नीचे होते हुए भी ठीक हिमांकपर जम जाते हैं, निष्पत्तिके ये अङ्क कुछ अव्यवस्थित हो जाते हैं। चूंकि पतला दूध देनेवाले पशुओंके रक्तमें पय-शर्करा और प्रोटीनकी कमी होती है अतएव उनके दूधमें पय-शर्करा कम होती है, और थोड़ी-बहुत प्रोटीन भी कम होती है। इस कमीके कारण इन पशुओंके रक्त और दूधके प्रणोदचापकी कमीको पूरा करनेके हेतु उसके लवणादि खनिज पदार्थोंमें वृद्धि हो जाती है। चूंकि नमकका प्रणोदचाप पय-शर्करा (lactose) के प्रणोदचापसे दस-गुना अधिक होता है अतएव लवणोंकी वृद्धि पयशर्करा और प्रोटीनके परिमाणकी कमीको पूरा

* डाक्टर वीथ एलिसबरीके डेरी-रसायनिज्ञ थे। उन्होंने अनगिनत नमूनोंकी परीक्षाके उपरान्त इन तथ्योंकी खोज की।

नहीं कर पाती। अतएव वसारहित ठोस पदार्थ ८.५ प्रतिशतके स्टैंडर्डसे नीचे ही रहते हैं।

क्रायस्कोपद्वारा हिमांकवाली जांचमें इस बातका ध्यान रखना परमावश्यक है कि जिस दूधकी जांच करे, वह बिलकुल ताजा होना चाहिये, देरका बासी दूध खट्टा होने लगता है, खट्टा होनेसे पय-शर्करा कम हो जाती है। पय-शर्कराकी कमीके कारण दूधका प्रणोद्‌चाप भी कम होजाता है। किन्तु खट्टे दूधमें पय-शर्कराकी कमीको लवणादि पूरा नहीं करते हैं।

इस भांति हार्टवेट क्रायस्कोपने दूधमें जलकी मिलावट की चालाकियं और धोखेबाजियोंके अनुसन्धान और उनके उन्मूलनमें काफी सुविधा करदी, साथ-ही-साथ ऐसे बेगुनाह दूध-बेचनेवालोंकी रक्षा भी की, जिनका दूध विशुद्ध होते हुए भी स्टैंडर्डसे पतला होता है।

नोट—इस लेखके लिखनेमें हमें जून १९३५ ई० की Discovery नामक पत्रसे भारी सहायता मिली है।

सम्पादकीय टिप्पणी

सच्ची और सर्वसुलभ हंसशीशी ❀

[रामदास गौड़]

लेखक महोदयने हार्टवेटके क्रायस्कोपका बहुत स्पष्ट वर्णन किया है। फिर भी सर्वसाधारणके लिये तो इससे कहीं अधिक सुभीते की विधि चाहिये जो सर्व-सुलभ भी हो। ऐसी एक विधि मैं काममें ला चुका हूं और वह सर्व सुलभ है। वह इस सिद्धान्तपर निर्भर है कि मक्खन मिले रहनेसे दूध अपार-दर्शी होता है। जितना ही उसमेंसे मक्खन निकाला जायगा उतना ही उसकी अपार-दर्शिता घट जायगी। जितना ही पानी मिलाया जायगा उतनी ही अधिक पारदर्शिता आ जायगी।

इसके लिये चिकने सपाट पारदर्शी कांचकी समतल पेंदेवाली एक शीशी लीजिये और उसमें सीसीके निशान ऊपरतक बना लीजिये। एक कागज पर स्याहीसे मोटा सा क्रास या स्वस्तिक बनाकर एक समतल सफेद टाइल या कांचके टुकड़ेपर चिपका दीजिये, अब इसपर वह शीशी यों रखिये कि भीतरसे स्वस्तिक स्पष्ट दीखे। अब धीरे-धीरे इतना खालिस दूध छोड़िये कि स्वस्तिक ज़रा भी न दीखे। ज्योंही यह दशा आजाय दूधके तलको पढ़ लीजिये और नोटकर लीजिये। यह निशान खालिस दूधका हुआ जिसमेंसे न तो मक्खन निकाला गया है और न जिसमें पानी मिलाया गया है। इसी यंत्रको मैं "हंस शीशी" कहूंगा।

अब मक्खन निकाले हुए दूधका भी अपार-दर्शिताका तल इसी तरह निकाल लीजिये। मक्खन निकालनेपर दूधका आपेक्षिक घनत्व बढ़ जाता है। इसमें धूर्त ग्वाला इतना जल मिला देता है कि दूध-घनत्व-मापक या पय-मापक या लैक्टोमीटर खालिस दूधका घनत्व बताने लगता है। आप भी ऐसा ही करके मक्खन निकाले हुए दूधका घनत्व जल मिलाकर खालिस दूधका सा कर लीजिये। अब इसे "हंस-शीशी" में थोड़ा थोड़ा करके इतना डालिये कि स्वस्तिक चिह्नका देख पड़ना बन्द हो जाय। इस तलपर चिह्न कर लीजिये। यह पहले दोनों चिह्नोंसे ऊंचा होगा। यह तीन निशान भिन्न-भिन्न होंगे। ये निशान रेतीसे सदाके लिये किये जा सकते हैं। या कागज़का टुकड़ा चिपकाकर उसपर निशान बना लिये जायं। अब "हंस-शीशी" तैयार हो गयी। इसमें पय-मापकवाला धोखा पकड़ा जा सकता है। और यह यंत्र अत्यन्त सरल और सुलभ है। सब दूधोंमें मक्खनकी मात्रा एक सी नहीं हुआ करती। इस लिये अपार-दर्शिताकी यह पहचान सबके लिये एकसी नहीं है। इसलिये यह हंसशीशी केवल सापेक्ष मात्रा ही बताती है। परन्तु हर जानवरके दूधके लिये एक बार एक शीशी बनाकर रख ली जाय तो मिलाये हुए जलकी सापेक्ष मात्रा भी इस शीशीसे निकाली जा सकती है, और यह मालूम हो सकता है कि अटकलसे इस खास दूधमें कितना अंश जलका मिलाया गया होगा।

यह काम चलाऊ यंत्र है और सभी लोग इसे काममें ला सकते हैं। मक्खन निकाले बिना ही जो ग्वाले पानी मिलाकर दूध देते हैं, उस दूधकी परखके लिये पय-मापक, लैक्टोमीटर, काफी है।

रा० गौ०

मद्रास पेंसिल फैक्टरीमें सीसा पेंसिलोंका निर्माण

[पं० ओंकारनाथ शर्मा, लोकोफोरमैन, दिल्ली]

गत वर्ष दक्षिण भारतमें यात्रा करते समय मुझे मद्रास की पेंसिल फैक्टरीके देखनेका अवसर प्राप्त हुआ। वहांके प्रबन्धकर्ताओंने मुझे प्रत्येक विभागको खूब छान-बीनके साथ देखनेकी आज्ञा देदी थी और कुछ योग्य कार्यकर्त्ता मेरे साथ दे दिये थे जिन्होंने मेरे प्रश्नोंका उत्तर खूब दिलचस्पीसे और सही-सही दिया जिस कारण मैंने वहांसे बहुतसी उपयोगी बातें सीखी। इसके लिये वे सब मेरे धन्यवादके पात्र हैं।

हमारे रोजके काममें आनेवाली साधारण सीसा पेंसिलें किस प्रकार बनायी जाती हैं उसका संक्षिप्त वर्णन मैं यहाँ देता हूं आशा है "विज्ञान" के पाठकोंको वह रुचिकर होगा।

प्रत्येक सीसा-पेंसिल-फैक्टरीके दो मुख्य विभाग हुआ करते हैं। एक तो वह जिसमें बीचकी काली बत्ती तैयार होती है, और दूसरा वह जिसमें लकड़ी तैयार की जाती है और उसमें बत्तीको जमाकर, उसे पेंसिलके रूपमें लाकर, बेचनेयोग्य किया जाता है।

बत्ती तैयार करनेवाला विभाग

इस विभागमें नीचे लिखे क्रमसे क्रियाएं करके बत्ती तैयार की जाती हैं।

१—ग्रेफ़ाइट और ब्लैकलेडको एक नियत मात्रामें मिलाकर उनका सूखा चूर्ण बना लिया जाता है।

२—इस चूर्णको पानीसे खूब धोया जाता है।

३—इस हालतमें चूर्ण काफी मोटा होता है जिसकी बत्तियाँ नहीं बनायी जा सकतीं, अतः इस चूर्णके गीले शीरे को चक्कीघरमें लेजाते हैं। वहां लगभग ६० चक्कियां पंक्तियों में लगी होती हैं, और प्रत्येक चक्कीपर एक क्रमसंख्या होती है। वह शीरा पहिले १ नम्बरकीमें और फिर तीसरे नम्बर की चक्कीमें, कहनेका मतलब यह है कि वह एकके बाद एक करके ४८ बार पीसा जाता है। जितनी ही उम्दा पेन्सिल बनानी होती है, उतना ही अधिक उसके शीरेको इन चक्कियोंमें पीस पीसकर घोटा जाता है।

४—कापिंग पेंसिलें बनानेके लिये उपरोक्त क्रियाके बाद शीरेमें एक विशेष प्रकारका रंग मिला दिया जाता है। रंग मिलानेके लिये एक विशेष प्रकारकी मशीन होती है। शीरेमें रंग मिलानेवाली मशीन कुछ ऐसी हरकतें करती है, जैसे कि रेवड़ी बनानेके लिये हलवाई लोग खाँड़के शीरेको मींडते हैं।

५—शीरा तैयार होजानेपर वह बत्ती बनानेकी मशीन पर लेजाया जाता है। इस मशीनकी बनावट और कार्य-प्रणाली सेंवईं बनानेकी मशीनसे बहुत कुछ मिलती जुलती है। अन्तर केवल इतनाही होता है कि सेंवईं मशीनके नीचे तो कई छेद होते हैं जिनमेंसे कई बत्तियाँ एक साथ निकलती हैं लेकिन इसमें केवल एकही छेद होता है। दूसरा अन्तर यह होता है कि सेंवईं मशीनका पेंच तो हाथसे घुमाया जाता है और इसका पेंच एक बरम और बरमकिर्रेके द्वारा बिजली अथवा इन्जनकी शक्तिसे।

जब इस मशीनके द्वारा बत्ती बनती है, नीचे जमीनपर एक आदमी बैठ जाता है, और ज्यों-ज्यों मशीनमेंसे बत्ती निकलती जाती है, वह आदमी उसे पकड़कर पासमें रखे हुए एक, लगभग २२ इञ्च लम्बे, लकड़ीके पट्टेपर फैलाकर रखता जाता है, और तोड़ता जाता है। जब एक पट्टा उन बत्तियोंसे भर जाता है, तब दूसरा पट्टा लेलिया जाता है। इस प्रकार २२ इञ्च लम्बे टुकड़े तयार कर लिये जाते हैं। २२ इञ्चकी इस लम्बाईमेंसे तीन पेंसिलें तयार की जाती हैं।

६—इस हालतमें यह बत्तियाँ गीली होती हैं इसलिये उन्हें सुखानेकी जरूरत पड़ती है। सूखते समय यह बत्तियाँ ऐंठ न जावें इसलिये उन बत्तियोंके ऊपर, नीचेवाले पट्टे, जिसपर बत्तियाँ रखी हैं, उसके बराबर लम्बाई चौड़ाईका एक लकड़ीका चौरस तख्ता और रख दिया जाता है और उसके ऊपर कुछ हलकेसे बाँट रखदिये जाते हैं। इस प्रकार बत्तियोंसे भरे हुए पट्टोंको सूखनेके लिये एक तरफ आलमारियोंमें रखदिया जाता है। लगभग १५ दिनमें बत्तियाँ सूखकर तैयार होजाती है। यह जाननेके लिये कि कौन सी बत्तियोंको १५ दिन होगये, पट्टोंपर एक लेबिल चिपका दिया जाता है जिसमें बत्ती बनानेकी तारीख लिखी रहती है।

१५ दिन पूरे हो चुकनेपर उन बत्तियोंकी परीक्षा की जाती है और यदि बत्तियां कामके लायक सूख जाती हैं तो उनको उठाकर औरत मजदूरोंके पास भेज दिया जाता है ।

७—यह औरतें लकड़ीकी एक रूल, जिसपर पेन्सिलके बराबर निशान लगे होते हैं, और एक चौड़ा चाकू लेकर उन लम्बी बत्तियोंके बराबर-बराबर तीन टुकड़े कर देती हैं ।

८—पेन्सिलोंके नापकी इन बत्तियोंको फायरक्ले*के बकसोंमें ग्रेफाइटके चूर्णके साथ खामकर बंद करदिया जाता है और फिर उन बकसोंको एक विशेष प्रकारकी ईंटोंसे बनी भट्टीमें कोयलेकी आगसे एक विशेष तापक्रमतक गरम किया जाता है और फिर उस भट्टीमें ही उन्हें ठंडा होने दिया जाता है ।

९—ठंडा होनेपर बकसोंमेंसे बत्तियाँ निकाल ली जाती हैं और फिर उन्हें लोहेकी जालीकी बनी एक थैली अथवा टोकरीमें डालकर पैरेफिन (एक विशेष प्रकारका मोम) वैक्ससे भरी हुई एक घड़ियामें उबाला जाता है । घटिया और बढ़िया दरजेकी तरह-तरहकी पेन्सिलें बनानेके उद्देश्यसे उबालनेवाले मोमके मेल और उबालनेके समयमें आवश्यकतानुसार हेरफेर कर दिया जाता है ।

१०—उबाल चुकनेके बाद उन बत्तियोंको हवामें सुखा दिया जाता है और फिर उन्हें मैक्रोमीटर गेज जैसे एक गेजसे नाप-नापकर छांट लिया जाता है । यह बत्तियां अब पेन्सिलकी लकड़ीमें लगानेके लिये तयार होगयीं ।

पेंसिलोंकी लकड़ी बनाने और पेंसिलें तैयार करनेवाला विभाग

१—पेंसिलकी लम्बाईसे लगभग $\frac{1}{2}$ बड़ी, ६ पेंसिलोंकी चौड़ाई जितनी चौड़ी और पेंसिलकेव्यासकी पौनी मोटाईकी लकड़ीकी पट्टियां जैसी कि चित्र सं० २में दिखायी हैं चिरी चिराई बाहरसे मँगवा लीजाती हैं । चित्र सं० १में इस
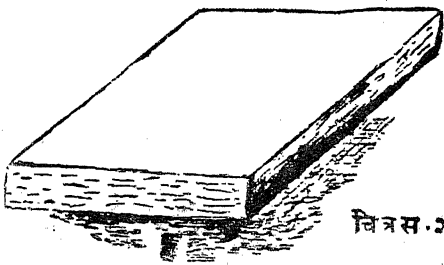
चित्र स० २

चित्र सं० १

लकड़ीके सिरेका दृश्य दिखाया है । इन लकड़ियोंको रंदा करने और साथ ही खांचा काटनेवाली एक मशीनपर ले जाया जाता है । मशीनमें लकड़ियां अपने आप आगे सरकती हैं और आगे सरकते समय पहिले तो उनपर एक तरफ रंदा हो जाता है और फिर पतले-पतले ६ खांचे पड़ जाते हैं । यह खाँचे आधे गोल होते हैं जिनमें बत्ती बैठ जाती है । देखिये चित्र सं० ३ और ४ ।

चित्र सं० ३
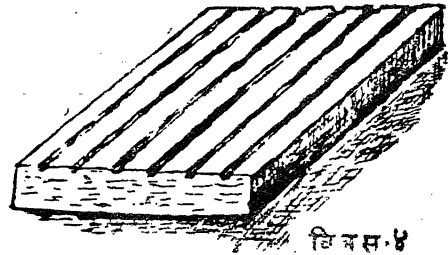
चित्र स० ४

२—अब यह पट्टियाँ एक कमरेमें पहुंचायी जाती हैं जहां औरतें काम करती हैं । यह औरतें कूंचीसे उन पट्टियोंपर, खाँचोंकी तरफ, सरेसका हल्का सा हाथ लगा कर एक पट्टीपर दूसरीको हल्केसे चिपकाकर आगे फेंक देती हैं । इस प्रकार उन्हें आपसमें चिपकानेसे कई लाभ होते

* ताप सहनेवाली एक विशेष प्रकारकी मिट्टी ।

हैं। एक तो आगे चलकर उन पट्टियोंमें पेंसिलकी बत्तियां भरनेवालोंके हाथ और अन्य पट्टियोंके ऊपरकी सतह सरेस में नहीं सनने पाती। दूसरे, बत्ती भरनेतक, जो १० अथवा १३ मिनटका समय लगता है, सरेस नहीं सूखने पाता। यदि उसकी सतह खुली रखी जायगी तो कुछ तो पुछ जायगा और कुछ सूख जायगा, और तीसरे, बहुत सी पट्टियोंका थोड़ी सी जगहमें ही ढेर लगाया जा सकता है।

३—इसके बाद कुछ आदमी इस ढेरमेंसे पट्टियोंका एक-एक जोड़ा उठाकर दोनों चिपकी हुई पट्टियोंको जुदा करते हैं और उनमें बने खाँचोंमें पेंसिलकी बत्तियाँ भर देते हैं, फिर उन्हें दुबारा वापस चिपकाकर आगेकी तरफ पटक देते हैं। चित्र सं० ५ में सीसेसे भरी हुई और सरेस
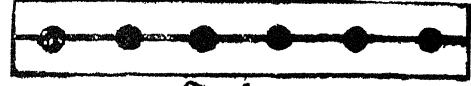
चित्र सं० ५

से चिपकी हुई पट्टीकी जोड़ी दिखायी है।

४—कुछ आदमी इस ढेरमेंसे पट्टियोंकी जोड़ियोंको समेटकर, पचास-पचासकी एक गड्डी बना-बनाकर चित्र सं० ६ में दिखाये अनुसार एक शिकंजेमें कसते जाते हैं।
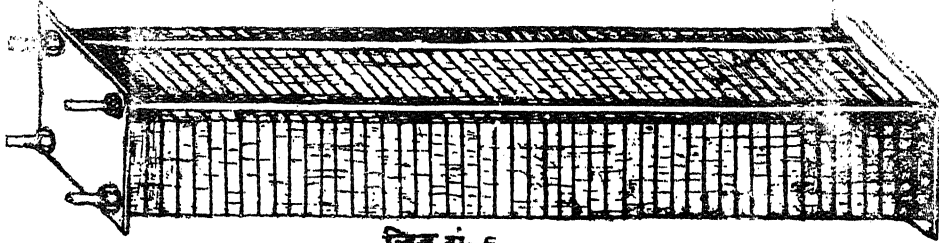
चित्र सं० ६

इस प्रकार कसनेसे ऊपर और नीचेकी पट्टियां और उनके खाँचोंमें रखी हुई पेंसिलकी बत्तियां सरेसके कारण शिकंजेमें दबकर एक-जिगर होजाती हैं। कसनेके बाद शिकंजेके ऊपर एक लेबिल लगा दिया जाता है जिसमें कसनेकी तारीख लिख दी जाती है और फिर उस सबको एक गोदाममें सूखनेके लिये रख दिया जाता है। सूखनेके लिये गर-मियोंमें लगभग १२ दिन, सरदियोंमें १३ दिन और बरसातमें २३ दिन दिये जाते हैं।

५—सूखनेका समय पूरा हो जानेपर शिकंजोंको खोल कर पेंसिलोंकी पट्टियोंके जोड़े अलहदा अलहदा करकर एक रंदा मशीनमें दे दिये जाते हैं। वह मशीन पट्टोके ऊपर, एक तरफ, ६ आधे गोले रंदा करके बना देती है। देखिये चित्र सं० ७ और ८।
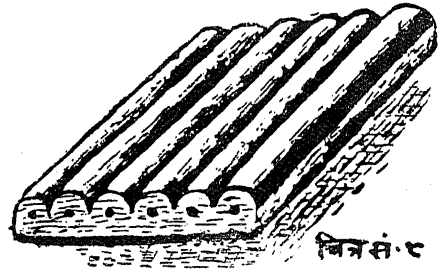
चित्र सं० ७

चित्र सं० ८

६—प्रत्येक पट्टीपर एक तरफ गोला बन चुकनेके बाद उसे लौटकर उसी मशीनपर फिर लगा दिया जाता है जिससे उसकी दूसरी तरफ भी उसी प्रकारके ६ आधे गोले बन जाते हैं जैसा कि चित्र सं० ९ और
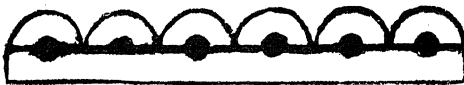
चित्र सं० ९

१० में दिखाया है। इस क्रियाके पूर्ण होतेही एक पट्टीकी ६

चित्र सं० १८
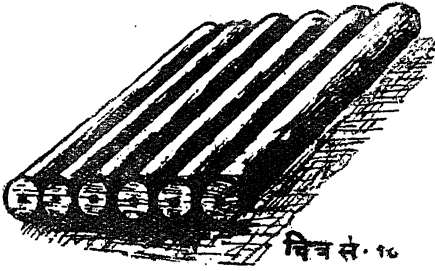
पेंसिलें बनकर जुदा-जुदा तयार हो जाती हैं। इस हालतमें पेंसिलोंकी ऊपरी सतह बड़ी खुरदरी होती है अतः वे एक पालिश करनेवाली मशीनपर ले जायी जाती हैं।

७—पालिशिंग मशीनमें एक बेलन लगा होता है जिसकी सतह सरेस काग़जके समान खुरदरी होती है। उस खुरदरी सतहसे रगड़ खाकर पेन्सिलें चिकनी हो जाती हैं।

८—इसके बाद पेन्सिलोंपर रोग़न किया जाता है। पालिश करनेवाली मशीनमें एक चौकोर कीप लगा होता है जिसमें बहुत सी पेन्सिलें एक साथ भर दी जाती हैं। इस कीपके पेंदेमें केवल एक ही पेन्सिल रह सकती है और वहांपर पेन्सिलके नापकी एक गोल सलाख़ आगे पीछे सरकती रहती है जो उस पेन्सिलको ढकेलकर एक बकसमें से निकाल देती है जिसमें रोगन भरा रहता है। बकसमें से गुजरते समय पेन्सिलके रोगन लग जाता है, लेकिन बकसमें से बाहिर निकलते समय पेन्सिलको एक ऐसे छेद में से गुज़रना होता है जो पेन्सिलके ऊपर लगे हुए फालतू रोग़नको पोंछ देता है और पेन्सिल एक घूमती हुई बहुत लम्बी मालपर गिर जाती है। जितनी देरमें पेन्सिल पड़ी-पड़ी, मालके दूसरे सिरेपर पहुँचती है उसका रोग़न सूख जाता है और मालके लौटतेही पेन्सिल एक तसलेमें गिर जाती है। अथवा कुछ लड़के जो इस कामके लिये तैनात रहते हैं उन पेन्सिलोंको इकट्ठी करलेते हैं।

९—इसके बाद वे पेन्सिलें एक मशीनपर लेजायी जाती हैं जो ठीक नापकर उनके दोनों सिरोंको सफाईसे सीधा काट देती है।

१०—उपरोक्त क्रिया हो चुकनेके बाद उन पेन्सिलोंपर एक मशीन द्वारा सोने अथवा चांदीके रंगके अक्षरोंसे पेंसिल के बनानेवालेका नाम और पेन्सिलकी जाति छापदी जाती है। नाम छापनेके लिये मशीनमें लोहेका ठप्पा लगा होता है जिसे स्प्रिट लैंपसे गरम करते रहते हैं और पेन्सिल और ठप्पेके बीचमें सुनहरी अथवा चांदीके रंगका एक काग़ज लगा देते हैं जिससे गरम गरम ठप्पा पेन्सिलपर पड़ते ही वह काग़ज कटकर पेन्सिलमें चिपक जाता है और अक्षरोंके रूपमें दिखाई देता है। इस कागजका साबुत रूला एक चकरीपर चढ़ा दिया जाता है जिसपरसे वह खुल-खुलकर पेन्सिल और ठप्पेके बीचमेंसे निकलता जाता है, और अक्षर छपचुकनेके बाद छेद हुआ-हुआ भाग एक दूसरी चकरीपर लिपटता जाता है।

११—नाम छप चुकनेके बाद पेंसिलें बिलकुल तयार समझी जाती हैं और उनके एक-एक दरजनके बंडल बांध-बांधकर बकसोंमें भर दिये जाते हैं।

१२—विदेशी पेंसिलोंपर पेंसिलोंकी जाति बतानेके लिये सांकेतिक अक्षर छापे जाते हैं। ये अक्षर B और H हैं। पहला "काले" के लिये आता है; परन्तु उसका अभिप्राय होता है 'नरम"। दूसरा कड़ेके लिये आता है और अभिप्राय है कठोर। HHHH का अर्थ है सबसे कड़ी पेंसिल। BB का अर्थ है बहुत नरम और काली। भारतीय कारखानेवालोंको हिन्दीके अक्षर 'न" और "क" व्यवहार करने चाहियें।

त्रिपाठीजीका रामचरितमानस (सटीक)

अशुद्ध पाठ और उलथा

[श्री भगवानदासजी हालना, मिरजापुर]

(पाठकोंको याद होगा कि विज्ञानके पिछले मार्चके क्षेमांकमें मैंने श्रीमान् पंडित रामनरेश त्रिपाठीके सटीक रामचरित मानसकी समालोचना की थी। उसीके सम्बन्धमें श्रीहालनाजीने प्रकाशनार्थ एक पत्र लिखा है। उसके अत्यावश्यक अंश यहां दिये जाते हैं। रा० गौ०)

श्री पंडित रामनरेशजी त्रिपाठीके सटीक "राम-चरित मानस"की आपकी लिखी समालोचना पढ़कर मुझे अत्यन्त आश्चर्य और खेद हुआ। आश्चर्य इस बातका कि आप जैसे रामायणके मर्मज्ञ विद्वान् भी, जो स्वयं एक शुद्ध-पाठ-पूर्ण रामायण सम्पादन कर चुके हैं, कैसे भ्रममें पड़ गये! खेद इस बातका है कि त्रिपाठीजीकी जिस पुस्तकद्वारा रामायण की हर तरह दुर्दशा की गयी हो उसे पूरी तरह पढ़े और समझे बिना ही केवल ऊपरी सुन्दर रूपपर मोहित होकर आपने उसकी अनुचित प्रशंसा कर दी। आप कृपाकर अपनी रामायणसे या और किसी अच्छी रामायणसे त्रिपाठी जीकी पुस्तकका पाठ मिलाइये, तो सब दशा अपने आप मालूम हो जायगी। त्रिपाठीजीकी रामायणमें जो दोष हैं उनका मैं यहां संक्षेपमें दिग्दर्शन कराता हूं।

त्रिपाठीजीकी रामायण क्षेपकों और अशुद्ध पाठोंसे भरी हुई है। जब पाठ ही गलत और अशुद्ध हैं तब टीका या अर्थका अशुद्ध और गलत होना साधारण सी बात है।

क्षेपक

(१) किष्किंधाकांडमें कई जगह क्षेपक हैं। उस कांडसे क्षेपकका एक उदाहरण नीचे देता हूं—

हंसि बोले रघुबंस कुमारा।
बिधि कर लिखा को मेटन हारा ॥दो०॥३

पृ० ८१७

ऊपर मैंने त्रिपाठीजीकी रामायणसे दोहा नं० और पृष्ठसंख्या दे दी है।

(२) त्रिपाठीजी की रामायणमें आरण्य काण्ड एक दो नहीं बीसों जगह क्षेपकोंसे भरा है। यही कहना पड़ेगा कि करीब आधेके क्षेपक होंगे आधा मूल। एक उदाहरण इस कांडसे नीचे देता हूं—

"मिला असुर बिराध मग जाता।
आवत ही रघुबीर निपाता॥"

सब प्रामाणिक और क्षेप्क-रहित रामायणकी प्रतियोंमें ऊपर दिया हुआ पाठ ही प्रमाण माना गया है। त्रिपाठीजीने इन दो लाइनोंके बीचमें पौनेदो पेजसे ज्यादा मैटर क्षेपक का दिया है। यहाँ स्थानकी कमीसे यह अंश उद्धृत नहीं किया जा सकता पर देखनेवाले लोग त्रिपाठीजीकी रामायण के पृ० ७४१ और ७४२ देखकर अपने नेत्र तृप्त कर लें।

ऊपरके पद्योंको हम सं० १७२१ की प्रसिद्ध ह० लि० प्रति और का० ना० प्र० सभा, "मानस पीयूष", पं० महावीरप्रसाद मालवीय, श्रीयुक्त रामदासजी गौड़ आदिकी अनेक शुद्ध-पाठ-पूर्ण प्रतियोंके अनुसार क्षेपक पाठ निश्चित करते हैं।

अशुद्ध पाठ और अर्थ

अशुद्ध पाठों और अर्थोंसे तो त्रिपाठीजीकी रामायण थोड़ी बहुत नहीं बहुत काफी रूपमें भरी हुई है जो किसी प्रकार मार्जनीय नहीं समझे जा सकते, हर काण्डसे थोड़े थोड़े उदाहरण देना ही यहाँ संभव है—

बालकाण्ड

(१) बोले कृपानिधान, पुनि, अति प्रसन्न मोहि जानि।
माँगहु बर जोइ भाव मन, महा बानि अनुमानि॥

बा० कां० दो० १७६ पृ० १७३

मनु और शतरूपाकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान्ने उन्हें दर्शन दिये और कहा मुझे 'महान् दानी' समझकर चाहे जो बर मांगो। त्रिपाठीजीने 'महा बानि' अशुद्ध पाठ

दिया है शुद्ध पाठ 'महा दानि' है। त्रिपाठीजीने अर्थ किया है कि 'मेरी बातको तुम महावाणीके समान निश्चित समझो' कोई भी रामायणका जानकार ऐसी भद्दी भूल नहीं कर सकता।

(२) कोउ नहिं शिव समान प्रभु मोरे।
अति परतीति तजहु जनि भोरे॥
दो० १६५ पृ० १५२

यहां पाठ भी अशुद्ध है और अर्थ भी अशुद्ध है। शुद्ध पाठ 'असि' है।

(३) जिन्हके यह आचरन भवानी।
ते जानहु निसिचर सब प्रानी॥
दो० २१५ पृ० २०८

पाठ गलत है शुद्ध पाठ 'सम है।

अयोध्या काण्ड।

(१) चक्क चक्कि जिमि पुर नर नारी।
चलत प्रात उर आरत भारी॥१॥
दो० १८७ पृ० ५८५

यहाँ शुद्ध पाठ 'चहत' है। भाव यह है कि अयोध्याके नरनारी चकवा चकई के समान रात्रिमें बहुत व्याकुल हो रहे थे और (हृदयसे) यह मनाते थे कि शीघ्र प्रातःकाल हो। त्रिपाठीजी ने अर्थ किया है कि 'नर-नारी सबेरे चलते हुए बहुत घबरा रहे थे।'

(२) चरन रेख रज आंखिन लाई।
बचन न कहत प्रीति अधिकाई॥
दो० १९९ पृ० ५९७

यहाँ पाठ भी गलत है और अर्थ भी गलत है। शुद्ध पाठ 'बनइ है' "बचन" नहीं।

(३) हम अब बनतें बनहिं पठाई।
प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई॥
दो० २९२ पृ० ६९१

शुद्ध पाठ 'बढ़ाई' हैं। त्रिपाठीजीने पाठ और अर्थ दोनों गलत दिये हैं।

(४) सब साधनकर सुलभ सुहावा।
लखन राम सिय दरसनु पावा॥
दो० २१० पृ० ६०९

शुद्ध पाठ 'सुफल' है। अर्थ ठीक दिया है।

(५) बिधि गनपति अहिपति सिव नारद।
दो० २८८ पृ० ६८७

शुद्ध पाठ 'सारद' है। त्रिपाठीजीने पाठ 'नारद' दिया है अर्थ 'सरस्वती' किया है।

अरण्य कांड।

(१) ख कटक भट अति हरखाहीं।
दो० ३२ पृ० १६४

शुद्ध पाठ 'बिकट' है। अर्थ भी अशुद्ध है।

(२) भइ मति कीट भृङ्ग की नांई।
दो० ४३ पृ० ११६

शुद्ध पाठ 'मम' है।

किष्किंधा कांड।

(१) से सठ हठ कत करत मिताई।
दो० ८ पृ० ८१९

शुद्ध पाठ 'ते सठ' है।

(२) पंच रचित यह अधम सरीरा।
दो० १२ पृ० ८२६

शुद्ध पाठ 'अति' है। पाठ और अर्थ दोनों गलत हैं।

सुंदर कांड।

(१) खर आरूढ़ नगर दस सीसा।
मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥
दो० ११ पृ० ८६१

शुद्ध पाठ 'नगन' है। पाठ और अर्थ दोनों गलत हैं। आश्चर्य है ऐसी प्रसिद्ध चौपाई में इतनी बड़ी गलती!

(२) सिंह कंध आयत कर सोहा।
दो० ४६ पृ० ८९८

शुद्ध पाठ 'उर' है त्रिपाठीजी ने अर्थ किया है 'सिंहके समान चौड़ा कंधा सुंदर था' इसमें कर का अर्थ ही नहीं आया। यहाँ अर्थ है कि रामचंद्रजी के कंधे सिंहके समान और चौड़ी छाती शोभा दे रही है।

लंका कांड।

(१) सो मनु मनुज खाब हम भाई।
दो० ११ पृ० ९२६

यहाँ शुद्ध पाठ 'भनु है । अर्थ और पाठ गलत हैं ।

(२) गहे न जाहिं सिरन्ह पर फिरहीं ।

दो० १२१ पृ० १०३५

शुद्ध पाठ 'करन्द है ।

(३) तुरत उठाइ कोपि रघुनायक ।

दो० ११५ पृ० १०२

शुद्ध पाठ 'तुरग' है ।

उत्तर कांड ।

(१) द्वंद बिपति भय फंद बिभंजय ।

दो० ५६ पृ० १११८

शुद्ध पाठ 'भव' है । अर्थ भी गलत है ।

(२) सब भांति सुखी बिचरंति मही ।

दो० ३१ पृ० १०९५

शुद्ध पाठ 'सन्त' है । अर्थ भी गलत है ।

(३) ते विप्रन सन आपु पुजावहिं ।

दो० १५७ पृ० पृ० ११९

शुद्ध पाठ 'पांव' है । अर्थ भी गलत है ।

(४) बाल बिभूषन वीर ।

दो० ११२ पृ० ११६१

शुद्ध पाठ 'चीर' है ।

(५) नहिं दोष बिचार न सीतलता ।

दो० १६१ पृ० ११९१

शुद्ध पाठ 'तोष' है । टीकामें 'दोष'का अर्थ ही नहीं है ।

हमने ऊपर अशुद्ध पाठोंके जो उदाहरण दिये हैं, उनमें अधिकांश ऐसे हैं जो पाठ और अर्थ दोनों गलत हैं । थोड़ेसे ऐसे उदाहरण हैं जिनमें पाठ अशुद्ध है पर अर्थ शुद्ध पाठके अनुकूल किया गया है । इस पुस्तकमें अशुद्ध पाठकी इतनी गलतियाँ हैं कि यदि भूमिका आदिमें कुछ अच्छी बातें भी हैं तो वे छिप जाती हैं । शुद्ध पाठ पुस्तकका प्राण है । जब पुस्तकमें प्राण ही नहीं है तो कुछ नहीं है । छापे की गलतियाँ भी कम नहीं हैं । यह देखकर आश्चर्य और कष्ट होता है कि पं० रामनरेशजी त्रिपाठी जैसे हिन्दीके प्रसिद्ध कवि और सेवकद्वारा गोसाईंजीके इस जगद्वन्द्य 'रामचरित मानस'की ऐसी दुर्दशा क्यों हुई ! मैंने तो थोड़े से उदाहरण दिये हैं । इस पुस्तकपर कितनी भी उदारता से विचार किया जाय पर यह रामायणकी अच्छी प्रतियों में कभी स्थान नहीं पा सकती । रामायणके मर्मज्ञ त्रिपाठी जीकी पूरी पुस्तक पढ़ें और तब राय दें कि मैंने ठीक लिखा है या गलत ।

इन दिनों सतयुगका सन्ध्यांश वर्त्त रहा है

युग–परिवर्तन

[ज्योतिर्भूषण पं० गोपीनाथ शास्त्री चुलैट, अध्यक्ष, तत्वज्ञान संचारक सोसायटी, एलिचपुर सिटी, बरार]

इसी पत्रके कुम्भार्क संवत् १९९२ फरवरीके अङ्कमें रायबरेली हाईस्कूलके हेडमास्टर ज्यो० पं० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य, बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारदने मेरी लिखी "युग परिवर्तन, अर्थात् कलियुगका अन्त और सतयुग का आरम्भ" नामक पुस्तकपर समालोचना लिखनेकी कृपा की *है । आपकी समालोचना उस ग्रन्थकी बहुतसी बातोंकी पुष्टि करती है न्याय्य और सुरुचिपूर्ण है, और आपके गम्भीर अनुशीलनका परिचायक है । फिर भी उस लेखमें आपने कई आक्षेप भी किये हैं जिनका क्रमानुकूल उत्तर देना मुझे नितान्त आवश्यक होगया है ।

पहले आक्षेपका उत्तर

पहिला आक्षेप–बारह हजार वर्षमें न तो सूर्य चन्द्र ही एक राशिपर आते हैं, और न बृहस्पति ही । इसलिये मेरे विचारसे शास्त्रीजीके चतुर्युगमें यानी १२,००० वर्षमें सूर्य चन्द्रमा और बृहस्पति एक अंशपर नहीं आ सकते । पृष्ठ १९६

* यह पुस्तक तत्त्वज्ञान संचारक सोसायटी, एलिचपुर सिटी, बरारसे दो रुपयेमें मिलती है । रा० गौड़ ।

यही तो बात है। दिव्य शब्दका वास्तविक अर्थ न समझकर उसका अर्थ देववर्ष मान, मनमाना अर्थका विपर्यास है। आपके ऊपरवाले प्रश्नका सीधा सा उत्तर यह है कि—

केवल बारह हजार वर्ष ही नहीं किन्तु हर मासकी अमावस्याको सूर्य-चन्द्र एक राशि अंशमें बिना मिले रह ही नहीं सकते। विशेषता यह है कि पौषकी अमावस्याको बृहस्पतिका बारह हजार वर्षके "लगभग" अंश-साम्य होता है। तब सूर्य-चन्द्र और बृहस्पति एक राशि-अंशपर जरूर आते हैं और तभीसे कृत-युग—कृतियुग—सत्ययुगका प्रादुर्भाव होता है।

यहां लगभगका अर्थ है गणितागत शुद्ध और सूक्ष्म। क्योंकि इस ठीक अंकके मिलनेमें ४०—५० वर्ष आगे पीछे धन या ऋण होता है। अर्थात् यह स्केल गणितसे ठीक करनेके अर्थमें ही दिव्य शब्दका प्रयोग किया है। दिव्यका अर्थ न तो तीनसौ साठसे गुना करना है और न "देव" वर्ष है। दिव्य शब्दका अभिहित और लाक्षणिक अर्थ क्या है, देखिये—

दिव्य रथ = उज्वल रथ	दिव्यप्रकाश = सुन्दर प्रकाश
दिव्य घोड़े = तेज घोड़े	दिव्याकाश = निर्मल आकाश
दिव्य बर्तन = उजल बर्तन	दिव्य ज्योति = निर्मल तेज

इन शब्दों में दिव्यका अर्थ है, निर्मल, शुद्ध, पवित्र, विकाररहित, एकदम शुद्ध, निर्भ्रान्त, ऐसा स्पष्ट अर्थ होते हुए इनको "देववर्ष" सिद्ध करनेका व्यर्थ प्रयास आजतक पंडितोंने जैसा कियाहै, वैसाही विज्ञवर श्रीवास्तव्यजी भी करेंगे, ऐसा देखकर आश्चर्य होता है।

"युग परिवर्तन" ग्रन्थमें हमने हर प्रकारके युगोंके न्यारे-न्यारे मान बतलाये हैं। ※ युग कई प्रकारके हैं।

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठन् त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्॥
(ऐतरेय ब्राह्मण ३३३)

नित्य प्रति चार युगोंसे टक्कर लेना पड़ताहै। वह भी प्रकार बताया है। खाना और तानके सोना कलियुगीन अवस्था है। विचारवानोंकी सुनना यह द्वापरी अवस्था है। सुविचारोंपर उठकर खड़े होना त्रेतायुगीन अवस्था है। और उठकर कार्योंपर डटे रहना सत्ययुगीन याने कृतियुग की अवस्था है। उसीसे पुरुष तो अहर्निश चारों युगोंके चक्करमें रहता है।

इस विषयपर अन्तमें मेरा कथन इतना ही है कि गणितागत बारह हजार वर्षोंके लगभग जब पौषकी अमावास्याके पास सूर्य चन्द्र बृहस्पति आवें तभीसे कृतयुग प्रवृत्त होता है, ऐसाही इसका मतलब है। केवल बारह हजार की स्केलसे गणित दिखानेका प्रयास ही श्रीवास्तवजी न करते यदि हमारे युगपरिवर्तन पृष्ट १९में वास्तविक सृष्टि-प्रलयके देववर्षका प्रमाण बतलाये हैं जो ३३, ३३३⅓ वर्षों का होता है, उसे देख लेते।

कोई भी प्राचीन ग्रन्थ लीजिये। बारह हजारका ही अङ्क अङ्कित मिलेगा। क्या उन्हें तैंतालीस लाख बत्तीस हजारका अङ्क कहते नहीं बनता था या आता नहीं था? मूल पाठमें वेद-पुराण-श्रुति-स्मृति आदि किसी पोथीको लीजिये सबमें बारह हजार वर्ष ही मिलते हैं। ऐसा क्यों है?

सीधा सौका अङ्क न कहकर पांच बीसी कहनेका अज्ञान प्राचीन ग्रन्थकारोंके गले मढ़ना ठीक नहीं है। अतः बारह हजार वर्षको (लगभग) परिशोधित-गणितागत शुद्ध-सूक्ष्म-पवित्र-निर्भ्रान्त-बिलकुल शुद्ध दिव्य करके देखिये तो पौषकी अमावस्याको बृहस्पति अंश साम्य होकर उस दिनसे कृतयुगारम्भ होता है। यही अर्थ निकालना ठीक है।*

※ देखो युग-परिवर्तन पृष्ट ७ से २६ तक।

* शास्त्रीजीने जो "युगपरिवर्तन" नानक ग्रन्थमें लिखा है उससे साधारण पाठकको यह बोध होता है कि ठीक-ठीक १२,००० का ही अंक उस युगान्तर योग वा सतयुगके प्रवेश का काल सूचित करता है। सभवतः इसका कारण हिन्दीमें ठीक-ठीक व्यक्त करनेकी आपकी असमर्थता हो सकती है। शास्त्रीजीका तात्पर्य लेखमें यहां भी स्पष्ट नहीं होता। आपका मतलब यह है कि बारह हजार बरसोंके बीतनेके लगभग समयपर वह योग अर्थात् पौषमें सूर्य्य-चन्द्र-गुरुकी अंशैक्यता आती है। हां, आप गणितद्वारा इसका स्पष्टीकरण करते तो बहुत उत्तम होत। रा० गौ०

दूसरे आक्षेपका उत्तर

"पुष्य नक्षत्रका बृहस्पति" यह नीचेके श्लोकमें "तिष्ये बृहस्पतिः" का साधारण अर्थ है ।

यदा चन्द्रश्चसूर्यश्च तथा तिष्ये बृहस्पतिः ।
एक राशौ समेष्यन्ति प्रवेश्यति तदाकृतम् ॥

उत्तर—यह स्पष्ट है कि जहां सूर्य चन्द्र कह दिया वहां अमावस्याका होना निसर्ग-निर्णीत है । जिस प्रकार यहां अमावस्या पृथक् कहनेकी आवश्यकता नहीं है उसी प्रकार यहाँ नक्षत्र भी अलग कहनेकी आवश्यकता नहीं है । चन्द्रका निवासस्थान ही नक्षत्र नामसे पुकारा जाता है । और अर्थ होता है चन्द्रका । ठीक वही बात यहां (१) मास (२) सूर्य (३) चन्द्र (४) गुरु चारों बातें भिन्न भिन्न कही हैं । नक्षत्र नहीं कहा है । आप कहते हैं कि यह योग कब आता है गणितसे निकालकर यहां देना चाहिये था । मैं आपके इस आक्षेपको मानता हूं और अगले संस्करणमें अवश्य दूंगा ।

तीसरे आक्षेपका उत्तर

अयन गतिका **यह सूत्र लाखवर्ष पहिलेके लिये भी लागू नहीं हो सकता, क्योंकि उस समयकी परिस्थितियां भिन्न हो सकती हैं ।**

यह आपका कथन ठीक है, किन्तु हमने अपने ग्रन्थमें कलांतर-जन्य आनेवाले विकार और विकृतियोंको परिशोधित करके प्राचीन गणित रखा है ।

केवल ५०-२५८३५१ + .०००२२२५१ बृ० इतना मात्र ही नहीं लिया है । इसमें प्रत्येक सौ वर्ष पीछे

– १′·३५ सूर्य	जो बीज होना उचित है
+ ०′·११ चंद्र	वह दे-देकर किया है,
+ ०′·२१ गुरुके	इसलिये यह बिन चूक है।

कौन कहेगा कि आजकलके नाप २१४ लाख वर्ष पूर्व भी माने जाते थे । हमने तो यह सावधानी रखते हुए प्राचीन सैकड़ों घटनाओंसे साम्यता युक्त सिद्ध होनेवाली बातको ही स्पष्ट किया है ।

वाभम् वसु उपावर्ततः । ऋग्वेद. ४. ६. २२
स समुद्रः उत्तरतः प्राज्वलन्भूम्यन्तेन
(शतपथ ब्राह्मण. ९. १४.)

आदि अनेक प्राचीन घटनाएँ सैकड़ोंकी संख्यामें जिन गणितागत विधानोंसे सिद्ध होती हैं. उन्हींसे हमने काम लिया है । वेदकाल-निर्णय† नामक ग्रन्थमें थियासाफिकल सोसायटीके प्रकाशित नकशोंसे दस लाख वर्षकी भूपृष्ठीय स्थितिके पिंडगणितसे सिद्ध किये हुए जो नकशे दिये हैं उससे तुलना करके दिखा दिया है ।

अतः इस प्रश्नका सीधासा उत्तर यही है कि लाखों वर्षोंकी प्राचीन सैकड़ों घटनाएं जिसको सिलसिलेसे ठीक मिलती आ रही हों, वह गणित मान वास्तविक ही होना चाहिये । हाँ यह जरूर है कि सूक्ष्मता लानेमें प्राकृतिक अन्तर होना (यानी लाखों वर्षोंके हिसाबमे सूक्ष्म मानसे १०।१५ वर्षका आवांतर भी होना) साहजिक है । किंतु उसके आधारपर वैदिक घटनाओंकी एकवाक्यता करने वाला प्रमाण अचूक है ।

उदाहरणार्थ महाभारत संग्राम तब हुआ जब मृगमें वसंत-संपात था, आज संपातकी चाल और कुछ है । और पहिले और कुछ हो सकती है । यह नहीं हो सकता कि मृगपर संपात होनेकी घटना हुई ही न हो ! हुई अवश्य है । स्थूल अनुसंधान और सूक्ष्मगतिसे १०।२० वर्षका फरक भले ही होसकता है, किंतु घटनाक्रमका फरक नहीं हो सकता ।*

[बेशक ! ऐंस्टैनके मतानुसार विभिन्न दृष्टिकोणोंसे विभिन्नकाल तो प्रतीत हो सकते हैं ।] रा० गौ०

चौथे आक्षेपका उत्तर

चौथा आक्षेप—आपको चाहिये था कि वेदमंत्रोंके भावार्थ ही नहीं देते वरन् अन्वय करके विस्तारके साथ दिखाते कि उसका अर्थ क्या है ?··· अन्य आचार्योंने उसके अर्थ कैसे किये हैं ? वे उतने युक्तिसंगत नहीं हैं जितने शास्त्रीजीके नवीन अर्थ, तो शास्त्री जीकी बात अधिक प्रमाणित समझी जाती ।

उ०—हमने यहां आवश्यक विषयपर प्रकाश डालना उचित

† **वेदकाल निर्णय**—अर्थात् आजसे तीनलाख वर्ष पूर्व की वेदकाल मर्यादा—मिलनेका पता **तत्वज्ञानमंदिर एलिचपुर सिटी (बरार)** ।

* 'देखो युगपरिवर्तन' पृष्ठ ८५ ।

समझा। विस्तारके और विषयान्तरके भयसे अन्य आचार्यों के उद्धरण दिखाते हुए विवेचन नहीं किया है, क्योंकि यह मंत्रार्थ-प्रकार हमारे वेदभाष्यमें दिखाया गया है। वह ग्रन्थ यद्यपि अप्रकाशित है तो भी समय-समयपर इसी विज्ञानमें कई मंत्रार्थ परमपूज्य इन्दौर निवासी विद्याभूषण पं० दीनानाथ शास्त्री चुलैटकी ओरसे प्रकाशित होते रहते हैं। अगले संस्करणमें आपकी सूचनाके अनुसार उपयोगी मंत्रोंका विस्तृत अर्थ करके हम प्रकाशित करेंगे।

पांचवें आक्षेपका उत्तर

चित्र कहीं नहीं दिया है !

व्यय-बाहुल्य और आर्थिक व्यग्रतासे चित्र तैयार होनेपर भी हम इस पुस्तकके साथ न दे सके। इसका हमें आप दुःख है अगले संस्करणमें तो यह त्रुटि न रहेगी। और अधिक प्रमाणसे इसमें नक़शे चित्र-कृति-आकृति आदिसे सम्पन्न बनाया जायगा।

छठे आक्षेपका उत्तर

मर्दुमशुमारीसे औसत लगाकर भारतीय मनुष्यके मृत्यु की औसत २५।३० वर्षकीही निश्चित है।

आयुष्य मर्यादाके विषयमें भी बड़ा विलक्षण रहस्य भरा है। देखो "युग-परिवर्तन" पृष्ठ १४५

दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं...कलौ वर्ज्य द्विजातिभिः ॥

इस श्लोकका भाव यह है कि कलियुगमें ब्रह्मचर्य पूरा मत रखो दीर्घकाल यानी २५ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्याश्रममें रहनेकी तमाम वेद और स्मृतियोंकी आज्ञा है। उस पवित्र आदेशकी हत्या करके लघुकाल यानी २५ मिनिटमें उपनयनादि समाप्त करके विधिवत् संस्कारका उपहास किया जाता है। यह आरी हमारे जीवनकी जड़ोंको काट रही है, तो भी आँख मूंदकर कलिमें दीर्घकालवाला ब्रह्मचर्य धारण न करनेका आदेश हो रहा है। वाह ? धन्य है ! क्या पवित्र आदेश है ! आँखोंमें सरासर धूल डाली जाय तो भी कोई न बोले !

ब्रह्मचर्य्यका मटियामेट

सच तो यह है कि जिस दिन भारतसे ब्रह्मचर्यकी आश्रमपद्धति रुखसत हुई है उसी दिनसे योगसामर्थ्यका दिवाला निकल गया है। ज्ञानमय विज्ञानमय हमारे ही भीतरके कोश धूलमें मिल गये हैं। महान दुःख है, अत्यंत कष्टके साथ कहना पड़ता है, कि भारतका भाग्य-भानु उसी दिन अस्त होगया जब हमारे संस्कार तमाशा होने लगे। चौल, उपनयन वेदारंभ समावर्तन, यह चार संस्कार पूरे होनेमें २५ पचीस वर्षकी मर्यादा पूर्ण होती थी। इस पवित्र और हितकर योजनाका गला घोंटा जा रहा है। इस वेदाज्ञाकी मर्यादा तोड़नेको कोई वेदाभिमानी पातक भी नहीं समझता और न जोड़नेकी कोशिश ही करता है। यदि कोई जोड़नेका प्रयत्न करे भी तो कलियुगी भक्त शास्त्रके बनावटी प्रमाणोंका उसके मुँहपर ताला लगाना चाहते हैं।

क्या कोई वैज्ञानिक इस बातसे इनकार कर सकता है कि तीस बरसतक ब्रह्मचर्य पालन करनेवाला बालक जो गांवके बाहर दूर आश्रममें रहता है जिसे नाटक सिनेमा, नॉवेल-उपन्यास एवं गन्दे सामयिक पत्र-पत्रिकाओंने भ्रष्ट चरित नहीं बनाया, है, व्यायाम आदिसे पुष्ट अमोघवीर्य और तेजस्वी होगा और कांतिवान् ऋषिकुमार तुल्य दिखेगा ?

जो बात सन्देहरहित अमूल्य और उत्तम हो उसको रखना और खोटीको मार भगाना यह नैतिक कर्त्तव्य और निसर्गके नियमके अनुकूल है। भारतकी प्रचलित दूषित शिक्षण-प्रणालीका निरसन और प्राचीन आश्रमपद्धतिका पुनर्निर्म्माण थोड़े ही दिनोंमें हुए बिना न रहेगा। और इसके फलस्वरूप १००० वर्षोंकी औसत आयु हुए बिना कदापि न रहेगी।

त्रिंशत् वर्षेद्वहेत कन्यां हृद्यां षोड़शवार्षिकीम्।

इस पवित्र संस्कारकी अवधिका तोड़ना ही वह कुल्हाड़ा है जो दीर्घायुकी जड़ काटनेको हमारा बुलाया हुआ "कलियुग" है।

"शतायु र्वै पुरुषः "(ऋग्वेद-)" "जीवेम शरदः शतम्"। आदि वैदिक प्रमाणोंसे सौवर्षकी आयुमर्यादा ही सत्य है। बाकी तमाम रूपक और प्रभुत्व बढ़ानेके साधन हैं। (देखो युगपरिवर्तन पृष्ठ १२८)

अंतिम आक्षेपका उत्तर

शास्त्रीजीके विचार कितने युगपरिवर्तनकारी हैं ।

मेरे ही विचार नहीं, सारे भारतमें बड़ी ज़बरदस्त विचारक्रान्ति हो रही है । विलंब इतना ही है कि आजतक की आदतें युगान्तर माननेमें बाधक हैं । किन्तु निसर्ग इसकी कुछ परवाह न करके तेजीके साथ अपना कार्य करता चला जा रहा है । क्या वैज्ञानिक क्या तत्व शोधक क्या खगोल शास्त्रज्ञ सभी विचारक भरसक इस बातका प्रयत्न कर रहे हैं कि दैवी आन्दोलन-प्रक्रियाओं पर भी हम अधिकार जमा लें ?

सतयुगका यह मोटा अर्थ लोगोंके हृदयमें वज्रलेप हो गया है कि लंबी-लंबी उमरवाले आदमी हों और सुख ही सुख नजर आवे । बेटेकी मृत्यु बापके सामने न हो । कोई ईश्वरका द्वेषी न हो । कोई स्त्री विधवापनका दुःख न देखे । सबलोग धर्म्मात्मा—वीरात्मा—बने रहें, आदि ।

किन्तु यह सब भ्रम और मनके मोदक हैं । बार-बार ईश्वरी अवतार होना दुष्टोंके दमनार्थ बताया है । अनीति गामी पुरुष प्रत्येक युगमें रहे हैं । सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि इन चारो युगोंमें धर्मद्वेष्टा, ईश्वरद्रोही निरीश्वर वादी रहते ही हैं । इसकी गवाही तमाम पुराण दे रहे हैं । सत्यका पालन अत्यन्त कठिन, असाध्य और दुस्तर है । सत्यका पालन करना, सत्यवादी बनना और सत्ययुगी अवस्थाको प्रबल बनाना, कड़ी यंत्रणाओंको न्योता देना है । हरिश्चन्द्र, शिवि दधीचि, दशरथ आदिके उदाहरण उस समय भी अनोखे ही थे ।

इन्हें तथा बलि—मोरध्वज—भर्तृहरि आदिकोंको सत्यके लिये कठिन-से-कठिन विपत्तियोंका सामना करना पड़ा है । सत्यपालन तमाशा नहीं है, महानसे-महान कठिन काम है । लोग पशु पालते—तोता-मैना पालते और साहित्य को पालते हैं । किन्तु इस सत्यको वही पालनेके पात्र हैं जिन्हें महानसे महान् संकट सत्यपथसे डिगा नहीं सकते ।

आजकल सत्यकी व्याख्या लोग इतनी सी करके रह जाते हैं कि झूंठ नहीं बोलना इसीका नाम सत्य है । किन्तु सत्यकी वास्तविकता इससे पूरी नहीं चमकती । सत्य हो किंतु वह त्रिकालाबाधित हो । अर्थात् उस सत्यको प्रेरक-प्रेरणा—और फल इन तीनोंकी कसौटीपर रगड़ना पड़ता है तब कहीं सत्यका जाँचक जौहरी उसको सत्य ठहराता है । *श्रीमद्भागवतकी नीवँ पहिला उसका मंगलाचरण क्या कहता है, सुनिये ! ' हम आंखोंसे जो देखते हैं । वह मृगजल वत् असिद्ध और झूठ है । इसमें सुरनर और ब्रह्मज्ञानी भी चक्कर खा जाते हैं । अतः परम सत्यका मैं ध्यान करता हूं ।" परम सत्य न्यारा दिखाया है ।

* जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञःस्वराट्
तेने ब्रह्महृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत् सूरयः ॥
तेजो वारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गो मृषा ।
धाम्ना स्वेन सदा निरस्त कुहकं सत्यं परं धीमहि ॥

यही बात तीन प्रकारकी चलनीमें छनकर शुद्ध बनती है । आजकल प्रायः तीन प्रकृतिके सत्यवादी लोग नजर आते हैं । **पहिले** वह जो सत्यको समझते हुए भी अनुयायी न मिलनेसे आगे बढ़नेमें हिचकिचाते हैं, और भय खाते हैं कि यदि सत्य कह देवेंगे तो समाज का कुटुम्बी जनोंका माता पिताओंका विरोध होगा ? सत्यपथ समझते हुए भी इस भयसे मन मारकर चुपकी साधे रहते हैं । **दूसरे** वे हैं जो कहते हैं और करते नहीं अपनेको केवल उपदेशमात्रका अधिकारी समझते हैं । और **तीसरे** वे हैं जो परम सत्यपर दृढ़तासे डटे रहते हैं । निंदा या स्तुतिकी परवाह तनिक भी नहीं करते । तीनोंमें यही श्रेष्ठ हैं । इनका कलियुग और यम कुछ भी नहीं कर सकते । उदाहरणार्थ आजकलके पुराणवादी—उपदेशक—कथावाचक कथामात्र सुनाते और चुप हो जाते हैं किंतु उनमें चरित्र बल नहीं है । वेदमंत्र प्रमाणमें बोल बैठते हैं, किन्तु उसका मर्म्म नहीं जानते । संस्कारोंमें इसी तरह तमाशामात्र रह गया है, उनका वास्तविक विज्ञान रसातलको चला गया है । इन विनष्ट बातोंका पुनरुज्जीवन, ज्ञानक्रांति और विचार विकास ही सतयुग के सन्धिकालके आरंभके लक्षण हैं ।

बुभुक्षितः किं न करोति पापम्—

पाप ज्यादे होनेका मूल कारण प्रायः दरिद्र परिस्थिति हुआ करती है । न्याय पुकार-पुकारकर कहता है कि जिस प्रकार चोरी ज्यादे होनेका मूल कारण अव्यवसाय है, ठीक उसी प्रकार पाप ज्यादा होनेका कारण अव्यवस्था है ।

प्रजापालनकी व्यवस्था ही जहां नहीं है वहां पाप न हो तो और क्या हो, दीनबन्धुताकी हाँक लगाते हैं, किन्तु स्वयं दीनके बन्धु नहीं बनते। दयासिन्धुके पाठ पढ़ते पढ़ाते हैं किंतु देखो तो व्यवहारमें दया छू भी नहीं गयी है। कृपाके सिंधु का नाम चिल्लाते हैं किन्तु आप कृपा करना सपनेमें भी नहीं जानते। फिर हरिप्रिय वे कैसे बन सकते हैं।

सारांश

अन्तमें इतना ही कथन बस है कि अब समस्त भारतमें चारसौ-वर्षवाली सत् संधिमें जब आपत्ति-ग्रस्त लोगोंको आपत्तिसे बचनेके लिये **आपत्ति निवारण मंदिर**, विपत्तिमें फँसे लोगोंको बचानेके लिये **विपत्ति सहायक संघ** संकट ग्रस्त लोगोंको संकटसे बचानेके लिये **संकट सहायक संस्था**, दीन जनोंके उद्धारणके लिये **दीनोद्धारण मंदिर**, पतित जनोंके उद्धारके लिये **पतित पावन मंदिर**, वैदिक प्रकियासे प्रत्यक्ष प्रयोग सहित दिखाने वाले "**वेद विज्ञान मंदिर** कठिनाईमें पड़े लोगोंको बचानेके लिये **कठिनाई सहायक संघ**, और योगाभ्यासियोंके लिये **योग विज्ञान मंदिरकी** व्यवस्था हो जायगी तब लोगोंके बहुतसे कष्ट कम हो जायंगे।

इसी प्रकार विधवा स्त्रियोंकी पुकार सुननेको "**विधवा कष्ट सहायक संघ**" अनाथोंके दुःख हटानेको "**अनाथाश्रम**" ऋणमें गड़े लोगोंको ऋणसे मुक्त होनेको "**ऋण मोचन मंदिर**" और सत्य प्रेम, विश्वास, दयाका घात करनेवालों पर कानूनी दण्ड-योजना-उद्योगशाला, कलाभवन आश्रम-पद्धति आदि संघ और संस्थाएँ बनेगी। ये भावनाएँ तो जग उठी ही हैं। युगका पलटाव होनेहीके पथपर इस समय भारतका ज्ञान यह दौड़ लगा रहा है। युगपरिवर्तनके ही ये स्पष्ट चिन्ह हैं। विशेष खुलासा हमारी पुस्तक युग परिवर्तनमें पढ़नेको मिलेगा ही। किन्तु यहां इतना ही कथन पर्य्याप्त होगा कि युग अब करवट बदल रहा है। यह निःसन्देह है कि यह कृतिका युग है अर्थात् सत्ययुग है। अब जो कोई कृतिकर दिखायेगा वही ऊँचा माना जायगा।

अतः तमाम पुराणवाचकों और कथावाचकोंको सचेत हो जाना चाहिये कि अब आगे कलियुगका आदेश करना या मंत्रणा देना समाप्त कर दें। और अपना संकल्प बदलें। कलि समान दुष्ट युगका धर्म्म निबाहना, बल्कि उसका नाम भी संकल्पमें लेना पाप समझें। युगपरिवर्त्तन हो चुका है।

प्राकृतिक आहार-विज्ञान

(ले० श्रीगंगाप्रसाद गौड़ "नाहर" भूपतिपुरी)

हमारे शरीररूपी मन्दिरके निर्माणार्थ, हमारा दैनिक भोजन सुर्खी, चूना तथा ईंटका काम करता है। और हमारा जीवन एक कुशल राज-मिस्त्रीकी भांति, उस सामग्रीसे, इस साढ़ेतीन हाथके शरीर-मन्दिरको रचकर, उसके भीतर स्थित अनगिनित कोठरियोंकी जो Cells कहलाती हैं, और जो नितप्रति टूटती-फूटती रहती हैं, रक्षा तथा मरम्मत करता रहता है। कहना न होगा कि गृह-निर्माणमें, जैसा बुरा-भला मसाला लगाया जायगा, गृह भी वैसा ही उत्तम-मध्यम तय्यार होगा; और आँधी-पानी तथा जाड़ा, गर्मी, बरसातमें, उसमें रहनेवालोंको, तदनुसार सुख-दुःखका भी अनुभव होगा। अस्तु।

हमको इस बातका सदैव ध्यान रखना चाहिये कि हमारे शरीरके भीतर एक भी अस्वाभाविक वस्तु न प्रवेश करने पावे, अन्यथा जिस प्रकार केवल एक नोना लगी ईंट, दीवार की समस्त ईंटोंको, शनैः शनैः नोना बना डालती है, उसी प्रकार तिलमात्र विसदृश द्रव्य भी, समूचे शरीरको रोगी बनानेके लिये पर्याप्त होता है। यह अत्युक्ति नहीं है कि यदि हम अपने आहारको सुधार लें, तो कभी भी रोगी नहीं हो सकते। मनुष्य ही एक ऐसा—विलक्षण पशु है, जो अनाप-शनाप, खाद्य-कुखाद्य सभी उदरस्थ कर जाता है। अगणित व्याधियाँ, लखूखा डाक्टर-वैद्य, विविध चिकित्सा-प्रणालियाँ, मानव-समाजमें ही देखने-सुननेमें आती है, जिनको प्रकृतिके सच्चे उपासक, स्वच्छन्द विपिन-विहारी पशु-पक्षी जानते तक नहीं।

१—मिथ्या आहार और प्राकृतिक आहार

मनुष्यके मुख्य खाद्य पदार्थ फल, फूल, साग-सब्ज़ी तथा कन्द-मूल हैं, जिनका स्वाद सुमधुर हो, और जो उत्तेजक न हों, साथ-ही-साथ पक्क और ताज़े भी हों। सच्ची भूख लगने पर, स्वस्थ-शरीरकी प्रवृत्ति, इन्हीं वस्तुओंकी ओर अधिक होती है। अर्थात् वे खाद्य पदार्थ, जिनका स्वाद हमको उनकी प्राकृतिक अवस्थामें अच्छा लगता है, और खानेकी ओर रुचि बढ़ाता है, मनुष्यका स्वाभाविक आहार है। ऐसा आहार सदैव शीघ्र पच जाता है, और हमें सबसे अधिक जीवनी शक्ति प्रदान करता है।

जो खाद्यपदार्थ, अग्निपर पकाकर, अङ्गारोंपर सेंककर, नमक-मसाला, खटाई आदि मिलाकर, तथा सिरकेमें डुबोकर बनाये जाते हैं, उनकी पाचन-शक्ति क्षीण हो जाती है। इसलिये वे उतनी जीवन-शक्ति प्रदान नहीं कर सकते, जितनी कि प्राकृतिक अवस्थामें खाये हुए पदार्थ। अस्वाभाविक पदार्थोंके ग्रहण करनेसे कोष्ठ फैल जाता है। और चटपटी-वस्तुऐं अधिक खाजानेसे पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है। इस प्रकारके मिथ्या-आहारसे ही रोग उत्पन्न होते हैं। पाचन-यन्त्रमें विकारका होना, तथा शरीरमें रोगका बीजारोपण होना, दोनों एक ही बात है।

कुपथ्यसे जो हानियाँ होती हैं, उनका सहजमें अनुभव नहीं होता, अपितु अधिक समयमें उनका प्रभाव दिखाई देता है। स्वाभाविक भोजनके छोड़ने, तथा अस्वाभाविक भोजनको ग्रहण करनेसे ही हम लोग विविध भांतिके रोगों से पीड़ित होते रहते हैं, और अन्तमें, समयसे प्रथम ही, मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं। हमने अभ्याससे अपनी इन्द्रियों की स्वाभाविक शक्तिको बिगाड़ डाला है, कि जिस वस्तुको देखकर घृणा होनी चाहिये, उसे ही हम प्रसन्नतापूर्वक खाते हैं। इस विषयमें वनचारी-पशु हमसे लाख दर्जे अच्छे हैं। जो पशु शाकाहारी हैं, वे माँसकी ओर ताकतेतक नहीं, और जो माँसाहारी हैं, वे शाक-पात खाना जानतेही नहीं। जिन खाद्यपदार्थोंको उनके स्वाभाविकरूपमें देखने मात्रसे घृणा हो, वा जी मचलाने लगे, वे तलने, भूनने और मसाला लगाने पर, चाहे जितने स्वादिष्ट क्यों न हो, हानि ही करेंगे, क्योंकि वे खाद्य, मनुष्यके लिये बनाए हो नहीं गये।

अभी हालमें राष्ट्रसङ्घकी स्वास्थ्य-विभाग-सम्बन्धी कमेटी ने विभिन्न-देशोंमें प्रचलित भोजनकी जाँच करनेके बाद जो रिपोर्ट तय्यार की है, उससे पता चलता है कि सभी देशोंके औसत मनुष्योंका भोजन स्वास्थ्यकी दृष्टिसे त्रुटिपूर्ण है। साधारणतः भोजनकी व्यवस्था स्वादको ध्यानमें रखकर की जाती है, स्वास्थ्यकी दृष्टिसे नहीं। युरोप और अमेरिकाके लोग ऐसा भोजन नहीं करते, जिसमें पर्याप्त परिणाममें जीवन-तत्त्व हों। लोग, मक्खन निकाला हुआ दूध, छिलका निकाला हुआ आलू, तथा इसी प्रकारके अन्य खाद्य-वस्तुओं को भी, "विटामिन" वाले अंशको निकाल कर, खाते हैं। अब यह सोचनेकी बात है कि जब योरोप और अमेरिकाके समान समृद्धिशाली महादेशोंकी यह दशा है, तो भारत जैसा ग़रीब देश किस गिनतीमें है।

उक्त सङ्घकी स्वास्थ्य-सम्बन्धी कमेटीके एक डाक्टर सदस्यका कथन है कि—स्वास्थ्यके हितकी दृष्टिसे, यह आवश्यक है कि हमारा भोजन ऐसा हो, जिसमें 'विटामिन्स' काफ़ी मौजूद रहें। दूधसे मक्खन निकालकर खानेसे उसकी जीवनी-शक्ति तो जाती ही रहती है, परन्तु अधिक उबाले हुए दूधमें तो जीवन-तत्त्व रहते ही नहीं। आलूका छिलका उतार देनेसे उसका जीवन-तत्त्व बहुत कुछ कम हो जाता है। चावल खानेवाले देशोंमें भी लोगोंको यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि छाँटे हुए चावलका जीवन-तत्त्व नष्ट हो जाता है। इसलिये ग्राम्य-उद्योग-सङ्घकी ओरसे इस बातका प्रचार किया जा रहा है, कि कलमें कुटे हुए चावल, और मशीनमें पिसे हुये आटेके बदले ढेकीके कुटे हुए चावल तथा चक्कीके पिसे हुए आटेका ही व्यवहार हो। चावलोंको अधिक छाँटकर सफेद न बनाया जाय। बाज़ारकी चटपटी चीज़ें, स्वास्थ्यको सबसे अधिक हानि पहुँचाती हैं।

२—मनुष्यका स्वाभाविक भोजन

सब प्रकारके सुस्वादु फल—सूखे फल उतने लाभदायक नहीं होते, जितने ताज़े डालके पके फल। क्योंकि, यह सूर्य्यरश्मियोंका ही प्रभाव होता है, जिससे फलोंमें जीवन-तत्त्व सञ्चरित होते हैं। ये आवश्यक तत्त्व फलोंके सूख जाने पर क्षीण होजाते हैं। यही कारण है कि तरह-तरहके सूखे मेवे-गरिष्ठ तथा गुरुपाक होते हैं, और गर्मी

पैदा करते हैं। कृत्रिमरूपसे भूसा इत्यादिमें पकाया हुआ फल कदापि ग्रहण न करना चाहिये। अधिक पके हुए फल भी गुणकारी नहीं होते, ऐसे फलोंका तो सड़न आरम्भ हुआ रहता है। कठेस फल उत्तम होते हैं। जो फल छिलकों समेत खाया जा सके, उसको छिलकों सहित खानेसे ही पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सकता है, जैसे बेर अमरूद और सेव आदि। और जिन फलोंके छिलके ज़रा सख़्त हों, उनके छिलकोंके नीचेवाले गूदेको, दाँतोंसे खरोचकर अवश्य खाया जाय, क्योंकि फलोंका पौष्टिक तत्त्व, विशेष कर Natural Salt और Protein उनके छिलकोंके ठीक नीचे सञ्चित रहता है। आम, बेल, केला आदि ऐसे ही फलोंके दृष्टान्त हैं। फलोंको भूनकर खाना तो मिट्टीके बराबर है।

शाक-सब्जी—हमारे दैनिक भोजनका विशेष भाग तरकारी और सब्ज़ियां होनी चाहियें। हरे साग स्वास्थ्यके लिये बहुत ही उपयोगी-पदार्थ हैं। उनमें प्रायः सभी पौष्टिक तत्त्व मौजूद होते हैं, जो शरीरको शुद्ध और स्वस्थ रखने के लिये आवश्यक हैं। हरे साग रक्तशोधक तथा भोजनको पचानेमें सहायता देते हैं, और कोष्ठ-बद्धतासे रक्षा करते हैं। पालक, चौलाई आदि सागोंमें अपेक्षाकृत सभी पौष्टिक द्रव्य रहते हैं।

तरकारियोंके खानेसे पाचन-शक्ति तीव्र होती है और शरीर आरोग्य तथा पुष्ट बनता है। जो तरकारी वा सब्ज़ी कच्ची खायी जा सकती है, जैसे भिण्डी, चनेका साग आदि, वह पकानेकी अपेक्षा कच्चेपनमें ही, अधिक लाभप्रद होती है। मसालोंके संयोगसे तरकारियोंका सारा गुणनष्ट-भ्रष्ट हो जाता है, और ऐसी तरकारियां, गुणके स्थानपर अवगुणही अधिक करती हैं। मसालोंसे रक्त दूषित होजाता है जिससे भांति-भांतिके रोगोंका प्रादुर्भाव होता है। तरकारियोंका प्राकृतिक मिठास विषतुल्य चरपरे मसालोंके योगसे एक बारगी ही मारा जाता है सब्ज़ी वा तरकारी ताज़ी ही खानी चाहिये। उनको अधिक मल-मल कर कभी न धोना चाहिये, ऐसा करने से उनके ऊपर रेणुसदृश एक जमा हुआ जीवन-द्रव्य, पानीके साथ बह जाता है जो स्वास्थ्यके लिये एक अत्यन्त आवश्यक वस्तु होता है। तरकारियोंको सदैव काटनेसे पहले धोवै, काटकर फिर धोने से, उसमेंका बहुतसा पौष्टिक रस पानीके साथ बह जाता है। जिन तरकारियोंका छिलका अधिक कड़ा न हो, उनको छिलके समेत बनाना चाहिये; और जिनका छिलका अधिक कड़ा हो, उनको सतर्कतासे छीलना चाहिये जिसमें उनके ऊपरका केवल एक अत्यंत पतला छिलका ही उतर सके शेष भाग ज्यों का त्यों बचा रहे। तरकारी सिझानेमें जो जल ऊपरसे डाला जाय, उसका एक बूंद भी नष्ट न किया जाय, बल्कि उसको उसीमे सुखादे अन्यथा तरकारीका एक बहुत बड़ा गुणकारी भाग व्यर्थ नष्ट हो जायगा।

सब्ज़ियोंमें धातुक्षारका अंश पर्याप्त होनेके कारण नमक न दे तो अति उत्तम है; और यदि दे, तो केवल नाममात्रको ही, क्योंकि नमक, Inorganic तथा drug-category में होनेके कारण स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। तेलसे तरकारियां न छौंकनी चाहिये। तेल लगानेकी वस्तु हैं, खानेकी नहीं। इस कार्य्यके लिये तनिकसा घी काममें लाया जा सकता है। मिर्चा, हींग आदि तो खानेकी बस्तुएँ ही नहीं है, इसलिये उनका ज़िक्र ही इस स्थलपर व्यर्थ है।

कंद-मूल—कंद-मूल भी मनुष्यके स्वाभाविक भोजन हैं, किन्तु ये उतने लाभदायक नहीं होते, जितने फल और सब्जियाँ, क्योंकि इनमें जीवन-तत्त्व कम मात्रामें पाये जाते हैं।

३–सामयिक खाद्य-द्रव्योंकी उपयोगिता

भिन्न-भिन्न ऋतुमें उत्पन्न होनेवाले साग-सब्जी, फलदि तथा अन्न उसी-उसी ऋतुमें सेवन किये जानेसे अधिक फल प्रद सिद्ध होते हैं। सालमें बारहों महीने आम मिला करे, यह शौकीनोंके चोंचले हैं। हमारे खाद्य वस्तुओंका ऋतुओं से घनिष्ट सम्बन्ध है। जिस ऋतुमें जो रोग उत्पन्न हो सकता है उस रोगकी अव्यर्थ औषधि उसी ऋतुमें प्रकृति की दूरदृष्टि उत्पन्न कर दिया करती है। 'लू'के ज़मानेमें कच्चा आम और प्याज, ये दोनों वस्तुऐं 'लू'की रामबाण-ओषधियां हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यदि ऋतु अनुसार खाद्य-द्रव्योंका व्यवहार किया जाय तो मनुष्यका आयुर्मान १०० वर्ष जो हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें लिखा है वह हमें अवश्य प्राप्त हो और हम सदा निरोग भी बने रहें। मौसिमी फलादि केवल आस्वादनके लिये ही नहीं होते,

अपितु उनके अन्य उपयोग भी हैं। खाद्य वस्तुओंमें आस्वादनका होना तो केवल वस्तुविशेषकी ओर मानवजातिको प्रवृत्ति दिलाना ही एकमात्र उद्देश्य होता है, विशेष लाभ तो उसके प्राकृतिक रूपसे ऋतु अनुसार ग्रहण करनेहीमें है।

४—नाज, बीजरूपमें खाना अस्वाभाविक है

यदि कहा जाय कि जौ, गेहूं, मटर, चना, अरहर आदि उनके हरे किन्तु परिपक्वावस्थामें खाना हितकर है, और बीजरूपमें खाना अस्वाभाविक है तो एक अटपटी सी बात मालूम होगी, किन्तु है यह कठोर सत्य।

प्रसिद्ध प्रकृति-चिकित्सक डा० के० एल० शर्मा की राय है कि—

Grains and milk are not our primary foods but useful substitutes. Grains are intended by nature to serve as seed for new plants, they are food in the early stage of their growth, but cease to be so when fully matured as seed ; they become food again when they are sprouted,

यह असत्य नहीं है कि आजकल जिस रूपमें अन्नोंका व्यवहार खाद्य वस्तुओंमें हो रहा है, वह उसका विकृत रूप है। ऊपर बताया जा चुका है कि मनुष्यका मुख्य भोजन, फल, फूल, शाक और तरकारियाँ ही हैं। यहाँपर फलका अर्थ केवल आम, अमरूद और नाशपाती ही नहीं है, अपितु जौ, गेहूं, चना, मटरकी कलियोंको भी उन्हींके अन्तर्गत समझना चाहिये।

उद्भिज्ज संसारका नियम है कि बीज धरतीसे अङ्कुरित होकर वृक्षका रूप धारण करता है, तत्पश्चात् उसमें फूल, तब फल लगता है, और अन्तमें वही फल परिपक्वताकी सीमा लाँघकर, फिर भूपतित होकर अपने असली बीजरूपमें परिणत हो जाता है। यही क्रम सदा-सर्वदा, अनवरत रूपसे चलता रहता है। इस क्रम-विकासमें, जबसे बीज उगता है और जबतक उसका फल फिर भू-पतित नहीं हो जाता, तभीतक, मनुष्यों को, प्रकृति अधिकार देती है, कि वे उस उद्भिज्ज पदार्थको चाहे सागके रूपमें वा पुष्पके रूपमें अथवा फलके रूपमें अपने जीवन निर्वाहार्थ उपयोग करें। परन्तु जब फल भूमिपर गिर गया और उसका सड़ना आरम्भ होगया, तब तो वह फल, फिर फल न रहा। वह तो भूमिपर गिरकर इस बातका संकेत करता है कि वह अब अपनी प्रथम स्थितिको पहुंच गया अर्थात् वह अब बीज है, खाद्य-सामग्री नहीं। तात्पर्य यह कि सभी अन्न, जबतक खेतमें भूपतित नहीं हुए, और फल जबतक पककर पेड़से गिरे नहीं, तभीतक उनसे वास्तविक खाद्य सामग्री प्राप्त करना प्राकृतिक तथा स्वाभाविक है, क्योंकि उस अवस्थामें उन अन्नों और फलोंमें जीवन सम्बन्धी सभी उपयुक्त गुण पूर्ण रूपसे विद्यमान रहते हैं। किन्तु वे ही जब सूखकर पृथ्वीपर गिर गये, तब यदि हम उनको अपने खाने पकानेके काममें लाते हैं, तो यह हमारी कोरी ज़बरदस्ती है, क्योंकि प्रकृति तो उनसे अब बीजका काम लेना चाहती है, और हम उनको अपनी खाद्य सामग्री बनाना चाहते हैं। इस सङ्घर्षका फल यह होता है कि हमारी यह ज़बर्दस्ती अप्राकृतिक सिद्ध होती है और हम इस प्रकारके आहारसे पूरा-पूरा लाभ नहीं उठा पाते। उदाहरणके लिए मटरकी फलियोंको ही लेलीजिये। जबतक मटरकी फलियाँ हरी होती है, तबतक हम उनके दानोंको पूरा खा सकते हैं, अर्थात् मटरकी खोखली सहित खाते हैं, किन्तु वेही दाने जब सूख कर बीज बन जाते हैं, तो हम उनको उसकी खोखली सहित खाना पसंद नहीं करते, और फलतः मटरके खानेका पूरा-पूरा लाभ प्राप्त नहीं होता।

इतिहासके देखनेसे भी पता चलता है कि प्राचीन कालमें लोग फलोंपर अधिक जीवन निर्वाह करते थे, और फलस्वरूप बाग बगीचोंकी बहुतायत भी थी। अशोकवाटिकामें जब हनुमानजीने जगन्माता सीतासे कहा—

> "सुनिय मातु मोहिं अतिसय भूखा।
> लागि देखि सुन्दर फल रूखा॥"

तो महाराणीजीने उनको भी मधुर फल ही खानेकी आज्ञा दी थी। उसके बाद भी जब रामकाज करने उपरान्त श्री हनुमानजी अङ्गदादि सहित रघुनाथजीके पास चलने लगे······

"तब मधुबन भीतर सब आए।
अङ्गद सहित मधुर फल खाए॥"

राजा सुग्रीवने वहाँपर भी मधुर फलकी जगहपर ज्योनारकी व्यवस्था नहीं की थी। इससे पहले जब महाराजा रामचंद्रजी भक्तिस्वरूपा भीलनीकी पर्णकुटीमें पहुंचे तो उसने आजकलकी भाँति अपने परमाराध्यका स्वागत दाल भात अचार चटनी आदिसे नहीं की, अपितु सुमधुर ताजे फलोंको ही सर्वोत्तम खाद्य सामग्री समझकर, उसीको महाराजके सम्मुख प्रेम सहित लाकर रखा इन सब उद्धरणोंसे पता चलता है कि उस समयके खाद्य पदार्थोंमें फलोंकी ही प्रधानता थी. और फलोंको ही मुख्य आहार समझा जाता था। यदि रामलीलाको संसारिक दृष्टिसे देखा जाय तो हम यह कह सकते हैं कि यह फलाहारका ही प्रभाव था कि निरामिष भोजी अङ्गदका पैर आमिष-भोजी महाभट तथा त्रिलोक विजयी रावण तिलमात्र भी न हटा सका। इसके अतिरिक्त हमारे प्राचीन महर्षिगण; इस फलाहारके ही बलपर गहरेसे गहरे आध्यात्मिक तत्त्वोंको खोज निकालनेमें समर्थ हुए थे, जिनका आज सारा संसार ऋणीहै।

मामूली फल-फूलमें इतने गुण भरे पड़े हैं, भला इस कथित वैज्ञानिक युगमें हम काहे को विश्वास करने लगे। कतिपय वैज्ञानिकोंका तो ईश्वरकी सत्तामें ही विश्वास नहीं रहा, वे प्रकृतिसे कोसों दूर भी जा पड़े हैं किन्तु दम भरते हैं प्रकृतिके सच्चे सपूत होने का। लेखककी धारणा तो यह है कि जितना ही ये लोग उन्नतिका ढिंढोरा पीट रहे हैं, उतनाही अवनतिके अन्धकारतम खड्डकी ओर अग्रसर होते जारहे हैं। प्रसिद्ध विद्वान् 'होरिसमन'का कथन है—'संसारका अन्तिम मनुष्य अपने समस्त ज्ञान भण्डार से वही चीज़ प्राप्त करेगा, जिसका संसारका सबसे पहले मनुष्यने बिना किसी प्रकारके ज्ञानके उपभोग किया था" यह सर्वथा सत्य है।

५—अन्नोंको बीजरूपमें खाकर अधिकसे अधिक लाभ कैसे उठाया जाय?

बीजोंका खाद्यरूपमें व्यवहार अप्राकृतिक है. यह एक सिद्धान्त है। किन्तु लोक-व्यवहारकी बात इससे सर्वथा विपरीत है, क्योंकि आजकल हमारा प्रधान भोजन अन्न हो है, फलादि तो गौण गिने जाते हैं, इसलिए हमको, यथासम्भव इसी आहारमें सुधार करना पड़ेगा।

हज़ारों वर्षोंसे हम अन्नोंको सूखे बीजके रूपमें खानेके आदी होगये हैं। और आजकल उस नवीन सभ्यताके चक्करमें पड़कर, मनुष्यसमाज बहुत कुछ प्रकृतिको भूल चुका है और भूलता जा रहा है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि आज हम यह भी नहीं जानते कि हमारा प्रधान भोजन क्या है। दुःखकी बात तो यह है कि आजकल कृत्रिमता और नफ़ासतके साथ चटोरपनमें हम इतना डूबे हुए हैं कि अच्छेसे-अच्छे स्वास्थ्यवर्द्धक खाद्यसे उसको अप्राकृतिक ढंगसे खानेके कारण, हम लाभके बदले हानि उठा रहे हैं। अभी कलकी बात है, बनारस और कलकत्तेमें, विशेषकर बंगाली समाजमें, 'बेरी बेरी' एक नयी बीमारी फूट पड़ी, जो चावलोंको प्राकृतिक ढंगसे न व्यवहार करने का ही कुपरिणाम था।

भोजनपर मनुष्यका स्वस्थ जीवन निर्भर है। इतनाही नहीं, प्रत्युत भोजनके ही आधारपर उसकी भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रकृतिका निर्माण होता है। इसलिये इस विषयमें हमको सदैव सतर्क रहना चाहिये। प्राकृतिक-तत्त्व-वेत्ताओंके कथनानुसार, हमारे शरीरको प्रौढ़ तथा स्वस्थ रखनेके लिये चार प्रकारके तत्त्वोंकी आवश्यकता पड़ती है:—

(१) रक्त बढ़ानेवाले तत्त्व (Protein)
(२) शक्कर पैदा करनेवाले तत्त्व (Starch)
(३) चर्बी बढ़ानेवाले तत्त्व (Fat)
(४) नमक या क्षार (Salt)

प्रकृतिने उपर्युक्त चारों प्रकारके तत्त्व, आवश्यकतानुसार, हमारे प्रत्येक खाद्य-पदार्थमें सञ्चित कर रखा है। किन्तु जब वह खाद्य-पदार्थ प्राकृतिक ढंगसे काममें लाया जायगा, तभी उसमेंके सञ्चित तत्त्व, शरीरके लिये गुणकारी सिद्ध होंगे, अन्यथा हानिकी ही अधिक सम्भावना है। किसी भी प्राकृतिक खाद्यका जीवन तत्त्व चार प्रकारसे नष्ट हो जाता है—

(१) **अधूरी वस्तु ग्रहण करनेसे,** अर्थात् अनाजों को उनकी भूसी समेत न खानेसे। यहाँपर प्रश्न हो सकता है कि बहुतसे अन्न ऐसे हैं, जो छिलके समेत खाये नहीं जा सकते, जैसे, जौ, अरहर, मटर आदि। जिसका उत्तर पहले

ही दिया जा चुका है कि यह मानव समाजकी ज़बर्दस्ती है जो बीजोंको अपनी खाद्य सामग्री बनाता है, अब यदि वे बीज उससे पूरा खाये नहीं जाते, तो उन बीजोंका क्या कसूर। अस्तु।

यदि उन सूखे बीजोंसे ही पूरा-पूरा लाभ उठाना अभिष्ट है, तो उनको, छिलकों समेत खानाही पड़ेगा। अन्यथा अधूरा अन्न खानेसे हानि अवश्यम्भावी है। लेखक की राय तो है कि ऐसी स्थितिमें वे ही सूखे अन्न व्यवहारमें लाये जायँ, जो पूरा खाये जासकें, जैसे मकई, बजड़ी तथा गेहूं का चोकर समेत आटा, और उड़द मूँग, मसूर, चना आदि की दालें आदि।

प्राकृतिक तत्ववेत्तागण, अन्नोंकी भूसी निकालनेके पक्षमें क्यों नहीं हैं, इसका एक प्रबल कारण है, अर्थात् अन्नोंके छिलकोंके नीचेके भागमेंही Protein पाया जाता है, जिससे रक्तकी वृद्धि होती है, इसलिए अनाजोंकी भूसी में जितनी Protein होती है, उतनी उनके आटे वा दालमें नहीं होती, जिसका ज्ञान न होनेके कारण, लोग भूसी छान कर फेंक देते हैं, जिससे अनाजोंका Protein वालाभाग मारा जाता है। इसलिये ग़ल्लेको पहले ही शोध करके तब पीसने को दिया जाय, ताकि बादमें, फिर छाननेकी आवश्यकता न पड़े।

अनाजोंकी भूसियों तथा तरकारीके छिलकोंका एक महत्वपूर्ण कार्य्य और है, जिसके बिना हमारा स्वास्थ्य कदापि ठीक नहीं रह सकता। ये छिलके या भूसियाँ पेटमें जाकर स्वयं नहीं पचतीं, बल्कि हमारे खाये हुए भोजनको पचानेमें मदद देती हैं। इतनाही नहीं, इनकी उपस्थिति, उत्तम रीतिसे पाचनके लिये नितान्त आवश्यक है।

डा० के० एल० शर्माने इस विषयपर अच्छा प्रकाश डाला है। वह लिखते हैं—

'There are two more food-essences, which have been found to be vital to health: Vitamines and Cellulose. ....Cellulose is the coarse, woody fibre, which is present in foods, serving as the frame-work on which the other essences hang, This is not digested in the food canal, but comes out the stools; for this reason it was supposed to have no foodvalue whatever, and that it was right to get rid of it, as far as possible. In fact, it is this woody fibre, which ensures the digestion of the digestible essences; without it, the food-substance would unite into compact masses, which the digestive juices cannot penetrate sufficiently, even if there be enough of such juices; except in the very rare case of thorough insatiation and abstemiousness in eating; food in its natural state—from which the cellulose in not removed—is held apart by the cellulose, so that the vital juices can penetrate it through and through. The fibrous part also helps free and normal bowel-movements. They give the needful bulk to the food-residues, so that the muscles of the bowel are able to act, This needed bulk connot be provided in the form of "nourishing" matter. Such matter would ferment or putrefy in the bowel and give serious trouble.

It should be remembered that a food, that is "whole", will give us all we need, if it is our natural and primary food.

(२) अन्नोंको पुराना करके खानेसे—अर्थात् एक सालका पैदा अन्न दूसरे साल, अथवा और पुराना करके खाना। यह प्रणाली भी प्रकृतिविरुद्ध है। हरसाल तो नया अन्न पैदा होता है, फिर बिला वजह अन्नोंको पुराना करके खानेके क्या मानी? नफ़ासत पसंद लोग कहते हैं, कि नया अन्न गर्मी उत्पन्न करता है, और क़ाबिज़ होता है। मेरी

समक्षमें इस कथनका अर्थ यह है कि नया अनाज जिन्न है, जिससे हमारी कमज़ोर अँतड़ियाँ जीत नहीं सकतीं, इसलिये उसको दूसरे तीसरे साल मुर्दा बनाकर खाते हैं। क्यों? है न यह अर्थ ठीक?

वास्तवमें, पुराने अन्नोंमें, उक्त चार तत्त्वोंमेंसे कोई भी तत्त्व, उतनी मात्रामें नहीं पाया जाता, जितनी नये अन्नोंमें। इसलिये यदि हमें भोजनसे पूरा-पूरा लाभ उठाना अभीष्ट है, तो सालका साल नया अन्न ही ग्रहण करना उचित है। और यदि हमारा शरीर नया अन्न ग्रहण करनेसे इन्कार करता है अथवा रोगी बनजाता है तो धैर्य्यके साथ, धीरे-धीरे उसको इस नियमका आदी बनाना चाहिये, अन्यथा मुर्दे अन्नोंको खानेसे लाभही क्या? और हानि तो प्रत्यक्ष ही है, कि हमारी जीवनी शक्ति इतनी बलहीन होगई है कि नये अन्नोंको पचानेमें हम अपनेको सर्वथा असमर्थ पाते हैं।

(३) **अन्नोंको प्राकृतिक रूपमें न खानेसे**—अर्थात् उनमें अधिक नमक, मसाला, खटाई तिताई, मिठाई आदि का समावेश कर देनेसे उनकी पचनेकी शक्ति क्षीण होजाती है, इसलिये वे उतनी जीवनी शक्ति प्रदान नहीं कर सकते, जितनी कि अपनी प्राकृतिक अवस्थामें करते। अतएव यदि हम अन्नोंका पूरा-पूरा गुण ग्रहण करना चाहते हैं, तो हमको चटोरपनेको छोड़देना होगा।

(४) **अग्निपर पकानेसे**—महात्मा गांधीजीने अपने पत्र 'नवजीवन'में एकबार लिखा था कि "बन-पक्व अनाज खाकर अगर जीवन निर्वाह किया जासके, तो कृत्रिम अग्निके संसर्गसे तय्यार की गयी खुराक न ले, अथवा बहुत थोड़ी ले। फल और बहुतसी हरी भाजी, जो बिना राँधे भी खायी जा सकती है, खानी चाहिये। लेकिन कच्ची हरी भाजीकी खुराकका परिमाण बहुत थोड़ा रखना चाहिये। दो तीन तोला कच्ची हरी भाजीसे काफी पोषण मिल जाता है। मिठाई, खटाई और मसालोंका एकदम त्याग करना चाहिये।"

वास्तवमें, आदर्श, सात्विक और सर्वगुण सम्पन्न भोजन वही है जो बिना अग्निपर पकाये प्राप्त हो, क्योंकि प्राकृतिक सूर्य-रश्मियाँ हमारे खाद्य पदार्थको पकानेमें पूर्णसमर्थ हैं ही. फिर दोबारा पकानेका तात्पर्य ही क्या? किन्तु यदि भोजन बिना पकाये काम न चले तो उसको उतनाही पकाना चाहिये, जिसमें उसका जीवनतत्व सर्वथा नष्ट न होजाय। साथही साथ, जिस जलमें वह पकाया जाय, उस जलका एक बूँद भी नष्ट न किया जाय, बल्कि उसीमें जज़्ब कर दिया जाय, नहीं तो उसके आवश्यक जीवनतत्व व्यर्थ ही नष्ट होजायँगे, और केवल मिट्टी (सिठी) आपके थालमें परसकर आयेगी, जैसा लोग भूलके कारण, चावलोंका माड़ और भाजियोंका पानी फेंक दिया करते हैं। यह प्रथा अत्यन्त हानिकारक है।

सारांश यह कि, यद्यपि नाजका बीज-रूपमें ग्रहण करना अस्वाभाविक है, किन्तु हजारों वर्षोंसे हमलोग अस्वाभाविक भोजन करते चले आरहे हैं, अतएव कच्चे अन्नको उसके स्वाभाविक रूपमें हम नहीं चबा सकते, क्योंकि हमारा दाँत और मेदा अतिशय अशक्त होगया है। इसलिये जबतक वे बलवान न होजायँ, तबतक अन्नको नरम करके खाना चाहिये। हाँ, इतना अवश्य करना चाहिये कि जहाँ तक सम्भव हो, अन्नोंको उनकी प्राकृतिक दशामें ही ग्रहण किया जाय और विविध प्रकारके मसालोंका समावेश न करके उनको नष्ट होनेसे बचाया जाय।

सिलाईकी कल बनानेवाले

[श्री नवनिहालसिंह माथुर]

[शेषांश]

आइज़क मेरिट सिङ्गर
(Isaac Merrit Singer)

बोस्टनमें लेरो और ब्लोजेटने २ अक्टूबर १८४९ को एक मेशीनका पेटेण्ट लिया जिसमें प्रत्येक टांकेके लिये शटेल चक्करदार मार्गमें घूमा करती थी। होकी मशीनकी अपेक्षा यह मशीन कई बातोंमें अच्छ अवश्य थी, पर शटेलके चक्कर काटनेके कारण तागेमें ऐंठन पड़ जाया करती थी, और ऐसी मशीन देरतक नहीं चलायी जासकती थी। ओर्सन फेल्प्सकी दूकानमें ऐसी कई मशीनें मरम्मत के लिए आयीं और १८५०के अगस्त मासमें आइज़क मेरिट सिङ्गर नामक एक व्यक्तिकी दृष्टि इन मशीनोंपर गयी, यह व्यक्ति थोड़ेही दिनों पूर्व लकड़ीपर नक्काशी करनेवाली मशीन का पेटेण्ट ले चुका था सिंगरने लेरो और ब्लोजेट की उक्त मशीनकी आलोचना की। फेल्प्सके पूछनेपर उसने स्पष्ट कह दिया कि मशीन ऐसी होनी चाहिए जिसमें शटेल चक्कर न लगाया करे प्रत्युत सीधी रेखामें ही आगेपीछे दौड़े, और जिसमें सुई दायें-बायें न चले बल्कि ऊपर-नीचे चले। फेल्प्सने सिंगरको सुनाया कि यदि तुम ऐसी मशीन बना सको तो तुम्हें लकड़ीपर नक्काशी करने वाली मशीनकी अपेक्षा अधिक लाभ होगा। पर न्यूयार्कके कारखानेमें आग लग जानेके कारण सिंगरकी बड़ी हानि हो चुकी थी और उसके पास सिलाईवाली मशीन तैयार करने के लिये धन ही न था। पर तो भी रातभर वह सोचता रहा और दूसरे ही दिन उसने अपनी मशीनकी एक योजना फेल्प्स और उसके कारीगर ज़ीबरके सामने प्रस्तुत की। इन दोनोंने यह आयोजना स्वीकार की और ज़ीबरने इस कार्य्य के लिये ४० डालर देनेको कहा। फेल्प्सने अपने कारखानेमें सब सहायता देनेका वचन दिया और यह निश्चय रहा कि दोनोंका इसमें बराबर बराबर भाग होगा, सिंगरने दिनरात अति परिश्रमसे काम किया केवल ३-४ घंटे सोता और बहुधा दिनमें एक ही बार खाता। ११ दिनमें मशीन तैयार हुई।

रातको ९ बजे मशीनके अर्जे-पुर्जे जोड़कर सीना आरंभ करना चाहा पर मशीनने टांके न भरे। लोग एक-एक कर निराश होने लगे, साथके सब चले गये। अकेला ज़ीबर और सिंगर रहगया। ज़ीबरने दीपक थामा और सिंगर लगा काममें पर फिर भी मशीन न चली। निराश होकर दोनों होटेलमें खानेको चल दिये, वहीं बात करते-करते सिंगरकी समझमें एकदम यह आया कि सुईके तागेका तनाव ठीक करनेसे काम चल निकलेगा। बस लौटकर यह कमी पूरी की गयी। और मशीनने पांच सुन्दर टांके सी ही तो दिये। ज़ीबर और सिंगर दोनोंको सन्तोष हुआ। दूसरे दिन ३ बजे मशीन पूरी करली गयी और पेटेण्टके लिये न्यूयार्क लायी गयी।

पर मशीनके प्रचारमें बड़ी बाधायें उपस्थित हुईं। जितनी मशीनोंके पेटेण्ट अबतक लिये गये थे वे सब निकम्मी सिद्ध हो चुकी थीं और इन पेटेण्टोंके विरुद्ध जनताका अविश्वास बढ़ गया था। सिंगरकी मशीनके प्रति भी इसीलिये किसीको विश्वास न हुआ।

ब्लोजेट स्वयं दर्जी था, और उसने सिंगरसे साफ-साफ कह दिया कि सीनेके काममें तुम्हारी अपेक्षा मुझे अधिक अनुभव है, तुम ऐसी मशीनोंके बनानेका प्रयास करना छोड़ दो। धनका सिंगरके पास अभाव था ही, फिर भी इसने साहस किया और ज़ीबर एवं फेल्प्सके सहयोगमें मित्रोंसे कुछ सौ डालर कर्ज़ लेकर सिंगरने आइ. एम. सिंगर एण्ड कम्पनी नामक संस्था स्थापित की।

इसी समय एक और आफ़त आयी। इलियास होने सिंगरके ऊपर अपने पेटेण्टकी जालसाजीका मुक़दमा, चलानेकी धमकी दी और हरजानेके २५,००० डालर मांगे। भला इतना रुपया ग़रीब सिंगरके पास कहां था जो देता, और वह मशीनका काम भी बन्द नहीं करना चाहता था। इस विपत्तिमें न्यूयार्कके प्रसिद्ध वकील और धनाढ्य एडवर्ड क्लार्कने सिंगरको इस आफ़तसे साफ़-साफ़ बचा लिया। इसके उपलक्षमें सिंगर कंपनीका वह बिना धन दिये हुए

ही बराबरका साझीदार बन गया। इस समय ज़ीबर और फेल्सको रुपया अदा करके इस कंपनीके हिस्सेसे मुक्त कर दिया गया था।

इसी समय और भी सिलाईकी मशीनें प्रचलित हो गयी थीं पर होवे सबपर दावा करके उनको न चलने दिया। सिंगर कंपनीने बहुत दिनोंतक होवेकी बात न मानी पर अन्तमें न्यायालयके निश्चयके अनुसार इसे १५००० डालर और बादको बिक्रीकी रायल्टी देनी पड़ी।

सिंगर और क्लार्कका सहयोग १८६३तक रहा। इसके बाद संस्था बड़ी हो गयी और सिंगरने भी इससे विच्छेद कर लिया। नयी कंपनीके स्टाकका ४०% उसने लेलिया और अमरीका छोड़कर यूरोपमें आकर बसा। यहीं १२ वर्ष वह और जीवित रहा और इस समय उसकी संपत्ति १ करोड़ ३० लाख डालरकी होगयी थी।

सिंगरकी असली मशीनका माडेल नेशनल म्यूजियममें रखा हुआ है। सिंगरकी मशीन वस्तुतः पहली मशीन थी जिसने सिलाईमें सफलता प्राप्त की। आजकल घरघरमें सिंगर मशीनका नाम प्रचलित है चाहे वह मशीन सिंगरकी असली मशीन हो या न हो।

एलेन बेन्जामिन विलसन

(Allen Benjamin Wilson)

सिलाईकी मशीनके अविष्कारकोंमें सबसे अधिक मौलिक मस्तिष्कवाला व्यक्ति एलेन बेञ्जामिन विलसन था। इसको होवेकी मशीनका कुछ भी पता न था तब भी इसने अपने आप १८४९में ही अपनी सुन्दर मशीन तैयार करली थी। सन् १८४७में जब वह केवल २० वर्षका था उसका विचार सिलाईकी मशीन बनानेके लिये उठा। यह उस समय एड्रियनमें बढ़ईगीरीका काम करता था, यह आरंभसे ही निर्धन था और बड़ी कठिनतासे रहने और खानेका खर्च चला पाता था। इसी साल वह बीमारीके कारण और भी व्यथित हो गया था।

विलसनने पहले तो सुई और शटलवाली मशीनकी आयोजना तैयार की। इसकी शटलमें होवे और सिंगरके समान एकही सिरेपर कोना नहीं था प्रत्युत इसने दोनों सिरे ही नोकीले बनाये, और यह शटल एक वक्र मार्गमें घूमती थी, और आगे आने और पीछे जाने दोनोंमें ही एक-एक टांका बन जाता था। यह इस मशीनका पेटेण्ट लेने जाही रहा था कि उसके ऐसा करनेसे पूर्व ही दूसरी मशीनवालोंने जो दो नोकोंवाली शटलोंका प्रयोग करते थे इसपर जालसाजीका मुक़द्दमा चला दिया। मुक़द्दमेंके लिए उसके पास रुपया तो था ही नहीं अतः इसने समझौता करना ही उचित समझा। इसी समय विलसनकी जान-पहचान धातुके एक व्यापारी नेथेनियल व्हीलरसे हो गयी, और उसने विलसनको ५०० मशीनें तैयार करनेका ठेका दिया। यही नहीं, व्हीलर ने विलसनको इस मशीनमें और सुधार करनेका आदेश दिया।

इस सुधारमें ही विलसनको एक मजेदार बात सूझ गयी उसने शटलके स्थान पर घूमनेवाली हुककी आयोजना की। व्हीलर इस नयी आयोजनापर बहुत ही सन्तुष्ट हुआ और उसने विलसनकी शटल वाली मशीनका काम और लोगोंके लिए ही छोड़ दिया बादको "व्हीलर एण्ड विलसन मेनुफैक्चरिंग कंपनी" स्थापित की गयी।

विलसनने अब अपनी सम्पूर्ण शक्ति हुकके सुधार करनेमें लगा दी और अन्ततोगत्वा १२ अगस्त १८५१को उसने इस मशीनका एक दूसरा पेटेण्ट लिया। यह मनोरञ्जक बात है कि यह वही तारीख़ है जिस दिन सिंगरको अपनी मशीन के पहले पेटेण्टकी आज्ञा मिली थी। वस्तुतः सिंगरकी मशीनके साथ व्हीलर और विलसनकी मशीनकी बहुत दिनों घोर प्रतियोगिता रही।

अपनी पत्नीके सहयोगसे विलसनने अपनी मशीन इतनी अच्छी करली थी कि इससे कमीजोंके सीनेका काम बड़ी आसानीसे अति सुन्दर होने लगा। लोगोंकी इस मशीन पर श्रद्धा बढ़ने लगी और बहुतसे दर्जी इसका प्रयोग करनेके लिए अग्रसर हुए।

१९ दिसम्बर १८५४के पेटेण्टमें विलसनने एक और सुधार '4-motion feed' सम्बन्धी किया और इस प्रकार अब यह मशीन एक प्रकारसे पूर्ण होगयी। नेशनल म्यूज़ियम विलसनकी मशीनोंके नमूने रखे हुए हैं। १५ जून १८५२के पेटेण्टकी मशीनका बोझ केवल ३$\frac{1}{8}$ सेर है। उस समय सिंगर मशीनें २५ सेरके लगभग भारी होती थीं।

विलसनका स्वास्थ्य ख़राब हो चला था। १८५३से जबसे व्हीलर विलसन मेनुफैक्चरिंग कंपनी स्थापित होगयी

विलसनने अपनेको कामसे मुक्त करना चाहा। इस समय उसने रुई, फोटोग्राफी, गैसों आदि की मशीनोंपर भी काम किया।

विलसनकी बुद्धिमता और उसके कामके महत्वको देखते हुए यह कहना पड़ेगा कि वह अपने कौशलसे बहुत ही कम धन कमा सका। एक बार पेटेण्ट बेचकर उसे केवल २०० डालर मिले। बादको एक पुनःवर्षीय पेटेण्टमें १,३७,००० डालर उसे मिले।

जेम्स एडवर्ड एलेन गिब्स

(James Edward Allen Gibbs)

एकतारके टांकोंकी सिलाईका विचार वर्जीनियाके युवक कारीगरी गिब्सको सूझा। गिब्सका पिता ऊनकी धुनाई की मशीनोंको बनानेका काम करता था। किसी समाचारपत्रमें विज्ञापन देखकर १८५५ में सर्वप्रथम गिब्सका ध्यान सिंगर मशीनोंकी ओर गया। उसने सुईके साथ चलानेवाले एक शैफ्ट (driving shaft) की युक्ति सोची। पर बहुत दिनोंतक इस युक्तिसे काम न लिया गया। बादको १८५६ की जनवरीमें गिब्सने दर्जीकी एक दूकानमें सिंगर मशीन देखी, और इसे देखकर उसे बहुत कौतूहल हुआ। पर उसे सिंगर मशीन बहुत भारी और बेडौल मालूम पड़ी। अब गिब्स एक सस्ती और हलकी मशीन तैयार करनेमें लग गया। १८५६की अप्रेलतक उसने एक ढांचा तैयार कर लिया अब उसे पेटेण्ट लेनेकी सूझी, और वह फिलाडेल-फिया आया। यहाँ जेम्स विलकाक्सने उसे सहायता दी और २ जून १८५७को कई आवश्यक सुधारोंके उपरान्त एक पेटेण्ट लिया गया। गिब्सने इससे समुचित धन कमाया।

विलियम ओ. ग्रोवर

(Wiliam O. Grover)

सिलाईकी मशीनोंका उल्लेख करते समय ग्रोवरका नाम ले देना भी अनुचित न होगा। इसने उसी समय काम आरंभ किया था जिस समय विलसन और सिंगरने अपनी मशीनें निकाली थीं। ग्रोवरने दो तारी टांकोंवाली (double-locked chain stitch machine) मशीन निकाली थी। यह मशीन प्रयोगमें तो न आसकी पर अनेक प्रयोग करके ग्रोवरने यह दिखा अवश्य दिया कि यदि एक तागा नीचेसे जाय और दूसरा ऊपरसे तो दोनोंके संयोगसे टांके अवश्य सीये जा सकते हैं। ग्रोवरको १८५१ की ११ फरवरीको एक पेटेण्ट मिला।

चार कंपनियोंका सहयोग

यह पहले कहा जा चुका है कि कईबार होने सिंगर के ऊपर जालसाज़ीका दावा किया और अन्ततः न्यायालयने भी होके पक्षमें ही न्याय दिया। होको व्हीलर विलसन कंपनी, ग्रोवर एण्ड बेकर कंपनी और अन्य कंपनियोंपर भी विजय प्राप्त हुई। इस प्रकार होने कुछ कालतक अतुल धन कमाया। होकी विशेषता आंखदार सुईके प्रयोगमें थी पर फिर भी उसकी मशीनोंमें कई दोष थे। जब उसने इन दोषोंको दूर करनेका यत्न किया तो सिंगर आदि अन्य कंपनियोंकी बन पड़ी और इन्होंने दावा कर दिया। इस प्रकार परस्पर युद्ध चल पड़ा।

इसी अवसरपर ग्रोवर एण्ड बेकर कम्पनीके सभापति ओरलेण्डो बी. पौटरको यह बात सूझ पड़ी कि यदि सब कम्पनियां आपसमें सहयोग करलें और हरेकको अपनी अपनी विशेषताओंके लिए रायल्टी मिलती रहे तो सबका लाभ होगा अन्यथा सिलाईकी मशीनोंका व्यवसाय नहीं चल सकता है। पहले हो तो इस बातके लिए तैयार न था पर बादको वह भी राज़ी होगया। अब चार कम्पनियाँ जिन्होंने सहयोग कर लिया ये थीं—होकी कंपनी, सिंगर कंपनी, व्हीलर एण्ड विलसन कंपनी और ग्रोवर एण्ड बेकर कंपनी। इन सबको अलग अलग मुख्य पेटेण्ट लगभग एक ही समयमें प्राप्त हुए थे अर्थात् १२ नवम्बर १८५० से १२ अगस्त १८५१के बीचमें। बहुत दिनोंतक इस प्रकारके सहयोगमें काम चलता रहा।

होलडर या अँग्रेजी क़लम

[श्री श्यामनारायण कपूर, बी० एस्-सी०, कानपुर]

अब पुराने किलिक और सेंठेके क़लमोंका रिवाज बिलकुल उठ सा गया है। अंग्रेजी शिक्षाके साथ-ही-साथ देशमें अंग्रेजी क़लम या होलडरोंका भी रिवाज होगया है। हम हिन्दी, उर्दू तथा अन्य देशी भाषाओंके लिखने के लिये भी अब इन्हीं अंग्रेजी कलमोंको व्यवहारमें लाते हैं। भारतमें ये कलम प्रतिवर्ष लाखों और करोड़ों की तादादमें खपते हैं परन्तु इनके ठीक-ठीक आंकड़े अप्राप्य हैं। अबसे कुछ वर्ष पूर्वतक अधिकांश क़लम विदेशोंहीसे आते थे। इधर विदेशी आन्दोलनके प्रभाव से कलकत्ता और मद्रास आदि नगरोंमें दो एक कारखाने क़लम और पेंसिल बनानेके खुल गये हैं। परन्तु अभी ऐसे ही कई एक और कारखानोंकी सख़्त जरूरत है। इन क़लमोंके बनानेके लिये कच्चामेल देशमें प्रचुर मिल सकता है। लकड़ी और लोहा यही दो पदार्थ इनके बनानेके लिये चाहिये। इनकी देशमें कमी नहीं है। इन होलडरोंके कारखाने खोलनेके बारेमें पंजाब सरकारसे इंडस्ट्रीज़ विभागकी ओरसे गतवर्ष एक बुलेटिन प्रकाशित हुआ था। 'विज्ञान' के पाठकों की जानकारीके लिये उसका सारांश नीचे दिया जाता है-

कच्चामाल

'पंजाबके जंगलोंमें अच्छेसे अच्छे प्रकारकी लकड़ी सुलभ है। देवदारु, केला, शीशम, शहतूत और बांसकी लकड़ियांको जर्मनी भेजकर इस बातकी जांच करायी गयी थी कि उनसे क़लम बन सकते हैं या नहीं। जर्मनीके प्रयोगोंसे मालूम हुआ है कि बांसके अलावा, उपरोक्त सभी लकड़ियां क़लम बनानेके काममें लायी जा सकती हैं। कलमोंमें जो धातुका अंश होता है वह अधिकांश टीन और लोहेका होता है। ये दोनों चीजें टाटाके लोहेके कारखानेसे सहूलियतसे मिल सकती हैं।

बनानेकी विधि

क़लम बनानेके लिये पहिले लकड़ीके तख्तोंको काटकर छड़ें बना ली जाती हैं। इन छड़ोंको काट कर क़लमकी शकलमें खराद लिया जाता है। बादमें उनके ऊपर रंग और रोगन लगाया जाता है। रंग रोगन से क़लम, चमकीले, टिकाऊ और खूबसूरत हो जाते हैं। धातुके भाग तैय्यार करनेके लिये दो तरहकी मशीनों की जरूरत पड़ती है। एकसे लोहे और टीनकी चादरें काटी जाती हैं और दूसरेसे उन टुकड़ोंको गोल बनाया जाता है। इन हिस्सोंके तैयार होजानेपर उन्हें हाथसे हेन्डिलपर लगा दिया जाता है।

मशीनें

प्रतिदिन ५० ग्रोस (७२००) क़लम बनानेके लिये निम्नलिखित मशीनों की ज़रूरत होगी—

१. तख़्तोंके छोटे टुकड़े करने वाला आरा ४९०)
२. ग्रूविंग और शेपिंग मशीन १०२६।।=)८पाई
(Grooving & Shaping)
३. औज़ार तेज़ करनेवाली मशीन २६१।-)४पाई
४. कलमोंकी नोक बनानेवाली मेशीन ७०००)
५. होलडरोंमें छेद करनेवाली मशीन ४९०)
६. एक टेनन कटर (उपरोक्त मशीनमें काम आयगा) ४८।।≡)।।
७. क़लमोंको गोल करनेवाली मशीन ४२)

८. पालिश करनेवाली स्टेण्ड २४२॥=)८पाई
९. कलमोंको पालिशमें डुबानेकी सामिग्री १४०)
१०. एक डिबोनेवाला तख्ता १३≡)।
(Dipping-Board)
११. कलमोंपर मोहर लगानेवाली मशीन ३०३।-)४.
१२. धातुके पत्तर काटनेवाली मशीन ५५५।-)४.
१३. पत्तरोंको गोल करने और बीचमें छेद—
करनेवाली हाथकी मशीन ११५२॥)१०पाई
१४. दूसरा सामान (फुटकर) ३३५।≡)४पाई
योग ५७९९।)।

उपरोक्त मशीनोंके चलानेके लिये
६ हार्स पावरका मोटर ६००)
टेक्स बीमा आदि ५० % २८९९॥=)
योग ९२९८॥=)।

इमारत

उपरोक्त कारखानेके लिये ४० लंबी और २५ फीट चौड़ी इमारतकी ज़रूरत होगी इसके बनवानेमें करीब क़रीब ४५००) खर्च होगा।

आयव्ययका लेखा

व्यय (२६ दिन प्रतिमास)

१. १,०८,२०० होलडरोंके लिये कच्चा माल
देवदारकी लकड़ी १८२)
रंग और रोगन ४०७)
धातुके भाग १५६)
योग ७४५)
२. मजदूरी ६१९)
३. विद्युत शक्ति [बनानेकी लागतपर] १६५)
४. किराया, चुँगी, टैक्स २% के हिसाबसे ४४)
५. मरम्मत (मशीन) ५०)
६. मशीनकी घिसन (Depreciation)
१०% प्रतिवर्ष ७८)
७. मकानकी घिसन (Depreciation)
२% प्रतिवर्ष ८)
८. पेकिंग २५०)
९. अन्य २५०)
आय योग २२१९)

५% टूटफूटका ख्याल रखते हुए प्रतिमास १७७-८४० = १२३५ ग्रोस क़लम तैयार होंगे। कमीशन, दलाली और दूसरे खर्चोंको निकालकर प्रति १४४ एक ग्रोस क़लमोंकी विक्रीसे २)की आय होगी। इस तरहसे एक मासमें २७७८ की आय होगी। अर्थात् २२१९) के लागतमें ५५९) की आय हुई। इस हिसाब से कुल लागत पर २५% प्रतिशत लाभ होगा।

प्रतिवर्ष तैयार होनेवाले मालका मूल्य ३३,३३६)
प्रतिवर्ष होनेवाला खर्च २६६६८)
लाभ प्रतिवर्ष ६७०८)

लकड़ी

२६ दिनके महीनेमें प्रतिमास १८२) रुपयेकी लकड़ी लगेगी। ५″ × १०″ × ९″ की देवदारुकी लकड़ीमें ५० ग्रोस कलम तैयार होंगे [इसमें लकड़ीकी चीड़फाड़ और कतरन आदिका ख्याल रक्खा गया है।] एक दिनमें ५० ग्रोस क़लम भी तैयार होंगे इसलिये महीनेमें ऐसी २६ लकड़ियोंकी ज़रूरत पड़ेगी।

५० ग्रोस क़लम बनानेवाली एक लकड़ीका मूल्य ७) होगा। २६ दिनमें ऐसी २६ लकड़ी खर्च होंगी और उनका मूल्य २६ × ७ = १८२) होगा।

रंग रोगन

१४४ क़लमोंमें रंग और रोगन लगानेमें ־) खर्च होंगे। इस तरह प्रतिदिन $\frac{५० \times ५}{१६}$ रुपये रंग रोगनमें लगेंगे। और महीनेमें $\frac{५ \times ५० \times २६}{१६}$ = ४०६)या४०७) लगेंगे।

धातुके भाग

एक होलडरमें १.७ या लगभग २ ग्राम वज़नकी धातु लगेगी ∵ ५० ग्रोस क़लमोंमें एक दिनमें २ × ५० × १४४ ग्राम या ३१.७ = ३२ पौंड धातु लगेगी। धातु के पत्तरका मूल्य = ≋) प्रति पौंड

∴ एक दिनमें ६)की धातु लग जायगी इस हिसाबसे एक महीने २६ × ६ = १५६,की धातु लगेगी।

मजूरी आदि (प्रतिमास)

१. एक विशेषज्ञ	१५०) प्रतिमास	१५०)
एक मिस्त्री	३०) ,,	३०)
१२ कारीगर	१) प्रति दिन	३१२)
४ कुली	८) प्रतिमास	३२)
१ क्लार्क	३०) प्रतिमास	३०)
१ स्टोर कीपर	३०) ,,	३०)
१ चौकीदार	१५) ,,	१५)
		६१९)

बिजली

६ हार्स पावरका मोटर प्रतिदिन $\frac{६ \times ७४६}{१०००}$ किलो वाट बिजली खर्च करेगा।

२६ दिनके महीनेमें $\frac{६ \times ७४६ \times २६ \times ८}{१०००}$ यूनिट खर्च होगा।

३ आने यूनिटके हिसाबसे $\frac{६ \times ७४६ \times २६ \times ३ \times ८}{१००० \times १६}$ रुपये खर्च होंगें।

= १,७४. ५६४ रुपये

= १७५)

अंधेरेमें उजाला

[श्रीजयदेवशर्मा विद्यालंकार मीमांसातीर्थ, अजमेर]

यह तो एक सांसारिक नियमचक्र है कि सूर्यके पीछे चन्द्रकी बारी और चन्द्रके पीछे सूर्यकी बारी आ जाती है। जब सूर्य छिपता है तब बहुत दूरके तारोंके रहते हुए भी प्रकाश नहीं होता परन्तु इस अन्धकारमें भी चतुर लोगोंने ऐसे ढंग निकाल रखे हैं जिनसे लोग रास्ता नहीं भटकते। वे बहुत कुछ ठीक ठीक दिशामें रास्ता तय कर जाते हैं। अब सूर्य रास्ता नहीं दिखा सकता तब रातको तारोंकी पंक्तियां भी रास्ता बतलाया करती हैं।

आका के व्यापक अन्धकारमय पर्देके पीछे दूर-दूरके चमकते तारे रास्ता न भटकनेमें गुरोंका काम देते हैं। हम आज ऐसेही विषयपर विचार करते हैं।

भारतवर्षमें विज्ञानका युग लुप्त होनेके बाद अन्धकार का युग भी आया। युरोपमें अब विज्ञान-प्रकाशका युग है। भारतमें विज्ञान-युग जब था तब था, उस समय तो यहांसे विमान बनानेकी ११ विधियोंका आविष्कार हो चुका था। विद्युज्जिह्वयन्त्रमें विद्युत्-विज्ञानके अपूर्व रहस्य वर्णित थे। रसायनकी पूर्वमें इतनी उन्नति हो चुकी थी। पूर्वके विद्वानोंने 'ने एक्वारेजिया' द्रवराजका अविष्कार कर लिया था। इस द्रवराजमें समस्त धातुएं जलमें खांडकी डलीके समान घुल जाती हैं। उस समय कृत्रिम सोना बनानेकी १८ प्रकारकी विधियोंका आविष्कार हो चुका था। उस समयके अनेक विज्ञान-विद्या सम्बन्धी चमत्कार संस्कृत साहित्यके अनेक स्थानोंमें लिखे पाये जाते हैं। यदि उन चमत्कारोंको हम कहीं सादी भाषामें लिखें या व्याख्यान वेदिसे सुनावें तो उस बातको झूठ या गप्प कहकर माना जावे।

प्राचीनकालमें वैज्ञानिकोंने पारेका ऐसा संस्कार किया था जिससे पारा बद्ध-गुटिकाके रूपमें होजाता था और उसको मुखमें रखनेसे ही मनुष्य आकाशमें उड़ सकता था। आप कहेंगे असम्भव! प्राचीन चरक-संहितामें एक सोमकल्प ऐसा लिखा है जिसके प्रयोगसे ६० वर्षकी बूढ़ी ठठरीको पुनः

१६ वर्षका नवयुवक बनाया जा सकता था। आप कहेंगे असम्भव !! राजा भोजने अपने ग्रन्थमें एक ऐसी यन्त्रमय पुतलीका आविष्कार लिखा है जो नाचे, गावे, दीपक लेकर चले, उसमें वह समय समयपर तेल डाले आदि अनेक कार्य करे। आप कहेंगे असम्भव !!!

परन्तु, इस वैज्ञानिक युगमें आप ग्रामोफोनके बॉक्समें चाबी भरकर रिकार्ड रखकर साउण्ड बॉक्समें सूई लगाकर धरदें, तो वह यन्त्र सुन्दर सुरीला गाना गाता है। आप उसे असम्भव नहीं कहते। अमरीकाके प्रसिद्ध वैज्ञानिकने अविष्कार कर दिया। उसके अनुसार दुनियाँभरकी आवाजों को रिकार्डकी गोल तख्तीमें भरा जा सकता है। उस तख्ती मेंसे रेलकी सीटी सुनाई दे सकती है, कुंजड़िनोंकी चख़-चख़, और दुनियाभरकी भाषाके गीत और मज़ाकिया वाद-विवाद वह तख्ती सब सुना सकती है। उसको असम्भव क्यों नहीं कहते ? क्योंकि वह आंखके सामने है। उसकी सचाईको सिद्ध करके बतलानेवाला विज्ञान अभी जीवित है। और प्राचीन बातें क्यों असम्भव हैं, क्योंकि उनको सत्य साबित करनेवाला विज्ञान अब जीवित नहीं है।

परन्तु अबके विज्ञानकी दृष्टिसे जब हम पुरातन बातों पर विचार करें तो सिंहासनबतीसीमें लिखी विक्रमादित्यके सिंहासनमें लगी बोलती पुतलियोंकी कथा भी क्योंकर असम्भव होसकती है। इस वैज्ञानिक युगमें छायाके चित्र दौड़ते हैं बातें करते हैं, खाली पर्दा गाता है। सिनेमाके पर्दे पर अनेकानेक कौतुक देखते हैं तो विक्रमके कालमें पुतलियोंने कथा सुनायी वा भैरवानन्द तान्त्रिक-माया-विद्याके चतुरने अद्भुत प्रपञ्च दिखलाया तो क्या असम्भव हुआ।

आप केवल ऐसा ही कह सकते हैं—अजी तब तो इन बातोंका अविष्कार ही नहीं हुआ था। क्या खूब ! यदि एडीसनका अविष्कार न था तो क्या विक्रमके राज्यमें कोई एडीसनके मुकाबलेका शिल्पशास्त्री होना सम्भव नहीं था। ज़रूर होगा। और उसने वह कौशल दिखाया होगा।

राजा भोजने अपनी पुस्तक समराङ्गण सूत्रधारके यन्त्रा-ध्यायमें लिखा है कि उस समयके शिल्पी ऐसे ऐसे पलंग बनाते थे जिनपर लेटते ही उनके पाये गाना और बजाना शुरू कर देते थे शिल्पियोंने ऐसे कंकण और आभूषण बनाये थे जिन्हें पहनकर विलास करते समय उनमेंसे सुरीली ध्वनियां निकलती थीं। जब ऐसे आविष्कार थे, तब क्या असम्भव था ? तब ३२ पुतली क्या चीज़ होती हैं ? वह तो एक नमूना था। अस्तु।

भारतवर्षकी हज़ारों ऐसी ईजादें और आविष्कार हैं जो अब मूर्खोंके राज्यमें, रूढ़ियोंकी अन्धेरी कोठड़ियोंमें, बन्द हैं। जनतामें खूब चल रही हैं। और भोली जनताको स्वार्थी धूर्त मनमाना छल रहे हैं।

भारतवर्षकी उन रूढ़ियोंमें छिपी बातोंको वैज्ञानिक लोगोंने अभी पोषित वा प्रमाणित नहीं किया, इसलिये वे रूढ़ियां बेवकूफ़ीकी बातें समझी जा रही हैं। सच है दूध कलारिनके हाथ शराब समझा जाता है। गड़ेरियेके गलेका हीरा काँच ही समझा जाता है। परन्तु लखपतिके गलेमें पीतल भी सोना और काँच भी हीरा समझा जाता है। इसलिये जबतक हमारी रूढ़िके कचरेमें बिखरे तत्व-रत्नोंकी परीक्षा वैज्ञानिक लोगोंकी कसौटीसे न की जायगी तबतक वे तथ्य-सत्य भी मूर्खताकी बातें समझी जावेंगी। जब वे प्रमाणित हो जावेंगी तब उनको लोग बड़े चावसे अपनावेंगे। और उनका ढंग ढंगका फैशन चल जावेगा। वेही बेवकूफ़ीकी बातें अक्लकी खूबियां कहाने लगेंगी। अब कुछ नमूने देखिये।

(१) आजकलके हमारे नौजवान-जगत्‌में कुर्सी और मेज़ का चलन बड़ी तेज़ीसे बढ़ा है। पैर लटकाकर बैठना अब अदबमें शुमार होगया है। ऐसी पतलूनें पहनना सभ्यता समझा जारहा है जिन्हें पहिनकर भला-आदमी चौकड़ी लगाकर भोजन भी नहीं कर सकता। उस पतलून और बूटकी शानमें हमारे नौजवान बहादुर घरू आचार-व्यवहारके गलेपर बूट रखकर मेज़पर ही थाली रखकर भोजन करलेना शान समझते हैं। इसी प्रकार उनकी संध्या भी उसी फैशन में कुर्सीपर पैर लटकाकर बैठनेसे हो शकती है। परन्तु चौकड़ी मारकर बैठनेको वे मनहूसपन समझते हैं।

परन्तु फैशन और विज्ञानमें बड़ा भेद है। हालमें ही "स्टेण्डर्ड लिटरेचर" योरोपके बड़े बड़े विद्वानोंसे लिखा जा रहा है। उस साहित्यमें एक चिकित्सासम्बन्धी बृहद् ग्रन्थ 'होमडाक्टर'के व्यायाम सम्बन्धी लेखमें एक चित्र देखने योग्य है। उस चित्रमें बीसियों बालक चौकड़ी मारकर जोड़ोंपर हाथ रखकर छाती, गर्दन, पेटकी व्यायाममें प्राणबलसे

कर रहे हैं। बलिहारी है हमारी मनहूस बुद्धिकी ! सन्ध्या प्राणायामके जिस आसनको हम पतलूनकी शानमें ठोकर मारते हैं योरोपके वैज्ञानिक उस आसनकी शिक्षा अपने बच्चोंको दे रहे हैं।

(२) अब मैं एक और मूर्खता, बेवकूफी और मनहूसी-लीलापर कुछ वैज्ञानिक प्रकाश डालता हूं। देहातमें या अशिक्षित जनतामें जिसमें शिक्षित समाजका वह महिला जगत् और महिला-बुद्धिवाला युवक जगत् भी सम्मिलित है जो वस्त्र-वेष-भूषा तो नागरिक रीतिसे पहनता है परन्तु वर्तमानके उच्च ग्रन्थाभ्याससे शून्य है, और अन्ध विश्वास की छायामें विश्राम लिया करता है। वे कष्ट साध्य रोगकी दशाओंमें झाड़ा फूंका, आदिका इलाज कराते हैं। हर मोहल्ले में आप देखियेगा कि रोगोंको झाड़नेवाले भोंपे रोगीपर अपना अपना प्रयोगकर रहे हैं। कोई तो हंसियेसे, कोई मोरछलसे झाड़ रहा है, कोई झाड़ूसे झाड़ता है, कोई मन्त्र पढ़कर जल पिलाता है, कोई चाकूकी नोकसे झाड़ता है। कोई नीमकी डालीसे झाड़ता है। इसीप्रकार कोई तावीज़ बाँधता है, कोई तार लपेटता है, कोई डोरा बाँधता है। कोई मणिया, कोई गलेमें बच्चोंके सीप, नखकौड़ी, सांपकी रीढ़के मोहरे आदि अनेक पदार्थ बाँधते हैं। वर्तमान शिक्षितों और तर्कवादीकी दृष्टिमें यह सब क्या है? बेवकूफ़ी, मूर्खता जहालत, पागलपन, या 'सुपरस्टिशन' (Superstition) अन्धविश्वास।

क्या पाठकोंसे मैं इस सब 'सुपर्स्टिशन'—वा अन्ध विश्वास वा 'मूर्खतामय-क्रियाकलाप'पर बुद्धिपूर्वक विचार करनेकी आशा करूं। यह आप बराबर सुनियेगा कि उनके इस प्रकारके मूर्खतापूर्ण चिकित्सा-उपचार आदिसे भी अनेकोंको लाभ होता देखा गया है। अनेकोंको नहीं भी होता है। अच्छेसे अच्छे डाक्टरोंके हाथोंसे रोगी फिसलकर मौतके मुंहमें जाता है। तब क्या डाक्टरकी चिकित्सा अवैज्ञानिक है? नहीं। प्रत्युत अनेकवार बड़ेबड़े डाक्टरकी ओषधि भी रोगीके लक्षणोंके विपरीत पड़ती है। अनेकों वार अनुकूल पड़ती है। जब विपरीत पड़ती है तो निश्चयसे वैद्य या डाक्टरकी ओषधी-चुनावमें भूल होती है। अर्थात् ओषधिका प्रयोग ठीक लक्षणानुसार नहीं होता।

ठीक इसी प्रकार ये झाड़-फूंकके प्रयोग भी रोगादिके दूर करनेके उपाय हैं परन्तु इनका प्रयोग भी ठीक लक्षणानुसार करनेपर ही फलदायक होता है। जिस रोगीके लक्षण ठीक बैठ जाते हैं वह चंगा होजाता है और दूसरा नहीं चंगा होता। जैसे—यह ठीक है कि कुनीन बुखारकी अच्छी ओषधि है। परन्तु सब प्रकारके बुखार कुनीनसे जावें, यह कथन असत्य है। सरकारी गैरसरकारी अस्पतालोंमें प्रायः पहले सबको कुनीन-मग्नीशियाका मिक्स्चर ही बुखारपर देते हैं। बहुतोंको आराम होजाता है पर लक्षणके विपरीत रोगी और बिगड़ जाते हैं। इसी प्रकार झाड़ा आदिके प्रयोगोंमें भी जो वैज्ञानिक नियम कार्य कर रहा है। वह अपने लक्षणपर ही चमत्कार दिखलावेगा, दूसरे पर नहीं। इसमें वैज्ञानिक नियम इस प्रकार है।

(१) जितने झाड़े दिये जाते हैं सब नोकीली वस्तुसे दिये जाते हैं। जैसे चाकूकी नोक, हंसिये की नोक, मोरके पंख, नीम आदिके पत्ते, झाड़ूकी सींकें। बिच्छू आदिके विषके लिये सीसापैंसिलकी नोक आदि।

इन प्रयोगोंमें वैद्युतिक आकर्षणका नियम काम करता है। परन्तु झाड़ा देनेवाले इस तत्वको नहीं जानते। वे अपने टोटकेको सबपर एकसाँ बरतते हैं। कहीं उनका टोटका लग जाता है और कहीं चूक जाता है।

(२) अनेक झाड़े हाथसे दिये जाते हैं। अनेकोंमें स्पर्श किया जाता है, अनेकोंमें कुछ कालतक एकटक देखकर जल दिया जाता है, मन्त्र पढ़ा जाता या फूँक दी जाती है। यह प्रयोग मेस्मेरिज़म और हिपनॉटिज़मके नियमोंसे बद्ध है। परन्तु यह भी अपने लक्षणानुसारही रोगको दूर करेगा। सबको नहीं। जहां केवल मानसिक विचार शक्ति और पर्सनल-मेग्नाटिज़म वैयक्तिक-शारिरिक विद्युतकी धारा सफल होती है वे ही रोगी इस प्रयोगसे अच्छे होते हैं, शेषों पर प्रयोग करना मूर्खता है।

(३) तावीज़ डोरे, कई धातोंकी तारें, छल्ले आभूषण आदि वैद्युतिक पदार्थोंसे बने होते हैं। उनके साथ शरीर का स्पर्श होनेसे रोगीको लाभ होता है। परन्तु इसका लाभ उचित लक्षणोंपर फल देगा।

(४) बहुतसे लोग रोगीके शरीरमें अनेक ओषधियोंको कपड़ेमें सीकर गलेमें पहनाते हैं, कमर, सिर, माथे आदिमें बांधते हैं। ऐसे पदार्थ अपना पृथक् प्रभाव रखते हैं। जैसे नाग

दमनकी लकड़ी सांपको निर्बल निर्वीर्य कर देती है उसी प्रकार वे ओषधियां अपनी गन्धमात्रसे रोगकारी कीटाणुओं को निर्वीर्य करके रोगीको रोगसे मुक्त कर देते हैं।

(५) रेशमी कपड़े, चमकीले पदार्थ, स्फटिक मणियें या ऐसे पदार्थ जिनपर सूर्यकी किरणें पड़ते ही इन्द्रधनुषके रंगोंमें फटजाती हैं वे अपना अद्भुत प्रभाव शरीरपर दिखाती हैं। जब उनपर किरणें पड़कर फ़टजाती हैं तब उनमेंसे नीलोत्तर किरणें (अल्ट्रावॉयलेट्रेज़ Ultraviolet Rays) निकलकर शरीरपर अपना रोगनाशक प्रभाव करती हैं। इन नीलोत्तर किरणोंके रोगनाशक प्रभावको वैज्ञानिक जगत् ने एक स्वरसे स्वीकार किया है। इन किरणोंसे त्वचाके रोग, व्रण, फोड़े, फुन्सी नासूर, और पुराने जीर्ण ज्वर सूखा आदि बाल-रोग इनसब पर बड़ा चमत्कारी प्रभाव होता है। योरोपके विद्वानोंने इन किरणोंको तीव्र वैद्युतिक बिल्लौरी लैम्पोंसे कृत्रिम रूपसे प्राप्त करके इन किरणोंसे स्नान करने की विधि निकाली है। योरोपमें अनेक पर्वतीय प्रदेशोंमें केवल 'सूर्य-प्रभास्नान' के हस्पताल बनाये हैं। उनका कथन हे कि राजयक्ष्मा और त्वचाके रोगियों तथा सूखा (Rickets) के रोगियोंके लिये सूर्यप्रभाके स्नानसे उत्तम कोई उपाय नहीं।

(५) वैज्ञानिकोंका सिद्धान्त है कि रोगनाशक नीलोत्तर किरणें (Ultraviolet Rays) काचके पार नहीं जातीं। इसलिये काचके भीतरसे निकली किरणें लाभदायक नहीं होतीं प्रत्युत ये किरणें बिल्लौर स्फटिकोंमेंसे निकल जाती हैं. अच्छा प्रभाव करती हैं। इसी सिद्धान्तपर हमारे पूर्वजों ने रत्नोंका धारण करना श्रेष्ठ बतलाया है, काचको अधम गिना है। भवनोंमें बिल्लौरी झाड़-फानूस लटकाना शोभादायक होनेके साथ रोगनाशक भी होता था, वह लाभ अब विलायती काचके बने पदार्थोंसे नहीं मिल सकता।

लोगोंकी दृष्टिसे पदार्थोंके वे गुण तो ओझल होगये। अब उन बातोंको हम या तो ऊपर की शोभा समझते हैं या उसे मूर्खतामें सम्मिलित कर लेते हैं।

भारतीय देहाती या अबोध जनतामें अनेक ऐसे रीति और रिवाज अनेक पदार्थोंका व्यावहारिक उपयोग हो रहा है, जिसको लोग कोई शोभाके लिये, कोई अन्ध विश्वाससे देवीदेवतापर श्रद्धाके वश काममें ला रहे हैं परन्तु उनका ठीक ठीक प्रयोग, लाभ, और गुण नहीं जानते। उन सब बातोंपर वैज्ञानिक दृष्टिसे विचार करना आवश्यक है।

अभी अनेक ऐसी अन्य भी बातें हैं जिनको इस लेखमें स्थान नहीं दिया। उनको भविष्यमें कभी लिखेंगे।

साहित्यविश्लेषण

[रामदास गौड़, काशी]

पुनर्जन्मकी पर्य्यालोचना—

देहलीकी कुमारी शान्तिदेवीके कथित पुनर्जन्मकी खोज।

लेखक, श्रीबालचन्द नाहटा। भूमिकालेखक डा० गिरीन्द्रशेखर बोस, *D. Sc., M.B.*, सभापति, इण्डियनसैको अनालिटिकल सोसायटी। प्रकाशक, बुद्धिवादी संघ १० आर-मीनियन स्ट्रीट, कलकत्ता। पृ० ३०। डबलक्रौन १६ पेजी। मूल्य दो आने।

दिल्लीकी कुमारी शान्तिदेवीके पुनर्जन्मके सम्बन्धमें मुद्दतसे बहस हो रही है। जो पुनर्जन्म मानते हैं वे उसे ठीक सिद्ध करना चाहते हैं, जो नहीं मानते वे उस बालिका के कथनोंको विश्वासयोग्य नहीं ठहराते। प्रस्तुत पोथी एक ऐसे ही सज्जनको लिखी है, जो अपने ही शब्दोंमें 'आत्मा और पुनर्जन्ममें सन्देह किया करते हैं।" आत्मामें वाल्टेअरको भी सन्देह न था जो प्रसिद्ध फरासीसी अनीश्वरवादी होगया है। परन्तु आपका बुद्धिवाद वाल्टेअरसे भी दो गज़ ऊंचा ही है। आपने स्वयं जाकर दिल्लीमें उस बालिकासे बातचीत की और उस तहकीकातसे जो निष्कर्ष निकाला है वह भी आपने इस पुस्तिकामें विस्तारसे दिया है।

शान्ति बेचारी तो बालिका ही ठहरी। नाहटाजीकी कठिन परिक्षामें चौकस न उतरी तो क्या आश्चर्य्य है। परीक्षाओंकी लेनदेनसे जीवनभर अभ्यस्त मैं स्वयं नाहटाजीकी परीक्षामें बुरी तरह फेल हो गया। वह कथा विद्वान् नाहटाजीने प्रसंग न होते हुए भी दे देनेकी कृपा की है, इसका तो मैं जीवनभर ऋणी रहूंगा। उसे यहां विज्ञानके पाठकोंके लिये नकल कर देनेके लोभको मैं रोक नहीं सकता। आप फरमाते हैं—

* "किस प्रकार अच्छे २ विद्वान् भी कभी २ अत्यन्त हलके दर्जेकी सारहीन युक्तियोंसे काम ले लिया करते हैं इसका एक उदाहरण मुझे भुलायेसे भी नहीं भूलता। सन् १९३३—३४की बात है। प्रसिद्ध प्रेतवादी प्रो० रामदासजी गौड़ कलकत्ता पधारे थे और श्री० भागीरथमलजी कानोड़ियाके मकानपर ठहरे थे। मैं भी अपने २-३ मित्रोंके साथ उनसे मिलने गया। उद्देश्य था प्रेतात्मवादके सम्बन्धमें कुछ पूछताछ करना। मैंने पूछा, क्यों प्रोफेसरसाहब ये नास्तिक लोग जो भूत-प्रेतोंका अस्तित्व नहीं मानते इनके दिमागको दुरुस्त करके प्रेतात्मागण इनसे अपना अस्तित्व मनवा क्यों नहीं लेते? उत्तरमें प्रोफेसर साहब बड़े गम्भीर भावसे बोले—वे सूक्ष्म शरीरधारी प्रेतात्मागणही तो इनके दिमागपर कब्जा किये रहते हैं और इनका दिमाग फेरे रखते हैं। मैंने आश्चर्यके साथ पूछा—ऐसा क्यों? तो बोले कि जिस प्रकार पार्थिव लोग अपने आपको गुप्त रखना चाहते हैं अपने सब काम सब पर प्रकट होने देना नहीं चाहते वैसेही वे भी यही चाहते हैं कि हमारा हाल किसीको मालूम न हो। और यही कारण है कि ये लोग समझाये भी नहीं समझते। प्रोफेसर साहबका इस प्रकार सयुक्तिक उत्तर सुनकर हमलोग अपनी हँसीकी मुद्राको कठिनतासे रोकते हुए कमरेसे बाहर हुए थे।"

विद्वान् नाहटाजी मनोविश्लेषणके विशेषज्ञ हैं और बुद्धिवादी होनेमें तो कोई शक ही नहीं। उन्होंने शान्तिदेवी की स्मरणशक्तिकी खूब परीक्षा ली। ऊपरके अवतरणमें आपने जिस घटनाको लिखा कि भुलाये नहीं भूलती वह जरूर ऐसी घटना थी कि दिलपर दृढ़तासे बैठ जाय। फिर भी आप जैसे दिमागवालेको ठीक नहीं याद है कि सन् १९३३ की घटना है या १९३४ की। दोनों वर्षोंकी तो होही नहीं सकती! श्रीनाहटाजीकी इतनी ही भूल नहीं है। मेरे उनके बीच जो बातचीत हुई उसके मुख्य शब्दको भी आप आसानीसे भूल गये हैं।

ऊपरके अवतरणमें ठीक ही लिखा है कि मैं गम्भीर भावसे बोला। मेरी गम्भीरतामें जो मृदु हास्य और गहरा मजाक था उसे श्री नाहटाजीके दिमागमें बैठे हुए प्रेतने, जिसने ऐसे समझदारको नास्तिक बना रखा है, खूब पहचाना, और भयाकुल हो नाहटाजीको अधिक ठहरने न दिया। हँसी की मुद्रा कहती थी कि "देखो तुमने पहचान लिया फिर भी मैं तुम्हारी पकड़से निकला जाता हूं।" इतने दिनों बाद भी उसने इस घटनाका उल्लेख करनेमें अपनेको खूब छिपाया। श्रीनाहटाजीसे मैं पूछता हूं कि भला, पार्थिव **लोग** अपने-आपको कहां गुप्त रखना चाहते हैं? महाराज, आप यहां भी सुभीतेसे भूल गये। मैंने कहा था 'जिस प्रकार पार्थिव **'चोर'** अपनेआपको गुप्त रखना चाहते हैं" इत्यादि। नाहटाजीके दिमागके **चोर** 'लोग'की आड़में भी मुझसे छिप नहीं सकते। वह आज भी उन्हें नास्तिक बनाये हुए हैं। आत्मा मानें, पुनर्जन्म मानें, तो दिमागके चोरोंका रहस्य भी खुल जाय। वे अपनेको छिपाये रखनेके लिये नाहटाजीको न जाने कहां-कहां भटकायेंगे, क्या क्या कुएँ न झँकाएंगे। अस्तु।

आप दिल्ली गये इसी मामलेकी पूरी जांचके लिये, मगर आप कबूल करते हैं कि "हमलोग ला० बिशनचन्दजी और चौबे कानजीमलजीसे मिलना चाहते थे तथा पड़ोसियों और उस महल्लेके हलवाइयोंसे भी पूछताछ करना चाहते थे। वह जिस स्कूलमें पढ़ती रही है उसके अध्यापक अध्यापिकायें, नौकर चाकर व इसके साथ खेलनेवाले लड़के लड़कियों से भी पूछताछ करनी जरूरी थी **मगर समयाभावसे ऐसा न कर सके।**"

बस यही **समयाभावका मगर** तो सभी विद्याभ्यासियोंको निगलता आया है। उसने नाहटाजीको भी न छोड़ा। जब आप इसी कामसे कलकत्तेसे दिल्ली गये तो उसे अधूरा क्यों छोड़ा? जो काम आपने छोड़ दिया वही तो

आपकी तहकीकातकी जान थी। शान्तिकी परीक्षा तो सभी करते आये। आपने विशेष क्या किया ? उत्तर पुस्तकके अन्तमें परीक्षाके लिये पूरी तैयारी न रखनेवाला परीक्षार्थी भी तो समयाभावका ही बहाना करता है और बड़े महत्त्वके प्रश्नों को छोड़ देता है। परीक्षक उसके इस बहानेसे क्या कभी सन्तुष्ट होता है ? महाराज ! युनिवर्सिटियोंमें एक-एक विज्ञानके अंशके आरम्भिक अनुशीलनमें दस-दस बरस लगा देते हैं, एक-एक प्रयोगमें अनेक बार असफल होते रहते हैं, इसी विद्याके रगड़ेमें अपना जीवन बिता देते हैं, सफलताके दर्शन नहीं होते, फिर भी समयाभावकी शिकायत नहीं करते, क्योंकि वही तो लक्ष्य है, उसके ही लिये समयाभाव ? समयाभाव तो उसके ही कारण और कामोंके लिये होता है। आपका लेख कह रहा है कि आपका मुख्य लक्ष्य सत्यान्वेषण था ही नहीं। वह तो गौण था। मुख्य तो वही था जिसके कारण आपको समयाभाव था। और आपने समयही कितना दिया ? धैर्य्य ही कितना खर्च किया ?

ढेरों ग्रन्थोंके परिशीलन और मननसे, सैकड़ों प्रयोगोंकी परीक्षा, विश्लेषण और संश्लेषणसे और बहुतकालके सत्सङ्गसे सत्पात्र जिज्ञासुको विषयज्ञान होता है। कुमारी शान्तिदेवी रूपी एक ही पुस्तिका की उतावलीकी सैरसे, और थोड़ेसे ऊटपटांग प्रश्नोंसे कहीं विषयज्ञान सम्भव है ? पाश्चात्य मनोविश्लेषण विज्ञान अभी कलका बच्चा है, उसमें अभी काम ही क्या हुआ है ? फिर भी जो कुछ हुआ है, क्या उसका आपने परिशीलनपूर्वक उपयोग भी किया है ? स्मरण और धारणा शक्तियोंकी परीक्षा क्या इसी तरह की जाती है ? भावोंकी, आवेगोंकी और घटनाओंकी स्मृतिमें क्या अन्तर नहीं है ? आपने जिस रीतिसे शान्तिकी परीक्षा की, डाक्टर फ्रोइडकी क्या यही विधि है ? आपकी यह पुस्तिका इस बातको प्रमाणित करती है कि मनोविश्लेषण विज्ञानका आपने कैसा और कितना अध्ययन किया है। आपको जानना चाहिये था कि बच्चोंमें जिन्सीयतका भाव निसर्गके नियमोंके अनुसार अन्तः चेतनामें निहित रहता है। तत्सम्बन्धी प्रश्नावली उस बालिकासे करना मनोविश्लेषणका उपहास करना था। जितना कुछ उस बालिकाने पूर्वजन्म सम्बन्धी बातें बतलायीं, उससे अधिक सही-सही उत्तर पानेकी आशा करना अत्यधिक है। आदमी कल रातका ही देखा सपना क्यों भूल जाता है और किसी सपनेको क्यों बरसोंतक ठीक-ठीक याद रखता है ? एक घटनाके किसी अंशको आप ही भूलनेकी कोशिश करके भी नहीं भूलते और उसीके दूसरे अंशको जो हमारी दृष्टिसे अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। आप सहजही भूल जाते हैं, इसके कारणपर आपने कभी विचार किया है ? एक अंश तो आप कोशिश करके भी याद नहीं कर सकते और दूसरे अंशको भूल भी नहीं सकते, ऐसा क्यों है ?

स्मरण, धारणा, भूल, भाव आवेग, रस आदिके सम्बन्ध में अनुसन्धानका अभी तो श्रीगणेश ही हुआ है। परन्तु आपका तो दावा उसमें पूर्ण पांडित्यका प्रतीत होता है। खेद है कि आपके प्रस्तुत अनुसन्धानमें उसका पता नहीं लगता।

आपका अनुसन्धान जब ऐसा है, तो निष्कर्ष कैसा होगा इसका अनुमान कठिन नहीं है।

(१) वर्णनमें कुछ अन्तरसे आप घटनाकी बनावट सिद्ध करते हैं। परन्तु आप शायद इस स्वाभाविक बातसे अनभिज्ञ हैं कि एक ही आदमी अपनी स्मृतिसे दस बरस पहलेकी बिसरी हुई घटनाको दोहराने लगे तो प्रतिप्रश्नोंसे गड़बड़ाकर वह अनेक बातें उलटी-पलटी कह जा सकता है। चतुर सच्चे गवाह अदालतोंमें वकीलोंके सवालसे गड़बड़ा जाते हैं। सीखे हुए झूठे गवाह सच्चे सिद्ध हो जाते हैं। बनावट होती तो शान्तिदेवीको उसके उत्तर शब्दशः रटा दिये जाते। वर्णनमें अन्तर तो बनावटका खंडन कर देता है। बुद्धिवाद तो कमसे कम नाहटाजीके इस निष्कर्षको ठीक नहीं ठहराता।

(२) शान्तिको इस जन्मकी बातें तो याद नहीं हैं और पिछलेकी याद हैं, यह नाहटाजीकी बुद्धि स्वीकार नहीं करती। अन्तः चेतनापर बचपनकी कैसी घटनाओंका प्रभाव पड़ता है, कैसीका नहीं। और जिनका प्रभाव पड़ता भी है उनको स्मृतिक्षेत्रमें लानेको क्या क्या उपाय करने पड़ते हैं, फ्रोइडसे पूछिये। प्रौढ़ावस्थाकी कैसी घटनाओंकी स्मृति अन्तः चेतनामें निहित हो जाती है और कैसी घटनाएं स्मरण रहती हैं, क्या इसपर भी आपने विचार किया है ? किया होता तो आपकी बुद्धि ऐसा बगावत न करती।

(३) आपको आश्चर्य्य होता है कि शान्तिको जिन्स भा का ज्ञान नहीं है। आप कहते हैं। कि 'यह किस प्रकार संभव हो सकता है कि जो बातें ऊपरी हैं वे तो जरूर स्मरण रह जायं और जिसका उसके शरीर और मनके साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध रहा हो वह एक दम विस्मरण हो जाय!" यहां भी आप अन्तः चेतनाकी क्रियाओंसे अनभिज्ञता प्रकट करते हैं। स्मृति और धारणा क्यों बनी रहती है और क्यों नष्ट हो जाती है, और कब किस बातकी क्यों याद आया करती है, इसपर आपके बुद्धिवादने कभी परिश्रम नहीं किया।

(४) बालिकामें प्रौढ़त्वके लक्षण आपने नहीं देखे। शायद पुनर्जन्मकी सिद्धिके लिये बुद्धिवाद इसे आवश्यक समझता है। पुनर्जन्म माननेवाला क्या यह दावा करता है कि पुनर्जन्म होगा तो बालकमें प्रौढ़ता देख पड़ेगी? हमारी छोटीसी बुद्धिमें आपका यह तर्क नहीं आता। जिसमें लोगोंने प्रौढ़ताका सादृश्य पाया वह तो बच्चोंमें कोई अनोखी बात नहीं है। अनोखापन तो पुनर्जन्मसिद्धिके विरुद्ध जाता, क्योंकि मैं तो पुनर्जन्म जीवमात्रका प्राकृतिक नियम मानता हूं। शान्तिमें उसका होना कोई अनोखी बात नहीं। हां, उसकी स्मृति जरूर असाधारण प्रतीत होती है।

(५) प्रश्नोंका चसका होना भी पूर्वोत्तर किसी पक्षका साधक बाधक नहीं है। यह तो बालिकाके लिये स्वाभाविक है।

(६) बाहरका असर पड़ना भी स्वाभाविक ही है। इस बातको छिपानेकी कोशिश की जाती तो बनावट मालूम होती। मनोविश्लेषकका तो यही कर्त्तव्य है कि वह विश्लेषण करके विचार करे।

(७) मैं नाहटाजीके इस निष्कर्षसे सहमत हूं कि आरंभसे ही यह मामला मनोविश्लेषणके विशेषज्ञोंके हाथमें नहीं रहा और अबतो ऐसा न रहा कि ठीक वैज्ञानिक अनुसन्धान संभव हो।

(८) मैं नाहटाजीके इस निष्कर्षसे भी सहमत हूं कि बाहरी परिस्थिति मनगढंतमें सहायक हो सकती है, परन्तु प्रस्तुत कथा सर्वथा मनगढंत ही हो ऐसा निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

(९) आपके अन्तिम निष्कर्षसे भी मैं सहमत हूं कि मनगढ़न्त ऐसा भी हो सकता है कि पीछे वह नितान्त सत्य प्रतीत हो। परन्तु मैं इस बातमें सहमत नहीं हूं कि प्रस्तुत पुनर्जन्मवाद ऐसा मनगढ़न्त है।

नाहटाजीके पहले छः निष्कर्ष तो लचर दलीलोंपर अवलम्बित हैं। पिछले तीन निष्कर्षोंका मेरे निकट कोई मूल्य नहीं क्योंकि नाहटाजीकी खोज इतने बादको हुई, इतनी जल्दीमें हुई और इतनी अपूर्ण हुई कि उससे कोई निष्कर्ष निकालना ही खतरनाक है।

एक ही प्रयोग और परीक्षासे कोई सिद्धान्त नहीं स्थिर किया जा सकता। शान्तिकुमारीके अकेले प्रयोग और परीक्षासे पुनर्जन्मकी सिद्धि या असिद्धि कुछ भी नहीं हो सकती।

—रा० गौ०

वैज्ञानिक टिप्पणियाँ

[प्रो० सालिगराम भार्गव एम्० एस्-सी०]

आर्गनके यौगिक

प्रायः स्कूल तथा कालिजके विद्यार्थियोंको भलीभांति मालूम है कि वायुमण्डलकी दुर्लभ गैसे 'आर्गन, हीलयम नियन, क्रिप्टन, जेनन' अत्यन्त उदासीन हैं। वह किसी भी अन्य मौलिकसे मिलकर यौगिक नहीं बनातीं। आर्गन शब्द का अर्थ ही है "निष्क्रिय" यह गैस इसी कारण बल्बोंमें काम आती है। वेस्टर्न रिजर्व यूनिवर्सिटीके प्रो० हेरल्ड एस० बूथने यह विचार किया कि यदि उचित दबाव और तापक्रमकी व्यवस्था की जावे तो सम्भव है कि इन वायव्योंके व्यवहारमें भी परिवर्तन हो जाय। अतएव उन्होंने बोरोन त्रिफ्लोरिदके साथ इन्हें मिलाया और शून्य तापक्रमके नीचे २००°श तक ठंडा किया। उधर दबाव भी १०–५० वायुमण्डलका डाला। इस प्रकार उन्हें आर्गनके छः यौगिक प्राप्त हुए।

(Popular Science से)

न जलनेवाले पौधे

न जलनेवाले कपड़ोंका ज़िक्र तो पुराणोंमें आता है (अग्निशौचे च वाससे, दुर्गास०) परन्तु न जलनेवाले पौधोंका आविष्कार बिलकुल नया है । लौस एंगलीज सुपरवाइज़र्सके सामने एक पश्चिमी बोटेनिस्टने एक प्रयोग अभी हालमें ही दिखाया है । उन्होंने एक झाड़ीमें तेलसे भीगा हुआ कपड़ा डाल दिया और उसमें आग लगादी । कपड़ा तो जलकर राख होगया परन्तु झाड़ीको किसी प्रकारकी क्षति नहीं पहुंची । दक्षिण केलिफोर्नियाके जङ्गलोंको दावानलके प्रकोपसे बचानेके लिये इस झाड़ीकी टट्टियाँ काममें लाये जानेकी योजना हो रही है । जिन क्षेत्रोंके चारों ओर इन झाड़ियोंकी टट्टियाँ रहेंगी वह आगसे बचे रहेंगे ।

सूर्यका तापक्रम

सूर्यके ऊपरी भागका तापक्रम ६००००° श है । हर्वर्ड कालिजकी वेधशालाके अध्यक्ष डा० टी० ई० स्टर्नका अनुमान है कि कुछ ऐसे भी तारे हैं जिनका केन्द्रीय तापक्रम प्रायः १,०००,०००,०००° श है । परन्तु यह बात अभीतक किसी परीक्षासे सिद्ध नहीं हो सकी है ।

[Sc. Am. से]

नये पलक और भौंहें

आस्ट्रेलिया देशके एक डाक्टरने एक नयी शल्य चिकित्साका सूत्रपात किया है । एक युवकके मुंहपर तेज़ाबके गिरनेसे आंखोंके पलक और भौंहें नष्ट होगयी थीं । शल्य प्रयोगसे शरीरके अन्य भागोंकी त्वचा काटके नये पलक और भौंहोंकी रचना की जा रही है । अबतक आठ बार शल्य प्रयोग हो चुके हैं ।

पृथ्वीके गोल होनेका नया प्रमाण

यदि पृथ्वी गोल है तो उषःकाल या सायं संध्या समय सूर्योदयके पहिले और सूर्यास्तके बाद भी वायुयानमें बहुत ऊंचे चढ़कर सूर्यके दर्शन हो सकते हैं ।

यूनाइटेड ऐयरलैनके मिटिरियो-लौजिस्ट टेड लारसेन (Ted Larseen) ने १०,००० फुटकी ऊंचाईसे सूर्योदयके १० मिनिट पहले सूर्य भगवानके दर्शन किये हैं ।

कांचके ब्लेड

जेकोस्लोवेकियाके एक कारखानेमें वर्षोंसे प्रयोग हो रहे थे । अब उस कारखानेको काँचके ब्लेड बनानेमें सफलता प्राप्त हुई है । ब्लेड बहुत सस्ते हैं, केवल एक त्रुटि है कि दुबारा तेज करके काममें नहीं लाये जा सकते ।

[Sc. Am. से]

टेलीफोनके तार

संयुक्त प्रदेश अमेरिकामें ८,७०,००,००० मील तार टेलीफोनके समाचार लेजानेके लिये प्रयुक्त हैं । संसारभरके टेलीफोन तारका यह ५६-९२ प्रतिशत है । जर्मनीमें १०-१४ % तार काममें आरहा है ।

रेडियमकी चालीसवीं वर्षगांठ

जोएकिमस्थल (Joachimsthal) प्रदेशमें ४० वर्ष पहले रेडियमका निकालना शुरू किया गया था । जेकोस्लोवेकियाके इस प्रदेशमें इस साल रेडियमकी ४०वीं सालगिरह मनायी जारही है । गत ४० वर्षमें १०० ग्राम रेडियम वहाँसे निकला है । प्रायः सालभरमें ३ ग्राम रेडियम बनता है परन्तु आवश्यकता पड़नेपर ८ ग्रामतक एक सालमें बनाया जा सकता है ।

[Sc. Am. से]

अलूमिनियमकी अर्द्ध-शताब्दि

[प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव, एम्० एस्-सी०]

प्रायः सौ वर्ष व्यतीत हुए कि अलूमिनियम तथा प्लाटिनम एक भाव बिकते थे । सन् १८५५की पेरिसकी प्रदर्शनीमें अलूमिनियम इतने महत्वका पदार्थ समझा गया था कि वहांके राजकीयरत्नोंके बराबर उसको भी स्थान दिया गया । सन् १८८४ ई० में जब वाशिंगटन स्मारकके लिए सौ औंसकी अलूमिनियमकी छत्री बनायी गयी थी तो न्यूयार्क नगरकी एक जुएलरकी दूकानमें वह प्रदर्शित की गयी थी ।

फ्रांसके सम्राट् नेपोलियन तृतीयने एकबार अलूमिनियमके फोर्क्स (कांटे) बनवाकर बड़े शौकसे दावत दी थी । स्यामका सम्राट् अपनी घड़ीके रखनेके लिए अपनी पेटीमें इसीका बटुआ बनवाते थे ।

प्रिंस इम्पि ल प्रोव फ्रांस जब १ वर्ष का था तो एक मिनिस उन्हें एलूमिनियमका बना रेटल (rattle) किया था ।

झुंझुन १८५२ में अलूमिनियमका भाव लगभग २०००) सेर था (५४५ डालर प्रति पौंड), किन्तु आजकल उसका भाव ।।=) पौंड है । अलूमिनियमके औद्योगिक परिमाणमें बनानेका इतिहास भी विचित्र है । ५० वर्ष पहले यह धातु चान्दीके समान मूल्यवान थी । सन् १८३३में प्रो० फ्रैंक एकजिवेट औवरलिन ओहियोमें अपने विद्यार्थियोंको यह बात बता रहे थे कि यद्यपि एलूमिनियम पृथ्वीके ऊपरी भागमें सर्वत्र बाहुल्यसे विद्यमान है तथापि चान्दीके समान दुर्लभ है । यदि कोई व्यक्ति इसके निकालनेकी सस्ती विधि ढूंढ निकाले तो मालामाल हो जाय ।

सामनेकी बेंचपर बैठे हुए एक विद्यार्थीने अपने पड़ोसी को कोहनीसे अपनी ओर आकर्षित किया और कहा कि मैं उसकी खोजमें जाता हूँ । रसायनिक गवेषणके एक महत्व पूर्ण नाटकका यही सूत्रपात है। इस विद्यार्थीका नाम चार्लस मोर्टिन हाल है (Charles Martin Hall) लगभग तीन वर्षके भीतर ही एक टूटे फूटे छप्परके कारखानेमें बहुत ही भद्दी और घरकी बनी हुई बेट्रियोंसे इस दुबले पतले विद्यार्थीने वह काम कर दिखाया जो बड़े बड़े वैज्ञानिक नहीं कर सकते थे । सन् १८८३के २३वी फरवरीके दिन विद्यार्थी 'हाल ज़िवेट' महोदयकी प्रयोगशालामें दौड़ता हुआ घुस गया । उसके हाथमें एक रजतमय धातुके छोटे छोटे दाने थे । जिस विधिसे २,००,००,००० मन अलमुनियम बनता है उसी विधिके प्रसवकालमें यह अलमुनियमके दाने बने थे । यह दाने अबतक सुरक्षित हैं । सन् १८२५में 'औयर्स्टेड' महोदयने जो कि होलेन्डके निवासी थे रसायनिक क्रियाओंसे अलमुनियमके बाजरेके समान छोटे छोटे दाने बनाये थे। (Hans Christian Orsted Danish Experiments) तदनन्तर जर्मन रासायनिक वोहला (Friedrich Wohler) ने अलमुनियम बनाया । यह पदार्थ नेपोलियन तृतीयको बड़ा प्रिय था । उसीके आग्रह से हेनरी सेंट क्लेर डेवलींने" अलमुनियमके प्रयोग शुरू किये । नेपोलियन तृतीय चाहते थे कि इसी धातुका शिरस्त्राण बनवाकर अपने सैनिकोंको पहनावे किन्तु कोई सस्ती विधि नहीं निकली ।

प्रकृतिमें अलुमुनियम ओषिद्के रूपमें पाया जाता है । थोड़ी मात्रामें ओषिदसे धातु बनायी जा सकती थी लेकिन लागत बहुत बैठती थी । ओषिदका द्रवणविन्दु २०५०° शतांश है । उसका पिघलाना विद्यार्थी हालकी घरेलू मट्टी और धौकनीके लिये असाध्य था । अतएव उनको एक ऐसे पदार्थकी तलाश हुई जो ओषिदको घुलाले और जिसको घोलकर वह विद्युतधाराके द्वारा विश्लेषण कर सकें । उन्होंने बारीबारी फ्लोरस्पार मेग्निसियम फ्लोरिद आदिकी परीक्षा की परन्तु असफल रहे । अन्तमें क्रायोलाइटकी बारी आयी । अपनी धौकनीसे क्रायोलाइट को पिघला लिया और उसमें ओषिद डाल दिया और दो घंटेतक विद्युतधार बहायी । जब घरिया ठंडी हुई तो उसकी तलैटीमें रजत श्वेत धातुके दाने दिखाई दिये । इन्हीं दानों को लेकर फरवरीकी कड़ी सर्दीमें दौड़ते हुए वे अपनी गुरुकी प्रयोगशालामें पहुंचे ।

बड़े आश्चर्यकी बात है कि उन्हीं दिनोंमें हालके समवयस्क नवयुवकने ३००० मील दूरीपर जेनरलीमें बिलकुल इसी प्रकारका अन्वेषण किया था । उसका नाम पोल होर्लेट था । होरलेट जो कि बहुत गरीब आदमी था ग्राम डायनमोसे अपने प्रयोगके लिये विद्युत तय्यार की थी । इन दोनों महाशयोंकी जीवनी मिलती जुलती है । वे दोनों १८६३ में पैदा हुए थे और दोनोंने १८८६में आविष्कार किये और दोनोंका ही १९१४में देहान्त होगया । हालका अविष्कार केवल दोही महीने पहिले Horletसे हुआ था ।

अलमुनियमके बर्तनोंका प्रयोग सब जगह होता है । सबसे पहिले इसका प्रयोग पेटियोंमें हुआ था जिनमें घड़ी रखनेकी जेब अलमुनियमकी बनायी गयी थी । सन् १९०६ में Wellmann ने अलमुनियम की नावें बनायीं । सन् १८९७ में शिकागोमें Railwayके कर्मचारियोंको एक कठिनाई आपड़ी । तांबेके बने हुए टेलीफोनके तार इञ्जनों की धुआँसे खराब हो जाते थे और स्विचबोर्डमें कठिनाई उत्पन्न करते थे ।

रेलवेके अधिकारियोंने आधी मीलतक अलमुनियमके तार लगा दिये जिसका उपयोग बहुत ही संतोष जनक हुआ । परिणामतः आज ४३,०००० मील लंबा अल-

मुनियमका तार काममें आ रहा है। ऊंचे वोल्टेजकी विद्युत-धाराको ले जानेके लिये भी लोहेका तार जिसपर अलमुनियम मढ़ दिया जाता है काममें आता है। कुछ दिन पहिले सीसेके यौगिक सिंदुर वगैरह पेंट करनेके काममें आते थे, उसकी जगह आजकल अलमुनियमचूर्ण काममें आता है। यह न केवल अधिक उपयोगी है बल्कि हलका भी है। आजकल यह जहाजोंके पेंट करनेके काममें भी आत है। अलमुनिमके नये उपयोगोंका पता चलानेके लिये New Gealandकी प्रयोगशालामें लगभग १०० वैज्ञानिक निरंतर परीक्षा करते रहे हैं। उदाहरणतया केवल स्त्रियोंकी शक्तिका पता चलानेके लिये ४००० नमूनोंकी परीक्षा की गयी। प्रति मिनट १८०० बारकी चालसे एक दूसरी मशीन अलमुनियमके टुकड़ेको दबाती और खींचती है यहाँतक कि वह टूट जाता है। एक और मशीन ३,००००० पौंडतक दबावसे टुकड़ोंकी परीक्षा करती है। इसी प्रकार परीक्षा होती रहती है।

अब्-भक्ष और वायुभक्ष तपस्या

[श्रीजयदेवशर्मा, विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ, अजमेर]

प्राचीन ऋषियोंकी तपस्याओंका आश्चर्यजनक वर्णन भारतीय साहित्यमें स्थान स्थानपर देखनेमें आता है। ऋषियोंने इस तत्वपर बड़ी सूक्ष्म दृष्टिसे सत्य प्राप्त किये कि जब अन्नसे और वनस्पतियोंसे हम शारीरिक शक्ति प्राप्त करते हैं। ये पदार्थ सूर्यकी किरणों और जल वायु विद्युत् आदिसे शक्ति प्राप्त करते हैं, तो क्यों नहीं हम भी सूक्ष्म-रूपमें सीधे सूर्य वायु और जल आदिसे ही शक्ति प्राप्त करें।

ऋषियोंने इस यत्नमें बड़ी सफलता प्राप्त की थी। वे अपनी समग्र शक्तियोंको स्थूल खाद्यसे न लेकर सूक्ष्म प्राकृतिक तत्त्वोंसे ही लेलिया करते थे। इस प्रकारके अभ्यासी साधकोंकी तीन श्रेणियां थी १. अब्-भक्ष जो केवल जलमात्र सेवन करके अपनी शक्ति प्राप्त करते थे। २. वायुभक्ष जो केवल शारीरिक शक्तियोंको वायुमात्र आहार करके लेते थे। इसके उनके समक्ष सर्पका दृष्टान्त था। सर्पोंको पवनाहारी कहा जाता है। यद्यपि सर्प कु. नहीं खाता ऐसा नहीं पाया जाता अजगर भी छोटे मोटे जा. े ग्रस जाता है तो भी चौमासेके उपरान्त सर्प ६ मासकी। लेता है। और शीतके छहों मास निराहार व्यतीत करता है। वह भी किसी प्रकृतिसिद्ध साधनासे ही ऐसी निराहार वृत्ति करनेमें समर्थ होता है। ऋषियोंने इस अजगरी वृत्तिकी तप साधना करके नरदेहमें भी सफलता प्राप्त की है।

इसी प्रकार कछुआ, घड़ियाल आदि जलीय जीव बरसों सूखे तालाबों वा नदियोंमें पड़े रहते हैं। वे भी निराहार रहकर जीवित रहते हैं। केवल वायुमात्र आहार करते हैं। वे दुर्बल भी नहीं होते। (३) तीसरी श्रेणीमें मरीचिप हैं जो केवल सूर्यकी किरणों और विद्युत्के द्वाराही शरीरमें शक्ति को धारण करनेका उपाय करते थे। परन्तु इनकी साधना किस प्रकार होती थी ऐसा स्पष्ट कहना बड़ा कठिन है।

हालहीमें इस प्रकार निर्जल निराहार तपःसाधनाके दो एक दृष्टान्त जगत्के समक्ष हो आये हैं उनसे यह विदित होता है कि प्राचीन साधक ऋषि भी उसी प्रकार साधना करते होंगे।

(१) बांकुड़ा जिलेके पातरसपार गांवमें श्रीमती गिरिबाला देवी नामक एक ६८ वर्षी कायस्थ महिला है जो १२ वर्षकी आयुसे जबसे उनका विवाह हुआ योगबलसे अनशन कर रही हैं वे नित्यप्रति एक तुलसीदलके सिवाय कुछ आहार नहीं करतीं। वे जल भी ग्रहण नहीं करतीं। सदा प्रसन्न रहती हैं। मलमूत्र भी नहीं त्यागतीं। इसपर भी इनकी सब शक्तियां बराबर बनी हैं।

(२) इसी प्रकार अमरीकामें भी एक महिला १० बर्षोंसे बराबर अनशन कर रही हैं।

(३) अजमेर और पुष्करके बीच नागपर्वतमें चरम देवाश्रममें एक गुफ़ामें एक नग्न महात्मा रहते हैं, वे भी दिनमें सूर्यकी कड़ी धूपमें पड़े रहते हैं। उनको भी किसीने भोजन करते और जल लेते नहीं देखा वे भी सदा प्रसन्न रहते हैं। वे कदाचित् मरीचिप कोटिके तपस्वी हों। यह सब अनुसन्धान करने योग्य दृष्टान्त हैं।